प्रकाशक
बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना-४

प्रथम संस्करण २,०००
शकाब्द १८८९; विक्रमाब्द २०२४; खृष्टाब्द १९६७
मूल्य : पन्द्रह रुपये मात्र

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय
प्रयाग

वक्तव्य

बिहार-सरकार ने महाकवि विद्यापति की समस्त कृतियों के संकलन, प्रमाणीकरण, पाठालोचन, सम्पादन और प्रकाशन का भार बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् को सौंपा है। इस कार्य के सम्पादन के लिए परिषद् के संचालक-मण्डल के तत्त्वावधान मे विद्यापति-स्मारक-समिति का गठन किया गया है, जिसके प्रथम अध्यक्ष स्वर्गीय डॉक्टर अमरनाथ झा थे। उनके निर्देशन में यह कार्य प्रारम्भ ही हुआ था कि सहसा उनका स्वर्गवास हो गया। अतः, उनके स्थान पर भूतपूर्व शिक्षा-मन्त्री कुमार श्रीगंगानन्द सिंह का मनोनयन हुआ। कुमार साहब की अध्यक्षता मे समिति के निर्देशानुसार परिषद् ने विद्यापति की कृतियो के सकलन, सम्पादन और प्रकाशन का कार्य सुव्यवस्थित रूप से प्रारम्भ किया। विद्यापति-स्मारक-समिति की सहायता के लिए विद्यापति-साहित्य के विशेषज्ञो और मर्मज्ञ विद्वानो का एक सम्पादक-मण्डल भी गठित किया गया है, जो उनकी प्रत्येक रचना का पाठ-सशोधन, प्रमाणीकरण और सम्पादन करता है। इन समस्त कार्यों के लिए सरकार द्वारा परिषद् के अन्तर्गत 'विद्यापति-स्मारक-अनुसन्धान-विभाग' स्थापित किया गया है, जिसके प्रभारी प० शशिनाथ झा है।

विद्यापति क्रान्तद्रष्टा कवि थे। जिस युग में उनका आविर्भाव हुआ था, उसके पूर्व चिन्तन, मनन और साहित्य-सर्जना के माध्यम के रूप मे संस्कृत सम्पूर्ण देश की समादृत भाषा थी। किन्तु, इसके साथ-साथ अपभ्रंश-भाषाएँ भी साहित्य-सर्जना के क्षेत्र मे प्रतिष्ठित हो चुकी थी। स्वभावतः, संस्कृत का व्यवहार चिन्तन, मनन और विवेचन के क्षेत्र मे सीमित हो चला था और कलात्मक प्रतिभा की अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में अपभ्रंश-भाषा को उत्तरोत्तर मान्यता मिल रही थी। विद्यापति की क्रान्तदर्शी प्रतिभा ने यह स्पष्ट अनुभव किया कि जहाँ हमारे सचित-अर्जित ज्ञान और चिन्तन की वाणी के रूप मे संस्कृत का समादर होगा और विद्वत्समाज मे परम्परागत रचना-पद्धति के लिए अपभ्रंश-भाषाएं मान्य होंगी, वहाँ लोक-जीवन के प्रचण्ड रागात्मक उद्वेलन की सवाहिका के रूप मे लोकभाषा ही समादृत हो सकेगी। इसीलिए, संस्कृत को अपनी रचनाओ के माध्यम के रूप मे स्वीकार करते हुए भी उन्होने यह घोषणा की थी—**देसिल बयना सबजन मिट्ठा, ते तइसन जंपओ अवहट्ठा।** उनकी यह घोषणा तत्कालीन लोकभाषा मैथिली के साहित्य-अभियान की विजय-वैजयन्ती सिद्ध हुई।

अतः, विद्यापति की कृतियाँ संस्कृत, अवहट्ठ और मैथिली—तीनो मे है। विद्यापति संस्कृत के विद्वान् थे, इसीलिए उनकी सबसे अधिक रचनाएँ भी संस्कृत में ही है। संस्कृत मे उनके तेरह ग्रन्थ प्रकाशित-अप्रकाशित रूप मे अबतक उपलब्ध हुए है। संस्कृत के बाद अवहट्ठ का स्थान है। अवहट्ठ मे भी उनके तीन ग्रन्थ प्रकाशित-अप्रकाशित रूप मे पाये गये है। किन्तु,

उनकी लोकप्रियता का आधार उनकी 'पदावली' है, जो मैथिली मे निबद्ध है। इसलिए, सर्वप्रथम 'पदावली' के प्रकाशन से ही विद्यापति की कृतियो के प्रकाशन की इस योजना का प्रारम्भ हुआ।

विद्यापति के पदो की सख्या भी कम नही है। विहार वगाल और आसाम से लेकर नेपाल तक उनके पद बिखरे पड़ है। सबका सकलन, सम्पादन और प्रकाशन एक साथ असम्भव था। अतः, उन पदो को चार भागो मे विभक्त कर दिया गया। प्रथम भाग मे, नेपाल मे उपलब्ध पाण्डुलिपि का, विस्तृत व्याख्या के साथ. प्रकाशन हो चुका है। द्वितीय भाग मे, मिथिला मे उपलब्ध पाण्डुलिपियो का, विस्तृत व्याख्या के साथ, प्रकाशन किया जा रहा है। तृतीय भाग मे, बंगाल की वैष्णव-पदावलियो मे और चतुर्थ भाग मे, मिथिला के लोककण्ठ मे उपलब्ध विद्यापति के पदो का समावेश किया जायगा।

विद्यापति-विभाग के क्षेत्र-पदाधिकारी पण्डित शशिनाथ झा और डॉ० वजरग वर्मा ने उपर्युक्त विद्यापति-ग्रन्थ-सम्पादन-समिति के निर्देशन मे प्रथम भाग की तरह द्वितीय भाग का भी सम्पादन किया है। सम्पादक-मण्डल ने वडी सावधानी के साथ सम्पादित सामग्री का निरीक्षण-परीक्षण किया है, जिसके लिए हम सम्पादक-मण्डल के आभारी है।

भूमिका के सम्बन्ध मे भी कुछ निवेदन करना आवश्यक प्रतीत होता है। प्रथम भाग की भूमिका मे विद्यापति के जीवन से सम्बद्ध विषयो का समावेश किया गया है और प्रस्तुत द्वितीय भाग की भूमिका मे उनकी भाषा पर विचार किया गया है। विद्यापति की भाषा आज से छह सौ वर्ष पुरानी मैथिली है। अत, उनके पदो के पर्यालोचन के लिए उनकी भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन भी आवश्यक है। विद्यापति की भापा का विवेचन-विश्लेषण किये बिना उनके पदो का मर्म समझना कठिन है। इसीलिए, द्वितीय भाग की भूमिका मे उनकी भाषा का सर्वांगीण विवेचन किया गया है। आशा है, जिस प्रकार देश-विदेश के विद्वानो, अनुसन्धायको और समालोचको ने प्रथम भाग को अपनाकर हमे प्रोत्साहित किया है, उसी प्रकार इस भाग को भी अपनाकर वे हमे कृतार्थ करेंगे।

अन्त मे, एक बात और निवेदन कर देना आवश्यक प्रतीत होता है। भूतपूर्व शिक्षा-मन्त्री कुमार श्रीगगानन्द सिहजी कामेश्वर सिह-दरभगा-सस्कृत-विश्वविद्यालय के उपकुलपति होकर दरभगा चले गये है। अत, उनके स्थान पर अब मैथिली-भाषा और भाषाविज्ञान के मर्मज्ञ विद्वान डॉ० सुभद्र झा विद्यापति-स्मारक-समिति एव विद्यापत्ति-ग्रन्थावली-सम्पादक-मण्डल के अध्यक्ष मनोनीत किये गये है। विद्यापति-पदावली के प्रस्तुत भाग का सारा कार्य कुमार श्रीगगानन्द सिहजी के निर्देशन मे ही हुआ है, अत. उन्ही के द्वारा प्रस्तुत आमुख के साथ इसे प्रकाशित किया जा रहा है।

विहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना
अग्रहायण-पूर्णिमा, २०२४ विक्रमाब्द

नवलकिशोर गौड़
निदेशक

आमुख

'विद्यापति-पदावली' का यह दूसरा भाग है। प्रथम भाग मे नेपाल की प्राचीन पाण्डुलिपि मे उपलब्ध विद्यापति के पद संगृहीत हैं। इस दूसरे भाग मे मिथिला की प्राचीन पाण्डुलिपियों में—'रामभद्रपुर' और 'तरौनी' की पाण्डुलिपियो तथा 'रागतरंगिणी' मे प्राप्त विद्यापति के पदो का संग्रह किया गया है। इनमें 'तरौनी' की पाण्डुलिपि और 'रागतरंगिणी' मे प्राप्त विद्यापति के पद सर्वप्रथम स्वर्गीय नगेन्द्रनाथ गुप्त के सस्करण मे प्रकाश मे आये। 'रामभद्रपुर' की पाण्डुलिपि मे प्राप्त विद्यापति के पद उसके बहुत बाद प्रकाशित हुए। सर्वप्रथम इसके प्रकाशन का श्रेय स्वर्गीय शिवनन्दन ठाकुर को है। उन्होंने ही स्वर्गीय विष्णुलाल शास्त्री से सूचना पाकर 'रामभद्रपुर' की पाण्डुलिपि मे प्राप्त विद्यापति के पदो को 'विद्यापति-विशुद्ध-पदावली' के नाम से सन् १९३८ ई० मे मुद्रित करवाया। किन्तु, मुद्रित हो जाने पर भी दुर्भाग्यवश यह पदावली उनके जीवनकाल मे प्रकाश मे नही आ सकी। यह उनके स्वर्गारोहण के बाद ही सन् १९४१ ई० मे प्रकाशित हुई।

इस प्रकार, यद्यपि मिथिला की प्राचीन पाण्डुलिपियो मे उपलब्ध विद्यापति के ये पद प्रकाश मे आ चुके थे, तथापि उनमे विद्वानों को सन्तोष नही था। गुप्तजी का प्रथम प्रयास था, इसलिए उन्होंने जो कुछ किया, वही बहुत है। जिस प्रकार भूमण्डल पर गगा ले आने का श्रेय भगीरथ को है, उसी प्रकार विद्यापति के पदों को सर्वप्रथम 'पदावली' के रूप में प्रकाशित करने का श्रेय गुप्तजी को है। इसलिए, जिस प्रकार भगीरथ धन्यवादार्ह है, उसी प्रकार गुप्तजी भी धन्यवादार्ह है। और, जो बात गुप्तजी के लिए कही गई है, वही स्वर्गीय शिवनन्दन ठाकुर के लिए भी कही जा सकती है। अस्वस्थ होते हुए भी उन्होंने जिस साहस के साथ बिना किसी सम्बल के अपने दुर्बल कन्धो पर 'रामभद्रपुर' की पाण्डुलिपि में प्राप्त विद्यापति के पदों के समुद्धरण का भार लेकर उन्हे मुद्रित करवाया—इसके लिए वे भी धन्यवाद के पात्र हैं।

गुप्तजी को 'विद्यापति-पदावली' के संकलन से सम्पादन तक में कवीश्वर चन्दा झा (चन्द्र कवि) से सहयोग मिलता था, किन्तु अकस्मात् उनके कैलासवासी हो जाने के कारण बाद में गुप्तजी उस अमूल्य सहयोग से वचित हो गये। इसलिए, उनके सस्करण में अनेक त्रुटियाँ रह गई। किन्तु, बाद के सम्पादक भी गुप्तजी से आगे नही बढ़ सके—उन्ही की नकल करते रह गये। इसी प्रकार स्वर्गीय शिवनन्दन ठाकुर ने 'रामभद्रपुर' की पाण्डुलिपि में प्राप्त विद्यापति के पदो का और स्वर्गीय राजपण्डित बलदेव मिश्र ने 'रागतरंगिणी' में प्राप्त विद्यापति के पदो का जैसा सम्पादन किया, बाद के सम्पादक भी वैसा ही करने लगे। इसका

परिणाम यह हुआ कि एक भी 'विद्यापति-पदावली' सुसम्पादित नही निकली, जो विद्वानों को वास्तव मे सन्तुष्ट कर सकती। इसीलिए, 'विद्यापति-पदावली' के एक सुसम्पादित संस्करण की आवश्यकता थी, जिसकी पूर्त्ति के लिए ही यह प्रयास है।

प्रथम भाग की भूमिका मे 'नेपाल की पाण्डुलिपि' का परिचय देते हुए कहा गया है कि "इसकी लिपि प्राचीन मिथिलाक्षर है। लिखावट प्राय. स्पष्ट है किन्तु अनेक अक्षरो में आकार-साम्य के कारण पढने में कठिनाई होती है। 'र'-'व' 'न'-'ल', 'तु'-'ओ' आदि अक्षर प्राय एक ही प्रकार के है। अर्थ पर विचार करने के बाद ही उनका ठीक-ठीक निर्णय हो पाता है। मात्रा देने के भी कुछ खास ढंग हैं, जिनसे भ्रम होने की गुजाइश रहती है। शब्द पृथक्-पृथक् नही लिखे हैं। अत, पदच्छेद करने मे बडी कठिनाई होती है। इन्ही कारणो से नेपाल की पाण्डुलिपि मे कितने ही ऐसे पद हैं, जो अबतक ठीक-ठीक नही पढे जा सके थे और इसीलिए उनका वास्तविक अर्थ भी नही हो सका था। प्रस्तुत सस्करण मे परिश्रमपूर्वक शुद्ध पाठ और समीचीन अर्थ देने का प्रयास किया गया है।" सो, यही बात मिथिला की पाण्डुलिपियो के सम्बन्ध मे भी लागू होती है।

मिथिला की पाण्डुलिपियो के उपयोग करनेवाले प्रमुख व्यक्ति हैं—(१) स्वर्गीय नगेन्द्रनाथ गुप्त, (२) स्वर्गीय शिवनन्दन ठाकुर, (३) स्वर्गीय राजपण्डित बलदेव मिश्र और (४) श्रीखगेन्द्रनाथ मित्र तथा श्रीविमानविहारी मजूमदार। गुप्तजी का प्रथम प्रयास था, इसलिए उनसे भूल हो जाना स्वाभाविक है। किन्तु, बाद के सम्पादको ने भी कम भूले नहीं की है। अत, उनके सम्पादन का विहगावलोकन आवश्यक है, जिससे तथ्य का स्पष्टीकरण हो सके।

सर्वप्रथम 'रामभद्रपुर' की पाण्डुलिपि पर दृक्पात कीजिए। 'रामभद्रपुर' की पाण्डुलिपि स्वर्गीय नगेन्द्रनाथ गुप्त को प्राप्त नही हो सकी। इसीलिए, उन्होने अपने सस्करण में इसका उपयोग नहीं किया। सर्वप्रथम इसके प्रकाशन का श्रेय स्वर्गीय शिवनन्दन ठाकुर को है। बाद मे मित्र-मजूमदार महोदय ने भी अपने संस्करण मे 'रामभद्रपुर' की पाण्डुलिपि मे प्राप्त विद्यापति के पदो को स्थान दिया। किन्तु, उपर्युक्त कारणो से वे भी इन पदों के पढ़ने मे असमर्थ ही रहे। और, जब पद ही नही ठीक से पढे गये, तब अर्थ की क्या बात? उदाहरण लीजिए :

स्वर्गीय शिवनन्दन ठाकुर का पाठ—

विरलाकें भल खिरहर सोम्पलह
दूघ बहलि अछ डाढ़ी।
दधि दूघ घोर घीव सबोखए
सगरि रअनि सुखे खएलक काढ़ी॥
जतन अबहुँ न चेतह अपाने।
अपनुक कुगति अपने नहि जानह
कि उपदेश अजाने॥

बटइ गराम्बर बान्धि पठओलह
भानस तेलक माझें।
तेहि बिरलवाझे सुख मुखें खाएल
राति दिवस दुहु साझें॥
मुन्दहर घर मुन्दहरिआ कएलह
मूस मानु सब छाड़ी।
काटि संखा विख ... ...
... ...बेवएलक गाड़ी॥
घेङ्गल बान्धि पटोरा घएलह
अइसनि तुअ परिपाटी।
पतरागी जओ खण्डे खण्डे कएलक
मुख मुखे हललक काटी॥
गोबरें बान्धि बीछ घर मेललह
एकर होएत परिनामें।
राजा शिवसिंह रूपनरायन
लखिमा देवि रमाने॥

(विद्यापति-विशुद्ध-पदावली, पद-संख्या २४)

ठाकुरजी इसे ठीक से पढ नही सके। इसका भान उन्हे प्रायः स्वय भी था। इसीलिए, उन्होने इसका अर्थ भी नही लिखा। इतना ही लिखकर छोड़ दिया कि "इस पद का साराग यही समझा जाता है कि तू जिस सखी को दूती बनाकर भेजती है अथवा जिसके ऊपर तेरा पूर्ण विश्वास है, वह स्वयं तेरे प्रियतम के साथ प्रेमासक्त हो गई है। अब भी सावधान हो जा।"

मित्र-मजूमदार ने अपने संस्करण (पद-सख्या ८३) मे प्राय ठाकुरजी का पाठ ही उद्धृत किया है। केवल दो-चार शब्दो में यत्किञ्चित् परिवर्त्तन कर दिया है। जैसे—'अछ डाढी' के स्थान मे 'अच्छडाढो', 'सओखए' के स्थान मे 'सओखएक', 'बेवएलक' के स्थान मे 'वेघअलक', 'घेङ्गुल' के स्थान मे 'धेन्दुल', 'मुख मुखे' के स्थान मे 'मुस मुखे' और 'हललक' के स्थान मे 'हतलक'। इस प्रकार, वे भी इसे ठीक से नही पढ़ सके। ठाकुरजी नही पढ सके, तो स्पष्ट शब्दो मे उन्होने अर्थ लिखने मे भी अपनी असमर्थता प्रकट कर दी, किन्तु मित्र-मजूमदार ने वैसा नही किया। अर्थ लिख ही दिया। देखिए—

"(सखी-रूपी दूती नायिका-कर्तृक नायकेर निकट प्रेरित हइया स्वय नायकेर सहित सम्भोग करियाछे; अन्य सखी नायिका के सावधान करिया दिया बलितेछे—)

'तुमि विड़ालके दूध-रक्षार भार दियाछ; दूध पडिया गेल; दधि, दुध, घोल, वि बाहिर करिया से सारा रात सुखे खाइया काटाइल। एखनओ तुमि सावधान हओ। आपनार

दुर्गति निजे ना जानिले अज्ञानके उपदेश दिया कि लाभ। वटइ (माछ) कापडे बान्धिया तेले छाडियाछ। विडाल ताहा सुखे रात-दिन दुइ वेला खाइल। वन्ध घरे सकलके छाडिया इन्दुरके रक्षक राखियाछ। ते वाँधिया रेशमी साडी राखियाछ—एमन तोमार परिपाटी। मूपिक ऊहा टुकरा-टुकरा करिया उहाते वाँधा मिठाइ मुखे पुरिया दियाछे। गोवरे वाँधिया विछा घरे फेलिया दियाछ। इहार परिणाम भोग करिते हइवे। राजा शिवसिंह रूपनारायण लखिमा देवीर रमण।"

अव 'परिपद्' से प्रकाशित 'पदावली' का पाठ लीजिए—

बिरलाकें भल खिरहर सोम्पलह
दूध रहलि अछ डाढ़ी।
दधि दुध घोर घीव सजे खएलक
सगरि रअनि सुखे काढ़ी॥
अचेतन अबहुँ न चेतह अपाने।
अपनुक कुगति अपने नहि जानह
की उपदेसत आने॥
बटइ गरॉ मुर बान्धि पठओलह
भानस तेलक माझें।
तेहि विरलवाजे मुख-सुखें खाएल
राति-दिवस दुहु साझें॥
मुन्दहर घर मुन्दहरिआ कएलह
मूस मान् सब छाड़ी।
काटि संखारी खण्डे-खण्डे कएलक
सबे (धन) धएलक गाड़ी॥
घेङ्गल बान्धि पटोरॉ धएलह
अउसनि तुअ परिपाटी।
पतरागी जओ खण्डे-खण्डे कएलक
मुख-सुखें हलल्लक काटी॥
गोवरें बान्धि बीछ घर मेललह
एकर होएत परिनामे।
राजा सिवसिंह रूपनराएन
लखिमा देवि रमाने॥

(पद-संख्या २६)

शब्दार्थ—विरलाकें=विलाव को। खिरहर=मिट्टी का बना वह वस्तु-विशेष, जिसमे बरतन रखकर दही जमाया जाता है। अचेतन=अज्ञानी। डाढी=दूध औंटने के वाद उसका

जो अंश बरतन में लगा रह जाता है। रजनि=रात। अपाने=अपने को। आने=दूसरा। बटइ= (वार्त्तांक—स०) बटेर=एक पक्षी। गराँ=गले मे। मुर=(मुण्ड—सं०) मूड़ी। भानस= (महानस—स०) रसोईघर। विरलवाले=बिलाव ने। मुख-मुखें=मुख-सुखार्थ। मुन्दहरघर= वह घर, जिसमे बन्द करके वस्तुएँ रखी जाती है। मुन्दहरिआ कएलह=बन्द किया। मूस= चूहा। मानु=माँद। सखारी=बाँस की बनी पिटारी। गाड़ो=गाडकर। घेङ्गल=झींगुर= तेलचट्ट। पटोराँ=रेशमी वस्त्र मे। पतरागी=पेटरागी=पेटू। मेललह=डाल दिया।

अर्थ—(तुमने) विलाव को अच्छी तरह खिरहर सौंप दिया। (इसका फल हुआ कि पहले उसमे) दूध था, (अब) डाढी रह गई।

(विलाव) सारी रात सुख से काढकर घी के साथ दही, दूध (और) मट्ठा भी खा गया।

अरी नादान! अब भी अपने को नही चेतती है? अपनी बुरी दशा को स्वयं नही जानती है (तो) दूसरा क्या उपदेश देगा?

कण्ठ (और) मुंह बाँधकर बटेर को रसोईघर मे तेल के बीच डाल दिया।

रात-दिन—दोनों शाम बिलाव ने मुख-सुखार्थ उसे खा डाला।

(तुमने) चूहे की सारी माँद छोडकर भाण्डार को (लीप-पोतकर) बन्द किया। (इसीलिए चूहे ने) सँखारी को खण्ड-खण्ड कर दिया (और) सारे (धन को) गाड़ रखा।

तुम्हारी ऐसी परिपाटी है कि (तुमने) तेलचट को रेशमी वस्त्र मे बाँध रखा। (उसने) पेटू की तरह (रेशमी वस्त्र को) खण्ड-खण्ड करके मुख-सुखार्थ काट डाला।

(तुमने) गोबर मे बाँधकर विच्छू को घर मे डाल लिया। सो, इसका भी फल होगा (अर्थात्—इसका कैसा फल होगा,—सो समय आने पर समझोगी)। लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह रूपनारायण (इसे समझते हैं)।

विशेष—गोवर मे विच्छू की अभिवृद्धि होती है।

उपर्युक्त तीनो पाठ और अर्थ पर दृक्पात करने से ज्ञात होता है कि स्वर्गीय शिवनन्दन-ठाकुर इस पद को ठीक-ठीक पढ़ ही नहीं सके। इसीलिए, उन्होंने इसका अर्थ भी नही लिखा। केवल अपने मनोभाव को 'साराश' के रूप मे प्रकट कर दिया। मित्र-मजूमदार ने भी इस पद को पढने का यत्न किया, किन्तु वे भी असफल ही रहे। इस पद मे कुछ ऐसे ग्राम्य शब्द है, जिनका व्यवहार गाँव-घर तक ही सीमित है। इसीलिए विद्वानो का ध्यान उनकी ओर हठात् नही जाता है। जैसे—खिरहर, डाढी, बटइ, गराँ, मुर(ड), भानस, मुन्दहरघर, मानु, सखारी, घेङ्गल और पतरागी। ये ऐसे शब्द हैं, जो मिथिला के पल्ली-ग्रामो मे आज भी व्यवहृत होते हैं। किन्तु, किसी नागरिक के लिए, चाहे वह कैसा भी विद्वान् क्यो नही हो, ये शब्द सर्वथा अपरिचित है। यही कारण है कि स्वर्गीय शिवनन्दन ठाकुर के समान एक प्रतिष्ठित मैथिल विद्वान् की भी लेखनी इनके समुद्धरण मे श्लथ हो गई। फिर, मिथिला से दूर रहने-वाले मित्र-मजूमदार यदि असफल रहे, तो कोई आश्चर्य की बात नही। परिषद् से प्रकाशित

'पदावली' के पाठ और अर्थ के साथ मित्र-मजूमदार के पाठ तथा अर्थ को मिलाकर पढ़ने से सारी बातें स्पष्ट हो जाती हैं—सारे तथ्य प्रकट हो जाते हैं। और देखिए ·

स्वर्गीय शिवनन्दन ठाकुर का पाठ—

जिव जनों हमे सिनेह लाओल
तोहें विहृदअें जानि।
भल जन भए वाचा चूकह
ई बड़ि लागए हानि॥
माधव बुझल तोहर नेह।
निठुर पेम पराभव पाओल
जीवहुँ भेल सन्देह॥
आनुब जीवन जनुबन थोला
जगत के नहि जान।
मलविका वल हटल न रह
तइअओ तोहिहि मान॥

(पद-संख्या ५१)

शब्दार्थ—जिव जओ=यदि जीवे, अर्थात्—जीने की कम आशा। विहृदअें=हृदयशून्य। वाचा चूकह=प्रतिज्ञा का पालन नही करते है। मलविका=मालविका। कालिदास के 'मालविकाग्निमित्र' की मालविका की कथा मे राजा अग्निमित्र मालविका के साथ प्रेम करते थे—रानी इरावती का मना नही मानते थे।

मित्र-मजूमदार ने भी स्वर्गीय ठाकुर के पाठ को ही अपने सस्करण (पद-सख्या ८१९) मे स्थान दे दिया। प्राय उन्होने स्वय पाण्डुलिपि पढने का कष्ट नही किया। इसीलिए, उनका लिखा अर्थ भी व्यर्थ ही प्रमाणित हुआ। देखिए—

अर्थ—"तुमि हृदयहीन, तोमाके भाल वासिया आमार जीवन सशय हइल। भालो लोक हइया कथा राखिते पार ना, इहाते वड हानि हय। माधव! तोमार स्नेह बूझिलाम। निष्ठुर प्रेम पराभूत हइल, आमार वाँचिया थाकाइ सन्देह। जगते के ना जाने, जीवन ओ यौवन क्षणस्थायी? ताहातेओ तोमार मान थाकिल ना।"

अब परिषद् से प्रकाशित 'पदावली' का पाठ भी देखिए—

जिव जओ हमे सिनेह लाओल
तोहरि हृदअें जानि॥
भल जन भए वाचा चूकह
ई बडि लागए हानि॥

माधव बूझल तोहर नेह।
निठुर पेम पराभव पाओल
जीवहुँ भेल सन्देह॥
अथिर जीवन जनुवन थोला
जगत के नहि जान।
मन निकारुन हटल न रह
तइअओ तोहिहि मान॥

(पद-संख्या ६०)

अर्थ—तुम्हारे हृदय को जानकर मैंने (तुमसे) प्राण के समान स्नेह किया।

(किन्तु तुम) भला आदमी होकर भी वचन चूकते हो (अर्थात्—अपने वचन का प्रतिपालन नही करते हो)—यही बडी हानि है।

हे माधव! (मैंने) तुम्हारा स्नेह समझ लिया। निष्ठुर के (साथ) प्रेम (करने) से (मैंने) पराभव पाया—जीवन मे भी सन्देह हो गया।

ससार मे कौन नही जानता (कि यह) जीवन अस्थिर है (और) यौवन (उससे भी) थोड़ा है। तो भी यह निष्ठुर मन रोके नही रुकता है, तुम्हे ही मानता है (अर्थात्—तुम्हारे पीछे ही दौड़ता है।)

उपर्युक्त पाठ और अर्थ के ऊपर विचार करने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि स्वर्गीय शिवनन्दन ठाकुर इस पद को पढ नही सके। उन्होने 'तोहरि हृदअ' को 'तोहे विहृदअ', 'अथिर' को 'आनुव' और 'मन निकारुन' को 'मलविका वल' पढ लिया। 'विहृदअ' का अर्थ 'हृदयशून्य' लिखकर 'आनुव' का स्पर्श भी नही किया। इतना ही नही, उन्होने 'मलविका' का अर्थ 'मालविका' करके 'मालविकाग्निमित्र' की 'मालविका' को व्यर्थ ही ला घसीटा।

मित्र-मजूमदार ने भी 'विहृदअ' का अर्थ 'हृदयहीन' ही किया और 'आनुव' से वे भी कतरा ही गये। उन्होने इतना अवश्य किया कि 'मलविका वल हटल न रह' लिखकर भी 'मालविकाग्निमित्र' की 'मालविका' को घसीटने का प्रयास नही किया। उन्होने इस पक्ति का अर्थ ही नही लिखा। इसके लिए वे धन्यवाद के पात्र है।

परिषद् से प्रकाशित 'पदावली' के उपर्युक्त पाठ और अर्थ से यह स्पष्ट हो जाता है कि स्वर्गीय ठाकुरजी और मित्र-मजूमदार रामभद्रपुर मे प्राप्त पाण्डुलिपि के पढने मे बिलकुल असमर्थ रहे। इसीलिए, अर्थ करने में भी वे पग-पग पर स्खलित हो गये। उपर्युक्त पद इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। इस पद मे एक भी ऐसा शब्द नही है, जो दुर्बोध हो। पाठक स्वयं देख सकते हैं। हाथ-कगन को आरसी क्या? एक उदाहरण और लीजिए।

परिषद् से प्रकाशित 'पदावली' का पाठ—

जाडल बाम्भन तेज सनान
जाडलि मानिनि तेजए मान
जाडल राड घौकरी लाव
जाडल रसिक (क) ते ना गाव॥
जाड आएल कहव काही
बड पराभव पवन चाही॥
... ... करथि
पिठिक जाड सेओ नहि हरथि।
अनल फुकिअ हेरिअ सूर
सिसिर पाबि सेहओ भेल दूर॥
जुझि फा ... .. हर
जाडल वीर कैसे होएत बाहर।
मनहि मन करिअ नेआर
तैसन सिंह तइसन सिआर॥
सरस कवि विद्यापति गाव
केओ नहि अइसन जाड छडाव।
सकल जगत जाड हरण
कुमर अमरसिंह सरण॥

(पद-संख्या ८८)

स्वर्गीय शिवनन्दन ठाकुर ने इस पद को पढने का प्रयास ही नहीं किया। वे इतना ही लिखकर रह गये—'पद एकदम उडा है। इसीलिए अस्पष्ट है।' (विद्यापति-विशुद्ध-पदावली, पृ० ८८)।

मित्र-मजूमदार ने इस पद को पढने का प्रयास तो किया, पर वे भी असफल ही रह गये। आप भी उनके पाठ का अवलोकन कीजिए—

जाउन बामुन तेज सनान
जाउनि मा ... . नन
जाउन बाड घौकरी नाव।
जाउन रसि कते लागाव॥
जाउ आएल कहव काही
बड पराभव पवन चाही॥
... .
पिठेक जाउ सेह ओ लह वथि

अनल फूकिअ हेरि असुर
सिसिर पावि सेह ओ भेल दूर॥
बूझि (?) ... ...
जाउन वीर के से होएत बाहर।
मनहि मनक बिअने आव
तेसन सिंह तइसन सिआग॥
सरस कवि विद्यापति गाव
केओ नहि अइसन जाउछ भाव॥
सकल जगत जाउ छरण
कुमर अमरसिंह सर॥

(पद-संख्या २१०)

अन्त मे, मित्र-मजूमदार को भी लिखना ही पडा—'अक्षर अनेकगुलि पडिते पारा याय नाइ, तज्जन्य व्याख्या करा सम्भव हइल ना।' किन्तु, यह पद उपेक्षणीय नही है। शिशिर ऋतु का यह ऐसा उत्कृष्ट वर्णन है कि इससे जाडे का कँपानेवाला भयंकर मूर्त्त रूप सामने खडा हो जाता है। परिषद् से प्रकाशित 'पदावली' का पाठ ऊपर दे दिया गया है। अब उसके अर्थ पर दृक्पात करके आप भी जाड़े के उस मूर्त्त रूप का दर्शन कीजिए—

अर्थ—जाडे से सीदित शूद्र 'घौकड़ी' (सिमट-सिकुड़कर बैठना) लगाता है (और) जाड़े से सीदित रसिक कितना नही गाता है? (अर्थात्—जाडे से सीदित रसिक नीद नही आने के कारण रात-रात भर जगकर गाता रहता है।)

जाड़ा आया। (अपना दुःख) किसे कहूँगा? हवा से वड़ा कष्ट हो रहा है।

.. । वह भी पीठ का जाडा नही हरता।

(जाडे से वचने के लिए) आग फूंकता हूँ, सूरज को देखता हूँ (खोजता हूं; किन्तु) वह भी शिशिर ऋतु को पाकर दूर हो गया।

...। जाड़े से सीदित वीर कैसे वाहर होगा?

अन्त मे, मैंने मन-ही-मन निश्चय किया (कि जाडे के कारण) जैसा सिंह, वैसा सियार। (अर्थात्—जाडे मे दोनो वरावर।)

सरस कवि विद्यापति गाते हैं (कहते है—) कोई ऐसा नही, जो जाडा छुडाये।

(इसीलिए अव) सम्पूर्ण संसार के जाड़ा छुडानेवाले कुमार अमरसिंह ही रक्षक है।

उपर्युक्त अर्थ पर दृक्पात करने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि महाकवि विद्यापति ने बहुत ही सूक्ष्म दृष्टि से ऐहिक जीवन को निरखा-परखा था। इसीलिए, वे जाडे का ऐसा मूर्त्त रूप प्रस्तुत कर सके। इतना ही नहीं, कवि ने 'जाडल राड घौकरी लाव' कहकर अपने समय के सामाजिक जीवन का सच्चा स्वरूप प्रदर्शित कर दिया है। महाकवि विद्यापति जिस युग मे हुए थे, वह युग सामन्त-युग था। समाज मे निम्न वर्ग के लोगो के लिए कोई स्थान

नही था। उनकी आर्थिक स्थिति दयनीय थी। वे वस्त्र के अभाव मे घौकड़ी लगाकर—सिमट-सिकुड़कर जाड़ा विताते थे।

इस प्रकार, विचार करने पर यह एक महत्त्वपूर्ण पद प्रमाणित होता है, जो खण्डित होने पर भी उपेक्षणीय नहीं, संग्रहणीय है। और देखिए :

परिषद् से प्रकाशित 'पदावली' का पाठ—

नगरक वानिनि ओरे हरि पुछ हरि पुछा
किए किए हाट विकाए॥
. . . .
. . . . ॥ध्रु०॥
हिर(र) मनि मानिक ओरे अनुपम अनुपमा
नाना रतन पसार॥
एक नाल दुइ ओरे सिरिफल सिरिफला
सोना करे समान॥
अवरा सिरिफल ओरे आम्बर आम्बरा
अवरा अधिके विकाए॥
विद्यापति कवि ओरे गाविह गाविहा
झूमरि वुझ रसमन्त॥
सिरि महेसर सुत—गुनीसर हे
जूडम देवि सुकन्त॥
(पद-संख्या ९१)

स्वर्गीय शिवनन्दन ठाकुर ने (विशुद्ध-विद्यापति-पदावली पद-संख्या ८३) इस पद के 'नाल' को 'लागु' और 'सिरि महेसर सुत गुनीसर हे' को 'सिरि महेसर महेसर हे' पढ़ लिया। प्राय. उन्हे स्वयं भी अपने पाठ के ऊपर पूर्ण आस्था नहीं थी, इसीलिए उन्होने अर्थ लिखने का प्रयास ही नहीं किया।

मित्र-मजूमदार ने भी स्वर्गीय ठाकुरजी के पाठ को ही अपने संस्करण (पद-संख्या २२२) मे स्थान दे दिया और शब्दार्थ लिखते हुए लिखा कि 'वानिनिओ—एइ शब्देर अर्थ वूझा गेल ना।' उन्होंने इस पद का जो अर्थ लिखा है, अब उसपर भी दृक्पात कीजिए—

अर्थ— हरि तोमाके जिज्ञासा करि वल, हाटे कि कि विक्री हय।...हीरा. मणि माणिक्य प्रभृति नाना अतुलनीय रत्न विक्रय हय। एक नाये दुइ सोणार मतन श्रीफल। अपर आछे आर अम्बले श्रीफल आछे। अपरेर दामइ वेशी। विद्यापति कवि गान करिया वलितेछेन—जूड़मदेवीर सुकान्त रसिक श्रीमहेश्वर झूमरि गानेर रस वूझेन।"

अब परिषद् से प्रकाशित 'पदावली' के ऊपर भी दृष्टि डालिए। पाठ ऊपर दे दिया गया है, अब अर्थ लीजिए—

अर्थ—कृष्ण पूछते है—अरी नगर की बनियाइन ! हटिया में क्या-क्या बिक रहा है ?

.. ..

(बनियाइन कहती है—) अरे ! हटिया मे हीरा, मणि-माणिक्य (और) नाना भाँति के रत्नो का प्रसार है।

अरे ! एक तने में सोने के समान (स्वर्ण-वर्ण) दो बेल है।

अरे ! आधा बेल आँचर मे (छिपा) है। आधा (ही) अविक (दाम मे) बिक रहा है।

अरे ! कवि विद्यापति गाते है (और) श्रीमहेश्वर के पुत्र (तथा) जूडम देवी के स्वामी रसज्ञ गुणीश्वर (इस) झूमरे को समझते है।

उपर्युक्त दोनों अर्थ को मिलाकर तुलनात्मक विवेचन करने से ज्ञात होता है कि मित्र-मजूमदार ने 'बानिनिओ' का अर्थ ही नही समझा। इतना तो वे स्वय भी स्वीकार करते हैं ; किन्तु इससे भी बड़ी भूल उन्होने 'अधरा' का 'अधर' अर्थ करके की है। 'एक नाल दुइ ओरे सिरिफल सिरिफला अबरा अधिके बिकाए'—इन पक्तियो में कवि ने नायिका के 'स्तन' का वर्णन किया है, न कि 'अधर' का। अर्थ-निरूपण मे प्रकरण पर ध्यान रखना आवश्यक है; किन्तु मित्र-मजूमदार का ध्यान उस ओर नही गया। इसीलिए, उन्होने 'अधरा' का 'अधर' अर्थ कर लिया। यदि प्रकरण का ध्यान उन्हे रहता, तो प्रायः वे ऐसा नही करते।

वस्तुत', जिस प्रकार विद्यापति के पदो मे 'दीर्घ' के लिए बारम्बार अवहट्ठ 'दीघर' का प्रयोग हुआ है, उसी प्रकार यहाँ भी 'अर्ध' के लिए अवहट्ठ 'अधर' का—'अधरा' का भी पयोग हुआ है। परिषद् से प्रकाशित 'पदावली' के उपर्युक्त अर्थ मे प्रकरण का ध्यान रखकर यही अर्थ किया गया है। इतना ही नही, 'नाल' को 'लागु' पढ़कर तो मित्र-मजूमदार ने इन पक्तियो के सौष्ठव का ही अवलोप कर दिया है। विना 'नाल' के—विना 'तना' के दो-दो श्रीफल (स्तन) कैसे टिक सकते है ? मित्र-मजूमदार का ध्यान इस ओर भी नही गया।

एक बात और। अन्त मे कवि ने यह पद मन्त्रिवर महेश्वर के पुत्र और जूड़म देवी के स्वामी गुणीश्वर को समर्पित किया है। किन्तु, स्वर्गीय शिवनन्दन ठाकुर और मित्र-मजूमदार—इनमे किसी एक का भी ध्यान उस ओर नही गया। सब-के-सबने 'सिरि महेसर महेसर हे' पढकर एक ऐतिहासिक पुरुष का अवलोप कर दिया। ओइनवार-राजवंश के वशवृक्ष पर दृक्पात करने से पता चलता है कि मन्त्रिवर महेश्वर राजपण्डित कामेश्वर ठाकुर के तृतीय पुत्र महाराज कुसुमेश्वर के ज्येष्ठापत्य थे। कहते हैं, महेश्वर अपने छोटे भाई महाराज रत्नेश्वर के पुत्र महाराज रुद्रसिंह के मन्त्री थे। महेश्वर के सात पुत्र थे, जिनमे गुणीश्वर का छठा स्थान था। महाकवि विद्यापति का सम्बन्ध ओइनवार-राजवश के सभी राजाओ के साथ था। वे सबके दरबार में आते-जाते थे—सबसे सम्मान पाते थे। इसीलिए, उनके पदों मे महाराज

रुद्रसिंह, उनके पुत्र कुमार अमरसिंह, उनके मन्त्री महेश्वर और महेश्वर के पुत्र मुद्राहस्तक गुणीश्वर के नाम पाये जाते हैं। किन्तु, इस तथ्य की ओर न स्वर्गीय शिवनन्दन ठाकुर का ध्यान गया और न ही मित्र-मजूमदार का।

पहले ऐसे कई कारण दिखलाये गये हैं, जो प्राचीन पाण्डुलिपि पढ़ने में बाधक होते हैं। ये ही कुछ कारण हैं कि अबतक विद्यापति-सम्बन्धी प्राचीन पाण्डुलिपियाँ ठीक से पढ़ी नहीं गई थीं और इसीलिए अर्थ का अनर्थ भी होता रहा था। उन पाण्डुलिपियों में भी सबसे अधिक जीर्ण—सब से अधिक दयनीय दशा रामभद्रपुर की पाण्डुलिपि की है। इसीलिए, वह ठीक से पढ़ी नहीं गई थी और विशुद्ध पाठ के अभाव में उसके सम्पादक अर्थ लिखने में पग-पग पर स्खलित होते रहे थे। रामभद्रपुर की पाण्डुलिपि का एक भी ऐसा पद नहीं है, जो अबतक शुद्ध रूप में पढ़ा गया था और जिसका अर्थ शुद्ध रूप में लिखा गया था। प्रस्तुत संस्करण में पाठ-शुद्धि पर विशेष ध्यान दिया गया है और इसीलिए प्राय. अर्थ का अनर्थ नहीं हो पाया है। इतना ही नहीं, सम्पादकों की असवधानता के कारण रामभद्रपुर की पाण्डुलिपि के कई पद अबतक पढ़े भी नहीं गये थे। परिषद् से प्रकाशित 'पदावली' के प्रस्तुत संस्करण मे उन पदों का भी उद्धार कर दिया गया है। पद-संख्या १९, ३६, ३७, ३८ और ४२ ऐसे ही पद हैं।

एक बात और। रामभद्रपुर की पाण्डुलिपि पटना-विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में सुरक्षित थी, जो चोरी चली गई। किन्तु, सौभाग्यवश उसकी प्रतिच्छवि (फोटोस्टाट-कॉपी) बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के विद्यापति-विभाग में सुरक्षित है। यदि आज उसकी प्रतिच्छवि परिषद् में सुरक्षित नहीं रहती, तो जिस प्रकार तरौनी की पाण्डुलिपि के लिए स्वर्गीय नगेन्द्रनाथ गुप्त की 'पदावली' ही एकमात्र आधार रह गई है, उसी प्रकार रामभद्रपुर की पाण्डुलिपि के लिए भी स्वर्गीय शिवनन्दन ठाकुर की 'विशुद्ध-विद्यापति-पदावली' ही एकमात्र आधार रह जाती। तब इस प्रकार उसका उद्धार होता या नहीं—यह कहा नहीं जा सकता। अस्तु।

अब 'रागतरंगिणी' के ऊपर दृक्पात कीजिए। 'रागतरंगिणी' एक संगीत-विषयक ग्रन्थ है। इसमे राग-रागिनियों का सविस्तर वर्णन है। इसके रचयिता 'लोचन' हैं। लोचन संगीतज्ञ होने के साथ उच्च कोटि के कवि भी थे। उन्होंने राग-रागिनियों के उदाहरण के रूप में अपने पदों के साथ अनेक अन्य कवियों के पद भी उद्धृत किये हैं, जिनमे महाकवि विद्यापति के भी इक्यावन पद हैं। स्वर्गीय नगेन्द्रनाथ गुप्त और मित्र-मजूमदार ने अपनी-अपनी 'विद्यापति-पदावली' मे इन पदों का समावेश कर दिया है। गुप्त महोदय ने 'रागतरंगिणी' मे उपलब्ध अन्य कवियों के कई पदों में भी भणिता के रूप में विद्यापति का नाम परिवर्त्तित करके उन्हें अपने संस्करण मे स्थान दे दिया है, जिनका दिग्दर्शन प्रथम भाग की भूमिका मे हो चुका है। यद्यपि मित्र-मजूमदार ने वैसा नहीं किया है तथापि 'कविशेखर'-नामाङ्कित एक पद को जिसके लिए लोचन ने स्पष्ट शब्दों में 'इति विद्यापते.' लिखा है सन्दिग्ध मानकर उन्होंने भी 'परिशिष्ट' मे रख दिया है। महाकवि

विद्यापति की अनेक उपाधियों में 'कविशेखर' भी एक उपाधि थी—प्रायः इस ओर उनका ध्यान नही गया।

जिस प्रकार अन्य पाण्डुलिपियो के पढने मे सम्पादकों ने भूले की है, उसी प्रकार 'रागतरंगिणी' की पाण्डुलिपि पढने मे भी भूले की है। अन्य पाण्डुलिपियो की अपेक्षा 'रागतरंगिणी' की पाण्डुलिपि पढ़ने मे भूले कम हुई हें, किन्तु हुई है अवश्य। जहाँ जो भूले हुई है, प्रस्तुत सस्करण के सम्पादकीय अभिमत में उनके सम्मार्जन का प्रयास किया गया है।

अन्य पाण्डुलिपियों मे प्राप्त विद्यापति के पदों के समान 'रागतरंगिणी' में प्राप्त विद्यापति के पदों के अर्थ करने में भी जहाँ-तहाँ सम्पादक स्खलित होते रहे है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पद पर दृक्पात कीजिए :

परिषद् से प्रकाशित 'पदावली' का पाठ—

माघ मास सिरिपञ्चमि गँजाइलि
नवए मास पञ्चम हरु आइ।
अति घन पीडा दुख बड पाओल
बनसपती के बधाइ हे॥
सुभ खन बेरा सुकल पक्ख हे
दिनकर उदित समाइ।
सोलह संपुने बत्तिस लखने
जनम लेल रितुराइ हे॥
नाचए जुवतीगन (अति) हरखित
जनमल बाल मधाइ हे।
मधुर महारस मंगल गावए
मानिनि मान उडाइ हे॥
वह मलयानिल ओत उचित हे
वन धन भउ उजिआरा।
माधवि फुल भल गजमुकता तुल
तें देल बन्दनेवारा॥
पीअरि पाँडरि महुअरि गावए
काहर कार धुथूरा।
नागेसर कलि शंखधूनि पुर
तगर ताल समतूला॥
मधु लए मधुकरें बालक दए हलु
कमल पखुरिआ झुलाइ।

पौअनाल तोरि करिसुत बाँधल
केसु कइलि बघनाही॥
नव नव पल्लव सेज ओछाओल
सिर दहु कँदबेरि माला।
बैसलि भमरी हर उदगारए
चक्का चन्द निहारा॥
कनएकेआ सुतिपत्र लिखिए हलु
रासि नछत्र कए लोला।
कोकिल गणित गुणित भल जानए
ऋतु वसन्त नाम थोएला॥
बाल वसन्त तरुण भए धाओल
बेढए सकल संसारा।
दखिन पवन घन आँग उगारए
कुवलए कुसुम परागे।
सुललित हार मंजरि घन कज्जल
आखि तओ अञ्जन लागे॥
नव वसन्त ऋतु अनुसर जउवति
विद्यापति कवि गाया।
राजा शिवसिंह रूपनराजेन
सकल कला मन भाया॥

(पद-संख्या १४)

इस पद मे कुछ ऐसे शब्द है, जो आज अप्रचलित हो गये है अथवा जो गाँव-घर मे ही बोले जाते है। जैसे—गँजाइलि, हरु आइ, ओत, पाडरि, महुअरि, काहर, करिसुत, केसु, बघनाही, हर, चक्का, कनएकेआ, सुतिपत्र, लोला, थोएला, घन आदि। और, विना इनके अर्थ का अनुसन्धान किये—विना इनका यथार्थ ज्ञान हुए इस पद का वास्तविक अर्थ समझना कठिन है। यही कारण है कि मित्र-मजूमदार ने प्राय इसका शब्दार्थ न लिखकर केवल अनुवाद कर दिया, जो वास्तविकता से बहुत दूर जा पडा। प्रत्यक्ष मे प्रमाण की आवश्यकता नही। देखिए—

"माघ मासे श्रीपञ्चमीर दिने पूर्ण गर्भ (प्राप्त हइल)। नवम मासे पञ्चम दिन बड कान्दाइल। अत्यन्त यन्त्रणा, बड दुःख पाइल। वनस्पति (स्त्रीलिङ्ग) धात्री हइल, प्रसवकाले अत्यन्त दुःख ओ पीडा हइयाछिल। शुभक्षण वेला, शुक्लपक्ष, सूर्योदय समये षोडश (अग) सम्पूर्ण वत्रिश सुलक्षणे ऋतुराज जन्म लइल। युवतीगण हर्षित हइया नृत्य करिते लागिल, शिशु वसन्त जन्म ग्रहण करियाछे। मधुर महारसयुक्त माङ्गलिक गीत गान करिते लागिल,

मानिनीर मान उडिया गेल (भङ्ग हइल)। मलयानिल बहिल, शिशुके (ओत) वायु हइते अन्तराल करा उचित। (सेइ 'जन्य आकाशे) नवीन मेघ प्रकाशित हइल। माधवी फूल मुक्तार तुल्य हइल। ताहारा (सवर्धनार जन्य) फटक (वन्दनवारा · GATE) निर्माण करिल। पीतवर्ण पाटलि फूल 'महुयरी' गान धरिल, धुतूरा तूर्यवादक हइल। नागेश्वर कलि ताहार सहित ताल रक्षा करिया शङ्खध्वनि करिल। कमल-कलि हइते मधुकर मधु लइया शिशु (वसन्त) के दिल, पद्मनाल भाङ्गिया (वालकेर) कटिते सूता वान्धिल एव किंशुक फूल वाघनख करिल। [बघनाही=शिशुर अमगल-निवारणार्थ वाघनख पराइवार रीति आछे।] नव-नव पल्लवेर शय्या विछाइल (वालकेर जन्य), मस्तके कदम्बेर माला दिल। (ताहाते) भ्रमरी वसिया घूम पाडानि गान करिते लागिल। चक्राकार (पूर्ण) चन्द्र देखाइल। राशि-नक्षत्र स्थिर करिया कनकवर्ण केसरपत्रे लिखिल। कोकिल गणितशास्त्र भाल गणिते जाने, ऋतु वसन्त नाम राखिल। वालक वसन्त तरुण (युवक) हइया धावित हइल, सकल संसार वाडिते लागिल। दक्षिण पवन किसलय ओ कुमुम-पराग वहन करिया अङ्गे माखाइया दिल, मञ्जरीर सुललित हार हइल, घन कज्जल लइया चक्षे अञ्जन दिल। विद्यापति कवि गान गाइते छेन, हे युवति, नव वसन्त-ऋतु अनुसरण कर। राजा शिवसिंह रूपनारायणेर मने सकल कला शोभा पाय।"

मित्र-मजूमदार ने अपने संस्करण मे उपर्युक्त पद का यही अर्थ किया है; किन्तु यह प्राय' उनका अपना किया हुआ अर्थ नही है। यह अर्थ स्वर्गीय महामहोपाध्याय डॉक्टर उमेश मिश्र का किया हुआ है, जो उनके 'विद्यापति ठाकुर' नामक ग्रन्थ (पृ० ११३-११४) मे उल्लिखित है। आप भी उनके लिखे हुए अर्थ पर दृष्टि डालिए—

"माघ मास श्रीपचमी तिथि को (प्रकृति) पूर्णगर्भा हुई, नौ महीने पाँच दिन होने पर (प्रकृति) प्रसव के वाद प्रसन्न हुई। जव प्रकृति को वहुत पीडा हुई, तव वनस्पति धाई होकर वहाँ उपस्थित हो गई। शुक्लपक्ष मे, शुभ मुहूर्त मे, सूर्य के निकलने पर सोलहो अंगों से पूर्ण और वत्तीसो लक्षणो से युक्त ऋतुराज वसन्त का जन्म हुआ। इससे हर्षित युवती स्त्रियाँ नाचने लगी और मधुर गान तथा महारस-युक्त मगल गाने लगी। इसी से मानिनी का मान भी उड गया (भग हो गया)। समयोचित सर्वत्रव्यापी मलयानिल वहने लगा। सघन वन मे प्रकाश हो गया। माधवी फूल गजमुक्ता के समान हो गया और इसी को लेकर वन्दनवार वना दिया।

"मधुकरी पीले पाटल पुष्प के ऊपर चढकर गान करने लगी, धुथूरा तूर्यनाद करने लगा। नागेश्वर पुष्प की कली ने शख वजाया और तगड के फूल ताल के समान हो गया। मधुकर ने मधु लाकर वालक को पहले दिया और तालाव से कमल की पँखुडी लाकर दी। पद्मनाल तोड़कर उससे सूत निकाल करधनी पहनाई गई। केसर का फूल वघनखा वना। नवीन-नवीन पल्लव विछौना हुए और सिरहाने कदम्व की माला रखी गई। भ्रमरी वहाँ वैठकर हर (अर्थात्—हरलल जटा इत्यादि) गाने लगी और वालक चन्द्रमा के गोले को देखने लगा। राशि-नक्षत्र को स्थिर कर स्वर्ण-वर्ण केसर पुष्प पर जन्मपत्र लिखा गया और कोयल ने (जो गणितशास्त्र अच्छी तरह जानती है,) वालक का प्रिय नाम 'वसन्त' रखा।

"यही वसन्त तरुण हो गया और दौड़कर इसने समस्त संसार को घेर लिया। दक्षिण पवन ने कमल के फूलो की धूल लेकर वसन्त के शरीर मे उबटन लगाया। मजरी सुन्दर हार बनकर गले मे आ गई और नवीन मेघ ने उसकी आँखो मे काजल लगाया।"

मिश्रजी ने अन्त की चार पक्तियो का अर्थ नही लिखा है। मित्र-मजूमदार ने उसकी पूर्ति स्वय की है। अर्थ मे भी जहाँ-तहाँ उन्होने कुछ उलट-फेर कर दिया है। किन्तु, इतना करने पर भी वे यथार्थ से दूर ही रह गये हैं।

अब परिषद् से प्रकाशित 'पदावली' के ऊपर भी दृक्पात कीजिए। उसमे उपर्युक्त अप्रचलित शब्द के अर्थ इस प्रकार दिये गये है—

शब्दार्थ—गँजाइलि =गजित हो गई =दुर्दशाग्रस्त हो गई। हरु आइ =हलु आइ =आ गये। ओत =ओट। पाँडरि =(पाटली—स०) गुलाब। महुअरि =वाद्यविशेष =तूँबी। काहर =(काहल—स०) वाद्यविशेष। करिसुत =कटिसूत्र—सं०। केसु =(किंशुक—स०) पलाश। वघनाही =वघनखा। हर उदगारए =हलराती है। चक्का =(चक्र—स०) मण्डल। कनएकेआ =(कनक-कदली—स०) चम्पा-केला। सुतिपत्र =जन्मपत्र। लोला=जीभ। थोएला=रख दिया। घन =(घना—स०) रुद्रजटा=एक लता, जिसका फूल काला होता है।

अब अर्थ का निरीक्षण कीजिए—

अर्थ—"नौ महीने पॉच दिन होने को आये। (इसीलिए) माघ महीने की वसन्तपचमी मे (वनस्पति) दुर्दशाग्रस्त हो गई।

उसे बडे जोरो का दर्द होने लगा। उसने बहुत दु ख पाया। वनस्पति को बधाई है।

सोलह (कलाओ) से पूर्ण (और) बत्तीस लक्षणो से (युक्त) ऋतुराज ने वनस्पति के गर्भ से जन्म लिया।

बालक वसन्त ने जन्म लिया। (इसीलिए) युवतियाँ हर्षित होकर नाचने लगी।

मानिनी मान को उडाकर (छोडकर) मधुर, सरस मगल (गीत) गाने लगी।

मलयानिल बह रहा है।(इसलिए) ओट करना उचित है। (अत॰) जंगल घना होकर प्रकट हो आया।

माधवी का फूल सुन्दर गजमुक्ता के तुल्य होता है। (इसलिए) उसने बन्दनवार दिया।

पीला गुलाब महुअरि (के समान और) काला धतूरा काहल (के समान) गा रहा है।

नागेसर की कली शखध्वनि पूरा कर रही है (और) तगर तालपूरा कर रहा है (अर्थात्—ताल दे रहा है।)

कमल की पँखुडी पर झुलाकर भौरो ने मधु लेकर बालक (वसन्त) को दिया।

कमल का डण्ठल तोडकर कटिसूत्र बाँधा (और) पलाश को (बालक के गले मे बाँधने का) वघनखा किया।

(बालक वसन्त के लिए)नये-नये पल्लवो की सेज बिछाई (और) माथे मे (अर्थात्—सिर के नीचे तकिया के लिए) कदम्ब की माला दी।

बैठी हुई भ्रमरी चन्द्र मण्डल दिखलाकर (बालक वसन्त को) हलराती है।

राशि (और) नक्षत्र को जीभ पर करके (अर्थात्—राशि और नक्षत्र की गणना करके) चम्पा-केला ने जन्मपत्र लिख दिया।

कोकिल गुणन किया हुआ गणित तो अच्छी तरह जानता है। (इसलिए) उसने 'वसन्त ऋतु' नाम रखा।

बालक वसन्त युवा होकर सम्पूर्ण संसार को घेरने के लिए दौड़ चला।

दक्षिण पवन नील कमल के पराग से निरन्तर (उसके) अग को उगारता है (अर्थात्—उसके अंग मे उबटन लगाता है।)

मंजरी उसके गले में सुन्दर हार हुई (और) रुद्रजटा (उसकी) आँखों मे अंजन होकर आ लगी।

कवि विद्यापति गाते हैं (कहते हैं—) हे युवती! वसन्त ऋतु का अनुसरण करो।

(ये) सारी कलाएँ राजा शिवसिंह 'रूपनारायण' के मन को भाती है।

विशेष—'वेढए सकल संसारा' के बाद दो पंक्तियो की छूट प्रतीत होती है।"

उपर्युक्त तीनों अर्थ के विवेचन-विश्लेषण के बाद नि.संकोच कहा जा सकता है कि मिश्रजी और मित्र-मजूमदार सब-के-सब इस पद के अर्थ करने मे असफल ही रहे। तीनो अर्थ प्रस्तुत हैं। मिलाकर स्वयं देख सकते है।

अब 'तरौनी मे प्राप्त पाण्डुलिपि' के ऊपर भी दृष्टि डालिए —

आज देखलिसि कालि देखिलिसि
आज कालि कत भेद।
सैसवे बापुड़े सीमा छाड़ल
जउवन बान्धल फेद॥
सुन्दरि कनककेआ मुति गोरी।
दिने दिने चान्द कला सत्रो बाढ़लि
जउवने सोमा तोरी॥
बाल पयोधर अवन सहोदर
अनुमापिय अनुरागं।
कओने पुरुष करे परसए पाओल
जे तनु जिनल परागे॥
मन्द हासे बङ्किम कए दरसए
चङ्किम भऔंह विभङ्गे।
लाजे बेआकुल साम न हेरए
आउल नयन तरङ्गे॥

विद्यापति कविवर एहु गावए
नव जउवन नव कन्ता।
सिवसिंह राजा एहो रस जानए
मधुमति देवि सुकन्ता॥

(पद-संख्या ५६)

तरौनी मे प्राप्त पाण्डुलिपि अब उपलब्ध नही है। उसके लिए अब स्वर्गीय नगेन्द्रनाथ गुप्त द्वारा प्रकाशित 'विद्यापति-पदावली' ही एकमात्र आधार रह गई है। उसमे जिस पद का जैसा रूप है, उसी को आधार मानकर अब सम्पादन किया जा सकता है। मित्र-मजूमदार ने भी वैसा ही किया है। किन्तु, उन पदो मे जहाँ-जहाँ ठेठ मैथिली के शब्द है या जो शब्द आज व्यवहृत नही है अथवा घिस-पिटकर जिन शब्दो के रूप आज बदल गये है, उन शब्दो के अर्थ करने मे मित्र-मजूमदार स्खलित हो गये है। उदाहरण के लिए, उनके लिखे उपर्युक्त पद (पद-सख्या १८) के 'सुन्दरि कनककेआ मुति गोरी' के अर्थ को लीजिए —'तोमार गौरवर्ण मूर्त्ति येन सुन्दर कनकेर द्वारा निर्मित।' यहाँ मित्र-मजूमदार ने 'कनककेआ' का अर्थ 'सुन्दर कनकेर द्वारा निर्मित' किया है, जो तथ्य से सर्वथा दूर है। परिषद् से प्रकाशित 'पदावली' मे 'कनककेआ' का शब्दार्थ (कनक-कदली—सं०) 'चम्पा-केला' और उपर्युक्त पदाश का अर्थ—'हे सुन्दरी! (तुम) चम्पा केला की मूर्त्ति (कदली-स्तम्भ) के समान गोरी हो'—लिखा है, जो सर्वथा समीचीन प्रतीत होता है। विद्यापति ने अपने कई पदों मे 'कनक-कदली' से—'चम्पा-केला' से—नायिका के रूप-सौन्दर्य की तुलना की है।

और देखिए—

'वाल पयोधर बदन सहोदर अनुमापिअ अनुरागे।' मित्र-मजूमदार ने इसका अर्थ इस प्रकार लिखा है—'मने हय, नवोद्गत कुच अनुरागे रक्तिम मुखेर मतन लाल हइयाछे।' किन्तु कुच के लिए मुख की उपमा सगत नही प्रतीत होती है। मित्र-मजूमदार ने जैसा पाठ देखा, उसी को प्रामाणिक मानकर अर्थ लिख दिया। उन्होने पाठ-निर्धारण करने का कष्ट नही किया। और, 'विद्यापति-पदावली' की प्राचीन पाण्डुलिपियों का विना पाठ-निर्धारण किये—विना पाठोद्धार किये अर्थ करना निरर्थक है। घिस-पिटकर अक्षर के उड जाने से अबतक पाठक पग-पग पर स्खलित होते आये हैं। इसीलिए, स्वर्गीय गुप्तजी भी कई जगह स्खलित हो गये है। किन्तु, वाद के सम्पादकों का ध्यान भी इस ओर नही गया। किसी ने भी पाठ-निर्धारण का उचित प्रयास नही किया।

परिषद् से प्रकाशित 'पदावली' के सम्पादकीय अभिमत' मे 'बदन' का 'बदर' के रूप मे पाठ-निर्धारण करके उपर्युक्त पदांश का अर्थ इस प्रकार किया गया है—"(मैं) लालिमा से (लालिमा देखकर) अनुमान करती हूँ (कि तुम्हारे) छोटे स्तन बेर के सहोदर है (अर्थात्—तुम्हारे स्तन बेर के समान सुन्दर हैं)।" और, विचार करने से यही अर्थ युक्तियुक्त भी प्रतीत होता है।

'बाल-पयोधर' का साम्य 'बेर' के साथ जैसा फबता है, वैसा किसी दूसरे के साथ नही। विद्यापति ने अन्यत्र भी 'बाल पयोधर' की उपमा 'बेर' से दी है। यथा—

नारङ्गी छोलङ्गी कोरि कि बेली
कामे पसाहलि आँचर फेली।

[विद्यापति-पदावली (प्रथम भाग), पद-सं० १६२]

और—

बदर सरिस कुच परसब नहू
कत सुख पाओब करति उहूँ उहूँ।

[विद्यापति-पदावली (द्वितीय भाग, रा० पु०), पद-सं० ४५]

इसलिए, निस्संकोच कहा जा सकता है कि उपर्युक्त पद का विशुद्ध पाठ 'बदर' है, 'बदन' नही। पाठोद्धार के समय भ्रान्तिवश 'बदर' को 'बदन' पढ लिया गया है।

इसी प्रकार अन्य पदो में भी जहाँ-तहाँ त्रुटियाँ रह गई थी, जिनके सम्मार्जन का प्रयास परिषद् से प्रकाशित इस 'पदावली' मे किया गया है। विस्तार-भय से अधिक नही लिखकर अब हम विश्राम लेते है।

अन्त मे, एक बात और हम निवेदन कर देना चाहते है कि यहाँ हमने उन्ही महानुभावों की 'विद्यापति-पदावली' से परिषद् द्वारा प्रकाशित इस 'पदावली' का तुलनात्मक विवेचन किया है, जिनके प्रति हमारे हृदय में आदर का भाव है। कारण, उन्ही की कृतियों को आधार मानकर हमने भी यह कार्य किया है। यदि हमें उनकी कृतियाँ उपलब्ध नही होती, तो परिषद् से प्रकाशित इसी 'पदावली' का ऐसा सुसम्पादित रूप होता या नहीं—यह कहना कठिन है। इसलिए, हम हृदय से उनके आभारी है। त्रुटियाँ किससे नहीं होती हैं? 'गच्छत स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः!' सो, परिषद् से प्रकाशित इस 'पदावली' में भी त्रुटियाँ रह गई होंगी। इस सम्बन्ध मे जो सज्जन हमें अपना सुझाव या संशोधन निदेशित करने की कृपा करेंगे—हम उनका आभार स्वीकार करेंगे और उनपर विचार करके अगले संस्करण में यथासम्भव उनका समावेश करेंगे।

भूमिका के सम्बन्ध में भी कुछ कह देना आवश्यक प्रतीत होता है। इस वृहदाकार 'पदावली' की भूमिका भी वृहदाकार ही होगी। प्रथम भाग की भूमिका में महाकवि विद्यापति से सम्बद्ध इतिहास का समावेश किया गया है, तो द्वितीय भाग की भूमिका में उनकी भाषा के ऊपर विचार किया गया है। विद्यापति की भाषा आज की भाषा नही है, आज से लगभग छह सौ वर्ष पहले की भाषा है। इसलिए, उसपर विचार करना आवश्यक था। अभी 'पदावली' के दो भाग और शेष हैं, जिनकी भूमिका मे विद्यापति से सम्बद्ध अन्य विषयो का समावेश किया जायगा।

'पदावली' की सम्पादित सामग्री के निरीक्षण-परीक्षण के लिए 'विद्यापति-स्मारक-समिति' की ओर से विद्यापति-साहित्य के मर्मज्ञ विद्वानो का एक सम्पादक-मण्डल संघटित है, जिसका काम प्रस्तुत सामग्री का निरीक्षण-परीक्षण करना है। सम्पादक-मण्डल के विद्वानो ने जिस योग्यता और लगन के साथ प्रस्तुत सामग्री का निरीक्षण-परीक्षण किया है, उसके लिए हम हृदय से उन्हें धन्यवाद देते हैं।

साथ ही, इस संस्करण को यथासम्भव सुन्दर बनाने में विद्यापति-स्मारक-समिति के क्षेत्र-पदाधिकारी पं० श्रीशशिनाथ झाजी का परिश्रम सर्वथा प्रशसनीय है। इनके हार्दिक सहयोग के कारण ही इस ग्रन्थ का सम्पादन और प्रकाशन सम्भव हुआ। ये संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश, हिन्दी और मैथिली के गम्भीर विद्वान् हैं तथा सबसे अधिक ये मर्मज्ञ एवं कर्मठ हैं। इन्होने विद्यापति का अनुशीलन बड़ी तत्परता से किया है। शुभमस्तु।

श्रीनगर (पूर्णिमा) — श्रीगङ्गानन्द सिंह

२२-१२-६७

भूमिका

विद्यापति की भाषा

बालचन्द विज्जावइ भासा दुहु नहि लग्गइ दुज्जन हासा।
ओ परमेसर सेहर सोहइ ई णिच्चइ नाअर मन मोहइ॥

भाषावैज्ञानिकों ने स्वीकार कर लिया है कि आर्यों की सबसे प्राचीन भाषा संस्कृत है। उसी से क्रमश: नानाविध प्राकृतों की उत्पत्ति हुई।[1] फिर, देश-कालानुसार उन्हीं प्राकृतों से अनेकविध अपभ्रंशों का प्रादुर्भाव हुआ।[2] अनार्य-कुल की भाषाओं को छोड़कर आज की समस्त

---

१. (क) प्रकृतिः संस्कृतम्। तत्र भवं तत आगतं वा प्राकृतम्।

—प्राकृतव्याकरण : हेमचन्द्र, ८।४।१।

(ख) प्रकृतिः संस्कृतम्। तत्र भवम्प्राकृतमुच्यते।

—प्राकृतसर्वस्व : मार्कण्डेय, १।

(ग) प्रकृतेरागतम्प्राकृतम्। प्रकृतिः संस्कृतम्।

—दशरूप की टीका : धनिक, २।६०।

(घ) प्रकृतेः संस्कृतादागतम्प्राकृतम्।

—वाग्भटालंकार की टीका : सिंहदेवगणि, २।२।

(ङ) प्रकृतिः संस्कृतम्। तत्र भवत्वात्प्राकृतं स्मृतम्।

—प्राकृतचन्द्रिका (पीटर्सन की तीसरी रिपोर्ट), ३४३।७।

(च) प्रकृतेः संस्कृतायास्तु विकृतिः प्राकृती मता।

—प्राकृतशब्दप्रदीपिका : नरसिंह।

(छ) प्राकृतस्य तु सर्वमेव संस्कृतं योनिः।

—कर्पूरमञ्जरी की 'संजीवनी' टीका : वासुदेव, ९।२।

२. (क) संस्कृतात्प्राकृतमिष्टन्ततोऽपभ्रंशभाषणम्।

—गीतगोविन्द की 'रसिकसर्वस्व' टीका : नारायण, ५।२।

(ख) संस्कृतात्प्राकृतं श्रेष्ठन्ततोऽपभ्रंशभाषणम्।

—अभिज्ञानशाकुन्तल की टीका : शंकर, ९।१०।

(ग) संस्कृतं नाम दैवी वाक् तद्भवम्प्राकृतं विदुः।
अपभ्रष्टा तु या तस्मात्सा ह्यपभ्रंशसंज्ञिता॥

देशी भाषाएँ उन्ही अपभ्रंशो की सन्ततियाँ है।[1] किन्तु, संस्कृत से कब प्राकृत की उत्पत्ति हुई और प्राकृत से कब अपभ्रंश का प्रादुर्भाव हुआ—इसका निर्णय अभी तक नही हो पाया है। फिर भी, यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि आज से हजारो वर्ष पूर्व ही ऐसा हुआ होगा। कारण, 'शतपथब्राह्मण' मे भी अनेक ऐसे शब्दो का व्यवहार हुआ है, जो संस्कृत नही है। उदाहरण के लिए, 'विदेघ' शब्द को लिया जा सकता है, जो कि 'विदेह' शब्द का प्राकृत अथवा अपभ्रंश रूप है।[2] और, अशोक-वाटिका मे जब सीता से हनुमान् की भेंट होती है, तब उन्होने संस्कृत में नही, 'मानुष-वाक्य' मे ही सीता को सान्त्वना देने का निश्चय किया।[3] अवश्य ही वह 'मानुष-वाक्य' संस्कृत-समुद्भूत प्राकृत अथवा अपभ्रंश रहा होगा। इतना ही नही, उस समय तक संस्कृत-भाषा व्याकरण के कठोर बन्धनो से इस प्रकार आबद्ध कर दी गई थी कि उसकी मानुष-वाक्यता—सर्वजनवचनीयता— नष्ट हो गई थी। इसीलिए, जब किष्किन्धा मे राम-लक्ष्मण से हनुमान् की भेंट हुई और उन्होने परिनिष्ठित—शब्दशास्त्रानुमोदित संस्कृत मे राम-लक्ष्मण से सम्भाषण किया, तब भगवान् रामचन्द्र भी उनसे प्रभावित हुए बिना नही रहे। हनुमान् की प्रशंसा करते हुए उन्होने लक्ष्मण से कहा—'इस बटुरूपधारी (हनुमान्) ने जो कुछ कहा है, उसमे कही भी

तिङन्ते च सुबन्ते च समासे तद्धितेऽपि च।
प्राकृतादल्पभेदेव ह्यपभ्रष्टा प्रकीर्त्तिता॥
देशभाषान्तया केचिदपभ्रंशं विदुर्बुधाः।
× × ×
संस्कृते प्राकृते वापि रूपं सूत्रानुसारतः।
अपभ्रंशः स विज्ञेयो भाषा यत्रैव लौकिकी॥

—प्राकृतपिंगल : मैनुस्क्रिप्ट इन मिथिला, भाग २, पृ० ९।

१. प्रकृतिः संस्कृतं तत्र भवत्वात्प्राकृतं स्मृतम्।
तद्भवं तत्समं देशीत्येवमेतत् त्रिधा मतम्॥

—प्राकृतचन्द्रिका, ३४३।७।

२. तर्हि विदेघो माथव आस सरस्वत्यां स तत एव प्राङ् दहन्नभीयायेमां पृथिवीं तं गोतमश्च रहूगणो विदेघश्च माथवः पश्चाद्दहन्तमन्वीयतुः स इमाः सर्व्वा नदीरतिददाह सदानीरेत्युत्तराद्गिरेर्निर्द्धावति तां हैव नातिददाह तां ह स्म तां पुरा ब्राह्मणा न तरन्त्यनतिदग्धाग्निना वैश्वानरेणेति॥१४॥

—शतपथ ब्राह्मण, काण्ड १, प्रपाठक ३, अध्याय ४, ब्राह्मण १।

३. यदि वाचम्प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्।
रावणम्मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति॥
अवश्यमेव वक्तव्यं मानुषं वाक्यमर्थवत्।
मया सान्त्वयितुं शक्या नान्यथेयमनिन्दिता॥

—वाल्मीकिरामायण, सुन्दरकाण्ड, सर्ग ३०, श्लोक १८-१९।

कोई अशुद्धि नही हुई है। इससे जान पड़ता है कि इसने शब्दशास्त्र का अच्छा अध्ययन किया है।[1]

भगवान् महावीर और भगवान् बुद्ध के समय (ई० पू० ५००) तक आते-आते संस्कृत-भाषा व्यावहारिक भाषा नही रही। अब वह सिमट-सिकुड़कर द्विजातियो की धार्मिक भाषा बन गई। इसीलिए, उन दोनो धर्मप्रवर्त्तको ने अपने धर्म-प्रवर्त्तन के लिए तात्कालिक मानुष-वाक्य पालि और प्राकृत को अपनाया। उस समय भी साहित्यिक भाषा के रूप मे संस्कृत का ही प्रचलन था, किन्तु उसके साथ प्राकृत भी डग मिलाये चल रही थी। भास, कालिदास आदि के नाटक इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। बाद मे पालि और प्राकृत की खूब उन्नति हुई। उनमे अमर साहित्य की रचनाएँ होने लगी। बृहत्कथा (गुणाढ्य), गाथासप्तशती (सातवहन हाल), थेरीगाथा, संयुत्तनिकाय आदि इसके प्रत्यक्ष उदाहरण है।

किन्तु, जो मार्ग संस्कृत का था, उसी को पालि और प्राकृत ने भी अपनाया। वे भी वर्गविशेष की धार्मिक भाषाएँ बनकर क्रमशः व्याकरण के जटिल बन्धनो मे आबद्ध हो गईं। फिर तो उनकी भी वही गति हुई, जो संस्कृत की हुई थी। साधारण जनता को इतना अवकाश कहाँ कि वह किसी भाषा का व्याकरण पढे और तदनुसार उसका व्यवहार करे। इसीलिए, प्राकृत से नानाविध अपभ्रंशों की उत्पत्ति हुई।

संस्कृत आर्यों की आदिभाषा है। उनका समस्त भौतिक और आध्यात्मिक साहित्य उसी मे है। इसीलिए, पालि-प्राकृत-युग मे भी आर्यों का मोह संस्कृत से नही हटा। वे बराबर उसके संरक्षण और सम्पोषण मे लगे रहे। उस युग मे भी संस्कृत मे एक-से-एक बढकर उत्तमोत्तम रचनाएँ होती रही। भास, कालिदास, अश्वघोष आदि महाकवि उसी युग की देन है। शब्दानुशासन-विषयक विश्वविश्रुत ग्रन्थ 'महाभाष्य' की रचना पतञ्जलि ने उसी युग मे की थी।

यद्यपि पतञ्जलि के समय में ही जनभाषा को अपभ्रंश नाम से अभिहित किया जाने लगा था[2] तथापि उस समय का कोई अपभ्रंश-साहित्य उपलब्ध नही होता। इसलिए, प्रतीत होता है कि

---

१. (क) नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरतानेन न किञ्चिदपशब्दितम्॥
—वाल्मीकिरामायण, किष्किन्धाकाण्ड, सर्ग ३, श्लोक २९।

(ख) श्रीरामो लक्ष्मणम्प्राह पश्यन् बटुरूपिणम्।
शब्दशास्त्रमशेषेण श्रुतं नूनमनेकधा॥
अनेन भाषितं कृत्स्नं न किञ्चिदपशब्दितम्।
—अध्यात्मरामायण, किष्किन्धाकाण्ड, सर्ग १, श्लोक १७।

२. एकैकस्य शब्दस्य बहवोऽपभ्रंशाः। तद्यथा गौरित्यस्य शब्दस्य गावी गोणी गोता गोपोतलिकेत्यादयो बहवोऽपभ्रंशाः।
—महाभाष्य, अध्याय १, पाद १, आह्निक १।

संस्कृत से अपभ्रष्ट होने के कारण उन्होंने पालि और प्राकृत को ही 'अपभ्रंश' नाम से अभिहित किया है। जिस प्रकार पालि और प्राकृत सस्कृत से अपभ्रष्ट हैं, उसी प्रकार बाद के अपभ्रंश भी पालि तथा प्राकृत से अपभ्रष्ट है। इसीलिए, सर्वप्रथम बौद्ध सिद्धाचार्यो के चर्यापदो मे ही साहित्यिक भाषा के रूप मे उसने पदार्पण किया, किन्तु वहाँ भी उसमे एकरूपता दृष्टिगोचर नही होती। जो सिद्धाचार्य जिस प्रदेश के थे, जिस काल के थे, उस प्रदेश का, उस काल का प्रभाव उनके पदो मे स्पष्टतया प्रतिभासित होता है। इसी प्रभाव के कारण अपभ्रश के कई भेद और उपभेद हो गये।[1] कविशेखराचार्य ज्योतिरीश ने लिखा है—

पुनु कइसन भाट? संस्कृत, पराकृत, अवहट्ट, पैशाची, शौरसेनी, मागधी—छहु भाषाक तत्त्वज्ञ; शकारी, आभीरी, चाण्डाली, मावली, द्राविळी, औतकली, विजातिया—सातहु उपभाषाक कुशलहु।[2]

इनमे प्रथम छहु की गणना भाषा मे और अन्त्य सात की गणना उपभाषा मे की गई है। महाकवि विद्यापति ने भी इन्ही छहु भाषाओ मे अन्यतम भाषा अवहट्ठ मे अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'कीर्त्तिलता' और 'कीर्त्तिपताका' की रचना की है।[3] इसलिए, ऐसा प्रतीत होता है कि मिथिला मे जिस अपभ्रश का व्यवहार होता था, उसे ही 'अवहट्ठ' कहते थे।

यह पहले कहा जा चुका है कि पालि-प्राकृत-युग मे भी आर्यो का मोह संस्कृत से नही हटा। वे बराबर उसके सरक्षण और सम्पोषण मे लगे रहे। फिर, मिथिला तो आरम्भ से सस्कृत-विद्या का केन्द्र रही। इसलिए यहाँ की भाषा पर—चाहे वह प्राकृत हो अथवा अपभ्रश—संस्कृत का पूरा प्रभाव रहा। उदाहरण के लिए, सिद्ध सरहपाद का निम्नलिखित पद देखिए—

जहि मण पवण ण सञ्चरइ
रवि ससि णाहि पवेस।
तहि भण चित्त बिसाम कर
सरहें कहिअ उएस॥[4]

सिद्ध सरहपाद को जन्म देने का सौभाग्य किस प्रदेश को प्राप्त है—यह आज भी विवाद का विषय बना हुआ है। किन्तु, उपर्युक्त पद की भाषा के पर्यवेक्षण से प्रतीत होता है कि वे मिथिला

---

१. प्राकृतसंस्कृतमागधपिशाचभाषाश्च शौरसेनी च।
षष्ठोऽत्र भूरिभेदो देशविशेषादपभ्रंशः॥
—काव्यालंकार, २।११।

२. वर्णरत्नाकर, पृ० ५५ (ख)।

३. सक्कय वाणी बुहअन भावइ पाउअ रस को मम्म न पावइ।
देसिल बअना सबजनमिट्ठा तं तैसन जम्पओ अवहट्ठा॥
—कीर्त्तिलता : डॉ० बाबूराम सक्सेना, पृ० ६।

४. दोहाकोश : राहुल सांकृत्यायन, पृ० १२।

के ही सुपुत्र थे। कारण, उपर्युक्त पद के 'जहिं', 'मण', 'पवण' आदि शब्द और 'सञ्चरइ', 'कहिअ' आदि क्रियाएँ उसी रूप मे विद्यापति की 'कीर्त्तिलता' और 'कीर्त्तिपताका' मे भी पाई जाती है। इसलिए, निश्चयपूर्वक यह कहा जा सकता है कि सरहपाद ने जिस अपभ्रंश का व्यवहार किया, वह 'अवहट्ठ' ही है, जिसका प्रचार-प्रसार, साहित्यिक भाषा के रूप मे, विद्यापति के समय तक था।

एक बात और। सिद्धाचार्यों में भी लोकभाषा को सर्वप्रथम साहित्यिक रूप देने का श्रेय सिद्ध सरहपाद को ही है। उनके बाद ही अन्य सिद्धाचार्यों ने लोकभाषा को अपनाया।[1] किञ्च, सिद्ध सरहपाद और उनकी लोकभाषा अवहट्ठ—दोनो मिथिला की देन है, मिथिला की विभूतियां हैं, जिनकी नीव पर बाद में लोकभाषा की महती अट्टालिका तैयार हुई।

जबतक मिथिला पर पाल-साम्राज्य का अधिकार रहा और उसकी छत्रच्छाया मे वहाँ बौद्धधर्म फूलता-फलता रहा, तबतक सस्कृत के साथ 'अवहट्ठ' का घनिष्ठ सम्बन्ध नही हो सका। किन्तु, कर्णाट-साम्राज्य का प्रारम्भ होते ही वहाँ पुन ब्राह्मणधर्म लहलहा उठा—सस्कृत का पठन-पाठन जोरो से होने लगा। अतः, अब 'अवहट्ठ' का शब्द भाण्डार सस्कृत के शब्दो से भरने लगा। यहीं वह सन्धिकाल है, जब 'अवहट्ठ' के दो रूप हो गये—एक तद्भव-प्रधान और दूसरा तत्सम-प्रधान। कर्णाट-साम्राज्य के अन्तिम महाराज हरिसिंहदेव (सन् १२९४ से १३२६ ई०) की राजसभा को सुशोभित करनेवाले समसामयिक दो मैथिल कवियो की रचनाएँ नीचे प्रस्तुत की जाती हैं, जिनसे भाषागत इस भेद का स्पष्ट निदर्शन हो जायगा। पहले महामहोपाध्याय हरिब्रह्म के तद्भव-प्रधान भाषा का उदाहरण लीजिए—

जहा सरअ ससिबिम्ब जहा हर-हार हंस ठिअ।
जहा फुल्ल सिअ कमल जहा सिरिखण्ड खण्ड किअ॥
जहा गङ्ग कल्लोल जहा रोसापिअ रुप्पइ।
जहा बुद्धवर सुद्ध फेण फम्फाइ तलप्पइ॥
पिअ पाअ पसाए दिट्ठि पुणि णिहुअ हसइ जह तरुणिजण।
वर मंति चण्डेसर कित्ति तुअ तत्थ पेक्ख हरिबम्भ भण॥[2]

अब कविशेखराचार्य ज्योतिरीश की तत्सम-प्रधान भाषा पर भी दृक्पात कीजिए—

पाताल अइसन दुःप्रवेश, स्त्रीक चरित्र अइसन दुर्लक्ष्य, कालिन्दीक कल्लोल अइसन मांसल, काजरक पर्वत अइसन निबिळ, पापक सहोदर अइसन शरीर, आतंकक नगर अइसन भयानक, कुमन्त्र अइसन निष्फल, अज्ञान अइसन सम्मोहक, मन अइसन सर्वतोगामी, अहंकार

---

१. पुरातत्त्व-निबन्धावली : राहुल सांकृत्यायन, पृ० १४७।
२. प्राकृतपैङ्गलम्, पृ० १८४।

अइसन उन्नत, परद्रोह अइसन अभव्य, पाप अइसन मलिन, एवम्विध अतिव्यापक दुःसञ्चर दृष्टि-बन्धक भयानक गम्भीर शुचिभेद (सूचीभेद्य ?) अन्धकार देखु।[1]

इसी तद्भव और तत्सम के अन्तर से भाषा के दो भेद हो गये। एक मे विद्यापति ने 'कीर्त्ति-लता' और 'कीर्त्तिपताका' के समान ऐतिहासिक ग्रन्थो का निर्माण किया तथा दूसरी मे अपने अमर पदो की रचना की।

प्रसगवश, यहाँ उपर्युक्त दोनो कवियों का यत्किञ्चित् ऐतिहासिक वृत्त भी प्रस्तुत किया जाता है। पञ्जीप्रबन्ध से पता चलता है कि महामहोपाध्याय हरिब्रह्म धूर्त्तराज गोनूझा के बड़े भाई थे और उनका निवास-स्थान 'सोनकरियाम' गाँव था।[2] ओइनवार-साम्राज्य के पतन के बाद 'भरो' ने—भरपाई करनेवाले सामन्तो ने मिथिला को अपने अधिकार मे कर लिया[3] और जहाँ-तहाँ बाडा (घेरा) डाल दिया। 'सोनकरियाम' मे भी उन्होने बाडा डाला था। इसीलिए, बाद मे वह 'भरवाडा' कहलाने लगा। आज भी वह इसी नाम से प्रसिद्ध है और महाकवि विद्यापति की जन्मभूमि 'बिसफी' से लगभग चार कोस दक्षिण-पश्चिम कोण मे अवस्थित है।

कविशेखराचार्य ज्योतिरीश ने 'धूर्त्तसमागम' मे अपने को 'पल्ली' ग्राम का निवासी कहा है।[4] उनका यह 'पल्ली' ग्राम आज 'पाली' नाम से प्रसिद्ध है और महाकवि विद्यापति की जन्मभूमि 'बिसफी' से लगभग दो कोस उत्तर-पश्चिम कोण मे अवस्थित है।

मिथिला का यह भूभाग विद्वानो को जन्म देने मे आरम्भ से ही अग्रणी रहा है। उपनिषद् के आदि प्रवर्त्तक योगियाज्ञवल्क्य और न्यायशास्त्र के प्रणेता महर्षि गौतम क्रमश इसी भूभाग के यज्ञवन (जगवन) तथा ब्रह्मपुर के निवासी थे। मिथिला मे सर्वप्रथम लोकभाषा के कवियो को जन्म देने का श्रेय भी इसी भूभाग को है। हरिब्रह्म, ज्योतिरीश और विद्यापति—तीनो इसी भूभाग के वरद पुत्र थे। मैथिली के युगप्रवर्तक कवीश्वर चन्दा झा (चन्द्र कवि) ने भी आज से लगभग सवा सौ वर्ष पूर्व १८३० ई० मे (पिण्डारुछ मे) जन्म लेकर इसी भूभाग को गौरवान्वित किया था। अस्तु।

यह पहले कहा जा चुका है कि मिथिला मे अवहट्ठ का प्रचार-प्रसार विद्यापति के समय तक था। किन्तु, उसका 'व्यवहार' लोकभाषा के रूप मे नही, साहित्यिक भाषा के रूप मे होता था।

---

१. वर्णरत्नाकर, पृ० ३१ (क)।

२. सोनकरियाम-कर्महा-सं० बीजी वंशधरः, ए सुता महामहो० हरिब्रह्म-महामहो० हरिकेश-महो० धूर्त्तराज-गोनूकाः सकराढी-सं० चन्देयी-दौहित्राः।

—म० म० परमेश्वर झाः मिथिलातत्त्वविमर्शः, पूर्वार्द्ध, पृ० १५१।

३. म० म० मुकुन्द झा बक्शी: मिथिलाभाषामय इतिहास, पादटिप्पणी, पृ० ६९।

४. रामेश्वरस्य पौत्रेण तत्रभवतः पवित्रकीर्त्तेः धीरेश्वरस्यात्मजेन महाशासनश्रेणी-शिखरश्राम्यत्पल्लीजन्मभूमिना कविशेखराचार्यज्योतिरीश्वरेण निजकुतूहलविरचितं धूर्त्तसमागमनाम नाटकमभिनेतुमादिष्टोऽस्मि।

कारण, ओइनवार-साम्राज्य के स्वर्णयुग मे मिथिला मे सस्कृत-विद्या का इतना प्रचार-प्रसार हुआ कि तद्भव-प्रधान भाषा का विकास ही अवरुद्ध हो गया। इसीलिए, महाकवि विद्यापति के बाद मिथिला में तद्भव-प्रधान भाषा की, अर्थात् अवहट्ठ की कोई रचना उपलब्ध नही होती। बाद की समस्त रचनाएँ तत्सम-प्रधान भाषा मे ही मिलती है। इसी भेद को स्पष्ट करने के लिए विद्यापति ने 'कीर्त्तिलता' के प्रारम्भ मे लिखा है—

देसिल बअना सबजनमिट्ठा, तं तैसन जम्पओ अवहट्ठा।[1]

यहाँ विद्यापति ने 'अवहट्ठ' को 'देसिल बअना' नही, 'देसिल बअना' के समान कहकर उसी तद्भव-प्रधान भाषा की ओर—प्राचीन मैथिली की ओर—सकेत किया है, जिसका व्यवहार सिद्ध सरहपाद आदि सिद्धाचार्यो ने किया है।

बाद मे, इसी 'सबजनमिट्ठा देसिल बअना' को लोचन ने 'मिथिलापभ्रंशभाषा' कहा।[2] सर्वप्रथम इसे 'मैथिली' नाम से अभिहित करने का श्रेय कोलब्रुक साहब को है।[3] जिस प्रकार कालभेद से एक ही भाषा के तीन नाम हो गये, उसी प्रकार उसमे बहुतेरे परिवर्तन भी हुए। आज उसके कितने ही प्राचीन शब्द घिस-पिटकर लुप्त हो गये और कितने ही नये शब्दो का उसमे समावेश हो गया। आज की मैथिली और विद्यापति की मैथिली मे एतावन्मात्र समय-कृत भेद है। फिर भी, उसकी गरिमा और मधुरिमा पूर्ववत् वर्त्तमान है। यही देसिल बअना—मिथिलापभ्रंश-भाषा—मैथिली की महिमा है, जिसमे विद्यापति ने अपने अमर पदो की रचना की है। किञ्च, आज की मैथिली में स्थान-कृत यत्किञ्चित् भेद रहने पर भी विद्यापति की भाषा में वह भेद दिखाई नही पडता है। विद्यापति की भाषा सम्पूर्ण मिथिला की भाषा है—सभी मैथिलों की भाषा है।

वर्ण-विचार—

शब्द की चार अवस्थाएँ होती है—परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी। उनमे परा मूलचक्र मे, पश्यन्ती नाभिदेश मे और मध्यमा कण्ठदेश मे अवस्थित रहती है। एकमात्र वैखरी का ही श्रवण होता है।[4] इसे ही ध्वनि कहते है।[5] यह ध्वनि कही वर्णरूप में, कही पदरूप में

---

१. कीर्त्तिलता : डॉ० बाबूराम सकसेना, पृ० ६।

२. देश्यामपि स्वदेशीयत्वात् प्रथमं मिथिलापभ्रंशभाषया श्रीविद्यापतिकविनिबद्धास्तास्तामैथिलगीतगतयः प्रदर्श्यन्ते। —रागतरङ्गिणी, पृ० ३७।

३. एशियाटिक रिसर्चेज, भाग ७, पृ० १९९ (सन् १८०१ ई०)।

४. परा वाङ् मूलचक्रस्था पश्यन्ती नाभिसंस्थिता।
हृदिस्था मध्यमा ज्ञेया वैखरी कण्ठदेशगा॥
वैखर्या हि कृतो नादः परश्रवणगोचरः।
मध्यमया कृतो नादः स्फोटव्यञ्जक उच्यते॥
—नागेशभट्टः परमलघुमञ्जूषा (स्फोटविचार)।

५. वैखरीनादो ध्वनिः सकलजनश्रोत्रमात्रग्राह्यो भेर्यादिनादवन्निरर्थकः। —वही।

और कही वाक्यरूप मे श्रुतिगोचर होती है। किन्तु, पदरूप और वाक्यरूप मे श्रुतिगोचर होने पर भी वस्तुत वर्णरूप का ही श्रवण होता है। कारण, वर्ण-समाम्नाय ही तो पद और वाक्य होते हैं, इसीलिए सर्वप्रथम वर्ण-विचार प्रस्तुत किया जाता है।

वर्ण दो प्रकार के होते हैं—स्वर और व्यञ्जन। माहेश्वरसूत्र मे केवल नौ स्वर हैं—'अ', 'इ', 'उ', 'ऋ', 'लृ', 'ए', 'ऐ', 'ओ' और 'औ'। पाणिनि ने जिह्वामूलीय, उपध्मानीय, अनुनासिक (चन्द्रविन्दु), अनुस्वार और विसर्जनीय (विसर्ग) को भी अपने सूत्रो मे स्वर के रूप मे उल्लेख किया है। दीर्घ 'आ', 'ई', 'ऊ' और 'ॠ' के लिए पतञ्जलि ने लिखा है कि इनके पृथक् परिगणन की आवश्यकता नही है। कारण, माहेश्वर सूत्र मे आकृति का—जाति का उपदेश है। अत, ह्रस्व 'अ', 'इ', 'उ' और 'ऋ' के उपदेश से ही दीर्घ 'आ', 'ई', 'ऊ' और 'ॠ' का ग्रहण हो जायगा।[1] इस प्रकार, पाणिनि के मत से अठारह स्वर है।

माहेश्वरसूत्र मे व्यञ्जनो की सख्या तैंतीस है—कवर्ग ५, चवर्ग ५, टवर्ग ५, तवर्ग ५, पवर्ग ५ और य, र, ल, व, श, ष, स, ह। इस प्रकार, पाणिनि के मत से स्वर और व्यञ्जन को एकत्र करने से इक्यावन वर्ण होते हैं। किन्तु 'लृ' का प्रयोग एकमात्र 'क्लृप्' मे है, जिसका मूलरूप 'कृप्' है। पाणिनि ने 'कृप्' मे रेफ को लत्व करके 'क्लृप्' की निष्पत्ति की है।[2] इसलिए, वर्ण-समाम्नाय मे 'लृ' की आवश्यकता नही है। प्राय यही सब सोच-विचारकर लक्ष्मीधर ने 'षड्भाषाचन्द्रिका' मे लिखा है—

सिद्धिः संस्कृतशब्दानां भवेत्पञ्चाशदक्षरैः।

अर्थात्—पचास अक्षरो से ही—सत्रह स्वरो और तैंतीस व्यञ्जनो से ही—सस्कृत-शब्दो की सिद्धि होती है। किन्तु, मेदिनीकार ने 'क्ष' को भी एक वर्ण मान लिया और लिखा—

अकारादिक्षकारान्तैकपञ्चाशद्वर्णः।[3]

अर्थात्—'अ' से लेकर 'क्ष' तक इक्यावन वर्ण होते हैं। किन्तु, तन्त्र मे 'अ' से लेकर 'क्ष' तक पचास ही वर्ण होते हैं। यथा—

पञ्चाशन्मातृकावर्णोच्चारणं गुरुतोऽभ्यसेत्।[4]

तन्त्र मे अनुनासिक, जिह्वामूलीय और उपध्मानीय को वर्ण नही माना गया है। 'लृ', 'ॡ' और 'क्ष' को वर्ण मानकर पचास की संख्या पूरी की गई है।

---

१. आकृतिग्रहणात्सिद्धम्। अवर्णाकृतिरुपदिष्टा सर्वमवर्णकुलं ग्रहीष्यति। तथे-वर्णाकृतिः। तथोवर्णाकृतिः। —अध्याय १, पाद १, आह्निक २।

२. कृपो रोलः, अष्टाध्यायी।

३. शब्दकल्पद्रुम, प्रथम काण्ड, पृ० ५।

४. प्रपञ्चसार, पटल ३ (शब्दकल्पद्रुम, चतुर्थ काण्ड, पृ० २८१)।

पालि और प्राकृत में केवल दस स्वर है—'अ', 'आ', 'इ', 'ई', 'उ', 'ऊ', 'ए', 'औ' और अनुस्वार तथा अनुनासिक। 'ऋ' और 'ॠ' का 'रि', 'अ', 'इ' तथा 'उ' के रूप में परिवर्त्तन हो जाता है। 'ऌ' का 'इलि' के रूप में परिवर्त्तन हो जाता है। 'ऐ' के स्थान मे कही 'ए' तो कही 'अइ' और 'औ' के स्थान मे कही 'ओ' तो कही 'अउ' हो जाता है। विसर्ग का अधिकतर लोप ही होता है। जहाँ लोप नही होता है, वहाँ उसके स्थान मे 'स' अथवा 'ओ' आदेश हो जाते है। जिह्वामूलीय और उपध्मानीय का कही प्रयोग नही होता। इस प्रकार, उपर्युक्त दस स्वर ही शेष रह जाते है।[1]

इसी प्रकार, पालि और प्राकृत मे व्यञ्जन भी तीस ही है। शौरसेनी और पैशाची मे एकमात्र दन्त्य 'स' है तथा मागधी मे एकमात्र तालव्य 'श'। इसी प्रकार शौरसेनी और पैशाची मे 'य' के स्थान मे 'ज' का तथा मागधी मे 'ज' के स्थान मे भी 'य' का ही प्रयोग होता है। पञ्चम वर्णो मे 'ङ' और 'ञ' का प्रयोग किसी भी प्राकृत में नही होता। उनके स्थान मे सर्वत्र अनुस्वार हो जाता है। इसीलिए 'षड्भाषाचन्द्रिका' मे लक्ष्मीधर ने लिखा है—

प्राकृतानान्तु सिद्धिः स्यात्तैश्चत्वारिंशदक्षरैः।
ऋ-ऌ-वर्णौ विनैकारौकाराभ्यां दश स्वराः॥
शषावसंयुक्तङञौ विनैवान्ये हलो मताः।

अर्थात्—प्राकृत मे 'ऋ', 'ऌ' और 'ऐ', 'औ' को छोडकर दस स्वर तथा 'श', 'ष' एव असयुक्त 'ङ', 'ञ' को छोड़कर तीस व्यञ्जन—सब मिलाकर चालीस वर्ण होते है। इन्ही चालीस अक्षरो से प्राकृत शब्दो की सिद्धि होती है। प्राकृत-समुद्भुत होने के कारण अपभ्रंश-शब्दो की सिद्धि भी चालीस अक्षरो से ही होती है।

किन्तु, अपभ्रंश-समुद्भूत होने पर भी देसिल बअना मैथिली प्रारम्भ से ही संस्कृतोन्मुखी रही—तत्सम-प्रधान रही। इसीलिए, प्राकृत के समान चालीस वर्णो से इसके शब्दो की निष्पत्ति नही होती है। किन्तु, सस्कृत के समान जिह्वामूलीय और उपध्मायनीय का व्यवहार भी इसमे नही होता। इतना ही नही, विसर्जनीय, 'ॠ', 'ऌ' और 'ॡ' का व्यवहार भी विद्यापति के पदो मे नही मिलता। परन्तु, वैदिक सस्कृत के समान इनके पदो मे 'ळ' का प्रयोग-बाहुल्य है, जो देसिल बअना मैथिली की अपनी विशेषता है। किन्तु, आज की मैथिली मे—सस्कृत के समान 'अ' से 'क्ष' तक—पचासो वर्ण व्यवहृत होते है। नीचे इन्ही वर्णो के ऊपर विचार किया जाता है।

संस्कृत और प्राकृत—दोनों ही व्याकरण के जटिल बन्धनो मे आबद्ध है। किन्तु, अपभ्रश ने उन बन्धनों को बहुत-कुछ उतार फेका। लोकमुख में रहने के कारण अपभ्रंश के शब्द घिस-पिटकर सरल हो गये। सरलीकरण उसका मुख्य लक्ष्य था। इसीलिए आवश्यकतानुसार उसमे शब्द-स्वरूप को तोड़-मरोड़कर सरल कर दिया गया। देसिल बअना मैथिली मे सरलीकरण की ओर और भी अधिक ध्यान दिया गया। संस्कृत हो, प्राकृत हो अथवा अपभ्रंश ही क्यो न हो, जहाँ-कही

---

१. प्राकृतप्रकाश, परिच्छेद १।

२

भी उच्चारण मे कठिनाई प्रतीत हुई—सौकुमार्य का अभाव खटका; वही शव्द को तोड-मरोड़कर सरल कर दिया गया।

वर्णों के सयोग से ही शव्द निष्पन्न होता है। इसीलिए, शव्द के सरलीकरण मे वर्णों को ही तोड़ा-मरोडा जाता है। वर्ण भी दो प्रकार के होते हैं—स्वर और व्यञ्जन। उनमे भी स्वर मुख्य है। कारण, विना स्वर के व्यञ्जन का उच्चारण नही हो सकता। अतः, पहले स्वर का विवेचन किया जाता है।

स्वर—

यह पहले कहा जा चुका है कि 'आर्यो की सवसे प्राचीन भाषा सस्कृत है। क्रमश. उसी से नानाविध प्राकृतो की उत्पत्ति हुई। फिर, देश-कालानुसार उन्ही प्राकृतो से अनेकविध अपभ्रशो का प्रादुर्भाव हुआ।' आज की समस्त देशी भाषाएँ उन्ही अपभ्रशो की सन्ततियाँ हैं। विद्यापति की भाषा—विद्यापति की तत्सम-प्रधान देसिल वअना मैथिली भी उन्ही अपभ्रशो मे एक—अवहट्ठ—की सन्तति है। इसीलिए, जिस प्रकार प्राकृत का मूल सस्कृत और अपभ्रश का मूल प्राकृत है, उसी प्रकार आज की समस्त देशी भाषाओ का मूल भी अपभ्रश है। विद्यापति की तत्सम-प्रधान देसिल वअना मैथिली का मूल भी अपभ्रंश ही है। अतएव, उसके समस्त व्याकरण-सम्वन्धी कार्य भी प्राय अपभ्रश-व्याकरण के अनुसार ही होते हैं। जहाँ-कही आवश्यकता हुई है, वही उसने अपभ्रश-व्याकरण के वन्धन तोडे है।

प्रारम्भ मे ही यह समझ लेना आवश्यक है कि अपभ्रश-व्याकरण के सारे नियम 'वाहुलक' होते है।[1] इसीलिए कही उनकी प्रवृत्ति होती है, कही प्रवृत्ति नही होती है, कही विकल्प से प्रवृत्ति होती है और कही कुछ-का-कुछ हो जाता है।[2] इसका कारण यह है कि अपभ्रश लोकमुख की भाषा थी और लोकमुख मे रहने के कारण अनवरत घिस-पिटकर उसके शव्दो का रूप-परिवर्त्तन होता था। देशी भाषाएँ भी लोकमुख की भाषाएँ हैं। अत, अपभ्रश के समान उनमे भी अहर्निश शव्दो का रूप-परिवर्त्तन होता है। इसीलिए, विद्यापति की तत्सम-प्रधान देसिल वअना मैथिली मे भी इतना रूप-परिवर्त्तन हुआ कि आज विद्यापति के कितने ही पद, पदांश, वाक्य और शव्द दुरवबोध हो गये है। फिर भी, उसका मूल अपभ्रश है। इसीलिए, उसके ऊपर अपभ्रश-व्याकरण का पूरा प्रभाव है और अपभ्रश-व्याकरण के नियमो के समान ही उसके भी सारे नियम 'वाहुलक' है।

अपभ्रंश मे स्वर-परिवर्त्तन को अनियमित[3] वताकर भी कुछ नियम दिये गये हैं। विद्यापति की देसिल वअना मैथिली का भी यही हाल है। इसमे भी स्वर-परिवर्त्तन अनियमित है। फिर भी, व्यवहारार्थ कुछ नियम दिये जाते है।

---

१. बहुलम्।—प्राकृतव्याकरण: हेमचन्द्र, ८।१।२।

२. क्वचित्प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः क्वचिद्विभाषा क्वचिदन्यदेव।
विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य चतुर्विधं वाहुलकं वदन्ति॥

३. स्वराणां स्वराः प्रायोऽपभ्रंशे।—प्राकृतव्याकरण: हेमचन्द्र, ८।४।३२९।

विद्यापति की तत्सम-प्रधान देसिल वअना मैथिली में स्वरो के तीन परिवर्त्तन मुख्य है—लोप, आगम और विपर्यय। यथा—

बसथि 'बथान' झालि दुह गाए।
तन्हि की बिलसंब नागरि पाए॥

(भाग १, पद १२४)

यहाँ 'अवस्थान' मे आदि 'अ' के लोप होने से 'वथान' शब्द निष्पन्न हुआ है।

संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में संयुक्ताक्षरों का बाहुल्य है। इससे उच्चारण में कठिनाई होती है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए देसिल वअना मैथिली में दो व्यञ्जनों के वीच स्वर का आगम होता है। यथा—

तोह हुनि उचित रहत नहि भेद।
'मनमथ' मथयें करब परिछेद। (भाग १, पद १११)

यहाँ 'मन्मथ' में 'न्' और 'म्' के वीच 'अ' के आगम होने से 'मनमथ' शब्द निष्पन्न हुआ।

कभी-कभी स्वरों का परस्पर स्थान-परिवर्तन भी होता है। इसे ही विपर्यय कहते है। यथा—

लुबुधल भमरा कि देब 'उपाम'।
बांधल हरिण न छाड़ए ठाम॥

(भाग १, पद ११)

यहाँ 'उपमा' में 'अ' और 'आ' के परस्पर स्थान-परिवर्त्तन होने से 'उपाम' शब्द निष्पन्न हुआ।

ऊपर स्वर-परिवर्त्तन का यत्किञ्चित् दिग्दर्शन कराया गया है। ये स्वर-परिवर्त्तन ऐसे है, जिनसे शब्दों के रूप में अधिक परिवर्त्तन नही हुआ है। वे अपने मूल रूप के समीप ही वर्त्तमान है। किन्तु, देसिल वअना मैथिली के वहुतेरे शब्द ऐसे भी हैं, जो स्वर-परिवत्तन के कारण अपने मूल रूप से दूर—वहुत दूर जा पहुँचे हैं। इसीलिए, इस विषय पर नीचे कुछ विस्तार के साथ विचार किया जाता है।

संस्कृत में जितने व्यञ्जनान्त शब्द हैं, अपभ्रंश मे सबके अन्त्य व्यंजन का लोप हो जाता है।[1] आवश्यकतानुसार जहाँ-तहाँ और भी परिवर्त्तन होते है। उदाहरणस्वरूप, कर्मन, मर्मन और जन्मन् शब्द को लीजिए। अपभ्रंश मे इनके अन्त्य व्यञ्जन का लोप तो होता ही है, साथ-साथ मध्यम व्यञ्जन का लोप और उपान्त्य व्यञ्जन का द्वित्व भी होता है। इस प्रकार, अपभ्रंश मे अकारान्त 'कम्म', 'मम्म' और 'जम्म' शब्द निष्पन्न होते हैं। किन्तु, विद्यापति की तत्सम-

---

१. अन्त्यव्यञ्जनस्य।—प्राकृतव्याकरण : हेमचन्द्र, ८।१।११।

प्रधान देसिल वअना मैथिली के ऊपर संस्कृत का पूरा प्रभाव था। इसलिए, अपभ्रंश के अनुसार उपर्युक्त कर्मन्, मर्मन् और जन्मन् शब्द के अन्त्य व्यञ्जन के लोप होने पर भी मध्यम व्यञ्जन का लोप और उपान्त्य व्यञ्जन का द्वित्व नहीं हुआ। अतः, देसिल वअना मैथिली मे इनके 'कर्म', 'मर्म' और 'जन्म' रूप ही होते हैं। परन्तु, विद्यापति ने अपने पदों मे प्रसाद गुण के लिए उपर्युक्त 'कर्म', 'मर्म' और 'जन्म' में संयुक्ताक्षरो के बीच एक 'अ' का आगम करके 'करम', 'मरम' और 'जनम' भी कर दिये हैं। यथा—

तोरा 'करम' धरम पए साखि।
मन्दिर खाए पळउसिनि राखि॥

(भाग १, पद ९७)

जे पुनु जानए 'मरम' साच।
रतन तेजि न किनए काच॥

(भाग १, पद २११)

अपथ पथ परिचय भेल।
'जनम' आँतर बेड़ा देल॥

(भाग १, पद २३०)

यह पहले कहा जा चुका है कि अपभ्रंश के समान ही देसिल वअना मैथिली में भी स्वर-परिवर्त्तन अनियमित हैं। जहाँ जिस प्रकार प्रसाद गुण का समावेश हो सका, वहाँ उसी प्रकार स्वर-परिवर्त्तन किया गया। इसीलिए, अधिकतर अन्त्य दीर्घ के स्थान में ह्रस्व का, अर्थात् अन्त्य 'आ', 'ई' और 'ऊ' के स्थान मे क्रमश 'अ', 'इ' और 'उ' का विधान होता है। अतएव, विद्यापति के पदो मे 'लज्जा', 'मालती' और 'वधू' के लिए क्रमशः 'लाज', 'मालति' तथा 'वहु' के प्रयोग हुए हैं। यथा—

वधू उपजाए करिअ जे काज।
जे नहि जेमए तकरा 'लाज'॥

(भाग १, पद ११५)

'मालति' मधु मधुकर कर पान।
सुपुरुष जओो हो गुणक निधान॥

(भाग १, पद ११२)

कुल कुल'वहु' गगन चन्दा।
दुअओ कर उजोर॥

[भाग २ (रा० पु०), पद २]

इसी प्रकार, देसिल वअना मैथिली मे अन्त्य 'इ' और 'उ' के स्थान में जहाँ-तहाँ 'अ' का

विधान भी होता है। अतएव, विद्यापति के पदों में 'कति' और 'बाहु' के लिए क्रमशः 'कत तथा 'बाँह' के प्रयोग हुए है। यथा—

'कत' न अगत अछ रसमति फूल।
मालति मधु मधुकर पए भूल॥

(भाग १, पद ७७)

अइसन नीरज देलए ओलि।
बलअ भाङ्गल 'बाँह' मसोलि॥

[भाग २ (रा० पु०), पद ५२]

देसिल बअना मैथिली में कहीं-कही अन्त मे 'अ' जोड़कर भी शब्द को अकारान्त बनाया जाता है। अतएव, विद्यापति के पदों में 'गुरु' के स्थान में बार-बार 'गरुअ' का प्रयोग हुआ है। यथा—

साजनि हमर विवस दोस।
'गरुअ' पुरब पाप पराभव
कओने करब रोस॥

[भाग २ (रा० पु०), पद ९]

अपभ्रंश में 'ऋ' के स्थान मे 'रि'[1] और 'इ'[2] आदेश होते हैं। देसिल बअना मैथिली मे भी 'ऋ' के स्थान मे 'रि' और 'इ' का व्यवहार होता है। अतएव, विद्यापति के पदो मे 'ऋतु' के स्थान में 'रितु' और 'अमृत' के स्थान मे 'अमिअ' का भूरिशः प्रयोग हुआ है। यथा—

'रितु'पति मित वैरी चूडामणि
मित-समान रजनी।

(भाग १, पद १८६)

तोरा अधर 'अमिअ' लेल वास।
भल जन नेओतल दए बिसवास॥

(भाग १, पद ११५)

अपभ्रंश में 'ऐ' और 'औ' के अनेक रूप-परिवर्त्तन होते है; किन्तु देसिल बअना मैथिली मे 'ऐ' का 'अइ' तथा 'औ' का 'अउ' के रूप मे ही परिवर्त्तन होता है। विद्यापति के पदों में इस परिवर्त्तन के अनेक उदाहरण हैं। यथा—

---

१. रिः केवलस्य।—प्राकृतव्याकरण : हेमचन्द्र, ८।१।१४०।
२. इत्कृपादौ।—वही, ८।१।१२८।

घत 'घइरज' परिहरि पथ साचे।
करम दोखे कनकेओ भेल काचे॥

[भाग २ (त०), पद १५२]

पिआ सओ 'पउरुष' कके तोल बोललए
जिह् तोरि टूटि न पड़ली॥

[भाग २ (त०), पद १३९]

यहाँ 'धैर्य' और 'पौरुष' मे 'ऐ' तथा 'औ' का क्रमश: 'अइ' एवं 'अउ' के रूप मे परिवर्तन होने से 'घइरज' और 'पउरुष' शब्द की निष्पत्ति हुई है।

अपभ्रंश के समान देसिल बअना मैथिली मे भी विसर्ग का प्रयोग नही होता है। शब्द के मध्य मे स्थित विसर्ग का लोप और अन्त मे स्थित विसर्ग के स्थान मे 'ह' आदेश हो जाता है। यथा—

'दुखे' बोलए भवानी।
जगत-भिखारि मिलल हमें सामी॥

(भाग १, पद ५५)

कि हमे गरबि गमारिनि 'सबतह'
की रति-विरत कन्हाई॥

(भाग १, पद १६२)

यहाँ 'दु:ख' के मध्य मे स्थित विसर्ग के लोप और 'सर्वत:' के अन्त मे स्थित विसर्ग के स्थान मे 'ह' आदेश होने से क्रमश: 'दुख' तथा 'सबतह' की निष्पत्ति हुई है।

संस्कृत मे जहाँ परसवर्ण होना चाहिए, प्राकृत मे वहाँ भी परसवर्ण नहीं होता है,[1] अनुस्वार का ही प्रयोग होता है। किन्तु, देसिल बअना मैथिली मे जहाँ परसवर्ण सम्भव है, वहाँ परसवर्ण होता ही है—अनुस्वार का प्रयोग नही होता है। यथा—

कवर्ग—उपगत पाहुन रितुपति साह रे।
अपनुक 'अङ्गिरल' कर निरबाह रे॥

(भाग १, पद १०)

चवर्ग—तुअ 'चञ्चल' चित थपना नहि थित
महिमा-भार-गभीरे।

(भाग १, पद २२१)

टवर्ग—आसा 'लण्डह्' दए बिसवास।
के जग जीबए तीनि पचास॥

(भाग १, पद ९६)

---

१. मोऽनुस्वार:।—प्राकृतव्याकरण : हेमचन्द्र, ८।१।२३।

तवर्ग—गोपहि न पारिअ तखन हुलास।
'मुन्दला' कमल बेकत होअ हास॥
(भाग १, पद २०६)

पवर्ग—'लम्बित' सोभए हार विलोल
मुदित मनोभव खेल हिंडोल।
(भाग १, पद ९४)

यहाँ 'अङ्गिरल', 'चञ्चल', 'खण्डह', 'मुन्दला' और 'लम्बित' मे प्राकृत के अनुसार अनुस्वार होना चाहिए। किन्तु, देसिल बअना मैथिली के ऊपर संस्कृत का पूरा प्रभाव है, इसीलिए अनुस्वार नही हुआ। परसवर्ण करके सर्वत्र पञ्चम वर्ण का ही विधान हुआ।

पालि और प्राकृत मे अनुनासिक का प्रयोग नही है, अपभ्रंश मे भी विरले ही प्रयोग होता है, किन्तु देसिल बअना मैथिली मे कारक-चिह्न होने से इसका प्रयोगाधिक्य देखा जाता है। यथा—

सहजहि आनन अछल अमूल।
'अलकेँ' 'तिलकेँ' ससधर तूल।
(भाग १, पद १३९)

कोकिल गाबए मधुरिम बानि।
'ऋतुँ' 'बसन्तेँ' हे 'अमिअरसेँ' सानि॥
[भाग २ (रा० पु०), पद ४७]

यहाँ 'अलकेँ', 'तिलकेँ' और 'अमिअरसेँ' मे तृतीया का तथा 'ऋतुँ' एव 'बसन्तेँ' मे सप्तमी का चिह्न अनुनासिक है।

व्यञ्जन—

ऊपर स्वर वर्ण के विषय मे यत्किञ्चित् विचार प्रस्तुत किया गया। अब व्यञ्जन वर्ण के विषय मे विचार किया जाता है।

प्राकृत मे स्वर के बाद, यदि असयुक्त 'क', 'ग', 'च', 'ज', 'त', 'द', 'प', 'य' और 'व' हो, तो उनका लोप होता है।[1] अपभ्रंश मे भी यह नियम वर्त्तमान है। अतएव, अपभ्रंश-समुद्भूत देसिल बअना मे भी जहाँ-तहाँ इस नियम के दर्शन हो जाते है। यथा—

कलस-कुच लोटाइली घन सामरि बेनी।
'कनय' 'पबय' जनि सूतली कारी नागिनी॥
(भाग १, पद २०१)

यहाँ क्रमशः 'कनक' मे 'क' और 'पर्वत' मे 'त' के लोप तथा यकार श्रुति[2] होने से 'कनय' एव 'पबय' शब्द की निष्पत्ति हुई है।

---

१. कगचजतदपयवां प्रायो लुक्।—प्राकृतव्याकरण : हेमचन्द्र, ८।१।१७७।
२. अवर्णे यश्रुतिः।—वही, ८।१।१८०।

निसि 'निसिअर' भम भीम 'भुअङ्गम'।
गगन गरज घन मेह॥

(भाग १, पद १८८)

यहाँ क्रमश. 'निशिचर' मे 'च' और 'भुजङ्गम' मे 'ज' के लोप होने से 'निसिअर' तथा 'भुअङ्गम' शब्द की निष्पत्ति हुई है।

पलटि हेरि हल 'पेअसि' 'वअना'।
मदन सपथ तोहि रे।

(भाग १, पद १७९)

यहाँ क्रमश 'प्रेयसी' मे 'य' और 'वदन' मे 'द' के लोप होने से 'पेअसि' तथा 'वअना' की निष्पत्ति हुई है।

अपनहि पेमक 'तरुअर' बाढल
कारन किछु नहि भेला।

यहाँ 'तरुवर' मे 'व' के लोप होने से 'तरुअर' की निष्पत्ति हुई है।

अब 'श', 'ष' और 'स' को लीजिए। प्राकृत-युग मे ही 'श' और 'ष' के स्थान मे 'स' का प्रयोग होने लगा था।[1] केवल मागधी प्राकृत मे 'श' का व्यवहार होता था।[2] अपभ्रंश-युग मे तो 'श' का बहिष्कार ही कर दिया गया। यद्यपि देसिल वअना मैथिली के ऊपर सस्कृत का पूरा प्रभाव पड रहा था, तथापि अपभ्रश की छाया के नीचे ही उसका लालन-पालन हुआ था। इसीलिए अपभ्रश के नियमो को भी उसने तबतक तोडा नही था। इसी का परिणाम है कि देसिल वअना मैथिली मे भी 'श' और 'ष' के स्थान मे 'स' का ही प्रयोग होता है। यथा—

कण्टक माझ कुसुम 'परगास'।
भमर विकल नहि पावए 'पास'॥

(भाग १, पद ७)

यहाँ 'प्रकाश' और 'पार्श्व' मे श' के स्थान मे 'स' के प्रयोग से 'परगास' तथा 'पास' की निष्पत्ति हुई है।

अति 'परिमसनें' पीअर रङ्ग।
मुखमण्डन केवल रहु सङ्ग॥

(भाग १, पद ११०)

यहाँ 'परिमर्षण' मे 'ष' के स्थान मे 'स' के प्रयोग से 'परिमसन' की निष्पत्ति हुई है।

---

१. शषोः सः।—प्राकृतव्याकरण : हेमचन्द्र, ८।४।३०९।
२. षसोः शः।—प्राकृतप्रकाश : वररुचि, ११।३।

किन्तु, अपभ्रंश के प्रतिकूल देसिल बअना मैथिली में अधिकतर 'ष' अक्षुण्ण ही रहता है। उसके स्थान में 'स' का प्रयोग नहीं होता है। यथा—

दखिन पवन बह मदन 'धनुषि' गह
तेजल सखोजन मेली।

(भाग १, पद २२७)

यहाँ संस्कृत 'धनुष्' के रूप-परिवर्त्तन होने पर भी 'ष' के स्थान मे 'स' का प्रयोग नही हुआ।

एक बात और। आज भी मैथिली मे यदि टवर्ग का सान्निध्य नही रहता है, तो 'ष' का उच्चारण 'ख' के समान होता है। कारण, मिथिला मे यजुर्वेदी ब्राह्मणो की सख्या अधिक है और यजुर्वेद मे टवर्ग के सान्निध्य नही रहने पर 'ष' का उच्चारण 'ख' के समान होता है।[1] इसीलिए, वहाँ की भाषा मैथिली में भी टवर्ग का सान्निध्य नहीं रहने पर 'ष' का उच्चारण 'ख' के समान होता है। अब तो इसमें कुछ सुधार के लक्षण दिखलाई पड़ते है, किन्तु पहले यह प्रवृत्ति इतनी अधिक थी कि तद्भव शब्दो मे 'ष' और 'ख' के उच्चारण मे कुछ भी भेद नही किया जाता था। इसीलिए, लिपिकार भी सोचने का कष्ट नही करता था कि कहाँ 'ष' लिखना चाहिए और कहाँ 'ख'। लिपि-सौकर्य के लिए वह 'ख' के स्थान मे भी बहुधा 'ष' लिख दिया करता था। यथा—

कतए 'देषल' मधु अपने
जा मधुकर-समाज।

(भाग १, पद २)

अपने रभसें हँसि किछुओ उतर देसि
'सुषें' जाओ निसि अवसाने।

[भाग २ (रा० त०), पद ९४]

यहाँ 'देषल' और 'सुषें' मे 'ख' के स्थान मे 'ष' का अनुलेखन लिपिकार का प्रमाद नही, तो और क्या है? इतना ही नही, 'ष' और 'ख' के इसी उच्चारण-साम्य के कारण लिपिकार यदि 'ख' के स्थान में 'ष' लिखता था, तो 'ष' के स्थान मे भी 'ख' लिखता था। यथा—

सुरतरु सेओल अभिमत लागी।
तसु 'दूखण' नहि हमहि अभागी॥

(भाग १, पद ५१)

यहाँ 'दूखण' मे 'ष' के स्थान मे 'ख' का अनुलेखन भी लिपिकार का प्रमाद ही है।

---

१ षकारस्य खकारः स्याट्टुकयोगे तु नो भवेत्।
—प्रातिशाख्य, माध्यन्दिनीय शाखा।

अब 'य' के ऊपर दृक्‌पात कीजिए। मिथिला मे आज भी शब्द के प्रारम्भ मे स्थित 'य' का उच्चारण 'ज' के समान होता है। देसिल वअना मैथिली मे भी प्रायः इसी प्रकार उच्चारण होता था। कारण, प्राकृत-युग से अपभ्रंश-युग तक शब्द के प्रारम्भ मे स्थित 'य' का उच्चारण 'ज' के समान ही होता था।[1] इसीलिए, अपभ्रंश की उत्तराधिकारिणी देसिल वअना मैथिली मे भी तद्वत् उच्चारण होना स्वाभाविक है। अतएव, विद्यापति के पदो मे भी शब्द के प्रारम्भ मे स्थित 'य' के स्थान मे 'ज' का ही प्रयोग हुआ है। यथा—

'जौवन' रतन अछल दिन चारि।
तावे से आदर कएल मुरारि॥

(भाग १, पद १३३)

'जमुना' तीरें सओ समन्दल मान।
कइसन कए की बुझत अजान॥

[भाग २ (रा० पु०), पद ४३]

यहाँ 'जौवन' और 'जमुना' मे शब्द के प्रारम्भ मे स्थित 'य' के स्थान मे 'ज' का प्रयोग हुआ है।

मिथिला मे शब्द के मध्य मे स्थित 'य' के उच्चारण मे कोई परिवर्त्तन नही होता, किन्तु अन्त मे स्थित 'य' के उच्चारण मे जहाँ-तहाँ परिवर्त्तन हो जाता है। जैसे, 'आदित्य' मे 'य' के उच्चारण मे परिवर्त्तन नही होता, पर 'सूर्य' मे 'य' के उच्चारण मे परिवर्त्तन हो जाता है। सूर्य मे 'य' का उच्चारण 'ज' के समान ही होता है। विद्यापति के पदो मे भी यह विशेषता वर्त्तमान है।

अब 'र' और 'ल' को लीजिए। स्थान-भेद रहने पर भी इन दोनो में इतना तादात्म्य है कि सस्कृत-साहित्य मे भी कतिपय ऐसी धातुएँ और शब्द हैं, जहाँ बारी-बारी से दोनो का —'र' तथा 'ल' का प्रयोग होता है। यथा—रम्=लम्, म्रुच्=म्लुच्, रोहित=लोहित, रोम=लोम, आरक्त=आलक्त आदि। 'र' और 'ल' के इस परिवर्त्तन से अर्थ मे कोई विशेष परिवर्त्तन नही होता है। इसीलिए, सस्कृत मे 'र' और 'ल' मे अभेद मान लिया गया है। प्राकृत ने भी संस्कृत का यह नियम अपनाया।[2] मागधी प्राकृत तो एक डग और आगे बढ़ गई। उसमे सर्वत्र 'र' के स्थान मे 'ल' का ही प्रयोग होने लगा।[3] इसका परिणाम यह हुआ कि अपभ्रंश-युग मे आकर प्राच्य अपभ्रंश मे 'ल' का प्राचुर्य हो गया, प्रतीच्य अपभ्रंश मे 'र' का और मध्यदेशीय अपभ्रंश मे 'र' तथा 'ल'—दोनो का। 'र' और 'ल'—इन दोनो का प्राचुर्य वही अधिक हुआ, जहाँ सस्कृत का प्रभाव अधिक था। और, मिथिला सदा से सस्कृत-विद्या की केन्द्र-स्थली रही है, इसीलिए यहाँ भी 'र'

---

१. आदेर्यो जः।—प्राकृतव्याकरण : हेमचन्द्र, ८।१।२४५।
२. रस्य लो वा।—प्राकृतव्याकरण : हेमचन्द्र, ८।४।३२६।
३. र-सोर्ल-शौ।—वही, ८।४।२८८।

और 'ल' का प्राचुर्य स्वाभाविक है। अतएव, विद्यापति के पदों में भी एक ही शब्द में कही 'र' तो कही 'ल' का प्रयोग मिलता है। यथा—

ओल—

ओछओ जाति ओलहा जेओ।
'ओल' धरि नहि बुनए सेओ।

(भाग १, पद २३१)

ओर—उर न राखल पहु परतख भेल लहु
'ओर' धरि भेल न विचारे।

[भाग २ (रा० पु०), पद ८२]

जलद—

'जलद' बरिस जलधार।
सर जनो पलए पहार॥

[भाग २ (रा० पु०), पद १०]

जरद—

राधा नयन जरद जनो बरिसए
कन्हायी रहल लजाई॥

[भाग २ (रा० पु०), पद ७६]

'र' और 'ल' के विषय में ऊपर यत्किञ्चित् विचार प्रस्तुत किया गया। अब 'ड' और 'ल' के विषय में विचार किया जाता है। संस्कृत में जिस प्रकार 'र' और 'ल' को अभिन्न मान लिया गया है, उसी प्रकार 'ल' तथा 'ड' को भी अभिन्न मान लिया गया है। इसीलिए 'लड्' धातु का वर्तमानकालिक रूप 'ललति' होता है। संस्कृत-व्याकरण में 'र' के स्थान मे 'ल' विधान करनेवाले अनेक सूत्र है; किन्तु 'ड' के स्थान में 'ल' विधान करनेवाला कोई सूत्र नहीं है। 'ड' और 'ल' का अभेद ही इसका कारण बतलाया गया है। हाँ, प्राकृत-व्याकरण मे 'ड' के स्थान में 'ल विधान करनेवाले सूत्र हैं।[1] जान पड़ता है, संस्कृत के 'डलयोरभेद.' को ही प्राकृत-व्याकरण ने अपने सूत्रो मे गुम्फित कर लिया है।

सस्कृत का यही 'डलयोरभेदः' प्राकृत होते हुए अपभ्रंश मे आया और वहाँ से खिसककर देसिल वअना मैथिली मे भी आ बैठा। इसीलिए, विद्यापति ने अपन पदों में बहुशः 'ड' के स्थान मे 'ल' का प्रयोग किया है। यथा—

करतल तले धरिअ कुच गोए।
पळले 'तलित' झाँपि नहि होए॥

(भाग १, पद ४१)

---

१. (क) डो लः।—प्राकृतव्याकरण : हेमचन्द्र, ८।१।२०२।
(ख) डस्य च।—प्राकृतप्रकाश : वररुचि, २।२३।

यहाँ विद्यापति ने 'तडित' के लिए 'तलित' का, अर्थात् 'ड' के स्थान में 'ल' का प्रयोग किया है।

देसिल वअना मैथिली मे जिस प्रकार 'ड' के स्थान में 'ल' का प्रयोग होता है, उसी प्रकार 'ल' के स्थान मे भी 'ड' का प्रयोग होता है। यथा—

अइसन मुगुध थीक मुरारि।
'गरड' भखए अमिअ छाडि॥

(भाग १, पद २११)

यहाँ विद्यापति ने 'गरल' के लिए 'गरड' का, अर्थात् 'ल' के स्थान मे 'ड' का प्रयोग किया है।

एक बात और। वैदिक संस्कृत मे बहुश. 'ड' और 'ल' के स्थान में 'ळ' का प्रयोग मिलता है। लौकिक सस्कृत मे इस प्रकार का प्रयोग नही है, किन्तु प्राकृत और अपभ्रंश में है।[1] अपभ्रंश की उत्तराधिकारिणी होने के कारण देसिल वअना मैथिली मे भी बहुशः 'ड' और 'ल' के स्थान मे 'ळ' का प्रयोग होता है। विद्यापति के पदों मे भी ऐसा प्रयोग मिलता है। यथा—

'सोळह' सहस गोपि महँ रानि।
पाट महादेवि करवि हे आनि॥

(भाग १, पद १२३)

यहाँ 'षोडश' मे 'ड' के स्थान मे 'ल' और तदनन्तर 'ळ' आदेश होने से 'सोळह' की निष्पत्ति हुई है।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि सरलीकरण मे देसिल वअना मैथिली अपभ्रंश से भी आगे बढ़ गई। जिस प्रकार गगोत्री से निकली गंगा अपना मार्ग स्वयं बनाती आगे बढ चली, उसी प्रकार देसिल वअना मैथिली अवहट्ठ से निकलकर आपामर जनता-जनार्दन की जिह्वा पर थिरकती हुई अप्रतिहत गति से बढ़ चली, तो रास्ते मे जहाँ-कही भी ऊबड़-खावड मिला, सबको ठोक-पीटकर इसने सरपट कर दिया। जहाँ-कहीं भी सौकुमार्य मे बाधा उत्पन्न हुई, वही इसने परिवर्त्तन ला दिया। उस परिवर्त्तन मे भी एकरूपता नही। कही लोप, कही आगम, कही विकार, तो कही विपर्यय। ऊपर कुछ ऐसे उदाहरण दिये गये हैं, जहाँ साधारण परिवर्त्तन हुए है, किन्तु बहुतेरे विशेष परिवर्त्तन भी हैं। यथा—

'चान्द' गगन रह आओर तारागण
सुर ऊगए परचारि।

(भाग १, पद १०३)

---

१. (क) डो लः।—प्राकृतव्याकरण : हेमचन्द्र, ८।१।२०२।
(ख) लो ळः।—प्राकृतव्याकरण : हेमचन्द्र, ८।४।३०८।

यहाँ 'चन्द्र' में रेफ के लोप और आद्य 'अ' के दीर्घ होने से 'चान्द' की निष्पत्ति हुई है।

निरजन जानि कएल तुअ कान।
'गुपुत' रहत नहि जानत आन॥

(भाग १, पद ५७)

यहाँ 'गुप्त' मे संयुक्ताक्षर के बीच 'उ' के आगम से 'गुपुत' की निष्पत्ति हुई है।

जिस प्रकार 'चन्द्र' में आद्य 'अ' को दीर्घ करके 'चान्द' शब्द की निष्पत्ति हुई है, उसी प्रकार दीर्घ को भी ह्रस्व करके शब्द-विशेष की निष्पत्ति होती है। जैसे—

चान्द गगन रह आओर तारागण
सुर ऊगए परचारि।

(भाग १, पद १०३)

यहाँ 'सूर' मे दीर्घ 'ऊ' को ह्रस्व करके 'सुर' की निष्पत्ति हुई है।

ऊपर विकार के कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये गये है। अब विपर्यय पर दृक्पात कीजिए। प्राकृत मे 'ख', 'घ', 'थ', 'ध' और 'भ' के स्थान में 'ह' आदेश होता है।[1] देसिल बअना मैथिली मे भी प्राकृत का यह नियम वर्त्तमान है। यथा—

सुरुज सिन्दुर बिन्दु चान्दने 'लिहए' इन्दु
तिथि कहि गेलि तिलके।

(भाग १, पद २४१)

यहाँ 'लिखए' मे 'ख' के स्थान मे 'ह' आदेश होने से 'लिहए' की निष्पत्ति हुई है।

रोपलह 'पहु' 'लहु' लतिका आनि।
परतह जतने पटबिलह पानि॥

[भाग २ (रा० त०), पद २४]

यहाँ 'प्रभु' और 'लघु' में क्रमश 'भ' तथा 'घ' के स्थान मे 'ह' आदेश होने से 'पहु' एवं 'लहु' की निष्पत्ति हुई है।

ए हर गोसानि 'नाह'
मोहे जनु देह उपेखी।

(भाग १, पद १२५)

यहाँ 'नाथ' मे 'थ' के स्थान में 'ह' आदेश होने से 'नाह' की निष्पत्ति हुई है।

---

१. (क) ख-घ-थ-ध-भाम्।—प्राकृतव्याकरण : हेमचन्द्र, ८।१।१८७।
(ख) ख-घ-थ-ध-भां हः।—प्राकृतप्रकाश : वररुचि, २।२७।

से सबे सुफल भेल 'बिहि' अभिमत बे.
सहजें आएल मझु गेहा।

(भाग १, पद २१६)

यहाँ 'विधि' मे 'घ' के स्थान मे 'ह्' आदेश होने से 'विहि' की निष्पत्ति हुई है।

ऊपर विपर्यय के कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। अब आगम का विचार किया जाता है।

संस्कृत, पालि और प्राकृत मे सयुक्ताक्षरों का बाहुल्य है। अपभ्रंश का लक्ष्य सरलीकरण था। इसलिए, उनकी अपेक्षा अपभ्रंश मे संयुक्ताक्षरो की स्वल्पता है। किन्तु, देसिल बअना मैथिली का लक्ष्य सरलीकरण के साथ सौकुमार्य भी था। इसलिए, जिस-किसी शब्द मे सयुक्ताक्षरो का रोडा अटका, इसने उनके बीच मे किसी स्वर का आगम करके उन्हे रगड़ दिया—चिकना बना दिया। इसी स्वरागम को स्वर-भक्ति भी कहते हैं। विद्यापति के पदो मे स्वर-भक्ति के अनेक उदाहरण हैं। यथा—

तोरा 'करम' 'बरम' पए साखि।
मन्दिउ खाए पळउसिनि राखि॥

(भाग १, पद ९७)

यहाँ 'कर्म' और 'बर्म' मे 'र्' तथा 'म्' के बीच 'अ' के आगम से 'करम' एव 'बरम' की निष्पत्ति हुई है। इसी प्रकार, 'अगेआन', 'परमाद', 'परथाब', 'आरति', 'सिनेह' 'सुरुज' आदि स्वरागम के सैकडो उदाहरण विद्यापति के पदो मे पाये जाते हैं। पहले भी इसके ऊपर विचार हो चुका है। अत', यहाँ सक्षेप मे ही विचार किया गया।

संयुक्त व्यञ्जन—

ऊपर व्यञ्जन के विषय मे यत्किञ्चित् विचार प्रस्तुत किया गया। अब सयुक्त व्यञ्जन के विषय में विचार किया जाता है।

प्राकृत मे यदि सयुक्त व्यञ्जन के प्रारम्भ मे 'क', 'ग', 'ट', 'ड', 'त', 'द', 'प', 'श', 'ष' और 'स' रहते हैं, तो उनका लोप हो जाता है।[1] प्राकृत का यह नियम अपभ्रश मे भी वर्तमान है और अपभ्रश की उत्तराधिकारिणी होने के कारण 'देसिल बअना मैथिली' मे भी यत्र-तत्र इस नियम का पालन होता है। यथा—

---

१. क-ग-ट-ड-त-द-प-श-ष-स-≍क-≍ पामूर्ध्वं लुक्।

—प्राकृतव्याकरण : हेमचन्द्र, ८।२।७७।

'दूधे' पटाइअ सींचिअ नीत।
सहज न तेज करइला 'तीत'॥

(भाग १, पद ११२)

यहाँ 'दुग्ध' और 'तिक्त' मे क्रमशः 'ग्' तथा 'क्' के लोप होने से 'दूध' एवं 'तीत' की निष्पत्ति हुई है।

सोळह सहस गोपि मह रानि।
'पाट' महादेवि करबि हे आनि॥

(भाग १, पद १२३)

यहाँ 'पट्ट' मे 'ट' के लोप होने से 'पाट' की निष्पत्ति हुई है।

जेओ किछु धनि 'बिरुह' बोलए
सेओ सुधा सम भास।

(भाग १, पद ४)

यहाँ 'विरुद्ध' मे 'द्' के लोप होने से 'बिरुह' की निष्पत्ति हुई है।

'सात' पाँच घर तन्हि सजि देल।
पिआ देसान्तर आन्तर भेल॥

(भाग १, पद ७३)

यहाँ 'सप्त' में 'प्' के लोप होने से 'सात' की निष्पत्ति हुई है।

जेहे अवयव पुरुब समय
'निचर' बिनु विकार।

(भाग १, पद ४)

यहाँ 'निश्चल' मे 'श्' के लोप होने से 'निचर' की निष्पत्ति हुई है।

हृदय न डरे रति हेतु जनाइ।
कवोने परि सेओब 'निठुर' कन्हाइ॥

(भाग १, पद१६)

यहाँ 'निष्ठुर' मे 'ष्' के लोप होने से 'निठुर' की निष्पत्ति हुई है।

सजल नलिनि दल सेज सोआइअ
'परसे' जा असिलाए।

(भाग १, पद १५)

यहाँ 'स्पर्श' मे 'स्' के लोप होने से 'परस' की निष्पत्ति हुई है। इस प्रकार के कतिपय अन्य उदाहरण भी विद्यापति के पदों मे पाये जाते हैं।

अब 'क्ष' को लीजिए। प्राकृत में 'क्ष' के स्थान मे अधिकतर 'ष' और कही 'छ' तथा कही 'झ' आदेश होता है।[1] प्राकृत का यह नियम अपभ्रंश मे भी वर्त्तमान है, तो उसकी उत्तराधिकारिणी देसिल वअना मैथिली ही उसका अपवाद क्यों हो? इसीलिए, विद्यापति के पदो मे भी 'क्ष' के स्थान मे अधिकतर 'ष' और कही 'छ' तथा कही 'झ' का प्रयोग मिलता है। यथा—

जहि 'खने' निअर गमन होअ मोर।
तहि 'खने' कान्ह कुशल पुछ तोर॥

(भाग १, पद ११)

यहाँ 'क्षणे' मे 'क्ष' के स्थान मे 'ख' आदेश होने से 'खने' की निष्पत्ति हुई है।

हमरिओ मति अपथे चलि गेलि।
दूधक 'माछी' दूती भेलि॥

(भाग १, पद १८३)

यहाँ 'मक्षिका' मे 'क्ष' के स्थान मे 'छ' आदेश होने से 'माछी' की निष्पत्ति हुई है।

जिव जत्रं जन निरधने निधि पाए।
खने हरेए खने राख 'झपाए'॥

(भाग १, पद ११७)

यहाँ 'क्षप्' धातु के 'क्ष' के स्थान मे 'झ' आदेश होने से 'झपाए' की निष्पत्ति हुई है।

आज भी मैथिली मे संस्कृत के 'अक्षि', 'कुक्षि' आदि के लिए 'आँखि', 'कोखि' आदि का व्यवहार होता है, किन्तु 'मक्षिका', 'क्षुरिका' आदि के लिए 'माछी', 'छूरी' आदि का ही प्रयोग होता है। इस प्रकार, मैथिली मे दोनो रूप पाये जाते हैं। इसका कारण यह है कि प्राच्य प्राकृत मे 'क्ष' के स्थान मे 'ख' और प्रतीच्य प्राकृत मे 'छ' का प्रयोग होता था।[2] और, दोनो के बीच अवस्थित रहने के कारण मैथिली मे दोनो प्रकार के प्रयोग पाये जाते हैं।

ऊपर संयुक्त व्यञ्जन के कुछ ऐसे उदाहरण दिये गये हैं, जहाँ साधारण परिवर्त्तन हुए हैं। किन्तु, बहुतेरे विशेष परिवर्त्तन भी है। यथा—

सरदक 'चान्द' सरिस तोर मुख रे।
छाड़ल विरह अन्धारक दुख रे॥

(भाग १, पद १०)

यहाँ 'चन्द्र' के 'न्द्र' मे रेफ के लोप होने से 'चान्द' की निष्पत्ति हुई है।[3]

---

१. क्षः खः क्वचित्तु छझौ।—प्राकृतव्याकरण: हेमचन्द्र, ८।२।३।

२. इण्ट्रोडक्शन टू प्राकृत, पृ० २१।

३. द्रे रो न वा।—प्राकृतव्याकरण: हेमचन्द्र, ८।२।८०।

ऊपर कुछ ऐसे उदाहरण दिये गये हैं, जिनमे प्राकृत-व्याकरण के अनुसार कार्य हुए हैं। किन्तु, देसिल बअना मैथिली मे स्वतन्त्र रूप से भी बहुतेरे कार्य होते है। यथा—

आदरेँ अधिक 'काज' नहि बन्ध।
माधव बुझल तोहर अनुबन्ध॥

(भाग १, पद २२)

संस्कृत 'कार्य' का प्राकृत मे 'कज्ज' रूप होता है। किन्तु, देसिल बअना मैथिली मे सस्कृत अथवा प्राकृत मे जहाँ सयुक्त व्यञ्जन रहते है, वहाँ प्रथम व्यञ्जन का लोप और उसके अव्यवहित-पूर्व स्वर का दीर्घ हो जाता है। इसीलिए, यहाँ प्राकृत 'कज्ज' मे सयुक्त व्यञ्जनान्तर्गत प्रथम व्यञ्जन के लोप और उसके अव्यवहित-पूर्व स्वर के दीर्घ होने से 'काज' की निष्पत्ति हुई है। इसी प्रकार सस्कृत 'कज्जल' का 'काजर', 'कल्य' का 'कालि' और प्राकृत 'रत्ति' का 'राति', 'विज्जु' का 'बीजु' आदि अनेक शब्द विद्यापति के पदो मे पाये जाते है।

देसिल बअना मैथिली में संस्कृत-शब्दान्तर्गत 'स्थ' के स्थान मे कही 'थ' और कही 'ठ' आदेश होता है। यथा—

तेली बलद 'थान' भल देखिअ
पालब नहि उजिआई।

(भाग १, पद २२३)

यहाँ 'स्थान' मे 'स्थ' के स्थान मे 'थ' आदेश होने से 'थान' की निष्पत्ति हुई है।

दुरजन वचन लहए सब 'ठाम'।
बुझल न रहए जावे परिनाम॥

(भाग १, पद ७०)

यहाँ 'स्थाम' मे 'स्थ' के स्थान मे 'ठ' आदेश होने से 'ठाम' की निष्पत्ति हुई है।

देसिल बअना मैथिली मे 'स्त' के स्थान मे भी 'थ' आदेश होता है। यथा—

थोथड़ थैआ 'थन' दुओ भेल।
गरुअ नितम्ब सेहेओ दुर गेल॥

(भाग १, पद ३३)

यहाँ 'स्तन' मे 'स्त' के स्थान मे 'थ' आदेश होने से 'थन' की निष्पत्ति हुई है।

देसिल बअना मैथिली मे वर्गीय पञ्चम वर्ण से अव्यवहित-पूर्व स्वर अ-श्रुतिक हो जाता है। यथा—

अति 'भयाउनि' आँतर 'जउनि'
कइसे कए आउति पार।

(भाग १, पद २)

यहाँ 'भयाउनि' और 'जउनि' मे 'न' से अव्यवहित-पूर्व 'उ' के व-श्रुतिक हो जाने से 'भयावुनि' तथा 'जवुनि' की निष्पत्ति हुई है।

ऊपर देसिल वअना मैथिली मे किस प्रकार स्वर और व्यञ्जन मे परिवर्त्तन होते हैं— संक्षेप मे इसका दिग्दर्शन कराया गया है। प्राकृत से अपभ्रंश की और अपभ्रंश से देसिल वअना मैथिली की उत्पत्ति हुई है। इसलिए, देसिल वअना मैथिली मे उन दोनो के नियमानुसार ही अधिकतर स्वर और व्यञ्जन मे परिवर्त्तन होते है। किन्तु, कुछ ऐसे परिवर्त्तन भी है, जो प्राकृत और अपभ्रंश मे नही होते। संक्षेप में, उनका भी निदर्शन ऊपर हो चुका है। किञ्च, संस्कृतोन्मुखी भाषा होने के कारण जो तत्सम संस्कृत शब्द देसिल वअना मैथिली मे आ गये हैं, उनमे संस्कृत के नियमानुसार ही स्वर और व्यञ्जन मे परिवर्त्तन होते है।

कारक-विचार

प्रारम्भ मे ही यह कहा गया है कि 'आर्यों की सबसे प्राचीन भाषा संस्कृत है। क्रमशः उसी से नानाविध प्राकृतो की उत्पत्ति हुई। फिर, देश-कालानुसार उन्ही प्राकृतो से अनेकविध अपभ्रंशो का प्रादुर्भाव हुआ। आज की समस्त देशी भाषाएँ उन्ही अपभ्रंशो की सन्ततियाँ है।' इसीलिए देशी भाषाओ के अधिकतर नियम संस्कृत के नियमानुसार ही है। संस्कृत मे छह कारक और सात विभक्तियाँ होती है, तो देशी भाषाओ मे भी छह कारक तथा सात विभक्तियाँ होती है। किन्तु, भाषा-भेद के कारण देशी भाषाओ की विभक्तियो मे भी रूप-भेद हैं। देसिल वअना मैथिली की विभक्तियो के रूप-भेद पर नीचे यत्किञ्चित् प्रकाश डाला जाता है।

प्रथमा—संस्कृत के समान देसिल वअना मैथिली मे भी कर्त्तृवाच्य मे कर्त्ता से प्रथमा विभक्ति होती है। देसिल वअना मैथिली मे प्रथमा विभक्ति के तीन रूप हैं—'ए', 'एँ' और 'आ'। यथा—

सकल कलारस सँभारि न भेले
बइरिनि भेलि मोरि 'लाजे।'

(भाग १, पद १५६)

यहाँ कर्त्ता 'लाज' है। अत., उससे कर्त्तृवाचक प्रथमा विभक्ति 'ए' का विधान हुआ और 'लाजे' की निष्पत्ति हुई।

जदि 'तोहेँ' चञ्चल सुनह सकन भए
अपना वन्घ न कोए।

[भाग २ (रा० पु०), पद ४]

यहाँ कर्त्ता 'तोह' है। अत, उससे कर्त्तृवाचक प्रथमा विभक्ति 'एँ' का विधान हुआ और 'तोहेँ' की निष्पत्ति हुई।

फूललि मल्ली भूखल 'भमरा'
पीबि गेल मकरन्दा।

(भाग १, पद २३८)

यहाँ कर्त्ता 'भमर' है। अतः, उससे कर्त्तृवाचक प्रथमा विभक्ति 'आ' का विधान हुआ और 'भमरा' की निष्पत्ति हुई।

किन्तु, प्रथमा विभक्ति के उपर्युक्त 'ए', 'एँ' और 'आ' रूप अकारान्त शब्द मे ही मिलते है। अन्यत्र प्रथमा विभक्ति का लोप हो जाता है। यथा—

कत अछ 'जुवति' कलावति आने।
तोहि मानए जनि दोसरि पराने॥

(भाग १, पद ९)

यहाँ कर्त्ता 'जुवति' है; किन्तु कर्त्तृवाचक प्रथमा विभक्ति के लोप हो जाने से रूप मे परिवर्त्तन नही हुआ।

अकारान्त शब्द के बाद भी जहाँ-तहाँ प्रथमा विभक्ति का लोप हो जाता है। यथा—

'जौवन-रतन' अछल दिन चारि।
तावे से आदर कएल मुरारि॥

(भाग १, पद १३३)

यहाँ कर्त्ता 'जौवन-रतन' है; किन्तु कर्त्तृवाचक प्रथमा विभक्ति के लोप हो जाने से रूप मे परिवर्त्तन नही हुआ।

द्वितीया—संस्कृत के समान देसिल बअना मैथिली मे भी कर्त्तृवाच्य मे कर्म से द्वितीया विभक्ति होती है। देसिल बअना मैथिली मे द्वितीया विभक्ति के चार रूप होते है—'काँ', 'के', 'कें' और चन्द्रबिन्दु। यथा—

आबे अपवहुँ हरि तेज अनुरोध।
'काहुकाँ' जनु हो बिहिक विरोध॥

(भाग १, पद २३३)

यहाँ कर्म 'काहु' है। अत, उससे द्वितीया विभक्ति 'काँ' का विधान हुआ और 'काहुकाँ' की निष्पत्ति हुई।

से सुनि गौरी रहलि सिर नाए।
के कहत 'माके' तोहर जमाए॥

(भाग १, पद २५५)

यहाँ कर्म 'मा' है। अत., उससे द्वितीया विभक्ति 'के' का विधान हुआ और 'माके' की निष्पत्ति हुई।

से सबे परकें कहहि न जाए।
सूनाहुँ चिन्ता सेज ओछाए॥

[भाग २ (रा० पु०), पद २३]

यहाँ कर्म 'पर' है। अत, उससे द्वितीया विभक्ति 'कें' का विधान हुआ और 'परकें' की निष्पत्ति हुई।

कोकिल गावए मधुरिम बानि।
'ॠतुँ' 'वसन्तँ' हे अभिनरसेँ सानि॥

[भाग २ (रा० पु०), पद ५६]

यहाँ कर्म ॠतु है। अत, उससे द्वितीया विभक्ति चन्द्रबिन्दु का विधान हुआ और 'ॠतुँ' की निष्पत्ति हुई। किञ्च, 'ॠतु' का विशेषण वसन्त है। अत', उससे भी विशेष्यानुसारी[1] द्वितीया विभक्ति चन्द्रबिन्दु का विधान हुआ और 'वसन्तँ' की निष्पत्ति हुई।

जिस प्रकार कर्त्ता के बाद प्रथमा विभक्ति का लोप होता है, उसी प्रकार कर्म के बाद भी द्वितीया विभक्ति का लोप होता है। यथा—

निन्दए 'चान्दन' परिहर 'भूषन'
'चान्द' मानए जनि आगी।

[भाग २ (रा० पु०), पद २८]

यहाँ 'चान्दन', 'भूषन' और 'चान्द'—तीनो कर्म है, किन्तु तीनो के बाद द्वितीया विभक्ति के लोप हो जाने से रूप मे परिवर्त्तन नही हुआ।

तृतीया—सस्कृत के समान देसिल बअना मैथिली मे भी करण कारक से और कर्मवाच्य तथा भाववाच्य मे कर्त्ता से तृतीया विभक्ति होती है। देसिल बअना मैथिली में तृतीया विभक्ति के तीन रूप होते है—'एँ', 'ने' और चन्द्रबिन्दु। उनमे भी अकारान्त शब्द के बाद 'एँ' और आकारान्त शब्द के बाद 'ने' का प्रयोग होता है, किन्तु चन्द्रबिन्दु का प्रयोग सर्वत्र होता है। यथा—

सपने देखल हरि गेलाहुँ 'पुलकेँ' पुरि
जागल कुसुमसरासन रे।

[भाग २ (रा० पु०), पद ५८]

यहाँ करण 'पुलक' है। अत., उससे तृतीया विभक्ति 'एँ' का विधान हुआ और 'पुलकेँ' की निष्पत्ति हुई।

पटसुति बुनि बुनि मोतिसरि किनि किनि
मोरे 'पिआने' गाँथल हार।

(भाग १, पद १३६)

यहाँ कर्त्ता 'पिआ' है, जो कर्मवाच्य मे प्रत्यय होने से अनुक्त है। अतः, उससे तृतीया विभक्ति 'ने' का विधान हुआ और 'पिआने' की निष्पत्ति हुई।

---

१. या विशेष्ये हि दृश्यन्ते लिङ्ग-संख्या-विभक्तयः।
प्रायस्ता एव कर्त्तव्याः समानार्थे विशेषणे॥

स्वर्गीय शिवनन्दन ठाकुर ने लिखा है कि 'आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द के बाद 'एँ' के स्थान में 'त्रे' हो जाता है।'[1] किन्तु, उनका यह कथन युक्तियुक्त नही है। कारण, उपर्युक्त पद का 'पिआ' स्त्रीलिङ्ग नही, पुलिङ्ग है। और देखिए—

आकुल चिकुरे आनन झाँपल।
जनि 'तमचात्रे' चान्द चाँपल॥

(भाग १, पद १६०)

यहाँ भी अनुक्त कर्त्ता 'तमचा' से तृतीया विभक्ति 'त्रे' का विधान हुआ और 'तमचात्रे' की निष्पत्ति हुई। सो, यहाँ भी 'तमचा' स्त्रीलिङ्ग नही, पुलिङ्ग है। कारण, 'तमचा' का मूलरूप 'तमश्चय' है, जो पलिङ्ग है।

'सासुँ' समारल फूजल बार।
'ननन्दे' गान्थल टूटल हार॥

[भाग २ (रा० पु०), पद ५२]

यहाँ 'सासु' और 'ननन्द'—दोनों कर्त्ता है, जो कर्मवाच्य में प्रत्यय होने से अनुक्त है। अतः 'सासु' से तृतीया विभक्ति चन्द्रबिन्दु का और 'ननन्द' से तृतीया विभक्ति 'एँ' का विधान हुआ तथा 'सासुँ' एवं 'ननन्दे' की निष्पत्ति हुई।

नअनक काजर कुर कर धोए।
चान्दक 'उदअँ' कुमुद जनि होए॥

[भाग २ (रा० पु०), पद ४७]

यहाँ करण 'उदअ' है। अत, उससे तृतीया विभक्ति 'चन्द्रबिन्दु' का विधान हुआ और 'उदअँ' की निष्पत्ति हुई।

जिस प्रकार देसिल बअना मैथिली मे जहाँ-तहाँ प्रथमा और द्वितीया विभक्ति का लोप होता है, उसी प्रकार जहाँ-तहाँ तृतीया विभक्ति का भी लोप होता है। यथा—

गोपी हँसलि अपन मुख हेरि।
'चान्द' पलाएल हरिनक सेरि॥

(भाग १, पद २५७)

यहाँ भाववाच्य मे प्रत्यय होने से कर्त्ता—'चान्द'—अनुक्त है, किन्तु तृतीया विभक्ति के लोप हो जाने से उसके रूप मे परिवर्त्तन नही हुआ।

सारो आनि सेचानके सोंपलह
देखितहि अपनी 'आंखि'।

(भाग १, पद ३६)

---

१. महाकवि विद्यापति (विद्यापति की भाषा), पृ० २०१

यहाँ करण 'आखि' है, किन्तु उसके बाद की तृतीया विभक्ति लुप्त है। अतः, रूप में परिवर्त्तन नहीं हुआ।

चतुर्थी—संस्कृत के समान देसिल बअना मैथिली में भी सम्प्रदान कारक से चतुर्थी विभक्ति होती है। देसिल बअना मैथिली मे चतुर्थी विभक्ति का एकमात्र रूप 'कें' है। यथा—

'बिरलाकें' भल बिरहर सोम्पलह
दूब रहलि अछ झाढ़ी।

[भाग २ (रा० पु०), पद २६]

यहाँ सम्प्रदान 'बिरला' है। अतः, उससे चतुर्थी विभक्ति 'कें' का विधान हुआ और 'बिरलाकें' की निष्पत्ति हुई।

जिस प्रकार देसिल बअना मैथिली मे कर्त्ता, कर्म और करण के बाद जहाँ-तहाँ विभक्ति का लोप होता है, उसी प्रकार सम्प्रदान के बाद भी जहाँ-तहाँ विभक्ति का लोप हो जाता है। यथा—

जे निरबाह करए नहि पारिअ
'ता' कके दीअए आसा।

(भाग १, पद २२०)

यहाँ सम्प्रदान 'ता' है, किन्तु उसके बाद की चतुर्थी विभक्ति लुप्त है। अतः, रूप मे परिवर्त्तन नहीं हुआ।

एक बात और। जिस प्रकार संस्कृत मे सम्बन्ध-वाचक षष्ठचन्त शब्द के बाद 'कृते' और हिन्दी मे 'लिए' जोड़कर तादर्थ्यार्थक चतुर्थी विभक्ति का निर्वाह किया जाता है, उसी प्रकार देसिल बअना मैथिली मे भी 'लागि' जोड़कर तादर्थ्यार्थक चतुर्थी विभक्ति का निर्वाह किया जाता है। यथा—

दरसन लागि पुजए निते काम।
अनुखन जपए तोहरि पए नाम॥

(भाग १, पद ७५)

यहाँ 'दरसन' के बाद 'लागि' जोड़कर तादर्थ्यार्थक चतुर्थी विभक्ति का निर्वाह किया गया है।

पञ्चमी—संस्कृत के समान देसिल बअना मैथिली मे भी अपादान कारक से 'पञ्चमी' विभक्ति होती है। देसिल बअना मैथिली मे पञ्चमी विभक्ति के चार रूप होते है—'सञो', 'सन', 'एँ' और 'चन्द्रबिन्दु'। यथा—

नहि किछु पुछलि रहलि धनि बैसि
'लगसञो' आइलि बहारे।

(भाग १, पद २४७)

यहाँ अपादान 'लग' है। अत., उससे पञ्चमी विभक्ति 'सओ' का विधान हुआ और 'लगसओ' की निष्पत्ति हुई।

तत करिअए जत फाबए चोरि।
'परसन' रस लए न रहिअ अगोरि॥

(भाग १, पद २३५)

यहाँ अपादान 'पर' है। अत., उससे पञ्चमी विभक्ति 'सन' का विधान हुआ और 'परसन' की निष्पत्ति हुई।

प्रकृति न रह थिर 'नअने' गलए निर
'कमलेँ' झरए मकरन्दा।

[भाग २ (रा० पु०), पद २८]

यहाँ 'नअन' और 'कमल'—दोनो अपादान हैं। अत., 'नअन' से पञ्चमी विभक्ति 'ए' का और 'कमल' से पञ्चमी विभक्ति 'चन्द्रबिन्दु' का विधान हुआ तथा 'नअने' एव 'कमलेँ' की निष्पत्ति हुई।

जिस प्रकार संस्कृत मे पञ्चमी विभक्ति के स्थान में 'तसिल्' आदेश होता है, उसी प्रकार देसिल बअना मैथिली मे भी पचमी विभक्ति के स्थान मे 'तह' आदेश होता है। यथा—

बान्धल हीर अजर लए हेम।
'सागरतह' हे गहिर छल पेम॥

(भाग १, पद ४०)

यहाँ अपादान 'सागर' है। अत., उससे पञ्चमी विभक्ति हुई और उस पंचमी विभक्ति के स्थान मे 'तह' आदेश होने से 'सागरतह' की निष्पत्ति हुई।

किञ्च, जिस प्रकार देसिल बअना मैथिली में कर्त्ता, कर्म, करण और सम्प्रदान के बाद जहाँ-तहाँ विभक्ति का लोप होता है, उसी प्रकार अपादान के बाद भी जहाँ-तहाँ विभक्ति का लोप हो जाता है। यथा—

'नयन-सरोज' दुहु बह नीर।
काजर पखरि-पखरि पळ चीर॥

(भाग १, पद १६६)

यहाँ अपादान 'नयन-सरोज' है, किन्तु उसके बाद की पञ्चमी विभक्ति लुप्त है। अत, रूप मे परिवर्त्तन नही हुआ।

षष्ठी—संस्कृत के समान देसिल बअना मैथिली मे भी सम्बन्ध-सामान्य मे षष्ठी विभक्ति होती है। देसिल बअना मैथिली मे षष्ठी विभक्ति के सात रूप होते हैं—'क', 'के', 'केर', 'कर', 'एरि', 'र' और 'रा'। यथा—

हृदय तोहर जानि नहि भेला।
'परक' रतन आनि मोजे देला॥

(भाग १, पद १)

यहाँ 'पर' से सम्बन्ध मे षष्ठी विभक्ति 'क' का विधान हुआ और 'परक' की निष्पत्ति हुई।

यहाँ यह ध्यातव्य है कि स्त्रीवाचक शब्द के संयोग मे षष्ठी विभक्ति 'क' का 'कि' के रूप मे परिवर्त्तन हो जाता है। यथा—

केओ बोल जोगिअहि देहे दहु आनी।
'हुनिकिओ' भए वर जिबओ भवानी॥

(भाग १, पद २५४)

यहाँ स्त्रीवाचक 'भवानी' के सयोग से षष्ठी विभक्ति 'क' का 'कि' के रूप मे परिवर्त्तन होने से 'हुनिकि' की निष्पत्ति हुई।

हरखित हो 'लंकाके' राए।
नागरे ञ्नि करव नागरि पाए॥

(भाग १, पद ५२)

यहाँ 'लका' से सम्बन्ध मे षष्ठी विभक्ति 'के' का विधान हुआ और 'लंकाके' की निष्पत्ति हुई।

परिहर 'सखिकेर' रङ्ग।
मुखर सुजन कहाँ सङ्ग॥

[भाग २ (रा० पु०), पद ७]

यहाँ 'सखि' से सम्बन्ध मे षष्ठी विभक्ति 'केर' का विधान हुआ और 'सखिकेर' की निष्पत्ति हुई।

स्त्रीवाचक शब्द के संयोग मे षष्ठी विभक्ति 'केर' का 'केरि' के रूप मे परिवर्त्तन हो जाता है। यथा—

'कुमढाकेरि' चोरि भलि फाउलि
कान्ध न अएलाह पोछी।

(भाग १, पद २३८)

यहाँ स्त्रीवाचक 'चोरि' शब्द के सयोग से षष्ठी विभक्ति 'केर' का 'केरि' के रूप मे परिवर्त्तन होने से 'कुमढाकेरि' की निष्पत्ति हुई।

ते दरि 'तकर' करओ परिहार।
कुरस बोल जनु होए विकार॥

(भाग १, पद ७१)

यहाँ 'त' से सम्बन्ध में षष्ठी विभक्ति 'कर' का विधान हुआ और 'तकर' की निष्पत्ति हुई।

स्त्रीवाचक शब्द के संयोग में षष्ठी विभक्ति 'कर' का 'करि' के रूप मे परिवर्तन हो जाता है। यथा—

खन एक रङ्ग सङ्ग सब भाँति।
से से करत 'जकरि' जे जाति॥

(भाग १, पद २४८)

यहाँ स्त्रीवाचक 'जाति' शब्द के संयोग से षष्ठी विभक्ति 'कर' का 'करि' के रूप मे परिवर्त्तन होने से 'जकरि' की निष्पत्ति हुई।

'नन्देरि' नन्दन मोञ देखि आवओ
मन मनोरथ राखी।

(भाग १, पद १९६)

यहाँ 'नन्द' से सम्बन्ध मे षष्ठी विभक्ति 'एरि' का विधान हुआ और 'नन्देरि' की निष्पत्ति हुई।

चरित चातर चिते बेआकुल
'मोर' 'मोर' अनुबन्धे।

(भाग १, पद १२५)

यहाँ 'मो' से सम्बन्ध में षष्ठी विभक्ति 'र' का विधान हुआ और 'मोर' की निष्पत्ति हुई।

स्त्रीवाचक शब्द के सयोग मे षष्ठी विभक्ति 'र' का 'रि' के रूप मे परिवर्त्तन हो जाता है। यथा—

सामर सुन्दर जे बाटें आएल
तें 'मोरि' लागलि आखी।

(भाग १, पद १९६)

यहाँ स्त्रीवाचक 'आखि' शब्द के संयोग से षष्ठी विभक्ति 'र' का 'रि' के रूप में परिवर्त्तन होने से 'मोरि' की निष्पत्ति हुई।

के 'मोरा' जाएत दुरहुक दूर।
सहस सौतिनि बस माथुरपुर॥

(भाग १, पद १४)

यहाँ 'मो' से सम्बन्ध मे षष्ठी विभक्ति 'रा' का विधान हुआ और 'मोरा' की निष्पत्ति हुई।

किन्च, षष्ठी विभक्ति के उपर्युक्त रूपो मे 'कर', 'र' और 'रा' का प्रयोग केवल सर्वनाम से ही होता है।

एक वात और। स्वर्गीय शिवनन्दन ठाकुर ने 'काँ' को भी षष्ठी विभक्ति का एक रूप मान लिया और उदाहरणस्वरूप निम्नलिखित पदांश[1] को प्रस्तुत किया—

ताहि 'तरुनिकाँ' कओन तरङ्ग।
जकरा मदन महीपति सङ्ग॥

[भाग २ (रा० पु०), पद ५१]

किन्तु, उनका उपर्युक्त कथन युक्तियुक्त नही प्रतीत होता है। कारण, यहाँ 'तरुनि' कर्म है। अत, उससे षष्ठी नही, द्वितीया विभक्ति 'काँ' का विधान हुआ है।

सप्तमी—सस्कृत के समान देसिल वअना मैथिली मे भी अधिकरण कारक मे सप्तमी विभक्ति होती है। देसिल वअना मैथिली मे सप्तमी विभक्ति के दो रूप होते है—'एँ' और 'चन्द्रविन्दु'। यथा—

कुलिस प्रहारेँ जीव हल मारि।
ता 'पाछेँ' की करिअ गोहारि॥

[भाग २ (रा० पु०), पद ६३]

यहाँ अधिकरण 'पाछा' है। अत., उससे सप्तमी विभक्ति 'एँ' का विधान हुआ और 'पाछेँ' की निष्पत्ति हुई।

बरख दोआवस लगलाह जानि।
'कताँ' 'जलासअँ' पिउलन्हि पानि॥

[भाग २ (रा० पु०), पद ४१]

यहाँ अधिकरण 'जलासअ' है। अत, उससे सप्तमी विभक्ति 'चन्द्रविन्दु' का विधान हुआ और 'जलासअँ' की निष्पत्ति हुई। किञ्च, 'जलासअ' के विशेषण 'कता' से भी विशेष्यानुसारिणी सप्तमी विभक्ति 'चन्द्रविन्दु' का विधान हुआ और 'कताँ' की निष्पत्ति हुई।

किञ्च, जिस प्रकार अन्य कारको मे जहाँ-तहाँ विभक्ति का लोप होता है, उसी प्रकार अधिकरण कारक मे भी जहाँ तहाँ विभक्ति का लोप होता है। यथा—

ततहि दूर जा जतहि विचार।
दीप देलेँ 'घर' न रह अन्धार॥

(भाग १, पद ७०)

यहाँ अधिकरण 'घर' है, किन्तु उसके वाद की सप्तमी विभक्ति लुप्त है। अत, रूप मे परिवर्त्तन नही हुआ।

---

१. महाकवि विद्यापति (विद्यापति की भाषा), पृ० ३०।

सम्बोधन—संस्कृत के समान देसिल वअना मैथिली मे भी सम्बोधन में प्रथमा विभक्ति होती है। किन्तु, प्रथमा विभक्ति के उपर्युक्त 'ए', 'एँ' और 'आ' रूप कही कर्णगोचर नही होते है। सर्वत्र उनका लोप हो जाता है। यथा—

'कन्हाइ!' अबहु बिसर सबे रोस।
पुरुख लाख एक लखबा पारिअ
नारिक चारिम दोस॥

(भाग १, पद ७६)

यहाँ 'कन्हाइ' सम्बोधन है; किन्तु उसके बाद की प्रथमा विभक्ति लुप्त है। अत., रूप में परिवर्त्तन नही हुआ।

लिङ्ग-विचार

सस्कृत का लिङ्गभेद पालि और प्राकृत-युग तक वर्त्तमान रहा; किन्तु अपभ्रंश-युग के आते ही वह श्लथ हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि नपुंसकलिङ्ग को सदा के लिए विदाई मिल गई। उसका स्थान पुलिङ्ग ने ले लिया। परन्तु, स्त्रीलिङ्ग अपने को बचाये रहा। यदि पुलिङ्ग ने अपभ्रंश-युग मे कुछ स्त्रीलिङ्ग शब्दो पर अधिकार जमाया, तो स्त्रीलिङ्ग ने भी कुछ पुलिङ्ग शब्दो को अपने वश मे कर लिया। अपभ्रंश की उत्तराधिकारिणी होने के कारण देसिल वअना मैथिली में भी नपुसक लिङ्ग के लिए स्थान नही है; परन्तु स्त्रीलिङ्ग अपने को वचाये वर्त्तमान है। यथा—

सुन सुन गुनमति पुनमति रमनी।
न कर विलम्ब 'छोटि' मधुरजनी॥

(भाग १, पद ९)

यहाँ विशेष्य 'मधुरजनी' स्त्रीलिङ्ग है। अत, तदनुसार उसका विशेषण—'छोटि'—भी स्त्रीलिङ्ग है।

सस्कृत के समान देसिल वअना मैथिली मे भी कर्तृवाचक कृदन्त से कर्त्ता के अनुसार ही लिङ्ग होता है। यथा—

बरिसए लागल गरजि पयोधर
धरणी दन्तुरि 'भेली'।
नवि नागरि रत परदेस बालभु
आओत आसा 'गेली'॥

(भाग १, पद १७७)

यहाँ स्त्रीलिङ्ग 'धरणी' और 'आसा' कर्त्ता है। अतः, तदनुसार 'भेल'और 'गेल' क्रिया

का स्त्रीलिङ्ग 'भेलि' तथा 'गेलि' के रूप मे परिवत्तन हो गया। किन्तु, जहाँ कर्त्ता पुलिङ्ग है, वहाँ यह रूप-परिवर्त्तन नही होता। यथा—

आसुर करमे सफल 'भेल' काज।
जलदहिँ 'राखल' दुहु दिस लाज॥

(भाग १, पद ६०)

यहाँ पुलिङ्ग 'काज' और 'जलद' कर्त्ता है। अत, 'भेल' और 'राखल' क्रिया के रूप मे परिवर्त्तन नही हुआ।

इसी प्रकार जहाँ कर्मवाचक कृदन्त है, वहाँ कर्म के अनुसार क्रिया के रूप मे परिवर्त्तन होता है। यथा—

चिन्ताजे आसा 'कवललि' मोरि।
कानकटु भेलि कहिनी तोरि॥

[भाग २ (रा० पु०), पद ८]

यहाँ स्त्रीलिङ्ग 'आसा' कर्म है। अत., तदनुसार 'कवलल' क्रिया का स्त्रीलिङ्ग 'कवललि' के रूप मे परिवर्त्तन हो गया। किन्तु, जहाँ कर्म पुलिङ्ग है, वहाँ यह रूप-परिवर्त्तन नही होता। यथा—

सासुँ समारल 'फुजल' बार।
ननन्दैँ गान्यल 'टुटल' हार॥

[भाग २ (रा० पु०), पद ५२]

यहाँ पुलिङ्ग 'वार' और 'हार' कर्म है। अत., 'फुजल' और 'टुटल' क्रिया के रूप मे परिवर्त्तन नही हुआ।

सस्कृत के समान देसिल बअना मैथिली मे भी तिडन्त क्रिया के रूप मे लिङ्गभेद-कृत रूप-परिवर्त्तन नही होता। यथा—

माधव आओर कि 'कहब' तोहि।
धनि देखलें मन बाधसि मोहि॥

[भाग २ (रा० पु०), पद २३]

यह कृष्ण के प्रति दूती की उक्ति है। यहाँ क्रियापद—'कहब' तिडन्त है। इसीलिए रूप मे परिवर्त्तन नही हुआ।

किन्तु, भविष्यत्कालीन तिडन्त में उपयुक्त नियम लागू नही होता है। वहाँ कर्त्ता के अनुसार क्रिया मे लिङ्गभेद-कृत रूप-परिवर्त्तन हो जाता है। यथा—

से आवे भेलि तालफल-तूले।
कहाँ लए 'जाइति' अलप मूले॥

(भाग १, पद १६२)

यद्यपि यहाँ कर्त्ता अनुक्त है, तथापि उसी के अनुसार क्रिया के रूप मे परिवर्त्तन हुआ अर्थात्—'जाएत' का 'जाइति' के रूप में परिवर्त्तन हो गया।

एक बात और। सस्कृत और प्राकृत मे जो शब्द जिस लिङ्ग मे है, देसिल बअना मैथिलो मे भी प्राय वे शब्द उसी लिङ्ग मे है। किन्तु, अपभ्रंश मे लिङ्ग अतन्त्र है।[1] इसीलिए, तत्समुद्भूत देसिल बअना मैथिली मे सस्कृत और प्राकृत से कही-कही अन्तर भी है। यथा—

दिन दुइ चारि जिउति मर्हिं लागि।
सबतह खरि विरहानल आगि॥

[भाग २ (रा० पु०), पद २३]

संस्कृत और प्राकृत में 'अग्नि' शब्द पुलिङ्ग है, किन्तु देसिल बअना मैथिली मे तद्भव 'आगि' शब्द स्त्रीलिङ्ग है। इसीलिए यहाँ 'आगि' का विशेषण 'खरि' भी तदनुसार स्त्रीलिङ्ग है। इसी प्रकार और भी अनेक शब्द है, जो संस्कृत और प्राकृत मे पुलिङ्ग है, किन्तु देसिल बअना मैथिली मे स्त्रीलिङ्ग है।

वचन-विचार

सस्कृत मे तीन वचन होते हैं—एकवचन, द्विवचन और बहुवचन। किन्तु पालि-प्राकृत-युग मे ही बहुवचन ने द्विवचन का स्थान ले लिया।[2] इसीलिए, अपभ्रश मे भी द्विवचन को स्थान नही मिला, तो फिर तत्समुद्भूत देसिल बअना मैथिली मे ही उसे कैसे स्थान मिलता? परिणाम-स्वरूप देसिल बअना मैथिली मे भी दो ही वचन होते है—एकवचन और बहुवचन। अपभ्रंश से उत्पन्न अन्य भारतीय भाषाओं का भी प्राय. यही हाल है। किन्तु, जहाँ अन्य भाषाओ मे दोनो वचन के लिए दो प्रकार को विभक्तियाँ है, वहाँ देसिल बअना मैथिली मे दोनो वचन के लिए एक प्रकार की ही विभक्तियाँ है। यथा—

तुअ अनुराग लागि सअल रअनि जागि
तरुतरँ तीन्तलि रामा रे।

[भाग २ (रा० पु०), पद ३१]

यहाँ 'तरुतरँ' मे एकवचन मे सप्तमी विभक्ति 'चन्द्रबिन्दु' का विधान है। और—

बरख दोआदस लगलाह जानि।
कताँ जलासअँ पिउलन्हि पानि॥

[भाग २ (रा० पु०), पद ४१]

---

१. लिङ्गमतन्त्रम्।—प्राकृतव्याकरण : हेमचन्द्र, ८।४।४४५।

२. (क) द्विवचनस्य बहुवचनम्।—प्राकृतव्याकरण : हेमचन्द्र, ८।३।१३०।
(ख) द्विवचनस्य बहुवचनम्।—प्राकृतप्रकाश : वररुचि, ६।६३।

यहाँ 'जलासअँ' मे वहुवचन मे भी उसी सप्तमी विभक्ति चन्दविन्दु का विवान है। इसी प्रकार अन्य कारको मे भी दोनों वचन मे समान विभक्तियो का ही व्यवहार होता है।

जिस प्रकार सस्कृत मे सर्व, विश्व आदि वहुवचनवोवक शव्द हैं, उसी प्रकार देसिल वअना मैथिली मे भी सव, सकल आदि वहुवचनवोवक शव्द हैं। विभक्तिगत समानता होने के कारण अविकतर उन्ही वहुवचनवोघक शव्दो के सयोग से देसिल वअना मैथिली मे वहुवचन का वोघ होता है। यथा—

सवे सवतहु कह सहले लहिअ।
जिव जओो जतने जोगओले रहिअ॥

(भाग १, पद ११९)

और,

से ततवहि गेलि डाइन सकल भेलि
डुहु हल हृदअ विचारि।

[भाग २ (रा० पु०), पद ४]

उपर्युक्त पदाशो मे 'सव' और 'सकल'—दोनो वहुवचनवोघक शव्द हैं। इसी प्रकार सख्यावाचक शव्द भी देसिल वअना मैथिली मे वचनवोवक हैं। यथा—

चहकि चहकि दुइ खञ्जन खेल।
काम कमान चान्द उगि गेल॥

भाग २ (रा० पु०), पद १५]

यहाँ 'दुइ' शव्द द्विवचनवोवक है। इसी प्रकार अन्य सख्यावाचक शव्दो का भी व्यवहार विद्यापति के पदो मे हुआ है।

सर्वनाम-विचार

उत्तमपुरुषवाचक सर्वनाम—सस्कृत के समान देसिल वअना मैथिली मे भी सर्वनाम के तीन भेद हैं—उत्तमपुरुषवाचक सर्वनाम, मध्यमपुरुषवाचक सर्वनाम और अन्यपुरुपवाचक सर्वनाम। किञ्च, जिस प्रकार सस्कृत मे एकमात्र अस्मद् शव्द का व्यवहार उत्तमपुरुषवाचक सर्वनाम के रूप मे होता है, उसी प्रकार देसिल वअना मैथिली मे भी एकमात्र अस्मद्-शव्द-जन्य सर्वनाम का ही व्यवहार उत्तमपुरुष मे होता है। होना भी यही चाहिए। किन्तु, विचारणीय विषय यह है कि देसिल वअना मैथिली मे एक ही अस्मद् शव्द के दो विकारी रूप—'मोञ' और 'हम' कैसे हुए? जिस प्रकार हिन्दी मे 'मै' से एकवचन और 'हम' से वहुवचन का वोव होता है, उस प्रकार देसिल वअना मैथिली मे 'मोञ' से एकवचन तथा 'हम' से वहुवचन का वोव नही होता। उसमे 'मोञ' और 'हम'—दोनो ही एकवचनवोवक हैं। वहुवचन की प्रतीति के लिए उनके साथ वहुवचनवोवक 'सव', 'सकल' आदि शव्दो का प्रयोग आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार,

'मोब' और 'हम' में वचन-कृत भेद भी नही है। फिर, उपर्युक्त प्रश्न अपने स्थान पर ज्यो-का-त्यो बना रह जाता है। नीचे इसी प्रश्न के उत्तर मे कुछ विचार प्रस्तुत किये जाते हैं।

सस्कृत में कर्त्तृवाच्य में कर्त्ता से प्रथमा विभक्ति और कर्मवाच्य मे कर्त्ता से तृतीया विभक्ति होती है। प्रथमा विभक्ति के एकवचन मे 'अस्मद्' शब्द का रूप 'अहम्' और तृतीया विभक्ति के एकवचन मे 'अस्मद्' शब्द का रूप 'मया' होता है। अपभ्रश मे सस्कृत 'अहम्' के स्थान मे 'हउँ'[1] और 'मया' के स्थान मे 'मइ'[2] आदेश हो जाता है। देसिल बअना मैथिली मे उसी 'हउँ' का कटा-छँटा रूप 'हम' और उसी 'मइं' का घिसा-पिटा रूप 'मोब' है। किन्तु संस्कृत मे जहाँ कर्त्तृवाच्य में 'अहम्' और कर्मवाच्य मे 'मया' का तथा अपभ्रश मे 'हउँ' एव 'मइ' का प्रयोग पद के रूप मे होता है, देसिल बअना मैथिली मे वहाँ 'मोब' तथा 'हम'—दोनो प्रातिपदिक हैं। पद के रूप मे प्रयोग के लिए 'मोब' और 'हम'—दोनो से विभक्ति का विधान होता है। विभक्ति के लोप होने से अधिकतर स्थानो मे 'मोब' और 'हम' के रूप मे परिवर्त्तन नही होता है, किन्तु जहाँ-तहाँ कर्त्तृवाच्य मे प्रथमा विभक्ति 'ए' के अक्षुण्ण रह जाने से इन दोनो का 'मोबे' तथा 'हमे' के रूप मे क्रमश. परिवर्त्तन हो जाता है। यथा—

आज पुनिमाँ तिथि जानि 'मोबे' अइलिहुँ
उचित तोहर अभिसार।

[भाग २ (रा० त०), पद २१]

यहाँ कर्त्तृवाचक प्रथमा विभक्ति 'ए' के अक्षुण्ण रहने से 'मोब' का 'मोबे' के रूप मे परिवर्त्तन हो गया।

'हमे' एकसरि पिअतम नहि गाम।
तबे मोहि तरतम देइते ठाम॥

(भाग १, पद १६८)

यहाँ कर्त्तृवाचक प्रथमा विभक्ति 'ए' के अक्षुण्ण रहने से 'हम' का 'हमे' के रूप मे परिवर्त्तन हो गया।

'मोब' और 'हम' के प्रातिपदिक होने के कारण ही 'मोब' के 'मो', 'मोहि' '(कर्म), 'मोरा' (सम्बन्ध) और 'हम' के 'हमहि' (कर्म), 'हमरा' (सम्बन्ध) आदि रूप होते है। प्राचीन पाण्डुलिपियो में जहाँ-तहाँ 'मोब' के स्थान मे 'मबे' रूप भी दृष्टिगोचर होता है, जो 'मोब' का ही घिसा-पिटा रूप है। कारण, 'मबे' के 'मो', 'मोहि', 'मोरा' आदि रूप नही हो सकते हैं।

एक बात और। देसिल बअना मैथिली मे उत्तमपुरुषवाचक सर्वनाम के सम्बन्ध में षष्ठयन्त 'मोब' '(मोर', 'मोरा') और 'हम' ('हमर', 'हमरा) के अतिरिक्त अपभ्रश 'मझु' का भी व्यवहार होता है। यथा—

---

१. सावस्मदो हउं।—प्राकृतव्याकरण : हेमचन्द्र, ८।४।३७५।

२. टा-ङ्यमा मइं :—वही, ८।४।३७७।

सपने आएल सखि 'मझु' पिअ पासे।
तखनुक की कहब हृदय हुलासे॥
[भाग २ (रा० त०), पद ४०]

यहाँ 'मोर' अथवा 'हमर' के स्थान मे अपभ्रश 'मझु' का प्रयोग हुआ है।

मध्यमपुरुषवाचक सर्वनाम—जिस प्रकार सस्कृत मे एकमात्र युष्मद् शब्द का व्यवहार मध्यमपुरुषवाचक सर्वनाम के रूप मे होता है, उसी प्रकार देसिल बअना मैथिली मे भी एकमात्र युष्मद् शब्दजन्य सर्वनाम का ही व्यवहार मध्यमपुरुष मे होता है। संस्कृत मे कर्तृवाच्य मे कर्ता से प्रथमा विभक्ति और कर्मवाच्य मे कर्ता से तृतीया विभक्ति होती है। प्रथमा विभक्ति के एकवचन मे युष्मद् शब्द का रूप 'त्वम्' और तृतीया विभक्ति के एकवचन मे युष्मद् शब्द का रूप 'त्वया' होता है। अपभ्रश मे सस्कृत 'त्वम्' के स्थान मे 'तुहु'[1] और 'त्वया' के स्थान मे 'तइ'[2] आदेश होता है। देसिल बअना मैथिली मे उसी 'तुहुँ' का कटा-छँटा रूप 'तोह' और उसी 'तइ' का घिसा-पिटा रूप 'तोअ' है। किन्तु, सस्कृत मे जहाँ कर्तृवाच्य मे 'त्वम्' और कर्मवाच्य मे 'त्वया' का तथा अपभ्रश 'तुहुँ' एव 'तइ' का प्रयोग पद के रूप मे होता है, वहाँ देसिल बअना मैथिली मे 'तोह' और 'तोअ' प्रातिपदिक है। पद के रूप मे प्रयोग के लिए 'तोह' और 'तोअ' से विभक्ति का विधान होता है। विभक्ति के लोप होने से अधिकतर स्थानो मे 'तोह' और 'तोअ' के रूप मे परिवर्त्तन नही होता है, किन्तु जहाँ-तहाँ कर्तृवाच्य मे प्रथमा विभक्ति 'ए' और 'एँ' के अक्षुण्ण रह जाने से इन दोनो का क्रमश. 'तोहेँ' तथा 'तोअे' के रूप मे परिवर्त्तन भी हो जाता है। यथा—

'तोहेँ' जनु तिमिर हीत कए मानह
आनन तोर तिमिरारि।
[भाग २ (रा० त०), पद २१]

यहाँ कर्तृवाचक प्रथमा विभक्ति 'एँ' के अक्षुण्ण रह जाने से 'तोह' का 'तोहेँ' के रूप मे परिवर्त्तन हो गया।

मानहुँ बोलब सखि 'तोअे' अचेतनि
की तोर नाह गमारा।
[भाग २ (त० प०), पद ११९]

यहाँ कर्तृवाचक प्रथमा विभक्ति 'ए' के अक्षुण्ण रहने से 'तोअ' का 'तोअे' के रूप मे परिवर्त्तन हो गया।

'तोह' और 'तोअ' के प्रातिपदिक होने के कारण ही उनके 'तोहि' (कर्म), 'तोर', 'तोरा', 'तोहर', 'तोहरा' (सम्बन्ध) आदि रूप होते हैं। प्राचीन पाण्डुलिपियो मे जहाँ-तहाँ 'तोअ'

---

१. युष्मदः सौ तुहुं।—प्राकृत-व्याकरण : हेमचन्द्र, ८।४।३६८।

२. टा-ङ्यमा पइं तइं।—वही, ८।४।३७०।

के स्थान में 'तनें' रूप भी दृष्टिगोचर होते है, जो 'तोञ' के ही घिसे-पिटे रूप है। कारण, 'तनें' के 'तोर', 'तोरा' आदि रूप नही हो सकते है।

एक बात और। देसिल बअना मैथिली मे मध्यमपुरुषवाचक सर्वनाम के सम्बन्ध मे षष्ठ्यन्त 'तोह' ('तोहर', 'तोहरा') और 'तोञ' '(तोर', 'तोरा)' के अतिरिक्त प्राकृत 'तुअ' का भी व्यवहार होता है। यथा—

जबे जबे 'तुअ' मेरा निफले बहलि बेरा
तबे तबे पीडलि मदने।

(भाग १, पद १७)

यहाँ 'तोर' अथवा 'तोहर' के स्थान मे प्राकृत 'तुअ' का प्रयोग हुआ है।

अन्यपुरुषवाचक सर्वनाम—जिस प्रकार सस्कृत मे 'त्यद्', 'तद्', 'यद्' आदि अनेक सर्वनामों का व्यवहार अन्यपुरुष मे होता है, उसी प्रकार देसिल बअना मैथिली मे भी 'से', 'जे', 'के', 'ओ' आदि अनेक सर्वनामो का व्यवहार अन्यपुरुष मे होता है। किन्तु, सस्कृत के सभी सर्वनामो के विकारी रूप देसिल बअना मैथिली मे नही पाये जाते है। उदाहरणस्वरूप, 'त्यद्' के विकारी रूप देसिल बअना मैथिली मे नही है। इसी प्रकार सस्कृत के कई अन्य सर्वनाम भी है, जिनके विकारी रूप देसिल बअना मैथिली मे नही पाये जाते है। परन्तु सस्कृत मे जो प्रमुख सर्वनाम है, जिनका प्रयोग बहुश. होता है, उनके विकारी रूप देसिल बअना मैथिली मे अवश्य है। यहाँ उन्ही सर्वनामो पर यत्किञ्चित् विचार प्रस्तुत किया जाता है।

'जे', 'के', 'ते' और 'से'—सस्कृत के प्रथमा-बहुवचन (पुलिङ्ग) मे 'यत्', 'तत्' और 'किम्' शब्द के क्रमशः 'ये', 'ते' और 'के' रूप होते है। प्राकृत के प्रथमा बहुवचन मे भी इन शब्दो के क्रमशः 'जे', 'ते' और 'के' रूप ही होते है।[1] नपुसकलिङ्ग से अन्यत्र 'तत्' शब्द के प्रथमा-एकवचन मे 'से' रूप भी होता है।[2] सो, देसिल बअना मैथिली मे प्राकृत के वे ही 'जे', 'के', और 'ते' 'से' अपने मूल रूप मे वर्त्तमान है। किन्तु, प्राकृत मे जहाँ 'जे', 'के', और 'ते' प्रथमा-बहुवचनान्त तथा 'से' प्रथमा-एकवचनान्त पद है, वहाँ देसिल बअना मैथिली मे वे केवल प्रातिपदिक है। पद के रूप मे प्रयोग के लिए उनसे विभक्ति का विधान होता है। विभक्ति के लोप होने से कर्त्तृवाचक 'जे', 'के', 'ते' और 'से' के रूप मे परिवर्त्तन नही होता है; किन्तु अन्यत्र विभक्ति के वर्त्तमान रहने से रूप मे भिन्नता हो जाती है। यथा—'जे' का 'जेकर', 'के' का 'केकर' और 'से' तथा 'ते' का 'तेकर' आदि। विद्यापति ने अपने पदों मे बारम्बार इन विकारी रूपो का प्रयोग किया है। विस्तार-भय से यहाँ इनके उदाहरण नही दिये जाते है।

'कहिआ', 'जहिआ' और 'तहिआ'—संस्कृत मे सप्तमी विभक्ति के स्थान मे 'त्रल्'

---

१. सर्वविजंस एत्वम्।—प्राकृतप्रकाश : वररुचि, ६।१।
२. तदेतदोः सः सावनपुंसके।--वही ६।२२।

प्रत्यय का विधान होता है[1] और 'किम्', 'यत्' तथा 'तत्' शब्द से क्रमश. 'कुत्र', 'यत्र' एवं 'तत्र' की निष्पत्ति होती है। किन्तु, प्राकृत मे सप्तमी विभक्ति के स्थान मे 'इआ' प्रत्यय का विधान होता है[2] और 'किम्', 'यत्' तथा 'तत्' शब्द से क्रमश- 'कइआ', 'जइआ' एवं 'तइआ' की निष्पत्ति होती है। देसिल बअना मैथिली मे उन्ही 'कइआ', 'जइआ' और 'तइआ' के यत्किञ्चित् परिवर्त्तित रूप 'जहिआ', 'कहिआ' तथा 'तहिआ' है। विद्यापति ने भी अपने पदो मे इनके प्रयोग किये है, जिनका दिग्दर्शन विस्तार-भय से यहाँ नही किया जाता है।

'एहि', 'एहे' और 'एहु'—संस्कृत के प्रथमा-एकवचन मे लिङ्गभेद से 'एतद्' शब्द के 'एष.' (पु०), 'एषा' (स्त्री०) और 'एतद्' (नपुंसक) रूप होते हैं। किन्तु अपभ्रंग के प्रथमा-एकवचन मे 'एतद्' शब्द के तीनो लिङ्ग मे 'एह', 'एहो' और 'एहु'—रूप होते है।[3]

देसिल बअना मैथिली मे उसी 'एह' का परिवर्त्तित रूप 'एहि', 'एहो' का परिवर्त्तित रूप 'एहे' और 'एहु' का अपरिवर्त्तित रूप 'एहु' है। विद्यापति ने भी अपने पदों मे वार-वार इनका प्रयोग किया है। विस्तार-भय से यहाँ इनके उदाहरण नही दिये जाते हैं।

'ओ'—संस्कृत के प्रथमा-वहुवचन मे लिङ्गभेद से अदस् शब्द के 'अमी' (पुं०), 'अमू' (स्त्री०) और 'अमू' (नपुं०) रूप होते है। किन्तु अपभ्रंग के प्रथमा-वहुवचन मे 'अदस्' के स्थान मे 'ओइ' आदेश होता है।[4] देसिल बअना मैथिली का उपर्युक्त 'ओ' उसी अपभ्रंग 'ओइ' का घिसा-पिटा रूप है। अपभ्रंग मे 'ओइ' का व्यवहार पद के रूप मे होता है; किन्तु देसिल बअना मैथिली मे तद्भव 'ओ' प्रातिपदिक है। इसीलिए उससे विभक्ति का विधान होता है और 'ओहि', 'ओकर', 'ओकरा' आदि रूपो की निष्पत्ति होती है।

उपर्युक्त सर्वनाम 'ओ' का व्यवहार प्राकृत-युग मे भी होता था।[5] किन्तु, अपभ्रंग-युग में इसके व्यवहार का वाहुल्य देखा जाता है।[6] विद्यापति ने भी अवहट्ठ मे इसका प्रयोग किया है।[7] आर्यकुल की अन्य भाषाओ—व्रजभाषा, अवधी, राजस्थानी आदि—मे भी इसका व्यवहार होता है। विद्यापति ने भी अपने पदो मे इसका प्रयोग किया है। यथा—

---

१. सप्तम्यास्त्रल्।—अष्टाध्यायी ५।३।१०।

२. आहे-इआ काले।—प्राकृतप्रकाश : वररुचि, ६।८।

३. एतदः स्त्रीपुंक्लीवे एह एहो एहु।—प्राकृतव्याकरण : हेमचन्द्र, ८।४।३६२।

४. अदस ओइ।—प्राकृतव्याकरण : हेमचन्द्र, ८।४।३६४।

५. 'ओ' पसु 'ओ' पासाण।—प्राकृतपिङ्गल।

६. 'ओ' गोरी मुह निज्जिअउ बद्दलि लुक्कु मियङ्कु।

—हेमचन्द्र : प्राकृतव्याकरण ८।४।४०१।

७. बालचन्द विज्जावइ भासा दुहु नहि लग्गइ दुज्जन हासा।
'ओ' परमेसर सेहर सोहइ ई णिच्चअ नाअर मण मोहइ॥

—कीर्त्तिलता : डॉ० बाबूराम सक्सेना, पृ० २।

'ओ' नवि नागरि निसा सगरि
सुरत अवधि गेला।

[भाग २ (रा० पु०), पद ६५]

यहाँ प्रथमा विभक्ति के लोप हो जाने से 'ओ' के रूप में परिवर्त्तन नही हुआ।

'काँ', 'काजि' और 'कओन'—ये तीनो सस्कृत 'किम्' शब्द के विकारी रूप है। अपभ्रंश में किम् शब्द के स्थान में विकल्प से 'काइँ' और 'कवण' आदेश होते है।[1] सो, देसिल बअना मैथिली के 'काँ' और 'काजि' उसी अपभ्रंश 'काइँ' के तथा 'कओन' उसी अपभ्रश 'कवण' के विकारी रूप हैं। किञ्च, देसिल बअना मैथिली में वर्गीय पञ्चम वर्ण से अव्यवहित-पूर्व स्वर अश्रुतिक हो जाता है। अतएव, 'गेआन', 'सोहाओन', 'नराअेन' आदि अनेक अश्रुतिक शब्द विद्यापति के पदो में पाये जाते है। मित्र-मजूमदार का ध्यान इस सूक्ष्म तथ्य की ओर नही गया। इसीलिए उन्होंने स्व-सम्पादित 'विद्यापतिर पदावली' मे सर्वत्र 'कओन' के स्थान में 'कओन' कर दिया। प्राचीन पाण्डुलिपियो मे भी जहाँ-तहाँ 'कओन' का प्रयोग देखा जाता है; किन्तु वह लेखक-प्रमाद है। कारण, कोई भी कवि एक शब्द का अनेक रूपो में व्यवहार नही करता है। फिर, विद्यापति के समान महान् कवि से ऐसी आशा करना अयुक्तिक ही नहीं, हास्यास्पद भी है।

'कथी', 'जथी', 'तथी' और 'एथी'—देसिल बअना मैथिली के ये चारों शब्द सस्कृत के 'किमित्थम्', 'यदित्थम्', 'तदित्थम्' और 'इत्थम्' के विकारी रूप है। जिस प्रकार संस्कृत में उपर्युक्त थमन्त शब्द अव्यय है, उसी प्रकार देसिल बअना मैथिली मे भी तद्भव 'कथी', 'जथी' आदि अव्यय है। इसीलिए, इनके रूप में परिवर्त्तन नही होता है। विद्यापति के पदो में वारम्बार इनका प्रयोग हुआ है। विस्तार-भय से यहाँ उनका दिग्दर्शन नही कराया जाता है।

विद्यापति के पदो मे इनके ह्रस्वान्त रूप भी पाये जाते है। यथा—

जे नहि फलें निरबाहए पारिअ
से बोलिअ 'कथि' लागी।

[भाग २ (रा० पु०), पद ३१[

यहाँ दीर्घान्त 'कथी' का 'ह्रस्वान्त कथि' के रूप मे प्रयोग हुआ है।

'कथा' और 'एथा'—संस्कृत मे सप्तमी विभक्ति के स्थान मे 'त्रल्' आदेश करके 'किम्' 'शब्द से 'कुत्र' और 'इदम्' शब्द से 'अत्र' की निष्पत्ति होती है। अपभ्रंश मे 'त्रल्' के स्थान में 'एत्थु' आदेश होने से 'कुत्र' और 'अत्र' के अर्थ मे 'केत्थु' और 'एत्थु' की सिद्धि होती है।[2] देसिल बअना मैथिली का 'कथा' उसी अपभ्रंश 'केत्थु' का और 'एथा' उसी अपभ्रंश 'एत्थु' का विकारी रूप है। विद्यापति ने भी अपने पदो मे इनका व्यवहार किया है। यथा—

---

१. किमः काइं-कवणौ वा।—प्राकृतव्याकरण : हेमचन्द्र, ८।४।३६७।

२. एत्थु कुत्रात्रे।—वही, ८।४।४०५।

कहहि मो सखि कहहि मो
'कथा' ताहेरि बासा।

(भाग १, पद १९६)

यहाँ संस्कृत 'कुत्र' के अर्थ मे 'कथा' का प्रयोग हुआ है। किञ्च, जिस प्रकार संस्कृत में 'कुत्र' अव्यय है, उसी प्रकार देसिल वअना मैथिली मे 'कथा' अव्यय है। इसीलिए, इसके रूप मे परिवर्त्तन नही होता है। और—

पथिक 'एथा' लेहे विसराम।
जत बेसाहब किछु न महघ
सबे मिल एहि ठाम॥

(भाग १, पद ४४)

यहाँ संस्कृत 'अत्र' के स्थान में 'एथा' का प्रयोग हुआ है।

कही-कही 'एथा' के रूप मे विभक्ति-कृत रूप-परिवर्त्तन भी हो जाता है। यथा—

एथाँ मनमथ सर साजे।
समदि पठाबह आओब आजे॥

[भाग २ (रा० पु०), पद परि-'क' २]

यहाँ सस्कृत 'अत्र' के अर्थ मे 'एथाँ' का प्रयोग हुआ है और उसमे विभक्ति-कृत रूप-परिवर्त्तन भी हो गया है।

इथी—सस्कृत मे सप्तमी विभक्ति के स्थान मे 'त्रल्' आदेश करके 'इदम्' शब्द से 'अत्र' की निष्पत्ति होती है। ऊपर कहा गया है कि अपभ्रंश मे 'त्रल्' के स्थान में 'एत्थु' आदेश होने से 'अत्र' के स्थान मे 'एत्थु' की सिद्धि होती है। देसिल वअना मैथिली का 'एथा' उसी 'एत्थु' का विकारी रूप है, जिसका व्यवहार विद्यापति के पदों मे बारम्बार हुआ है। 'इथी' उसी 'एथा' का घिसा-पिटा कोमल-कान्त रूप है। विद्यापति के पदो मे भी यत्र-तत्र इसका प्रयोग हुआ है। यथा—

उथि अछ सुधा 'इथी' अछ हास
एतबा अछ किछु तुलना भास॥

[भाग २ (रा० पु०), पद ७९]

यहाँ संस्कृत 'अत्र' के अर्थ मे 'इथी' का प्रयोग हुआ है और अव्यय होने के कारण रूप मे परिवर्त्तन नही हुआ है।

'तथी' और 'उथी'—सस्कृत में सप्तमी विभक्ति के स्थान में 'त्रल्' आदेश करके 'तत्' शब्द से 'तत्र' की निष्पत्ति होती है। अपभ्रंश मे 'त्रल्' के स्थान मे 'एत्थु' आदेश होने से 'तत्र' के स्थान मे 'तेत्थु' की सिद्धि होती है।[1] देसिल वअना मैथिली का 'तथी' उसी 'तेत्थु' का विकारी रूप है। विद्यापति के पदो मे भी इसका प्रयोग पाया जाता है। यथा—

---

१. यत्र-तत्रयोस्त्रस्य डिदेत्थ्वत्तु।—प्राकृतव्याकरण: हेमचन्द्र, ८।४।४०४।

बांधए विकट जटा
'तथिहु' चदिल फोटा
कत जुग सहस बयस बहि गेला
उमत महादेव समत न भेला।

[भाग २ (रा० तं०), पद ४१]

यहाँ सस्कृत 'तत्र अपि'—'तत्रापि'—के अर्थ मे 'तथिहु' का प्रयोग हुआ है। किञ्च, देसिल बअना मैथिली मे 'तत्र' के अर्थ मे 'उथी' का भी प्रयोग मिलता है। यह अत्रार्थक 'इथी' के अनुकरण पर बना हुआ तत्रार्थक शब्द है। विद्यापति के पदों मे भी इसका प्रयोग हुआ है। यथा—

'उथि' अछ सुधा इथी अछ हास।
एतबा अछ किछु तुलना भास॥

[भाग २ (रा०पु०), पद ७९]

यहाँ सस्कृत 'तत्र' के अर्थ मे 'उथी' का प्रयोग हुआ है।

'जथा'—सस्कृत में सप्तमी विभक्ति के स्थान मे 'त्रल्' आदेश करके 'यत्' शब्द से 'यत्र' की निष्पत्ति होती है। अपभ्रश मे 'त्रल्' के स्थान मे 'एत्थु' आदेश होने से 'यत्र' के अर्थ मे 'जेत्थु' की निष्पत्ति होती है।[1] देसिल बअना मैथिली का 'जथा' उसी 'जेत्थु' का विकारी रूप है। विद्यापति के पदो में भी इसका प्रयोग हुआ है। यथा—

साजनि भल भेल अभिसार।
सुपहु एलिए 'जथाँ' गेलि हे
तकर पुन अपार॥

[भाग २ (रा० पु०), पद ६१]

यहाँ सस्कृत 'यत्र' के अर्थ में 'जथाँ' का प्रयोग हुआ है और उसमें विभक्ति-कृत रूप-परिवर्त्तन भी हो गया है।

अपन—संस्कृत मे आत्मन् शब्द से 'छ' प्रत्यय होता है और 'छ' के स्थान में 'ईय' आदेश होने से 'आत्मीय' की निष्पत्ति होती है। अपभ्रंश में संस्कृत-'आत्मीय' के स्थान में 'अप्पण' आदेश होता है।[2] देसिल बअना मैथिली का 'अपन' उसी अपभ्रंश 'अप्पण' का विकारी रूप है। संस्कृत मे 'आत्मीय' शब्द सर्वनाम नही है, किन्तु उसका पर्यायवाची 'स्व' शब्द सर्वनाम है। प्रायः इसीलिए देसिल बअना मैथिली मे 'अपन' का व्यवहार सर्वनाम के रूप में होता है। विद्यापति के पदो मे इसका बहुशः प्रयोग मिलता है। यथा—

---

१. प्राकृतव्याकरण : हेमचन्द्र, ८।४।४०४।
२. शीघ्रादीनां वहिल्लादयः।—वही, ८।४।४२२।

हरि अनुरागी त ठमा जाह।
से आबे 'अपन' मनोरथ चाह॥

(भाग १, पद ८९)

यहाँ सस्कृत 'आत्मीय' के अर्थ मे 'अपन' का प्रयोग हुआ है।

'केओ' और 'कोइ'—देसिल बअना मैथिली का 'केओ' सस्कृत 'केऽपि' (के अपि) का और 'कोइ' सस्कृत 'कोऽपि' (क: अपि) का विकारी रूप है। सस्कृत मे 'के' बहुवचनान्त और 'क:' एकवचनान्त है। इसलिए 'केऽपि' का प्रयोग बहुवचन मे और 'कोऽपि' का प्रयोग एकवचन में होता है। किन्तु, देसिल बअना मैथिली मे 'केओ' और 'कोइ'—दोनो का प्रयोग एकवचन मे होता है। कारण, विकृति मे अनुकृतिगत पदार्थ की कही हानि हो जाती है, तो कही आधिक्य हो जाता है। सो, 'केओ' मे भी वचन-कृत बहुत्वार्थ की हानि हो गई। इसीलिए एकवचन मे इसका प्रयोग होता है। किञ्च, जिस प्रकार 'केऽपि' के विकारी रूप 'केओ' का व्यवहार देसिल बअना मैथिली मे होता है, उसी प्रकार 'येऽपि' के विकारी रूप 'जेओ' और 'तेऽपि' के विकारी रूप 'सेओ' का भी व्यवहार देसिल बअना मैथिली मे होता है। विद्यापति के पदो मे इन सबका वारम्वार प्रयोग हुआ है। विस्तार-भय से इनके उदाहरण यहाँ नही दिये जाते है।

ऊपर सर्वनाम के विषय मे यत्किञ्चित् प्रकाश डाला गया है। देसिल बअना मैथिली मे इनके अतिरिक्त 'सब' (संस्कृत-सर्व)', आन (स० अन्य), आओर (सं० अपर), इअर (सं० इतर), निअ (सं० निज) आदि सर्वनाम भी है, जिनका प्रयोग विद्यापति के पदो मे मिलता है। किञ्च, सस्कृत-प्रधान भाषा होने के कारण तत्सम सर्वनामों का प्रयोग भी विद्यापति के पदो मे हुआ है। विस्तार-भय से उनके भी उदाहरण यहाँ नही दिये जा रहे है।

विशेषणीभूत सर्वनाम

अइसन, कइसन, जइसन और तइसन—ये सभी विशेषणीभूत सर्वनाम सस्कृत के ईदृग्, कीदृग्, यादृग् और तादृग् के विकारी रूप है। अपभ्रंश मे ईदृग् आदि के 'दृग्' के स्थान मे 'अइस' आदेश और पूर्व स्वर के लोप होने से अइसो, कइसो, जइसो तथा तइसो की निष्पत्ति होती है।[1] क्रमशः वे ही अइसो, कइसो आदि घिस-पिटकर देसिल बअना मैथिली मे अइसन, कइसन आदि के रूप में परिणत हो गये हैं। प्राचीन पाण्डुलिपियों मे यत्र-तत्र ऐसन, कैसन आदि रूप भी मिलते हैं, परन्तु वे लेखक-प्रमाद हैं। कारण, देसिल बअना मैथिली मे 'ऐ' का 'अइ' के रूप मे परिवर्त्तन हो जाता है, जिसका विचार पहले हो चुका है। आज की मैथिली मे इनके रूप एहन, केहन आदि और बँगला मे ऐछन, कैछन आदि हो गये है। सो, उपर्युक्त तथ्य से अनभिज्ञ रहने के कारण ही कतिपय सम्पादको ने अइसन, कइसन आदि को आधुनिक एहन, केहन अथवा ऐछन, कैछन आदि के रूप मे परिणत कर दिया है। विस्तार-भय से इनके उदाहरण यहाँ नही दिये जा रहे हैं।

---

१. अतां डइसः।—प्राकृतव्याकरण : हेमचन्द्र, ८।४।४०३।

एत, कत, जत और तत—ये सभी संस्कृत के इयत्, कियत्, यावत् और तावत् के विकारी रूप है। विद्यापति के पदों मे बारम्बार इनका प्रयोग हुआ है। किञ्च, सस्कृत के उपर्युक्त इयत्, कियत् आदि के विकारी रूप एतबा, कतबा, जतबा और ततबा का व्यवहार भी देसिल बअना मैथिली मे होता है। विद्यापति ने भी अपने पदो मे यथास्थान इनका व्यवहार किया है। यथा—

से 'ततबाहिं' गेलि डाइनि सकल भेलि
दुहु हल हृदअ विचारि।
[भाग २ (रा० पु०), पद ४]

अब, तव, जव और कब—प्राकृत में संस्कृत 'इदानीम्' के स्थान मे 'एम्बहि' आदेश होता है।[1] सो, देसिल बअना मैथिली का 'अब' इसी 'एम्बहि' का घिसा-पिटा रूप है और इसी 'अब' के अनुकरण पर 'तदा', 'यदा' तथा 'कदा' के स्थान मे 'तब', 'जब' एवं 'कब' का प्रयोग भी देसिल बअना मैथिली मे होने लगा। विद्यापति के पदो मे बारम्बार इनका प्रयोग हुआ है।

जा, जाव और ता, ताव—ये संस्कृत यावत् और तावत् के प्राकृत रूप है। प्राकृत मे यावत् और तावत् के 'व' का विकल्प से[2] तथा 'त्' का नित्य लोप[3] एव 'य' के स्थान मे 'ज' आदेश[4] होने से इनकी निष्पत्ति होती है। अपभ्रंश मे भी इनका प्रयोग होता है। देसिल बअना मैथिली मे भी ये अपने मूल रूप मे वर्त्तमान है। विद्यापति ने भी अपने पदो मे इनका प्रयोग किया है। विस्तार-भय से यहाँ इनके उदाहरण नही दिये जा रहे है।

एतए, कतए, जतए और ततए—सस्कृत के अत्र, कुत्र, यत्र और तत्र के क्रमश. ये चारो विकारी रूप देसिल बअना मैथिली मे वर्त्तमान है। इन्ही के अनुकरण पर 'ओतए' का व्यवहार भी देसिल बअना मैथिली मे होता है। विद्यापति ने भी अपने पदो मे इनका प्रयोग किया है। विस्तार-भय से यहाँ इनके उदाहरण नही दिये जा रहे है।

एखन, जखन, कखन और तखन—ये चारो संस्कृत के एतत्क्षण, यत्क्षण, कियत्क्षण और तत्क्षण के विकारी रूप है। मैथिली मे आज भी धडल्ले के साथ इनका प्रयोग होता है। विद्यापति ने भी अपने पदो मे इनका बहुश. प्रयोग किया है। विस्तार-भय से इनके उदाहरण नही दिये जा रहे है।

किञ्च, संस्कृत-प्रधान भाषा होने के कारण देसिल बअना मैथिली मे विशेषणीभूत तत्सम सर्वनामो के भी प्रयोग मिलते है। विद्यापति के पदो मे भी यत्र-त्त्र विशेषणीभूत तत्सम सर्वनामो के दर्शन हो जाते है। विस्तार-भय से यहाँ उनके उदाहरण भी नही दिये जा रहे है।

---

१. पश्चादेवमेवैवेदानीम्प्रत्युतेतसः पच्छइ-एम्बइ-जि-एम्बहि-पच्चलिउ-एत्तहे।—प्राकृत-व्याकरण : हेमचन्द्र, ८।४।४२०।
२. यावदादिषु वस्य।—प्राकृतप्रकाशः वररुचि, ४।५।
३. अन्त्यहलः।—वही, ४।६।
४. आदेर्योजः।—वही, २।३१।

धातु विचार

संस्कृत की प्राय. सभी प्रमुख धातुएँ पालि और प्राकृत मे भी पाई जाती है। किन्तु, संस्कृत में जहाँ वे भ्वादि, अदादि, जुहोत्यादि आदि दस गणो मे विभक्त है और रूपभेद के लिए जहाँ उनसे गण के अनुसार शप्, श्यन् आदि का विधान होता है, वहाँ पालि तथा प्राकृत मे सरलीकरण की दृष्टि से सभी धातुएँ अकारान्त कर दी गईं एवम् उनके रूप भ्वादिगणीय धातु के समान होने लगे। कारण, भ्वादिगणीय धातु के रूप सबसे सरल होते है। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि धातुओ के अकारन्त करने से पूर्व उनसे शप्, श्यन् आदि का भी विधान कर दिया जाता है। जैसे—'की', 'ज्ञा', 'श्रु', 'नृत्' और 'बुध्' को अकारान्त नही किया जाता है, किन्तु आगमविशिष्ट 'क्रीणा' को अकारान्त 'किण', 'जाना' को अकारान्त 'जाण', 'शृणो' को अकारान्त 'सुण', 'नृत्य' को अकारान्त 'नच्च' तथा 'बुध्य' को अकारान्त' 'बुज्झ' के रूप मे परिवर्त्तित कर दिया जाता है। इस प्रकार सस्कृत के 'ना', 'नु' 'य' आदि आगम पालि, प्राकृत और अपभ्रंश मे तो विद्यमान है ही, तत्समुद्‌भूत देशी भाषाओ मे भी विद्यमान है। कारण, यह पहले कहा जा चुका है कि आज की समस्त आर्यकुल की भाषाएँ सस्कृत-समुद्‌भूत है। इसलिए किसी-न-किसी रूप मे आज भी उसके गुण-धर्म इनमे विद्यमान है। फिर, देसिल बअना मैथिली तो आरम्भ से ही सस्कृतोन्मुखी रही। अत, अवहट्ठ (अपभ्रंश) से सद्योजात होने पर भी परम्परागत संस्कृत के सारे गुण-धर्म इसमे विद्यमान है।

यह पहले कहा जा चुका है कि पालि-प्राकृत-युग मे ही बहुवचन ने द्विवचन का स्थान ले लिया था। इसीलिए, अपभ्रंश मे भी द्विवचन को स्थान नही मिला, तो तत्समुद्‌भूत देसिल बअना मैथिली मे ही उसे कैसे स्थान मिलता? परिणामस्वरूप, देसिल बअना मैथिली मे भी—चाहे प्रातिपदिक हो अथवा धातु, दो ही वचन होते है—एकवचन और बहुवचन।

सस्कृत मे धातु के तीन भेद है—परस्मैपदी, आत्मनेपदी और उभयपदी। किन्तु, पालि मे आत्मनेपद श्लथ होने लगा। अनेक आत्मनेपदी धातुओ का प्रयोग परस्मैपद मे होने लगा। इतना ही नही, कर्मवाच्य और भाववाच्य मे, जहाँ कि संस्कृत मे आत्मनेपद का व्यवहार दुर्वार है, वहाँ भी पालि मे प्रचुरता के साथ परस्मैपद का व्यवहार होने लगा।

प्राकृत तो पालि से भी एक डग आगे बढ गई। सरलीकरण की दृष्टि से उससे आत्मनेपद को सदा के लिए विदा कर दिया गया। सभी धातुएँ परस्मैपदी कर दी गईं।

प्राकृत का यह नियम उत्तराधिकार के रूप मे अपभ्रंश ने भी ग्रहण किया। वहाँ भी आत्मनेपद को स्थान नही मिला।

किञ्च, अपभ्रंश का मुख्य लक्ष्य सरलीकरण था। अतएव, उसमे और भी कई सशोधन किये गये। यथा—सस्कृत के भूतकालवाचक लिट्, लङ और लुङ लकार का लोप कर दिया गया। भूतार्थक कृत्प्रत्यय के सयोग से ही धातु से भूतकाल का बोध होने लगा। भविष्यत्कालवाचक लृट् लकार का भी लोप कर दिया गया। केवल लट् लकार से ही भविष्यत्काल का बोध होने लगा। इतना ही नही, आज्ञार्थक लिङ लकार के लिए भी अपभ्रंश में स्थान नही। एकमात्र

लोट् लकार से ही उसमें आज्ञार्थ की निष्पत्ति होती है। इस प्रकार, अपभ्रंश मे तीन ही लकार के रूप मिलते हैं—लट् (वर्त्तमान), लृट् (भविष्यत्) और लोट् (आज्ञार्थक)। देसिल वअना मैथिली में भी अपभ्रंश की यही रीति प्रचलित है। उसमे भी उपर्युक्त तीन लकार के रूप ही मिलते हैं। भूतकाल के लिए कृत्प्रत्यय का ही व्यवहार उसमे भी होता है।

धातुभेद-विचार

पाणिनि ने अपने 'धातुपाठ' मे जितनी धातुओं का परिगणन किया है, सस्कृत-साहित्य में उन सबका प्रयोग नही होता। उनमे बहुत-सी ऐसी धातुएँ है, जिनका प्रयोग केवल वैदिक सस्कृत में होता है, बहुत-सी ऐसी धातुएँ है, जिनका प्रयोग केवल लौकिक सस्कृत मे होता है और बहुत-सी ऐसी धातुएँ है, जिनका प्रयोग दोनों में होता है। फिर भी, बहुत-सी धातुएँ अवशिष्ट रह जाती है, जिनका प्रयोग आज न वैदिक संस्कृत मे मिलता है और न लौकिक सस्कृत मे। केवल प्राकृत मे वे धातुएँ प्रयुक्त होती है, इसलिए सहज ही यह अनुमान किया जा सकता है कि वैदिक और लौकिक सस्कृत का वह बहुत बड़ा भाग नष्ट हो गया, जिसमें उनका प्रयोग होता था। कारण, प्रारम्भ में ही यह प्रतिपादित हो चुका है कि सस्कृत प्राकृत की जननी है। संस्कृत से ही नानाविध प्राकृतों की उत्पत्ति हुई है। इसलिए, वैदिक अथवा लौकिक संस्कृत मे प्रयुक्त हुए विना प्राकृत मे उन धातुओं का प्रयोग असम्भव है। किन्तु, प्राकृत मे कुछ ऐसी धातुएँ भी हैं, जिनका यथावत् परिगणन पाणिनि के धातुपाठ मे नही है। इसीलिए, ये धातुएँ प्राकृत की अपनी देन हैं। इस प्रकार, प्राकृत मे दो प्रकार की धातुएँ है—(१) मूल धातु, अर्थात् पाणिनीय धातुपाठ मे परिगणित धातु और (२) गौण धातु, अर्थात् प्राकृत की अपनी धातु। यही परम्परा प्राकृत से क्रमशः अपभ्रंश (अवहट्ठ) में और अपभ्रंश (अवहट्ठ) से देसिल वअना मैथिली मे आई। नीचे देसिल वअना मैथिली के इसी धातुभेद के ऊपर यत्किञ्चित् प्रकाश डाला जाता है।

मूल धातु

जिन धातुओ की उत्पत्ति पाणिनीय धातुपाठ में परिगणित धातुओं से हुई है, वे मूलधातु कहलाती हैं। मूलधातु के भी दो भेद है—तत्सम मूल धातु और तद्भव मूल धातु।

तत्सम मूल धातु—यह पहले कहा जा चुका है कि 'मिथिला आरम्भ से ही सस्कृत-विद्या का केन्द्र रही है। इसलिए, वहाँ की भाषा पर—चाहे वह प्राकृत हो अथवा अपभ्रंश (अवहट्ठ), सस्कृत का पर्याप्त प्रभाव रहा।' इसी का परिणाम है कि यहाँ की भाषा देसिल वअना मैथिली में भी संस्कृत की कतिपय धातुएँ ज्यो-की-त्यो ले ली गई।

विद्यापति के पदों में जिन तत्सम मूल धातुओ का प्रयोग हुआ है, उनके भी दो भेद हैं—(१) संस्कृत-तत्सम मूल धातु और (२) विकृत-तत्सम मूल धातु। संस्कृत-तत्सम मूल धातु वे हैं, जिनका रूपात्मक विकास संस्कृत से दूर नही है, अर्थात् जिनके रूप संस्कृत-धातु के रूपों से

मिलते-जुलते हैं और विकृत-तत्सम मूल धातु वे हैं, जिनका रूपात्मक विकास संस्कृत से दूर हो गया है, अर्थात् जिनके रूप संस्कृत धातु के रूपों से नहीं मिलते। यहाँ उन्ही सस्कृत और विकृत-तत्सम मूल धातुओ की संक्षिप्त सूची प्रस्तुत की जाती है, जिससे धातुगत इस भेद के समझने मे सहायता होगी।

(क) उपसर्ग-रहित संस्कृत-तत्सम मूल धातु—इछ=इच्छ् (इष्)। खण्ड=खण्ड् (खडि)। खेल=खेल्। गोप=गुप्+णिच्। घट=घट्। चल=चल्। चेत=चित। जप=जप्। जिव=जीव्। तर=तृ। दुह=दुह्। धर=धृ। धाव=धाव्। निन्द=निन्द्। पीव=पिव (पा)। पूज=पूज्। पुर=पुर्। फुल=फुल्ल्। वह=वह्। भर=भृ। भास=भास्। भाव=भू।+णिच्। मान=मन्+ णिच्। मिल=मिल्। मर=मृ। ला=ला। वम्=वम्। बस=वस्। वार=वृ+णिच्। रम=रम्। सह=सह्। सूच=सूच्। कर=कृ। हर=हृ। हस=हस्। आदि।

(ख) उपसर्ग-सहित संस्कृत-तत्सम मूल धातु—अनुरञ्जव=अनु+रञ्ज। अवगाह=अव+गाह्। निवेद=नि+विद्। परिहर=परि+हृ। विघट=वि+घट्। विलस=वि+लस्। विरच=वि+रच्। सञ्चर=सम्+चर। अनुलेपन=अनु+लिम्प्। आदि।

(ग) उपसर्ग-रहित विकृत-तत्सम मूल धातु—कह=कथ्+णिच्। काछ्=काक्ष (काक्षि)। कान्द=क्रन्द्। काम्प=कम्प्। गह=ग्रह्। गरज=गर्ज्। गरस=ग्रस्। गान्थ=ग्रथ्। गुन=गुण्+णिच्। जा=या। जान=जा (ज्ञा)। जाग=जागृ। जीउ=जीव्। जोह=जुष्। तेज=त्यज्। दा, दे और दि=दा। दूल=दुल्। नस=नश्। पळ=पत्। परस=स्पृश्। वान्ध=बन्ध्। भन=भण्। भम=भ्रम्। पढ=पठ्। माख=म्रक्ष्। लह=लभ्। लाज=लज्ज्। लूळ=लू। लख=लक्ष्। वरिस=वर्ष् (वृष्)। सोह=शोभ् (शुभ्)। हेर=हेड्। आदि।

(घ) उपसर्ग-सहित विकृत-तत्सम मूल धातु—आव=आ+गम्। आन=आ+नी। उठ=उत्।+स्था। उतर=उत्+तृ। उपज=उप+जन्। उसर=उत्+सृ। निहार=नि+भल् (णिच्)। निझाव=निर्+वप्। पखाल=प्र+क्षाल्+णिच्। पसर=प्र+सृ। पहिर=परि+धा। पसाह=प्र+साध्। पाव=प्र+आप्। पराप=परा+अप्। पिधि=परि+धा। पेख=प्र+ईक्ष्। विसर=वि+स्मृ। समाद=सम्+वद्। बिगस=वि+कस्। सोम्प=सम्+अर्प्। आदि।

तद्भव मूल धातु—कुछ धातुएँ ऐसी है, जो क्रमश: सस्कृत से प्राकृत और अपभ्रंश होती हुई देसिल वअना मैथिली मे आई हैं। इसीलिए, उनका रूप-विधान सस्कृत से नही, प्राकृत अथवा अपभ्रंश से ही मिलता है। इसीलिए उन्हे 'तद्भव मूल धातु' कहते हैं। नीचे उन्ही तद्भव मूल धातुओ की सक्षिप्त सूची प्रस्तुत की जाती है।

(क) उपसर्ग-रहित तद्भव मूल धातु—अछ=अच्छ (प्रा०), आस् (स०)। काढ=कड्ढ (प्रा०), कृष् (सं०)। खा=खा (प्रा०) खाद्(स०)। घुर=घुल्(प्रा०), घूर्ण् (स०)। छाड=छड्ड (प्रा०), क्षर् (स०)। जर=जल (प्रा०), ज्वल् (स०)। झर=झड (प्रा०), शद् (सं०)। झाम्प=झम्प (प्रा०), भ्रम् (सं०)। झाँख=झङ्ख (प्रा०), वि+लप् (सं०)।

थाक=थक्क (प्रा०), स्था (सं०)। देख=देक्ख (प्रा०), दृश् (सं०)। नाच=नच्च (प्रा०), नृत् (सं०)। नुक=लुक्क (प्रा०), नि+ली (सं०)। पूछ=पुच्छ (प्रा०), पृच्छ् (स०)। बुझ=वुज्झ (प्रा०), वुध् (स०)। बोल=बोल्ल (प्रा०), वद् (सं०)। भुल=भुल्ल (प्रा०), भ्रश् (स०)। रोअ=रुव (प्रा०), रुद् (स०)। रुझ=रुज्झ (प्रा०), रुध् (सं०)। सिझ=सिज्झ (प्रा०), सिध् (सं०)। होअ=हू (प्रा०), भू (सं०)। चूक=चुक्क (प्रा०), च्युत् (स०)। आदि।

(ख) उपसर्ग-सहित तद्भव मूल धातु—पजार=पज्जल (प्रा०), प्र+ज्वल्+णिच् (सं०)। पलट=पलोट्ट (प्रा०), प्रति+आ+गम् (सं०)। विक=विक्क (प्रा०), वि+क्री (स०)। समार=समार (प्रा०), सम्+आ+रच् (सं०)। ओछाए=ओच्छादइ (प्रा०), अव+छद्+णिच (सं०)। आदि।

धातुओ का उपर्युक्त परिगणन केवल दिग्दर्शन है। देसिल वअना मैथिली में इनके अतिरिक्त भी अनेक धातुओ का प्रयोग होता है। किन्च, उसमे ऐसे भी कुछ क्रियापद है, जिनकी उत्पत्ति सस्कृत अथवा प्राकृत की किन धातुओं से हुई है, यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता है। जैसे—फेदाएल, डमकल आदि।

गौण धातु विचार

गौण धातुओं की उत्पत्ति आगम-संश्लिष्ट धातु से, संज्ञा से, विशेषण से, दो क्रियाओं के संयोग से और अनुकरणात्मक ध्वनि से होती है। इनके चार भेद हैं—(१) प्रेरणार्थक धातु, (२) नामधातु, (३) संयुक्त धातु और (४) अनुकरणात्मक धातु। नीचे इन्ही चारों के विषय में यत्किञ्चित् विचार प्रस्तुत किया जाता है।

(१) प्रेरणार्थक धातु—संस्कृत मे प्रेरणार्थक क्रिया बनाने के लिए धातु से णिच् का आगम करके वाद में णिजन्त धातु से तिङ (तिप्, तस्, झि आदि) का विधान होता है। यथा—कृ+णिच्+ति=कारयति, धृ+णिच्+ति=धारयति आदि। देसिल वअना मैथिली में भी संस्कृत की वे ही णिजन्त धातुएँ क्रमशः प्राकृत और अपभ्रंश को पार करती हुई प्रेरणार्थक धातु के रूप में अवतीर्ण हुई हैं। यथा—

सजल नलिनिदल सेज 'सोआइअ'
परसे जा असिलाए।

(भाग १, पद १५)

यहाँ संस्कृत णिजन्त 'स्वप्' धातु क्रमशः प्राकृत और अपभ्रंश को पार करती हुई प्रेरणार्थक 'सोअ' धातु के रूप में देसिल वअना मैथिली मे अवतीर्ण हुई है, जिससे 'सोआइअ' क्रिया की निष्पत्ति होती है।

(२) नामधातु—संस्कृत मे नामधातु वनाने के लिए नाम (संज्ञा) से क्यङ का आगम करके उसे धातु वनाया जाता है और वाद मे उससे तिङ (तिप्, तस्, झि आदि) का विधान

होता है। यथा—अश्व+क्यङ+ति=अश्वस्यति, वृष+क्यङ+ति=वृषस्यति आदि। देसिल वअना मैथिली मे भी सस्कृत की वे ही क्यङन्त धातुएँ क्रमशः प्राकृत और अपभ्रश को पार करती हुई नामधातु के रूप मे अवतीर्ण हुई हैं। यथा—

जो जस 'बनिजए' लाभ तस पाबए
मूरुख मरहि गमार।
(भाग १, पद १३१)

यहाँ संस्कृत-क्यङन्त नामधातु 'वाणिज्य' क्रमशः प्राकृत और अपभ्रश को पार करता हुआ 'बनिज' के रूप मे देसिल वअना मैथिली मे अवतीर्ण हुआ, जिससे 'बनिजए' क्रिया की निष्पत्ति हुई।

(३) संयुक्त धातु—सस्कृत मे भी दो धातुओ के सयोग से अनेक क्रियापदो की निष्पत्ति होती है। जैसे—'एध्' और 'कृ' धातु के सयोग से 'एधाञ्चक्रे', 'एध्' और 'भू' धातु के सयोग से 'एधाम्बभूव', 'एध्' और 'अस' धातु के संयोग से 'एधामास' आदि क्रियाओ की निष्पत्ति होती है। संस्कृत के समान देसिल वअना मैथिली मे भी दो धातुओ के संयोग से क्रियाओ की निष्पत्ति होती है। यथा—

बाट जाइते केहु 'हलब ठेलि'।
अब ओहि बौरे बिनु मञे अकेलि॥
(भाग १, पद २५६)

यहाँ दो धातुओ के सयोग से 'ठेलि हलब' क्रिया की निष्पत्ति होती है।

(४) अनुकरणात्मक धातु—सस्कृत मे भी ध्वनि के अनुकरण पर क्रिया का निर्माण होता है। यह नामधातु का ही एक भेद है। यथा—'पटपटायते' आदि। देसिल वअना मैथिली में भी इस प्रकार के क्रियापद पाये जाते है। यथा—

घन 'घनघनए' घुघुर कत बाजए
हन-हन कर तुअ काता।
[न० गु० (हरगौरी-पदावली) पद २]

यहाँ 'घन' की—'काँसे के ताल'[1] की—ध्वनि 'घन-घन' के अनुकरण पर 'घनघनए' क्रिया की निष्पत्ति होती है।

काल—

सस्कृत के समान तत्समुद्भूत पालि और प्राकृत मे भी काल के तीन भेद ही मुख्य है—वर्त्तमान, भविष्यत् और भूत। अपभ्रश मे भी ये ही तीन भेद वर्त्तमान हैं। किन्तु, संस्कृत में

---

१. कांस्यतालादिकं घनम्।—अमरकोष।

जहाँ इनके लिए लट्, लिट, लुट्, लृट् आदि दस लकार हैं, वहाँ अपभ्रंश में केवल तीन लकार हैं। संस्कृत के समान अपभ्रंश में इन भेदो के—वर्त्तमान, भविष्यत् और भूत के—उपभेद नही किये गये हैं। हाँ, संस्कृत के समान आज्ञार्थक लोट् लकार का प्रयोग अपभ्रंश में भी होता है। इस प्रकार अपभ्रंश में चार लकार होते है—लट् (वर्त्तमान), लृट् (भविष्यत्), लोट् (आज्ञार्थक) और लुङ (भूत)। अपभ्रश की उत्तराधिकारिणी होने के कारण देसिल बअना मैथिली में भी तीन काल और चार लकार ही होते है। किञ्च, जिस प्रकार प्राकृत में भूतकाल के तिङन्त रूप नही होते, कृदन्त-रूप ही होते हैं, उसी प्रकार अपभ्रश में भी भूतकाल के तिङन्त रूप नही होते, कृदन्त रूप ही होते है। और, अपभ्रंश की उत्तराधिकारिणी होने के कारण देसिल बअना मैथिली में भी भूतकाल के तिङन्त रूप नही होते है, कृदन्त रूप ही होते है। नीचे देसिल बअना मैथिली के इन्ही चार लकारो के—लट्, लृट्, लोट् और लुङ के—ऊपर यत्किञ्चित् विचार प्रस्तुत किया जाता है।

वर्त्तमानकाल (लट् लकार)

अन्य पुरुष—देसिल बअना मैथिली मे वर्त्तमानकालिक अन्य पुरुष में लट् लकार के स्थान में पाँच विभक्तियों का विधान होता है—'ति', 'त', 'इ', 'ए' और 'थि'। यथा—

आरति दरसहुँ बोलि 'डराति।'
से सबे सुमरि जीवकाँ साति॥

(भाग १, पद ४०)

यहाँ 'डराति' में वर्त्तमानकालिक अन्य पुरुष मे लट् लकार के स्थान मे 'ति' विभक्ति का विधान हुआ है।

ञाखि निरर मुह चुअइ लार।
पथ के 'चलत' बउरा बिसम्भार॥

(भाग १, पद २५६)

यहाँ 'चलत' में वर्त्तमानकालिक अन्य पुरुष में लट् लकार के स्थान में 'त' विभक्ति का विधान हुआ है।

करें धरि केसपास 'पिअइ' अधर-रस
कतए मानिनि जन माने।

[भाग २ (रा० पु०), पद ६९]

यहाँ 'पिअइ' मे वर्त्तमानकालिक अन्य पुरुष मे लट् लकार के स्थान मे 'इ' विभक्ति का विधान हुआ है।

सुजन वचन हे जतने 'परिपालए'
कुलमति 'राखए' नारि।

(भाग १, पद ३७)

यहाँ 'परिपालए' और 'राखए' मे वर्त्तमानकालिक अन्य पुरुष मे लट् लकार के स्थान मे 'ए' विभक्ति का विधान हुआ है।

ए सखि पिआ मोर बड़ अगेआन।
'बोलथि' वदन तोर चान्द समान॥

[भाग २ (रा० पु०), पद ७९]

यहाँ 'बोलथि' मे वर्त्तमानकालिक अन्य पुरुष मे लट् लकार के स्थान मे 'थि' विभक्ति का विधान हुआ है।

कही-कही वर्त्तमानकालिक अन्य पुरुष मे लकार का लोप भी हो जाता है और निर्विभक्तिक धातुमात्र से वर्त्तमानकाल का बोध होता है। यथा—

नयन-सरोज दुहू 'बह' नीर।
काजर पखरि-पखरि 'पळ' चीर॥

(भाग १, पद ११६)

यहाँ 'वह' और 'पळ' के बाद वर्त्तमानकालिक अन्यपुरुष-विषयक लकार का लोप हो गया है। केवल 'वह' और 'पळ' धातु से वर्त्तमानकाल का बोध होता है।

मध्यमपुरुष—देसिल बअना मैथिली मे वर्त्तमानकालिक मध्यमपुरुष मे लट् लकार के स्थान मे दो विभक्तियो का विधान होता है—'सि' और 'ह'। यथा—

अघट घटन घटाबए 'चाहसि'
वचन 'बोलसि' हँसी।

(भाग १, पद २२०)

यहाँ 'चाहसि' और 'बोलसि' मे वर्त्तमानकालिक मध्यमपुरुष मे लट् लकार के स्थान मे 'सि' विभक्ति का विधान हुआ है।

जावे रहिअ तुअ लोचन आगे।
तावे 'बुझावह' दिढ अनुरागे॥

(भाग १, पद १३४)

यहाँ 'बुझावह' मे वर्त्तमानकालिक मध्यमपुरुष मे लट् लकार के स्थान मे 'ह' विभक्ति का विधान हुआ है।

उत्तमपुरुष—देसिल बअना मैथिली मे वर्त्तमानकालिक उत्तमपुरुष मे लट् लकार के स्थान मे एक ही विभक्ति का विधान होता है—'ओं'। यथा—

माधव, तुअ मुख दरसन लागी।
बेरि बेरि 'आवञो' उतर न 'पावञो'
भेलाहुँ विरह रस भागी॥

(भाग १, पद २२२)

यहाँ 'आवञो' और 'पावञो' में वर्त्तमानकालिक उत्तमपुरुष में लट् लकार के स्थान मे 'ञो' विभक्ति का विधान हुआ है।

प्रसंगवश यह ध्यातव्य है कि देसिल बअना मैथिली प्रारम्भ से ही संस्कृतोन्मुखी रही। इसके ऊपर संस्कृत का पूर्ण प्रभाव रहा। इसीलिए, इसकी कतिपय विभक्तियाँ तत्सम है और कतिपय तद्भव। वर्त्तमानकालिक उत्तमपुरुष की 'ञो' विभक्ति भी संस्कृत की सानुनासिक 'मिप्' विभक्ति का तद्भव रूप है। अनुबन्ध-रहित 'मिप्' विभक्ति का अर्थात्—'मि' का प्राकृत में 'मो' रूप होता है[1] और अपभ्रंश मे सानुनासिक 'उँ'।[2] अपभ्रंश की उत्तराधिकारिणी होने के कारण ही देसिल बअना मैथिली मे भी उपर्युक्त सानुनासिक 'उँ' 'ञो' के रूप में वर्त्तमान है। कविशेखराचार्य ज्योतिरीश ने भी अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'वर्णरत्नाकर' मे वर्त्तमानकालिक उत्तमपुरुष में लट् लकार के स्थान मे विभक्ति के रूप मे 'ञो' का ही व्यवहार किया है। प्राचीन पाण्डुलिपियो मे यत्र-तत्र 'ञो' के स्थान मे 'ओ' का प्रयोग भी देखा जाता है, किन्तु वह लेखक-प्रमाद है। मित्र-मजूमदार का ध्यान इस तथ्य की ओर नही गया। इसीलिए, उन्होने स्व-सम्पादित 'विद्यापतिर पदावली' मे सर्वत्र 'ञो' के स्थान मे 'ओ' कर दिया, जो सर्वथा अनुचित है।

भविष्यत्काल (लृट् लकार)—

अन्यपुरुष—देसिल बअना मैथिली में भविष्यत्कालिक अन्यपुरुष में लृट् लकार के स्थान में चार विभक्तियों का विधान होता है—'व', 'ति', 'त' और 'इह'। यथा—

माधव जनु होअ पेम पुराने।
नव अनुराग ओळ धरि 'राखब'
जे न विघट मोर माने॥

(भाग १, पद २३१)

यहाँ 'राखब' मे भविष्यत्कालिक अन्यपुरुष में लृट् लकार के स्थान मे 'व' विभक्ति का विधान हुआ है।

जिव जञो राखञो रहञो अगोरि।
पिबि जनु हलह 'लागति' मोरि चोरि॥

(भाग १, पद २३२)

---

१. तृतीयस्य मो-मु-माः।—प्राकृतव्याकरण : हेमचन्द्र, ८।३।१४४।
२. अन्त्यत्रयस्याद्यस्य उं।—वही, ८।४।३८५।

यहाँ 'लागति' मे भविष्यत्कालिक अन्यपुरुष में लृट् लकार के स्थान मे 'ति' विभक्ति का विधान हुआ है।

सुनि सिरिखण्ड तव ते मने गमन करु
'तेजत' विरहक तापे।

(भाग १, पद २२२)

यहाँ 'तेजत' मे भविष्यत्कालिक अन्यपुरुष मे लृट् लकार के स्थान मे 'त' विभक्ति का विधान हुआ है।

लखिमादेवि पति 'पुरिह' मनोरथ
'आविह' सिवसिंह राजा।

(भाग १, पद २३७)

यहाँ 'पुरिह' और 'आविह' मे भविष्यत्कालिक अन्यपुरुष मे लृट् लकार के स्थान मे 'इह' विभक्ति का विधान हुआ है।

मध्यमपुरुष—देसिल बअना मैथिली मे भविष्यत्कालिक मध्यमपुरुष मे लृट् लकार के स्थान मे केवल एक विभक्ति का विधान होता है—'व'। यथा—

'झाँपव' कुच 'दरसाओव' आध।
खने खने सुदृढ 'करव' निवि-बान्ध॥

(भाग १, पद ६३)

यहाँ 'झाँपव', 'दरसाओव' और 'करव' मे भविष्यत्कालिक मध्यमपुरुष मे लृट् लकार के स्थान मे 'व' विभक्ति का विधान हुआ है।

यहाँ यह ध्यातव्य है कि सम्मान्य व्यक्ति के लिए प्रयुक्त क्रियापद मे ही यह भविष्यत्कालिक मध्यमपुरुष-विषयक लृट्-लकार-स्थानीय 'व' विभक्ति अपने स्वरूप मे वर्त्तमान रहती है। निम्न व्यक्ति के लिए प्रयुक्त क्रियापद मे 'व' का 'वए' के रूप मे परिवर्त्तन हो जाता है। यथा—

परनिधि हरलए साहस तोर।
के जान कओन गति 'करवए' मोर॥

(भाग १, पद ६१)

दूती के प्रति नायिका की यह उक्ति है। अतएव 'व' का 'वए' के रूप मे परिवर्त्तन होने से 'करव' के स्थान मे 'करवए' का प्रयोग हुआ है।

किञ्च, सम्मान्य व्यक्ति के लिए प्रयुक्त क्रियापद मे भी आतिशय्य दरसाने के लिए 'व' विभक्ति का 'वे' के रूप मे परिवर्त्तन हो जाता है। यथा—

लोभ न 'करबे' आइति पाए।
बडेओ भुखल नहि दुइ करें खाए॥

(भाग १, पद ८१)

कृष्ण के प्रति दूती की यह उक्ति है। किन्तु आतिशय्य दरसाने के लिए 'ब' का 'बे' के रूप मे परिवर्त्तन होने से 'करब' के स्थान मे 'करबे' का प्रयोग हुआ है। इतना ही नही, कही-कही 'ब' विभक्ति का 'बह' के रूप मे भी परिवर्त्तन हो जाता है। यथा—

आगाँ तओ जमुन नरि से कइसे 'जएबह' तरि
आरति 'देबह' झाँपे।

(भाग १, पद १६३)

यहाँ 'ब' का 'बह' के रूप मे परिवर्त्तन होने से 'जाएब' और 'देब' के स्थान मे क्रमशः 'जएबह' तथा 'देबह' का प्रयोग हुआ है।

उत्तमपुरुष—देसिल बअना मैथिली मे भविष्यत्कालिक उत्तमपुरुष मे भी लृट् लकार के स्थान मे एक ही विभक्ति का विधान होता है—'ब'। यथा—

सुन्दरि कि 'कहब' कहइते लाज।
तोरे नामे परहु सओ बाज॥

(भाग १, पद १४४)

यहाँ 'कहब' मे भविष्यत्कालिक उत्तमपुरुष मे लृट् लकार के स्थान मे 'ब' विभक्ति का विधान हुआ है।

कही-कही आतिशय्य दरसाने के लिए भविष्यत्कालिक उत्तमपुरुष-विषयक 'ब' विभक्ति का 'इवो' के रूप मे भी परिवर्त्तन हो जाता है। यथा—

तञे ओठपातरि कि 'बोलिवो' तोहि।
बड कए अपथ चलओलए मोहि॥

(भाग १, पद ९७)

यहाँ आतिशय्य दरसाने के लिए 'ब' का 'इवो' के रूप मे परिवर्त्तन होने से 'बोलब' के स्थान मे 'बोलिवो' का प्रयोग हुआ है।

आज्ञार्थक (लोट् लकार)

अन्यपुरुष—देसिल बअना मैथिली मे आज्ञार्थक अन्यपुरुष मे लोट् लकार के स्थान मे तीन विभक्तियो का विधान होता है—'अ', 'ओ' और 'थु'। यथा—

माधव जनु 'होअ' पेम पुराने।
नव अनुराग ओळ धरि राखव
जे न विघट मोर माने॥

(भाग १, पद २३१)

यहाँ 'होअ' मे आज्ञार्थक अन्यपुरुष मे लोट् लकार के स्थान मे 'अ' विभक्ति का विधान हुआ है।

दुरहि 'रहओ' मोरि सेवा।
पहिल पढ़लोक उधारि न देवा॥

(भाग १, पद ६४)

यहाँ 'रहओ' मे आज्ञार्थक अन्यपुरुष मे लोट् लकार के स्थान मे 'ओ' विभक्ति का विधान हुआ है।

मोहि वरु अतनु अतनु कए 'छाडथु'
से सुखें 'भूजथु' राखे।

(भाग १, पद १७७)

यहाँ 'छाडथु' और 'भूजथु' मे आज्ञार्थक अन्यपुरुष मे लोट् लकार के स्थान मे 'थु' विभक्ति का विधान हुआ है। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि 'थु' विभक्त्यन्त क्रियापद का व्यवहार सम्मान्य व्यक्ति के लिए ही होता है।

कही-कही आज्ञार्थक अन्यपुरुष मे लकार का लोप भी हो जाता है और निर्विभक्तिक धातुमात्र से आज्ञारूप अर्थ का वोध होता है। यथा—

नागर राख नारि मन रङ्ग।
हठ कएले पहु 'हो' रसभङ्ग॥

(भाग १, पद २३५)

यहाँ 'हो' के वाद आज्ञार्थक अन्यपुरुष-विषयक लकार का लोप हो गया है। केवल 'हो' धातु से आज्ञारूप अर्थ का बोध होता है।

मध्यमपुरुष—देसिल वअना मैथिली मे आज्ञार्थक मध्यमपुरुष मे लोट् लकार के स्थान में चार विभक्तियो का विधान होता है—'सि', 'हि', 'ह' और 'हु'। यथा—

माधव कठिन हृदय परवासी।
तुअ पेअसि मओ देखलि वराकिनि
अवहु पलटि घर 'जासि'॥

(भाग १, पद १६५)

यहाँ 'जासी' मे आज्ञार्थक मध्यमपुरुष मे लोट् लकार के स्थान मे 'सि' विभक्ति का विधान हुआ है।

ए सखि तुरित 'कहहि' अवधारि।
जे किछु समदलि ते वरनारि॥

(भाग १, पद १७५)

यहाँ 'कहहि' मे आज्ञार्थक मध्यमपुरुष मे लोट् लकार के स्थान मे 'हि' विभक्ति का विधान हुआ है।

एहि युग तिनिहु विमल जस 'लेह'।
कुचयुग शम्भु शरण मोहि 'देह'॥

(भाग १, पद २०४)

यहाँ 'लेह' और 'देह' में आज्ञार्थक मध्यमपुरुष मे लोट् लकार के स्थान मे 'ह' विभक्ति का विधान हुआ है।

माधव आबे साजिअ 'दहु' बाला।
तसु सैसवे तोहें जे सन्तापलि
से सरिआउति बाला॥

(भाग १, पद २२८)

यहाँ 'दहु' मे आज्ञार्थक मध्यमपुरुष में लोट् लकार के स्थान में 'हु' विभक्ति का विधान हुआ है।

कही-कही आतिशय्य दरसाने के लिए आज्ञार्थक मध्यमपुरुष-विषयक 'ह' विभक्ति का 'हे' के रूप मे भी परिवर्त्तन हो जाता है। यथा—

ए सखि ए सखि 'देहे' उपदेस।
एक पुर कान्ह बस मो पति विदेस॥

(भाग १, पद १८०)

यहाँ आतिशय्य दरसाने के लिए 'ह' का 'हे' के रूप मे परिवर्त्तन होने से 'देह' के स्थान में 'देहे' का प्रयोग हुआ है।

कही-कही आज्ञार्थक मध्यमपुरुष मे लकार का लोप भी हो जाता है और निर्विभक्तिक धातुमात्र से आज्ञारूप अर्थ का बोध होता है। यथा—

'सुन' 'सुन' सुन्दरि हित उपदेश।
सपनेहु जनु हो बिपदक लेश॥

(भाग १, पद २१५)

यहाँ 'सुन' के वाद आज्ञार्थक मध्यमपुरुष-विषयक लकार का लोप हो गया है। केवल 'सुन' धातु से आज्ञारूप अर्थ का वोध होता है।

उत्तमपुरुष—देसिल वअना मैथिली मे आज्ञार्थक उत्तमपुरुष में लोट् लकार के स्थान मे केवल एक विभक्ति का विधान होता है—'ऊ'। यथा—

चल देखने 'जाऊ' ऋतु वसन्त।
जहाँ कुन्द कुसुम केतकि हसन्त॥

(भाग १, पद २६१)

यहाँ 'जाऊ' मे आज्ञार्थक उत्तमपुरुष में लोट् लकार के स्थान मे 'ऊ' विभक्ति का विधान हुआ है।

कृदन्त-विचार

भूतकालिक कृदन्त—यह पहले कहा जा चुका है कि जिस प्रकार प्राकृत मे भूतकाल के तिङन्त-रूप नही होते, कृदन्त-रूप ही होते है, उसी प्रकार अपभ्रंश मे भी भूतकाल के तिङन्त-रूप नही होते, कृदन्त-रूप ही होते है। और, अपभ्रश की उत्तराधिकारिणी होने के कारण देसिल वअना मैथिली मे भी भूतकाल के तिङन्त-रूप नही होते, कृदन्त-रूप ही होते हैं। इसीलिए वर्त्तमानकालिक, भविष्यत्कालिक और आज्ञार्थक तिङन्त-रूप के ऊपर विचार करने के वाद भूतकालिक कृदन्त-रूप के ऊपर विचार किया जाता है।

सस्कृत मे दो प्रकार की धातुएँ होती हैं—(१) सेट् और (२) अनिट् तथा भूतकालिक क्रिया वनाने के लिए सव से प्रशस्त कृत्प्रत्यय है—'क्त'। यदि सेट् धातु के वाद 'क्त' प्रत्यय होता है, तो प्रत्यय से पहले एक 'इ' जोडा जाता है, जैसे—पठितम्, पतितम्, चलितम् आदि और यदि अनिट् धातु के वाद 'क्त' प्रत्यय होता है तो प्रत्यय से पहले 'इ' नही जोडा जाता है; जैसे—कृतम्, गतम्, जितम् आदि। प्राकृत-युग मे ये 'इत' और 'त' क्रमश. 'इअ' तथा 'अ' के रूप मे परिवर्त्तित हो गये, जैसे—पठितम्=पढिअ, कृतम्=किअ आदि। अपभ्रश (अवहट्ठ) मे भी ये दोनो—'इअ' और 'अ' वर्त्तमान रहे। विद्यापति ने 'कीर्त्तिलता' और 'कीर्त्तिपताका' मे वार-वार इन दोनो का व्यवहार किया है। यथा—

दान गरुअ गएनेस जेन्ने जाचक जन 'रञ्जिअ'।
मान गरुअ गएनेस जेन्ने रिउँ वड्डिम 'भञ्जिअ'॥[1]

यहाँ कवि ने 'रञ्जित' और 'भञ्जित' के लिए क्रमश 'रञ्जिअ' तथा 'भञ्जिअ' का प्रयोग किया है, जिनमे 'क्त' प्रत्यय के स्थान मे 'इअ' का व्यवहार हुआ है। और—

---

१. कीर्तिलता : डॉ० वाबूराम सक्सेना, पृ० १२।

मारन्त राए रण रोल पड़ मेइनि हाहा सद्द 'हुअ'।[1]

यहाँ कवि ने 'भूतः' के लिए 'हुअ' का प्रयोग किया है, जिसमे 'क्त' प्रत्यय के स्थान में 'अ' का व्यवहार हुआ है।

भक्ष्य-भोज सेवक नहि 'बञ्चिअ'।
भोग-दब्ब भण्डार न 'सञ्चिअ'॥[2]

यहाँ कवि ने 'वञ्चित.' और 'सञ्चितम्' के लिए क्रमश. 'बञ्चिअ' तथा 'सञ्चिअ' का प्रयोग किया है, जिनमें 'क्त' प्रत्यय के स्थान मे 'इअ' का व्यवहार हुआ है। किन्तु अपभ्रंश (अवहट्ठ)-काल मे ही 'क्त'-प्रत्यय के स्थान मे 'ल' का व्यवहार भी आरम्भ हो गया था। यथा—

रज्जलुद्ध असलान बुद्धि-बिक्कम-बले 'हारल'।
पास बइसि बिसवासि राए गएनेसर 'मारल'॥[3]

यहाँ कवि ने 'हारित.' और 'मारित' के लिए क्रमश. 'हारल' तथा 'मारल' का प्रयोग किया है, जिनमे 'क्त'-प्रत्यय के स्थान मे 'इअ' एव 'अ' का नही, 'ल' का व्यवहार हुआ है।

इस प्रकार अपभ्रश (अवहट्ठ) मे क्त-प्रत्यय के स्थान में 'इअ', 'अ' और 'ल'—तीनो का प्रयोग होता है। परन्तु अपभ्रंश की उत्तराधिकारिणी होने पर भी देसिल बअना मैथिली मे 'क्त'-प्रत्यय के स्थान मे 'इअ' और 'अ' का नही, केवल 'ल' का ही प्रयोग होता है। यथा—

आकुल चिकुर 'बेढल' मुख सोभ।
राहु 'कएल' ससिमण्डल लोभ॥

(भाग १, पद ९३)

यहाँ कवि ने 'वेष्टितम्' और 'कृत' के लिए क्रमश 'बेढल' तथा 'कएल' का प्रयोग किया है जिनमे 'क्त'-प्रत्यय के स्थान मे 'इअ' एवं 'अ' का नही, 'ल' का व्यवहार हुआ है।

यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि सस्कृत मे तिङन्त क्रियापद की निष्पत्ति मे पुरुषान्तर के कारण विभक्तियो मे भी अन्तर हो जाता है। जैसे अन्यपुरुष मे 'तिप्', 'तस्', 'झि' अथवा 'त', 'आताम्', 'झ'; मध्यमपुरुष में 'सिप्', 'थस्', 'थ' अथवा 'थास्', 'आथाम्', 'ध्वम्' और उत्तम-पुरुष मे 'मिप्', 'वस', 'मस्' अथवा 'इट्', 'वहिङ', 'महिङ'। किन्तु, कृदन्त क्रियापद की निष्पत्ति मे ऐसी विप्रतिपत्ति नही है। वहाँ पुरुषान्तर के कारण कोई अन्तर नही होता है—सर्वत्र कृत्प्रत्यय ही होता है। जैसे—'तेन कृतम्' (अन्यपुरुष), 'त्वया कृतम्' (मध्यमपुरुष) और 'मया

---

१. कीर्त्तिलता : डॉ० बाबूराम सक्सेना, पृ० १६।
२. कीर्त्तिपताका : म० म० डॉ० उमेश मिश्र, पृ० ६।
३. कीर्त्तिलता : डॉ० बाबूराम सक्सेना, पृ० १६।

कृतम्' (उत्तमपुरुष)—इनमें पुरुषान्तर के कारण कोई अन्तर नही हुआ है—समान-रूप से तीनो पुरुष मे 'कृ' धातु से क्त प्रत्यय हुआ है। इसी प्रकार देसिल बअना मैथिली मे भी कृदन्त-क्रियापद की निष्पत्ति मे पुरुषान्तर के कारण कोई अन्तर नही होता है—सर्वत्र एक समान कृत्प्रत्यय होता है। यथा—

जौवन रतन 'अछल' दिन चारि।
तावे से आदर 'कएल' मुरारि॥

(भाग १, पद १३३)

यहाँ 'अछल' और 'कएल' में अन्यपुरुष मे कृत्प्रत्यय का—'ल' का विधान हुआ है।

तोरा अधर अमिञे लेल बास।
भल जन 'नेओतल' दए बिसवास॥

(भाग १, पद ११५)

यहाँ 'नेओतल' मे मध्यमपुरुष मे कृत्प्रत्यय का—'ल' का विधान हुआ है।

सब गुण आगर सबतह सुनिअ
ते मोञ 'लाओल' नेहे।
फल-कारणे तरुअर 'अवलम्बल'
छाहरि भेल सन्देहे॥

(भाग १, पद २२२)

यहाँ 'लाओल' और 'अवलम्बल' मे उत्तमपुरुष मे कृत्प्रत्यय का—'ल' का विधान हुआ है।

एक बात और। सस्कृत मे कर्म मे 'क्त' प्रत्यय करने से कर्म के अनुसार और कर्त्ता मे 'क्त' प्रत्यय करने से कर्त्ता के अनुसार क्रियापद से भी लिङ्ग का विधान होता है। जैसे—'रामेण रावणो हत.' मे कर्म के अनुसार क्रियापद 'हत' पुलिङ्ग है और 'वृद्धा काशी गता' में कर्त्ता के अनुसार कियापद 'गता' स्त्रीलिङ्ग है। सो, सस्कृतोन्मुखी होने के कारण देसिल बअना मैथिली मे भी सस्कृत का यह नियम लागू है, अर्थात् देसिल बअना मैथिली मे भी कर्म मे 'ल' प्रत्यय करने से कर्म के अनुसार और कर्त्ता मे 'ल' प्रत्यय करने से कर्त्ता के अनुसार ही क्रियापद से भी लिङ्ग का विधान होता है। यथा—

फूजलि नीवी आनि 'मेराउलि'।
जनि सुरसरि उतरे 'धाउलि'॥

(भाग १, पद १६०)

यहाँ 'मेराउलि' मे कर्म के अनुसार अर्थात्—'नीवी' के अनुसार और 'धाउलि' मे कर्त्ता के अनुसार अर्थात्—'सुरसरि' के अनुसार लिङ्ग का विधान हुआ है।

किञ्च, देसिल बअना मैथिली का यह 'ल' प्रत्यय सदा एकरूप में नही रहता है। पात्र-भेद से उसके रूप मे भी भेद हो जाता है। निम्नलिखित उदाहरणो से यह रूप-भेद स्पष्ट हो जायगा।

सम्माननीय व्यक्ति के लिए प्रयुक्त अन्यपुरुष-विषयक क्रियापद मे उपर्युक्त 'ल' प्रत्यय 'लन्हि' के रूप मे परिणत हो जाता है। यथा—

अमृत सिचलि सनि 'बोललन्हि' बानी।
मन पतिआएल मधुरपति जानी॥

(भाग १, पद १६९)

यहाँ 'बोललन्हि' मे उपर्युक्त 'ल' प्रत्यय 'लन्हि' के रूप मे परिणत हो गया है।

निम्न व्यक्ति के लिए प्रयुक्त अन्यपुरुष-विपयक क्रियापद मे उपर्युक्त 'ल' प्रत्यय 'लक' के रूप मे परिणत हो जाता है। यथा—

माधव भेटलि पसाहनि बेरी।
आदर 'हरलक' पुछियो न 'पुछलक'
चतुर सखीजन मेरी॥

(भाग १, पद २४१)

यहाँ 'हरलक' और 'पुछलक' मे उपर्युक्त 'ल' प्रत्यय 'लक' के रूप मे परिणत हो गया है।

वक्ता और श्रोता मे साम्य रहने पर मध्यमपुरुष-विषयक क्रियापद मे उपर्युक्त 'ल' प्रत्यय 'लह' के रूप मे परिणत हो जाता है। यथा—

सबतह भेंटी 'कएलह' बोल।
दुरजन वचने 'बजओलह' ढोल॥

(भाग १, पद ५७)

यह एक सखी के प्रति दूसरी सखी की उक्ति है। यहाँ वक्ता और श्रोता—दोनो मे साम्य है। अतएव, 'कएलह' और 'वजओलह' मे उपर्युक्त 'ल' प्रत्यय 'लह' के रूप मे परिणत हो गया है।

उत्तमपुरुष-विपयक क्रियापद मे उपर्युक्त 'ल' प्रत्यय 'लहुँ' के रूप मे परिणत हो जाता है। यथा—

आगू दीप पाछु गेलि लाज।
पथेँ चललेँ 'बिसरलहुँ' न काज॥

[भाग २ (रा० पु०), पद ४३]

यहाँ 'विसरलहुँ' मे उपर्युक्त 'ल' प्रत्यय 'लहुँ' के रूप मे परिणत हो गया है।

कही-कही उत्तमपुरुष-विषयक क्रियापद मे उपर्युक्त 'ल' प्रत्यय 'लुहुँ' के रूप मे भी परिणत हो जाता है। यथा—

न घर 'गेलुहुँ' न पर 'भेलुहुँ'
न पुर हृदअ साध।
आधहि पथ ससी हँसि ऊगल
तेँ भेल गमन बाध॥

[भाग २ (रा० पु०), पद ९]

यहाँ 'गेलुहुँ' और 'भेलुहुँ' मे उपर्युक्त 'ल' प्रत्यय 'लुहुँ' के रूप मे परिणत हो गया है।

स्त्रीलिङ्ग कर्त्ता रहने पर कही-कहीं उत्तमपुरुष-विषयक क्रियापद मे उपयुक्त 'ल' प्रत्यय 'लाहुँ' और 'लिहुँ' के रूप मे भी परिणत हो जाता है। यथा—

हृदय कुसुम सम मधुरिम बानी।
निअर 'अएलाहुँ' तुअ सुपुरुष जानी॥

(भाग १, पद १४३)

यहाँ 'अएलाहुँ' मे उपर्युक्त 'ल' प्रत्यय 'लाहुँ' के रूप मे परिणत हो गया। और—

केओ कर साँसक आस।
मोज 'धउलिहुँ' तुअ पास॥

(भाग १, पद ५६)

यहाँ 'धउलिहुँ' मे उपर्युक्त 'ल' प्रत्यय 'लिहुँ' के रूप मे परिणत हो गया है।

वर्त्तमानकालिक कृदन्त— सस्कृत मे परस्मैपदी धातु के बाद लट् लकार के स्थान मे शतृ (अत्) और आत्मनेपदी धातु के बाद लट् लकार के स्थान मे शानच् (आन) का विधान होता है और गच्छन्, जायमान आदि की निष्पत्ति होती है। इन्हे ही वर्त्तमान-कालिक कृदन्त कहते है। प्राकृत में परस्मैपदी और आत्मनेपदी—दोनो प्रकार की धातुओ के बाद लट् लकार के स्थान मे 'अत' का विधान होता है।[1] अपभ्रंश में भी लट् लकार के स्थान मे 'अन्त' का ही विधान होता है। विद्यापति ने भी अवहट्ठ मे वर्त्तमानकालिक कृदन्त मे लट् लकार के स्थान मे 'अन्त' का ही व्यवहार किया है। यथा—

इअ रहहि 'गणन्ता' विरुद 'भणन्ता' भट्टा ठट्टा पेक्खीआ।
'आवन्ता' 'जन्ता' कज्ज 'करन्ता' मानव कवणे लेक्खीआ॥[2]

उपर्युक्त पद मे 'गणन्ता', 'भणन्ता', 'आवन्ता', 'जन्ता' और 'करन्ता' वर्त्तमानकालिक कृदन्त हैं, जिनमें लट् लकार के स्थान मे 'अन्त' का विधान हुआ है। किन्तु, अपभ्रंश की उत्तरा-

१. इण्ट्रोडक्शन टू प्राकृत, पृ० ४८।
२. कीर्त्तिलता (डॉ० बाबूराम सक्सेना), पृ० ४८।

धिकारिणी होने पर भी देसिल वअना मैथिली में वर्त्तमानकालिक कृदन्त में 'अन्त' का नही, 'इते' का प्रयोग होता है। यथा—

निते से आबए निते से जाए।
'हेरइते' 'हँसइते' से न लजाए॥

(भाग १, पद ६८)

यहाँ 'हेरइते' और 'हँसइते' मे वर्त्तमानकालिक 'इते' का प्रयोग हुआ है।

जहाँ-तहाँ वर्त्तमानकालिक कृदन्त मे सानुनासिक 'इतेँ' का भी प्रयोग मिलता है। यथा—

दूती 'बोलइतेँ' कान्ह लजाएल
विद्यापति कवि भाने।

[भाग २ (रा० पु०), पद ४]

किन्तु, यह सानुनासिक 'इतेँ' वर्त्तमानकालिक कृत्प्रत्यय नही है। कृत्प्रत्यय 'इते' मात्र है। अनुनासिक तो सप्तमी विभक्ति है, जिसका विचार कारक-प्रकरण मे हो चुका है।

पूर्वकालिक कृदन्त—संस्कृत मे पूर्वकालिक क्रिया बनाने के लिए धातु से 'क्त्वा' प्रत्यय होता है। जैसे—गत्वा, कृत्वा आदि। किन्तु धातु से पहले यदि उपसर्ग रहता है तो 'क्त्वा' के स्थान मे 'ल्यप्' हो जाता है। जैसे—आगम्य, संस्कृत्य आदि। प्राकृत मे 'क्त्वा' के स्थान मे तुम्, अत्, तूण और तुआण—ये चार आदेश होते है।[1] अपभ्रंश मे भी 'क्त्वा' के स्थान मे चार आदेश होते है—इ, इउ, इवि और अवि।[2] पूर्वकालिक क्रिया बनाने के लिए संस्कृत से लेकर अपभ्रंश तक यही परम्परा है।

अपभ्रंश की उत्तराधिकारिणी होने पर भी देसिल वअना मैथिली मे पूर्वकालिक क्रिया बनाने के लिए दो ही प्रत्यय है—'इ' और 'ए'। यथा—

भल कए पुछलए 'घुरि' संसार।
तर सूतेँ 'गढ़ि' काट कुम्भार॥

(भाग १, पद १०२)

यहाँ पूर्वकालिक क्रिया बनाने के लिए 'घुरि' और 'गढ़ि' मे 'इ' प्रत्यय का विधान हुआ है।

एक बात और। उपर्युक्त 'इ' प्रत्यय सर्वत्र अपने रूप मे ही वर्त्तमान नही रहता है। जहाँ-तहाँ उसके रूप मे यत्किञ्चित् परिवर्त्तन भी हो जाता है। यथा—

अवधि 'बहिए' हे अधिक दिन गेल।
बालभु पररत परदेस भेल॥

(भाग १, पद १२२)

---

१. क्त्वस्तुमत्तूण: तुआणाः।—प्राकृतव्याकरण हेमचन्द्र, ८।२।१४६।
२. क्त्व इ-इउ-इवि-अवयः।—वही, ८।४।४३९।

यहाँ आतिशय्य दरसाने के लिए पूर्वकालिक क्रिया का 'इ' प्रत्यय 'इए' के रूप मे परिवर्तित हो गया और 'बहिए' की निष्पत्ति है हुई। और—

जल 'दए' जलब जीव मोर राख।
देले सहस अवसर हो लाख॥

(भाग १, पद १४९)

यहाँ पूर्वकालिक क्रिया बनाने के लिए 'दए' मे 'ए' प्रत्यय का विधान हुआ है।

आज्ञार्थक कृदन्त—सस्कृत मे आज्ञार्थक क्रिया बनाने के लिए लोट् लकार से अतिरिक्त तव्यत्, तव्य, अनीय आदि अनेक प्रत्यय है, जिनसे कर्त्तव्यम्, करणीयम्, आदि की निष्पत्ति होती है। इन्हे ही आज्ञार्थक कृदन्त कहते है। प्राकृत मे आज्ञार्थक कृदन्त के लिए एकमात्र प्रत्यय तव्व (तव्य) है। अपभ्रश मे 'तव्य' के स्थान मे 'इएव्वउँ', 'एव्वउँ' और 'एव' आदेश होते हैं।[1] देसिल बअना मैथिली मे अपभ्रश का वही 'एव' घिस-पिटकर 'अव' के रूप मे परिणत हो गया है। यथा—

अलुरि 'धरब' हमर उपदेस।
बिरडा नाम जते डुरे सुनिअ
हठे 'छाडब' से देस॥

(भाग १, पद ३६)

यहाँ आज्ञार्थक 'धरब' और 'छाड़ब' मे अपभ्रश का वही 'एव' घिस-पिटकर 'अव' के रूप मे वर्त्तमान है।

किञ्च, आकारान्त और ओकारान्त धातु के बाद अपभ्रंश का तव्य-स्थानीय 'एव' देसिल बअना मैथिली मे अपने मूलरूप मे भी वर्त्तमान रहता है। विस्तार-भय से उदाहरण नही दिये जा रहे है।

प्रेरणार्थक क्रियाएँ

जिस प्रकार सस्कृत मे प्रेरणार्थक क्रिया बनाने के लिए धातु से 'णिच्' प्रत्यय होता है और णिजन्त धातु से विभक्ति का विधान होता है, उसी प्रकार देसिल बअना मैथिली मे भी प्रेरणार्थक क्रिया बनाने के लिए धातु से 'आव' तथा 'आओ' प्रत्यय होते है एव बाद मे उनसे विभक्ति का विधान होता है। यथा—

जावे रहिअ तुअ लोचन आगे।
तावे 'बुझावह' दिढ अनुरागे॥

(भाग १, पद १३४)

---

१. तव्यस्य इएव्वउं-एव्वउं-एवाः।—प्राकृतव्याकरण : हेमचन्द्र, ८।४।४३८।

यहाँ प्रेरणार्थक क्रिया बनाने के लिए 'बुझावह' मे 'बुझ' (बुध्-सं०) घातु से 'आव' प्रत्यय हुआ है और 'आव' प्रत्ययान्त 'बुझाब' से वर्त्तमान-कालिक मध्यमपुरुष-विषयक 'ह' विभक्ति का विधान हुआ है। और—

आसा दए अनुराग 'वढाओब'
लङ्घिम अङ्ग विभङ्गे।

(भाग १, पद २०९)

यहाँ प्रेरणार्थक क्रिया बनाने के लिए 'वढाओब' मे 'वढ' (वृध्–सं०) घातु से 'आओ' प्रत्यय हुआ है और 'आओ'–प्रत्ययान्त 'वढाओ' से भविष्यत्कालिक मध्यमपुरुष-विषयक 'ब' विभक्ति का विधान हुआ है।

किञ्च, जिस प्रकार संस्कृत मे प्रेरणार्थक णिजन्त घातु से कृत्प्रत्य होता है, उसी प्रकार देसिल बअना मैथिली में भी प्रेरणार्थक 'आव' और 'आओ' प्रत्यय करने के बाद घातु से कृत्प्रत्यय होता है। यथा—

कत बोलब मञे कत जे 'सिखाउलि'
कत पळलाहुँ मञे पाओ।

(भाग १, पद २१७)

यहाँ 'सिखाउलि' मे सिख (शिष्–स०) घातु से प्रेरणार्थक 'आव' प्रत्यय हुआ है और 'आव'-प्रत्ययान्त 'सिखाव' से भूतकालिक कृत्प्रत्यय 'ल' का विधान हुआ है। किञ्च, देसिल बअना मैथिली अपभ्रश-विनिसृत है। इसलिए, उसमे अपभ्रंश के कतिपय नियम भी वर्त्तमान है। अतएव 'सिखाव' मे 'व' के स्थान मे अपभ्रश के अनुसार 'बाहुलकात्' सम्प्रसारण 'उ' हुआ और 'सिखाउलि' की निष्पत्ति हुई। और—

बड सुपुरुब बोलि सिनेह 'बढाओल'
दिने दिने होइति बडाई।

(भाग १, पद २२३)

यहाँ 'वढाओल' मे 'बढ' (वृध्–सं०) घातु से प्रेरणार्थक 'आओ' प्रत्यय हुआ है और 'आओ'-प्रत्ययान्त 'वढाओ' से भूतकालिक कृत्प्रत्यय 'ल' का विधान हुआ है।

कर्मवाच्य और भाववाच्य की क्रियाएँ

सस्कृत मे सकर्मक घातु से कर्मवाच्य मे और अकर्मक घातु से भाववाच्य मे तिङन्त क्रिया बनाने के लिए 'यक्' प्रत्यय होता है तथा यगन्त घातु से आत्मनेपद की विभक्तियाँ होती हैं। जैसे—गम्यते, भूयते आदि। पालि में कर्मवाच्य और भाववाच्य मे आत्मनेपद की विभक्तियाँ

तो होती ही है, परस्मैपद की विभक्तियाँ भी होती हैं। अतएव, पालि मे 'वुध्' धातु के कर्मवाच्य मे 'वुज्झते' और 'वुज्झति'—दोनो रूप होते है।

किन्तु, कर्मवाच्य और भाववाच्य मे प्राकृत तथा अपभ्रंश की परिपाटी सस्कृत एव पालि से भिन्न है। उनमे 'यक्' के स्थान मे 'ईअ' और 'इज्ज' आदेश होते हैं[1] तथा परस्मैपद की विभक्तियाँ होती हैं। जैसे—'हस्' धातु के 'हसीअइ' और 'हसिज्जइ' दोनो रूप होते हैं। विद्यापति की 'कीर्त्तिलता' और 'कीर्त्तिपताका' मे भी यत्किञ्चित् परिवर्त्तन के साथ इन दोनो प्रत्ययो का—'ईअ' तथा 'इज्ज' का प्रयोग देखा जाता है। यथा—

ता पाछे आवत्त हुअ हिन्दू दल गमनेन।
राआ गणए न 'पारिअइ' राउत लेक्खइ केण॥[2]

यहाँ 'पारिअइ' मे अपभ्रश का वही कर्मवाच्य-विषयक 'ईअ', 'इअ' के रूप मे वर्त्तमान है। और—

तसु परवोधे माए मज्झु वुअ न 'धरिज्जिइ' सोग।
विपइ न आवइ तासु घर जसु अनुरत्तेओ लोग॥[3]

यहाँ 'धरिज्जिइ' मे अपभ्रश का वही कर्मवाच्य-विषयक 'इज्ज' वर्त्तमान है।

किन्तु, देसिल वअना मैथिली मे 'इज्ज' का नही, केवल 'ईअ' का प्रयोग होता है। इतना ही नही, 'ईअ' मे 'ई' का ह्रस्व और उसके वाद की विभक्ति का लोप भी हो जाता है। यथा—

सब फुल परिमल सब मकरन्द।
अनुभवे विनु न 'वुझिअ' भल-मन्द॥

(भाग १, पद १९२)

यहाँ 'वुझिअ' मे अपभ्रंग का वही कर्मवाच्य-विषयक 'ईअ' 'इअ' के रूप मे वर्त्तमान है और उसके वाद की विभक्ति का लोप हो गया है। और—

कि मोरा चान्दने की अरविन्दे।
नेह विसर जओ 'सूतिअ' निन्दे॥

(भाग १, पद १८७)

यहाँ 'सूतिअ' मे अपभ्रग का वही भाववाच्य-विषयक 'ईअ' 'इअ' के रूप मे वर्त्तमान है और उसके वाद की विभक्ति का लोप हो गया है।

---

१. यक ईअ-इज्जौ।—प्राकृतप्रकाश : वररुचि, ७।८।
२. कोर्त्तिलता : डॉ० वावूराम सक्सेना, पृ० ९४।
३. वही, पृ० ७४।

एक बात और। देसिल बअना मैथिली में जहाँ-तहाँ अपभ्रंश का 'ईअ' अपने मूलरूप मे भी वर्त्तमान रहता है, अर्थात् तदन्तर्गत दीर्घ 'ई' के स्थान मे ह्रस्व 'इ' का विधान नही होता। यथा—

करहुँ कुसुम कन्दुक 'करीअ'।
भरि कामिनि मानिनि मान 'लीअ'॥
[भाग २ (रा० पु०), पद १४]

यहाँ 'करीअ' और 'लीअ' मे अपभ्रंश का 'ईअ' अपने मूलरूप मे वर्त्तमान है अर्थात्—तदन्तर्गत दीर्घ 'ई' के स्थान मे ह्रस्व 'इ' का विधान नही हुआ है।

नामधातु-विचार

जब किसी नाम अर्थात् संज्ञा का व्यवहार धातु के रूप मे होता है, तब उसे 'नामधातु' कहते है। संस्कृत में क्यच् (य), क्यङ (य), काम्यच् (काम्य), णिच् (इ) और क्विप् (०) प्रत्यय करके संज्ञा को धातु के रूप मे परिवर्त्तित किया जाता है। जैसे—क्यच्=पुत्रीयति, क्यङ=पुत्रायते, काम्यच्=पुत्रकाम्यति, णिच्=पुत्रयति और क्विप्=पुत्रति।

पालि मे 'आय्', 'ईय्' और 'अय्' प्रत्यय करके संज्ञा को धातु के रूप मे परिवर्त्तित किया जाता है। जैसे—आय्=पव्वतायति, ईय=पुत्तीयति और अय्=प्रमाणयति।[1]

प्राकृत मे एकमात्र 'आय्' प्रत्यय करके संज्ञा को धातु के रूप मे परिवर्त्तित किया जाता है। 'आय्' मे भी 'य्' का लोप हो जाता है। जैसे—गुरु=आय्=गुरुआइ=गुरुआअइ।[2]

अपभ्रंश का उद्गम प्राकृत से हुआ है। अतएव, प्राकृत के समान ही अपभ्रंश मे भी एकमात्र 'आय्' प्रत्यय करके संज्ञा को धातु के रूप मे परिवर्त्तित किया जाता है। विद्यापति की 'कीर्त्तिलता और 'कीर्त्तिपताका' मे भी इसके अनेक उदाहरण है। यथा—

जमण खाइ ले भाँग माँग 'रिसिआइ' खाण है।[3]

यहाँ 'रिस' से 'आय्' प्रत्यय करके उसे धातु बनाया गया है, जिसका वर्त्तमानकालिक रूप 'रिसिआइ' है।

देसिल बअना मैथिली मे भी यत्र-तत्र 'आय्' प्रत्यय करके नाम को—संज्ञा को—धातु बनाया जाता है। यथा—

---

१. पाली-प्रकाश, पृ० २३२।
२. क्यङोर्यलुक् ।—प्राकृतव्याकरण : हेमचन्द्र, ८।३।१३८।
३. कीर्त्तिलता : डॉ० बाबूराम सक्सेना, पृ० ४०।

कुहु भरसे पय पद आरोपल,
आए 'तुलाएल' पञ्चदशी।

(भाग १, पद २३)

यहाँ परिमाणार्थक 'तुला' शब्द से 'आय्' प्रत्यय करके उसे धातु बनाया गया है, जिसका भूतकालिक रूप 'तुलाएल' है।

यह पहले कहा जा चुका है कि मिथिला की भाषा पर—'चाहे वह प्राकृत हो अथवा अपभ्रंश—संस्कृत का पूरा प्रभाव रहा।' किञ्च, कार्णाट-साम्राज्य के समय मे, जब कि मिथिला मे सस्कृत-विद्या का प्रचार जोरो से प्रारम्भ हुआ, तब वहाँ की भाषा पर—देसिल बअना मैथिली पर—सस्कृत का पूरा प्रभाव पडा। इसीलिए, देसिल बअना मैथिली मे नामधातु बनाने के लिए प्राकृत के 'आय्' प्रत्यय से अधिक संस्कृत के 'क्विप्' प्रत्यय का व्यवहार हुआ है। यथा—

विघटलि नीवी करें धर जान्ति।
'अंकुरल' मदन धरए कत भान्ति॥

(भाग १, पद २३६)

यहाँ 'अंकुर' शब्द से 'क्विप्' प्रत्यय हुआ है और उसका सर्वापहार—लोप—करके 'अंकुर' को धातु बनाया गया है, जिससे भूतकालिक 'ल' प्रत्यय का विधान कर के 'अंकुरल' की निष्पत्ति हुई है। और—

जो जस 'बनिजए' लाभ तस पावए
मूरुख मरहि गमार।

(भाग १, पद १३१)

यहाँ 'बनिज' (वाणिज्य–सं०) शब्द से 'क्विप्' प्रत्यय हुआ है और उसका सर्वापहार—लोप—करके 'बनिज' को धातु बनाया गया है, जिससे वर्त्तमानकालिक 'ए' प्रत्यय का विधान करके 'बनिजए' की निष्पत्ति हुई है।

संयुक्त क्रियापद

कुछ कृदन्त क्रियापद तिङन्त क्रियापद की अपेक्षा रखते है। विना तिङन्त क्रियापद के उनके अर्थ का पर्यवसान नही होता। ऐसे ही क्रियापद को संयुक्त क्रियापद कहते हैं। संस्कृत में भी तुमुन्-प्रत्ययान्त कृदन्त क्रियापद के अर्थ का पर्यवसान विना तिङन्त क्रियापद के सान्निध्य से नही होता है। पालि, प्राकृत और अपभ्रंश का भी यही हाल है। संस्कृत-समुद्भूत अन्य भारतीय भाषाओ मे भी संयुक्त क्रियापद हैं। देसिल बअना मैथिली भी संयुक्त क्रियापद से रिक्त नही है। इसमें भी अनेक संयुक्त क्रियापद हैं। यथा—

कहब पथिक पिआ मन दए रे
जउवन बलें 'चलि जाए'।

(भाग १, पद २५)

यहाँ 'चलि' और 'जाए'—दोनों गत्यर्थक हैं; किन्तु दोनों के संयोग से एक विशिष्ट अर्थ का बोध होता है, जो कि उन दोनो मे किसी एक से नही हो सकता है। और—

सात पाँच घर तन्हि 'सजि देल'।
पिआ देसान्तर आन्तर भेल॥

(भाग १, पद ७३)

यहाँ 'सजि' और 'देल'—दोनो भिन्नार्थक हैं, किन्तु दोनो के सयोग से एक विशिष्ट अर्थ का बोध होता है, जो कि उन दोनो मे किसी एक से नही हो सकता है। इस प्रकार के और भी अनेक सयुक्त क्रियापद विद्यापति के पदो मे पाये जाते है।

सहायक क्रियापद

सयुक्त क्रियापद मे दो भिन्न क्रियापदो के सयोग से एक विशिष्ट अर्थ का बोध होता है; किन्तु, सहायक क्रियापद के सयोग से किसी विशिष्ट अर्थ का बोध नही होता। उससे केवल काल का निर्देश होता है। देसिल वअना मैथिली मे 'भू' और 'अस्' धातु से सहायक क्रियापद का निर्माण होता है और उसका व्यवहार प्रारम्भ से ही इसमे पाया जाता है। म० म० ज्योतिरीश के 'वर्णरत्नाकर' मे भी बार-बार सहायक क्रियापद के रूप में 'भू' धातु का व्यवहार हुआ है। यथा—

तें आङ्ग मर्दि 'हलु', वासल उबटने उबटि 'हलु', एक तें उपमाहि 'हलु'।—समरहर-वर्णना।

पथिकन्हि पथ-सञ्चार त्यजि 'हलु'।—मध्याह्न-वर्णना।

यौवनक परित्याग कए 'हलल'।—कुट्टनी-वर्णना।

शेषे माथ नावि 'हलु'।—प्रयाण-वर्णना। आदि-आदि।

अपभ्रंश मे 'भू' धातु के स्थान मे 'हो' आदेश होता है[1] जिसका भूतकालिक रूप उपर्युक्त 'हलु' और 'हलल' है। विद्यापति ने भी अपने पदों मे बहुश. उपर्युक्त सहायक क्रियापद का व्यवहार किया है। यथा—

मोञ सपनेहुँ नहि सुमरञो देओ।
अइसन पेम तोलि 'हल' जनु केओ॥

(भाग १, पद ११९)

---

१. भुवेर्हो-हुव-हवाः।—प्राकृतव्याकरण: हेमचन्द्र, ८।४।६०।

यहाँ कवि ने 'हल' का प्रयोग सहायक क्रियापद के रूप मे किया है। और—

मधु लए मधुकरें बालक दए 'हलु'
कमल पखुरिआ झुलाइ।

[भाग २ (रा० त०), पद १४]

यहाँ भी 'हलु' का प्रयोग सहायक क्रियापद के रूप मे हुआ है।

विशिष्ट क्रियापद

देसिल बअना मैथिली मे बहुतेरे क्रियापद ऐसे है, जो अपने मूलरूप—संस्कृत से दूर नही हैं, किन्तु कुछ क्रियापद ऐसे भी हैं, जो अपने मूलरूप से दूर हो गये है। उनके स्वरूप से उनके मूल रूप का झटिति प्रत्यय नही होता है। ऐसे ही क्रियापद को 'विशिष्ट क्रियापद' के नाम से अभिहित किया जाता है। नीचे उन्ही के ऊपर यत्किञ्चित् प्रकाश डाला जाता है।

(१) अछ—पालि मे 'आस' धातु के स्थान मे 'अच्छ' आदेश करके 'अच्छति', 'अच्छन्ति' आदि क्रियापदो की निष्पत्ति होती है। प्राकृत मे हेमचन्द्र ने 'आस्' धातु के अन्त्य को 'छत्व' करके[1] और वररुचि ने 'अस्' धातु के स्थान मे 'अच्छ' आदेश करके[2] 'अच्छइ' का निष्पादन किया है। 'आस्' और 'अस्' धातु के समानार्थक होने से अर्थ मे भेद नही होता है। अपभ्रंश मे भी क्रियापद के रूप मे 'अच्छइ' का बहुश. प्रयोग हुआ है। यथा—

दिअहा जन्ति झडप्पडहिँ पडहिँ मनोरह पच्छि।
जं 'अच्छइ' तं माणिअइ होसइ करतु म अच्छि॥[3]

'देसिल बअना मैथिली' मे भी उपर्युक्त 'अच्छ' का प्रयोग यत्किञ्चित् परिवर्त्तन के साथ हुआ है। यथा—

कत 'अछ' जुवति कलावति आने।
तोहि मानए जनि दोसरि पराने॥

(भाग १, पद ९)

यह पहले कहा जा चुका है कि 'देसिल बअना मैथिली' मे विभक्ति का लोप भी होता है। सो, यहाँ विभक्ति के लोप होने से केवल धातु का—'अछ' का—प्रयोग हुआ है। कही-कही विभक्ति का श्रवण भी होता है। यथा—

---

१. गमिष्यमासां छः।—प्राकृतव्याकरण : हेमचन्द्र, ८।४।२१५।
२. अस्तेरच्छः।—प्राकृतप्रकाश : वररुचि, १२।१९।
३. प्राकृतव्याकरण : हेमचन्द्र, ८।४।३८८ (उदाहरण)।

जगत भरल नागर 'अछए'
बिहि छललिहु मोहि।

(भाग १, पद ४७)

यहाँ 'अछए' में विभक्ति का—'ए' का—स्पष्ट श्रवण होता है। किञ्च, बहुतेरे ऐसे क्रियापद भी है, जहाँ 'अछ' के अकार का भी लोप हो जाता है। यथा—

का 'छिउ' का 'छिअ' ई बडि लाज।
बिनु नञ्चले न छुटए काज॥

[भाग २ (रा० पु०), पद २०]

यहाँ 'अछ' मे अकार के लोप होने से 'छिउ' और 'छिअ' की निष्पत्ति हुई है। इसी प्रकार 'छथि', 'छल' आदि की भी निष्पत्ति होती है। किञ्च, जहाँ 'अछ' का प्रयोग सहायक क्रियापद के रूप मे होता है, वहाँ भी अकार का लोप हो जाता है। यथा—

मने कि बोलव सखि 'बोलइछ' कान्ह।
सब परिहरि नागरि तोहि मान॥

[भाग २ (रा० पु०), पद १८]

यहाँ 'बोलइछ' मे सहायक क्रिया 'अछ' के अकार का लोप हो गया है।

(२) हो—प्राकृत मे 'भू' धातु के स्थान मे 'हो' आदेश होता है[1] और 'होइ', 'होन्ति' आदि की निष्पत्ति होती है। अपभ्रंश मे भी उपर्युक्त 'हो' से बहुश. क्रियापद की निष्पत्ति होती है। यथा—

देसुच्चाडणु सिहि-कढणु घण-कुट्टण जं लो ।
मंजिट्ठएँ अइरत्तिए सव्वु सहेव्वउं 'होइ'॥[2]

'देसिल वअना मैथिली' मे भी उपर्युक्त 'हो' का प्रयोग होता है। यथा—

हरखित 'हो' लङ्का के राए।
नागरे कि करब नागरि पाए॥

(भाग १, पद ५२)

यहाँ विभक्ति के लोप होने से केवल धातु का—'हो' का—प्रयोग हुआ है। कही-कही विभक्ति का श्रवण भी होता है। यथा—

---

१. भुवेर्हो-हुव-हवाः ।—प्राकृतव्याकरण : हेमचन्द्र, ८।४।६०।
२. वही, ८।४।४३८ (उदाहरण)।

अधर अरुनिमा लखि नहि 'होए'।
किसलअ सिसिरें छाडु जनि धोए॥

(भाग १, पद ४२)

यहाँ 'होए' मे विभक्ति का—'ए' का—स्पष्ट श्रवण होता है। किञ्च, इसी 'हो' का आज्ञार्थक रूप 'होअ' और भविष्यत्कालिक रूप 'होएत' आदि होते है।

यह पहले कहा गया है कि अपभ्रंश के सारे नियम बाहुलक है। इसीलिए, देसिल वअना मैथिली मे भूतकाल मे 'भू' धातु के स्थान मे 'हो' आदेश नही होता है और भूतकाल मे 'भू' धातु से 'भेल' की निष्पत्ति होती है। विद्यापति ने भी अपने पदो मे बार-बार 'भेल' का प्रयोग किया है। यथा—

अबे सखि भमरा 'भेल' हे
रति-रभसे सुजान।

(भाग १, पद १८४)

यदि भूतकाल मे भी 'भू' धातु के स्थान मे 'हो' आदेश होता तो उपर्युक्त 'भेल' की निष्पत्ति नही होती।

(३) थाक—प्राकृत मे 'स्था' धातु के स्थान मे 'थक्क' आदेश होता है[1] और 'थक्कइ' की निष्पत्ति होती है। अपभ्रंश मे भी यत्किञ्चित् परिवर्तन के साथ उपर्युक्त 'थक्क' का व्यवहार होता है। यथा—

पइँ मइँ बेहिँ वि रण-गयहिँ को जयसिरि तक्केइ।
केसहिँ लेप्पिणु जम-घरिणि भण सुहु को 'थक्केइ'॥[2]

'देसिल वअना मैथिली' मे भी यत्किञ्चित् परिवर्त्तन करके उपर्युक्त 'थक्क' का 'थाक' के रूप मे व्यवहार किया जाता है। यथा—

कतें कतें भान्ति लता नहि थाक।
तुलना करए न पारए जाक॥

[भाग २ (रा० पु०), पद ६६]

यहाँ विभक्ति के लोप होने से केवल धातु का—'थाक' का—प्रयोग हुआ है। कहीं-कही विभक्ति का श्रवण भी होता है। यथा—

---

१. स्थष्ठा-थक्क-चिट्ठ-निरप्पाः।—प्राकृतव्याकरण : हेमचन्द्र, ८।४।१६।
२. वही, ८।४।३७० (उदाहरण)।

माधव, बुझल सबे अवधारि लो।
जस अपजस दूअओ चिरे 'थाकए'
आओर दिवस दुइ चारि लो॥

(भाग १, पद १७४)

यहाँ 'थाकए' मे विभक्ति का—'ए' का—स्पष्ट श्रवण होता है।

(४) 'रह'—प्राकृत मे 'राज' धातु के स्थान मे 'रेह' आदेश होता है।[1] इसी 'रेह' का यत्किञ्चित् परिवर्तित रूप 'रह' है, जिसका प्रयोग अनेक भारतीय भाषाओ मे होता है। देसिल वअना मैथिली मे भी इसका प्रयोग होता है। यथा—

जउवन-सिरी तावे 'रह' सुन्दरि
जावे मदन अधिकारी।

(भाग १, पद १२०)

यहाँ विभक्ति के लोप होने से केवल धातु का—'रह' का—प्रयोग हुआ है। कही-कहीं विभक्ति का श्रवण भी होता है। यथा—

दिवस मन्द भल न 'रहए' सब खन
बिहि न दाहिन रह वाम लो।

(भाग १, पद १७४)

यहाँ 'रहए' मे विभक्ति का—'ए' का—स्पष्ट श्रवण होता है। किञ्च, इसी 'रह' का आज्ञार्थक रूप—'रहओ', भविष्यत्कालिक रूप—'रहत', 'रहब' और भूतकालिक रूप 'रहल' है। विद्यापति ने भी अपने पदो मे इन सबका बहुश व्यवहार किया है।

(५) 'पार'—प्राकृत मे 'शक्' धातु के स्थान मे 'पार' आदेश होता है[2] और 'पारइ' की निष्पत्ति होती है। पूर्वोत्तर भारत की सभी आर्यभाषाओ मे प्राय धातु के रूप मे इसका प्रयोग होता है। देसिल वअना मैथिली मे भी इसका प्रयोग मिलता है। यथा—

सबहि सुन्दरि साहस सार।
तोहि तेजि के करए पार॥

(भाग १, पद १९४)

यहाँ विभक्ति के लोप होने से केवल धातु का—'पार' का—प्रयोग हुआ है। कही-कही विभक्ति का श्रवण भी होता है। यथा—

---

१. राजेरग्घ-छज्ज-सह-रीर-रेहाः।—प्राकृतव्याकरण : हेमचन्द्र, ८।४।१००।
२. शकेश्चय-तर-तीर-पाराः।—प्राकृतव्याकरण : हेमचन्द्र, ८।४।८६।

पुरुष भमर सम कुसुमे कुसुमे रम
पेअसि करए कि 'पारें'।

[भाग २ (रा० पु०), पद ८२]

यहाँ 'पारें' मे विभक्ति का—'ए' का—स्पष्ट श्रवण होता है। किञ्च, इसी 'पार' का भविष्यत्कालिक रूप 'पारब' और भूतकालिक रूप 'पारल' होता है।

स्वराघात-विचार

उच्चारण के समय स्वर के ऊपर जहाँ-तहाँ आघात भी पडता है। इसे ही 'स्वराघात' कहते हैं। सस्कृत मे इसके तीन भेद हैं—(१) उदात्त, (२) अनुदात्त और (३) स्वरित। जिस स्वर के उच्चारण मे उच्चता रहती है, वह 'उदात्त' कहलाता है,[1] जिस स्वर के उच्चारण मे 'नीचता' रहती है, वह 'अनुदात्त' कहलाता है[2] और जिस स्वर के उच्चारण में दोनो का—'उदात्त' तथा 'अनुदात्त' का समाहार रहता है, वह 'स्वरित' कहलाता है।[3] फिर, ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत के भेद से इन तीनो के—उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित के—तीन-तीन भेद होते हैं, अर्थात् तीन प्रकार के उदात्त, तीन प्रकार के अनुदात्त एवं तीन प्रकार के स्वरित होते हैं। इतना ही नही, अनुनासिक और निरनुनासिक भेद से इनके पुन. दोभेदहोते हैं। इस प्रकार, संस्कृत में अठ्‌टारह प्रकार के स्वराघात होते हैं।

किञ्च, उपर्युक्त अठ्‌टारहो स्वराघात के पुन. दो भेद हैं—(१) गीतात्मक और (२) बलात्मक। संगीत मे जहाँ आरोह और अवरोह के रूप मे स्वर के ऊपर आघात पड़ता है, उसे गीतात्मक स्वराघात कहते हैं और पारस्परिक वार्त्तालाप में जहाँ स्वर के ऊपर आघात पडता है, उसे बलात्मक स्वराघात कहते हैं।

ये स्वराघात वैदिक युग से लेकर आजतक वर्त्तमान हैं। कोई भी ऐसी भाषा नही, जिसमे स्वराघात नही हो। देसिल बअना मैथिली मे भी दोनों प्रकार के स्वराघात पाये जाते हैं। यथा—

जउबन रतन अछल दिन चारि।
से देखि आदर 'कएल' मुरारि॥

(भाग १, पद १३३)

यहाँ 'कएल' मे 'ए' के ऊपर आघात पड़ता है और उसका उच्चारण ह्रस्व के समान हो जाता है। यह बलात्मक स्वराघात है। कारण, पारस्परिक वार्त्तालाप मे भी 'कएल' मे 'ए' का उच्चारण ह्रस्व के समान ही होता है। और—

---

१. उच्चैरुदात्तः।—अष्टाध्यायी, १।२।२९।
२. नीचैरनुदात्तः।—वही, १।२।३०
३. समाहारः स्वरितः।—वही, १।२।३१

परतह 'परदेस' परहिक आस।
विमुख न करिअ अबस दिअ वास॥

(भाग १, पद ५९)

यहाँ 'परदेस' मे 'ए' के ऊपर आघात पड़ता है और उसका उच्चारण ह्रस्व के समान होता है। किन्तु, यह सगीतात्मक स्वराघात है। कारण, पारस्परिक वार्त्तालाप के समय 'परदेश' मे 'ए' का उच्चारण ह्रस्व के समान नहीं होता है। सगीत के अनुरोध से ही यहाँ 'ए' का उच्चारण ह्रस्व के समान होता है।

उपसंहार

किसी भाषा का वैज्ञानिक विवेचन कठिन ही नही, प्रत्युत कठिनतर कार्य है। सस्कृत, पालि और प्राकृत व्याकरण के जटिल बन्धनो से आबद्ध है। अतएव, उनका प्रवाह रुक गया है—उनकी सीमा निर्धारित हो गई है। किन्तु, आज की लोकभाषाएँ प्रवहमाण है—निस्सीम हैं। व्यवहार मे रहने के कारण उनमें नित्य नये शब्दो का समावेश होता है और उनके कितने ही शब्द घिस-पिटकर विस्मृत हो जाते है। मैथिली भाषा का भी यही हाल है। सिद्ध सरहपाद-काल से आजतक इसमें कितने शब्दो का समावेश हुआ और इसके कितने शब्द घिस-पिटकर विस्मृत हो गये है—यह कौन कह सकता है।

महाकवि विद्यापति को ही हुए पाँच सौ से भी अधिक वर्ष बीत गये। इस बीच में मैथिली भाषा मे कितने नये शब्दों का समावेश हुआ और उसके कितने शब्द घिस-पिटकर विस्मृत हो गये—यह कहना बड़ा कठिन है। उस समय की मैथिली से आज की मैथिली मे बहुत-कुछ अन्तर हो गया है। इसी को दरसाने के लिए उस समय की मैथिली को हमने 'देसिल बअना मैथिली' कहा है।

किंच, प्रस्तुत निबन्ध के पर्यालोचन से मैथिली के तीन रूप गोचर होते हैं—(१) सिद्धाचार्यों की मैथिली, जिसे हम मैथिली का आदि रूप कह सकते है, (२) विद्यापति की मैथिली, जिसे हम मैथिली का मध्यरूप कह सकते है और (३) आधुनिक मैथिली, जिसे हम मैथिली का प्रस्फुटित अथवा विकसित रूप कह सकते है। इस निबन्ध मे हमने मैथिली के मध्यरूप के ऊपर ही विचार किया है। इसीलिए, इस निबन्ध से आधुनिक मैथिली का सम्बन्ध बहुत कम है, अर्थात् इस निबन्ध मे व्याकरण-सम्बन्धी जो नियम सगृहीत है, वे सब-के-सब आज की मैथिली के ऊपर लागू नही हो सकते है। आज की मैथिली कालक्रम से खिसकती हुई बहुत आगे बढ आई है। अत:, उसके लिए व्याकरण-सम्बन्धी जो नियम अपेक्षित है, उनका विचार इस निबन्ध मे नही हुआ है। इसी प्रकार सिद्धाचार्यो की मैथिली विद्यापति की मैथिली से—अर्थात् मैथिली के मध्यरूप से बहुत पीछे है। अत, उसके लिए व्याकरण-सम्बन्धी जो नियम अपेक्षित हैं, उनका विचार भी इस निबन्ध मे नही हुआ है।

और, विद्यापति की मैथिली आज की मैथिली से बहुत पहले की है। अत , उसके लिए व्याकरण-सम्बन्धी जो नियम ऊपर दरसाये गये हैं, उनमे अपूर्णता रह सकती है। कारण, एकमात्र विद्यापति के पदो को आधार मानकर मैथिली के मध्यरूप की सम्पूर्णता परिलक्षित नही हो सकती है। विद्यापति के पदो मे जो शब्द, धातु अथवा क्रियापद हैं, उनके अतिरिक्त भी मैथिली के मध्यरूप मे अनेक शब्द, धातु और क्रियापद रहे होगे। वाल्मीकि, व्यास, भास और कालिदास---इनमे किसी एक के साहित्य मे ही क्या सस्कृत के सभी शब्द, धातु और क्रियापद समन्वित है ? फिर, विद्यापति के पदो में ही 'देसिल बअना मैथिली' के सारे शब्दो, धातुओ और क्रियापदो का समन्वय असम्भव है। अत , विद्यापति के पदों को आधार मानकर लिखे गये इस निबन्ध को किसी प्रकार परिपूर्ण नही कहा जा सकता। यह तो केवल एक दिग्दर्शन है—अनुसन्धायको के लिए मार्ग-निर्देशन है।

—शशिनाथ झा

अग्रहायण-शुक्ल-पञ्चमी
विक्रम-संवत् २०२४

विद्यापति-पदावली

(द्वितीय भाग)

रामभद्रपुर (दरभंगा) में प्राप्त
विद्यापति के पदों का संग्रह

[१]

[लुबुधल नजन निरखि रहु ठाम
भरमहु कबहु लेब नहि नाम।
अपने अपन करब अवधान
जओ परिचारिअ तओ पर जान॥ध्रु०॥
एरे नागरि मन दए सून
जे रस जान तकर बड पून।
जइअओ हृदय रह मिलिए समाज
अब]सओ रहब अबुधि भए लाजें।
काचघटी अनुगत जल जेम
नागर लखत हृदअगत पेम।
विद्यापति भन सुन वरनारि
कते रङ्गे रसे सुरङ्ग मुरारि।
रूपनराअन एहु रस जान
राए सिवसिह लखिमा दे रमान[1]।

रामभद्रपुर-पाण्डुलिपि, पृ० १० (क), पद-संख्या २८, पक्ति-संख्या १

पाठभेद—

ठाकुर—१ लखिमा देवि-रमान।

विशेष—'रामभद्रपुर-पदावली' मे इस पद का घेरा हुआ अश खडित है; किन्तु 'नेपाल-पदावली' मे सम्पूर्ण पद उपलब्ध है। अत, इसके लिए प्रथम भाग का १२६ सख्यक पद देखिए।

[२]

कुल कुलबहु[1] गगन चन्दा
दुअओ कर उजोर।
तिमिर भजे तिरोहित करसि
गरुअ साहस तोर॥ध्रु०॥

साजनि मोहि पुछइतें लाज।
कि मर्ने बोलव कि तें करब
किदहुँ उतर काज॥
कुन्दक कुसुम सजन हृदअ
विमल चरित मोर।
केलि अपजस बोलेहि बहुल
कलंके सानि न बोर॥

रामः पृ० १० (क), प० २९, पं० २

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ८११)—१ कुल रहु। २ मये। ३ की। ४ ते। ५ उत्तर। ६ हृदय। ७ ण।

ठाकुर—(पद-सं० २) १ कुल रहु। ३ की। ५ उत्तर।

शब्दार्थ—कुलवहु=कुलवधू। दुअओ=दोनो। उजोर (उद्योत-सं०)=प्रकाश। भर्ने=भय से। किदहुँ=क्या। वोलेहि=बोलने से ही। सानि=सानकर। बोर=डुबाओ।

अर्थ—कुल में कुलवधू (और) आकाश मे चन्द्रमा—दोनों प्रकाश करते है।

(किन्तु, तुम) अन्धकार के भय से (अपने को) तिरोहित कर रही हो,—(यह) तुम्हारा कैसा साहस है?

हे सखी! मुझे पूछते लज्जा होती है। मैं क्या बोलूँगी? तुम्ही क्या करोगी? उत्तर से (ही) क्या काम है?

कुन्द फूल के समान (मेरे) प्रियतम का हृदय है। मेरा चरित्र (भी) विमल है।

बोलने से ही केलि मे अपयश बढ़ता है। (इसलिए जहाँ-तहाँ बोल करके) कलंक मे सानकर (मुझे) मत डुबाओ।

[३]

मालवराग—

हसि निहारल पलटि हेरि
लाजें कि बोलव सांझक बेरि।
हरखें आरति हरल चीर
सून पओधर काम्प सरीर॥ध्रु०॥

सं० अ०—२ मोब।

सखि कि कहब कहइते[2] लाज,
गोरू चिन्हए गोपक काज।
निवि निरासलि फूजलि[3] आस
ततेओ देखि न आबए पास।
अओ कत कहब मधुर बानि
काजर दूधे[4] पखालल जानि।
सखि बुझाबए धरिए हाथेँ
गोप बोलाबथि गोपी साथेँ।
तोहेँ न चिन्हह रसक भाव
बड़े[5] पुने[6] पुनमति पाव।
भन विद्यापति (सुन) तञे[7] नारि
पहुक दूषन दिअ विचारि।
राजा रूपनराञेन जान
सिवसिंह लखिमा दे(वि) रमान[8]।

राम० पृ० १० (क), प० ३०, प० ५

पाठभेद—

ठाकुर—(पद-स० ३) १ काँप। २. कहइते। ३. फुजलि। ४. दूधे। ५. बड़ें। ६. पुने। ७. सुन तञे। ८. देवि-रमान।

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अतः, इसके लिए प्रथम भाग का २१० सख्यक पद देखिए।

[४]

सुहव—

तोहरा (पेम) लागि धनि खिनि भेलि
तोहेँ बड बोलछड कान्ह।
रूप लोभ भेल नेह दूर गेल
से थिर छाडल भाव॥ध्रु०॥

मानिनि आब कि मान तोहार।
अपन मान पावक भए पइसल
लुलए[५] म(द)न[६] भण्डार॥
एत दिन मान भलेहुँ तोहें राखल
पञ्चवान छल थोल।
अबे अनङ्ग हे सरीरी देखिअ
समअ[७] पाए[८] कि[९] बोल॥
विद्यापति कह के वसन्त सह
मुनिहुँक मन हो[१०] लोभे।
लखिमा देवि पति रूपनराएन[११]
षट ऋतु सबे रस सोभे॥

राम० पृ० ११ (क), प० ३४, प० ५

पाठभेद—

मि० म०—१ नागर। २ धार। ३ पुनकले। ४ पार। ५ लूलए। ६ मन। ७ समय। ८ पाय। ९ की। १० ही। ११ रूपनरायण।

ठाकुर—(पद-सं० ६)—१ नागर। २ धार। ३ पुनकलें। ४ पार। ५ लूलए। ६ मन। ९ की।

विशेष—'रामभद्रपुर-पदावली' मे वारस्वार 'ल' के स्थान में 'र' का प्रयोग हुआ है। इस पद मे भी 'लागल' के स्थान मे 'लागर' का प्रयोग है। मि० म० और ठाकुर का ध्यान इस ओर नहीं गया। अतएव, उन्होंने 'लागर' को 'नागर' बना दिया।

शब्दार्थ—रतिपति=कामदेव। परिमल=सुवास। लागर=लागल=लग्न=युक्त। पावक=अग्नि। लुलए=लूट रहा। पञ्चवान=कामदेव। थोल=थोड़ा। अनंग=कामदेव। सरीरी=सदेह।

अर्थ—नया कामदेव है। नई सुवास से युक्त नया मलयानिल वह रहा है।

नई नागरिकाएँ (और) नये नागर विलास कर रहे हैं। पुण्य के फल से (पुण्य के प्रताप से) सभी सब-कुछ पाते हैं।

अरी मानिनी! अब तुम्हारा मान क्या? अपना मान (ही) आग बनकर पैठ गया है (और) मदन-भाण्डार को लूट रहा है। (अर्थात्—अपने मान के कारण ही आज तुम्हारा केलि-विलास जल रहा है।)

सं० अ०—१. लागल। ९. की। ११. रूपनराअेन।

इतने दिनों तक, (जव कि) कामदेव थोड़ा था, भले ही तुमने मान रखा।

(किन्तु) अब सदेह कामदेव दिखलाई पड़ रहा है। अवसर आने पर क्या बोलती हो? (अर्थात्—इतने दिनों तक तुमने मान कर रखा था, बोलती भी नही थी; किन्तु जब कामदेव प्रवल हुआ—अवसर आ पड़ा—तब कहने आई हो!)

विद्यापति कहते है कि वसन्त का सहन कौन कर सकता है? (वसन्त मे) मुनियो के हृदय मे भी (रति-रग का) लोभ हो जाता है।

लखिमा देवी के पति रूपनारायण (शिवसिंह) को छहो ऋतुओं मे सभी रस अच्छे लगते है।

[७]

अहिरानी—

सहज सुन्दर लोचन सीमा
काजर अञ्जने न करु भीमा।
तिलक दए मृगमद मसी
वदन सरिस न कर ससी॥ध्रु०॥
चलहिं सुन्दरि तेजि बेआज
सुकृते[१] मिल सुपहु समाज।
पसर सौरभ की अङ्गरागे
उभअ मन जदि अनुरागे।
परिहर सखि केर रङ्ग[२]
मुखर सुजन कहा[३] सङ्ग।
सरस कवि विद्यापति गावे
मनक पाहुन मदन धावे।
रूपनराएन[४] ई रस जाने
रानि[५] लखिमा देवि रमाने।

राम० पृ० ११, प० ३५, पं० ३

पाठभेद—

मि० म०—(पद-संख्या ९६)—१ सुकृते। ५ राणि।
ठाकुर—(पद-स० ७)—२ सग

सं० अ०—३. कहाँ। ४. रूपनरानेन।

शब्दार्थ—सहज=जन्मजात। भीमा=भयकर। मृगमद=कस्तूरी। मसी=स्याही। वेआज=व्याज=बहाना। सुकृते=बडे पुण्य से। समाज=सग। रग=क्रीडा। मुखर=वाचाल।

अर्थ—(तुम्हारी) आँखों की सीमा जन्मजात सुन्दर है। (उसे) काजल से आँजकर भयकर मत करो।

कस्तूरी की स्याही का तिलक देकर (अपने) मुख के समान चन्द्रमा को मत बनाओ। (अर्थात्—अपने निष्कलक मुख मे कस्तूरी का तिलक देकर उसे चन्द्रमा के समान सकलक मत बनाओ।)

हे सुन्दरी! बहाना छोडकर चलो। बडे पुण्य से सुपहु का सग मिलता है।

(तुम्हारे शरीर से वैसे ही) सौरभ फैल रहा है, (फिर) अगराग से क्या (प्रयोजन? और) यदि दोनो (प्रेमी और प्रेमिका) के मन में अनुराग हो (तब तो और भी नही।)

सखियों के साथ रग-रभस का त्याग करो। (कारण), वाचाल और सुजन का सग कहाँ? (अर्थात्—तुम्हारी सखियाँ वाचाल हैं। इनसे बचकर रहो।)

सरस कवि विद्यापति कहते है कि मन का मेहमान (बनकर) कामदेव आ रहा है। लखिमा देवी के रमण रूपनारायण इस रस को जानते है।

[८]

गुर्ज्जरी—

चिन्ताञे आसा कबललि मोरि
कानकटु भेलि कहिनी तोरि।
मनओ फेदाएल अइसना काज
पाबनि दीप निझाएल आज ॥ध्रु०॥
साजनि कह कत कहिनी धन्ध
ब(न्ह)ला बान्ध टुटल अनुबन्ध।
तञे जनितसि आओ दोसर कान्ह
तेसर जनइत हमर परान।
जत अनुराग राग कें गेल
सही गोप बधभाजन भेल।
विद्यापति भन बुझ रसमन्त
राए सिवसिह लखिमा देवि कन्त।

राम० पृ० १२ (क), प० ३६, प० १

पाठभेद—

मि० म०—(पद-सख्या १४६)—२ मनओ। ३ मिझाएल। ४ बालाबान्ध। ५ छुटल। ६ पराण। ८ मही। ९ मन। १० शिवसिंह।

ठाकुर—(पद-स० ८)—३ मिझाएल। ४ वालाबान्व। ५ छुटल। ८ मही।

शब्दार्थ—कबललि=ग्रस लिया। कानकटु=कर्णकटु—स०। कहिनी=कथा=बात। फेदाएल=थक गया। पावनि दीप (पार्वण-दीप—स०)=त्यौहार का दीया। निझाएल=बुत गया। अनुवन्ध=सम्बन्ध। आओ=और। कें गेल=कर गया। सही=वही।

अर्थ—(विप्रलब्धा की उक्ति दूती के प्रति—) चिन्ता ने मेरी आशा को ग्रस लिया। तुम्हारी बात कर्णकटु हो गई। (अर्थात्—प्रियतम को विना बुलाये तुम लौट आई। इसलिए तुम्हारी बात कर्णकटु लगती है।)

ऐसे काम के लिए मन भी थक गया। (अर्थात्—बारम्बार दूती भेजते हुए मन भी थक गया। किन्तु प्रियतम नही आये।) आज (मेरे लिए) त्यौहार का दीपक बुझ गया।

हे सखी! कितनी झझट की बाते कहती हो? (चुप रहो।) बाँध बाँधने पर भी (उनसे) सम्बन्ध टूट गया (अर्थात्—प्रेम-सम्बन्ध स्थापित करने पर भी वह स्थायी न रह सका।)

(यह बात) तुम जानती हो और दूसरे कृष्ण जानते है (तथा) तीसरे मेरे प्राण जानते है।

(कृष्ण) जितने राग-अनुराग कर गये हों, (किन्तु आज) वही गोप (बुद्धिहीन) वध के भागी हुए।

विद्यापति कहते है कि लखिमा देवी के स्वामी रसज्ञ राजा शिवसिंह (इसे) समझते है।

[९]

श्रीराग—

बडे[1] मनोरथें[2] साजु अभिसार
पिसुन नअन[3] बारि।
काज न सीझल तते रहल[4]
हमे अभागलि नारि॥ध्रु०॥
साजनि हमर दिवस दोस।
गरुअ[5] पुरुब[6] पाप पराभव[6]
कवोनकँ[7] (क)रब[8] रोस।
न घर गेलहु[9] न पर भेलुँहु[10]
न पुरु हृदअ[11] साध।

सं० अ०—१. चिन्ताए। ७. कए गेल।

अधाहि पथ ससी हसि[12] ऊगल
तेँ[13] भेल गमन बाध।
मोरेँ आसेँ पिआसल माधव
होएत मो बड[14] पाप।
सिव सिव सिव जाओ दूर[15] जिवे
सहए के पार सन्ताप।
आपदँ अधिक धैरज करब
धैरज सबँ[16] उपाए।
भन विद्यापति होएत मनोरथ
हरि रहु मन लाए।

रामं० पृ० १२ (क), प० ३७, प० ४

पाठभेद—

मि० म०—(पद-सख्या ३६२)—१ वड़ेँ। २ नयन। ३ वहल। ४ गुरुअ। ५ पुरव। ६ पराभवि। ७ कओने। ८ करेव। ९ गेलहु। १० भेँलहुँ। ११ हृदय। १४ बड़। १६ सवेँ।

ठाकुर—(पद-संख्या ९)—१ वडेँ। ३ वहल। ५ पुरव। ७ कवोने। ८ करेव। १० भेलुहुँ। १३ तेँ। १४ वड़। १५ दुर। १६ सवेँ।

शब्दार्थ—पिसुन=चुगलखोर। वारि=वचाकर। सीझल=सिद्ध हुआ। तते=उतना ही। कवोनकेँ=किसके (ऊपर)। गेलुहु=गई। भेलुहुँ=हुई। पथ=मार्ग मे। मोरेँ=मेरी। मो=मुझे।

अर्थ—चुगलखोरों की आँखें वचाकर वडे मनोरथ से अभिसार सजाया।

(किन्तु) कार्य सिद्ध नही हुआ, उतना ही रह गया। (अर्थात्—जैसी परिस्थिति थी, वैसी ही रह गई। कार्य सिद्ध नही हो सका।) मैं अभागिनी नारी हूँ।

हे सखी! (यह) मेरे दिन का दोप है (समय का फेर है)। पहले का वहुत वड़ा पाप है। (इसीलिए ऐसा) पराभव हुआ। (मैं) किसके (ऊपर) क्रोव करूँगी?

(मैं) न घर गई, न दूसरे की हुई (और) न मेरे हृदय की साघ (ही) पूरी हुई।

आघी राह मे ही चन्द्रमा हँसकर उग गया। इसी से गमन मे वाघा हो गई।

मेरी आशा से कृष्ण प्यासे रह गये। मुझे वड़ा पाप होगा।

शिव! शिव!! शिव!!! मेरे प्राण दूर चले जायें (अर्थात्—मैं मर जाऊँ। कारण, ऐसा) सन्ताप कौन सह सकता है!

सं० अ०—२. नअन। ९. गेलिहुँ। १०. भेलिहुँ। १२. हँसि।

आपत्ति मे अधिक धैर्य करना चाहिए। धैर्य (धारण करने) से सभी उपाय हो सकते है।

विद्यापति कहते है—हरि(के चरणों) मे मन लगाकर रहो। मनोरथ (अवश्य सिद्ध) होगा।

[१०]

धनछी—

जलद बरिस जलधार
सर जनो पलए पहार।
काजरें[१] राङ्गलि राति
बाहर होइतें[२] साति॥ध्रु०॥
साजनि,
अइसनी[३] निसिं अभिसार
तोहि तेजि करए के पार।
भमए भुअङ्गम भीम
पङ्के पुरल चौसीम।
जलधर बीजु उजोर
तखने गरज घन घोर।
भनइ विद्यापति गाव
महथ मदन परथाब।

राम० पृ० १२, प० ३७, पं० २

पाठभेद—

ठाकुर—(पद-सख्या १०)—१ काजरे। २ होइते। ३ अइसनि।

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अत, इसके लिए प्रथम भाग का २०० सख्यक पद देखिए।

[११]

बराली—

काजर रङ्ग बमए जनि राति
अइसना बाहर होइतहुँ साति।
तलितहु[१] तेज मिलए अन्धकार
आसाए[२] संसअं पलु अभिसार॥ध्रु०॥

भल न कएल मञे देल बिसवास
निकटँ जोञेन सत[3] कान्हक वास।
जलद भुअङ्गम दुहु भेल सङ्ग
निचर निसाचर कर रस (भङ्ग)[4]।
मन अवगाहए मनमथ रोस
जीवओ देले[5] न होए भरोस।
अपगम गमन बुझए मतिमान
विद्यापति कवि एहु रस जान।

राम० पृ० १२, प० ३९, प० ५

पाठभेद—

ठाकुर—(पद-सख्या ११)—१ तलितहुँ। २ आसा। ३ निकट जओ नसत। ४ करए सरङ्ग। ५ देले।

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अतः, इसके लिए प्रथम भाग का २१९ सख्यक पद देखिए।

[१२]

मालव—

हृदअ तोहर जानि न भेला
आनक रतन आनि मञे देला।
कएल माधव हमे अकाज
हाथि मेलाउलि सिह-समाज ॥ ध्रु० ॥
राख माधव मोरि विनती
देहे परिहरि पर जुवती।
चुम्बने नअन काजर गेला
दसने अधर खण्डित भेला॥
पीन पओधर नखरे मन्दा
जनि महेसर सेखर चन्दा।
न मुख वचन न मन थीरे
काम्प घनहन सबे सरीरे॥

घर गुरुजन दुजन सङ्का
लओलह माधव मोहि कलङ्का।
भन विद्यापति तजे दुति भोरी
चेतन गोपए बेकत चोरी।

राम० पृ० १३ (क) प० ४० प० ३

पाठभेद—

ठाकुर——(पद-संख्या १२)—१ दुरजन।

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अतः, इसके लिए प्रथम भाग का १ सख्यक पद देखिए।

धनछी—

[१३]

प्रथम[१] बएस अतिभिति राही
अभिमत[२] : पिअ मेला।
नीविक सङ्गे लाज बिघटलि
अधर पान कएला[३]॥
कामे संसार सिङ्गार सिरिजल
सोनाक आङ्कुर[४] लागु।
आरति आकमे[५] भाङ्गि न गेले
तोहर दूखन[६] लागु॥ ध्रु०॥
माधव अबे कि बोलब तोही।
केसरि जनि कुरङ्गिनि आपलि
भरम लागल मोही॥
गज दमसलि दमनलता[७]
तैसन[८] देखिअ देहे।
चापि चकोरे[९] सुधारस पीउल[१०]
निरसिए ससिरेहे॥

काजेरि ठाम अठाम न गूनल
अधर खण्डलि माळी।[12]
जुवति जीव करुना नाही
कामदेव अहेरानी॥[13]
मनमथ देवे[14] सपथ मानल
सुनि दइनेरि बानी।[15]
काँ लागि आनलि चान्दक कला
राहु मेराउलि आनी॥[16]
कठिन कोमल की रिति सहति[17]
मालाञ[18] बान्धलि[19] हाथी।
निञ[20] अनुचिते[21] सेबि सम गुरु
सेओ[22] लघुता जाथी॥

राम० पृ० १३, प० ४१, पं० १

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ८०८)—१ वयस। २ अभिमित। ३ कयला रे। ४ अंगु (कु) र। ६ दूख न। ७ दमणलता। ९ चकोरे। १० पीड़ल। ११ निवसिए। १२ खण्ड विराणी। १३ अहेराणी। १४ देवे। १५ दइने विराणी। १७ रीति। १८ मालाए। २२ सेओल।

ठाकुर (पद-सख्या १३)—२ अभिमित। ३ कएला रे। ४ आगु (कु) र। ६ दूख न। ११ निवसिए। १२ खण्डु विमानी। १५ हइने विरानी। १७ रीति। २० सेओल।

शब्दार्थ—मेला=मिलन। कएला=करने पर। आकमे=अंक मे=अँकवार मे। आरति (आर्त्ति-सं०)=पीड़ा से। केसरि=सिंह। कुरङ्गिनि=हरिणी। आपलि=अर्पित की। दमसलि=रौंदी हुई। दमनलता=कुन्दलता। चापि=दबाकर। निरसिए=नीरस करके। ससिरेहे=चन्द्रमा की रेखा को। काजेरि=कार्य के। ठाम=स्थान। भाळी=भ्रष्ट करके। अहेरानी=शिकारी। दइनेरि=दैन्य की। काँ लागि=किसलिए। मेराउलि=मिलाया। रिति=(रीति—स०) नियम। सम=श्रम।

अर्थ—प्रथम वय (वाला) होने के कारण राधा अत्यन्त डरी हुई थी; फिर भी प्रिय-मिलन अभीष्ट था।

सं० अ०—५ आंकमे। ८ तइसन। १५ आनी। १८ मालाए। १९ बान्धल। २० निञ। २१ अनुचितें।

अधरपान करने पर नीवी के साथ लाज भी विघटित हो गई।

कामदेव ने सोने का अकुर लगाकर (अर्थात्—नायिका-रूपी स्वर्णलता को अकुरित करके) संसार मे श्रृंगार की सृष्टि की।

(वह स्वर्णांकुर) अँकवारने मे पीड़ा से टूट नही गया। यदि टूट जाता तो तुम्हे कलक लग जाता। (अर्थात्—नई-नवेली नायिका तुम्हारे अक मे पडकर टूट नही गई,—यही आश्चर्य है।)

माधव! अब तुम्हे क्या कहूँ? मुझे भ्रम हो रहा है (कि) सिह को जैसे हरिणी समर्पित कर दी गई। (अर्थात्—सिह को समर्पित कर देने से हरिणी की जैसी दशा होती है, वैसी ही दशा इस नायिका की हो गई।)

हाथी से रौदी हुई (जैसी) कुन्दलता हो, वैसी ही (इसकी) देह दिखाई पड़ती है।

(अथवा) चकोर ने दबाकर शशिरेखा को नीरस करके सुधारस पी लिया?

(तुमने) कार्य के स्थान-अस्थान का भी विचार नही किया। (नायिका के) अधर को भ्रष्ट करके खण्डित कर दिया। (अर्थात्—रति-चिह्न के लिए उचित स्थान का भी तुमने विचार नही किया और नायिका के अधर को खण्डित कर दिया। इससे दूसरे को भी यह ज्ञात हो जायगा)

(मालूम होता है, जैसे) शिकारी कामदेव को युवतियों के प्राणों पर दया नही आती।

(किन्तु नायिका की) दीनता की बात सुनकर कामदेव ने शपथ मान ली। (अन्यथा उसके प्राण गये ही थे।)

(मुझे दुःख है कि मै) किसलिए चन्द्रमा की कला ले आई (और) लाकर (उसे) राहु के साथ मिला दिया।

कठिन (और) कोमल—(दोनो मिलकर) क्या नियम का सहन कर सकते हैं? (मैंने) माला से हाथी को बाँध दिया। (अर्थात्—जैसे माला से हाथी को बाँधना अनुचित है, वैसे ही उस कोमलांगी के साथ तुम्हारा मिलन करा देना अनुचित है।)

श्रम से गुरु की सेवा करके भी (अर्थात्—विद्वान् भी) अपने अनुचित (कार्य) से लाघव को प्राप्त करता है। (अर्थात्—मैंने सब-कुछ समझ करके भी जो उसे तुमसे ला मिलाया,—यह मेरा अनुचित कार्य हुआ। और, इस अनुचित कार्य से मैं लाघव पा रही हूँ।)

वसन्त—

[१४]

करहु[1] कुसुम कन्दुक (क) रीअ[2]
भरि कामिनि मानिनि मान लीअ।
जमुन(1)[3] तट भए दिअ पसार
राधागन[4] देखिलन[5], देखिनिहार[6] ॥ध्रु०॥

लघु लघु लंघु मदनक[8] टार[9] बाट
परिपाटि सिखाबए चाटें[10] चाट।
निअ[10] वल्लभ परिहरि जुवति धाव
मञे[11] पओले कारन किछु न भाव॥
सब बोलहिं[12] पूछए कान्ह कान्ह
गाहकि मञे[13] जोहल किनत[14] मान[15]।
रस बूझि बिलस सिवसिंह देव
लखिमा देवि पति चरन सेब॥

राम० पृ० १४ (क), प ४२, पं० १

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या १२६)—१ करहुँ। २ रीअ। ३ जमुन। ४-५ राघ गेन दे खेलन। ६ देखि निभार। ७-८ मदन कटार। ९ चाटे। ११ मजे। १२ बोलेहिं। १३ मजे। १४-१५ कि नतमान।

झा० (पद-संख्या १४)—१ करहुँ। २ रीअ। ३ जमुन। ४-५ राव गेनदे खेलन। ६ देखि निडार। ७-८ मदन कटार। ९ चाटें। १२ बोलेहिं। १४-१५ कि नतमान।

शब्दार्थ—कन्दुक=गेन्द। पसार=प्रसार। देखिलन=देखा। देखिनिहार=देखनेवालो ने। टार=लुढकाना। बाट=मार्ग। चाटें-चाट=हथेली से मार-मारकर। बोलहिं=बात में। गाहकि=खरीदार। जोहल=ढूँढ़ा। किनत=खरीदेगा।

अर्थ—हाथ मे फूल का कदुक करके, कामिनियो से भरकर (कामिनियो को साथ लेकर) मानिनी मान लेकर (अर्थात्—मान के साथ)—

यमुना-तट होकर (अर्थात्—यमुना—तट पर जाकर) प्रसार दिया (अर्थात्-खेल का प्रसार किया और) देखनेवालो ने (गेंद खेलते हुए) राधागण (राधा आदि युवतियो) को देखा।

(युवतियाँ) धीरे-धीरे कामदेव के मार्ग पर (कदुक को) लुढकाती हैं, हथेली से मार-मारकर (उसे) ढग सिखलाती हैं।

युवतियाँ अपने प्रियतम को छोडकर दौड़ रही है। मैं (गेंद) पाऊँ—इसलिए कुछ भी विचार नही करती।

सभी बातो-बात मे पूछती हैं—कृष्ण (कहाँ ?), कृष्ण (कहाँ ?) (विद्यापति कहते हैं—) मैंने खरीदार को ढूँढ लिया। (वह) मान खरीदेगा।

(महाराज) शिवसिंहदेव रस को समझकर विलास करते है। (इसलिए) लखिमा देवी के पति (महाराज शिवसिंह) की सेवा करो।

सं० अ०—१० निञ। ११ मोञ। १३ मोञ।

मालव—

[१५]

चरन[1] कमल कदली विपरीत
हास[2] कला से हरए साँचीत।
के पतिआओब[3] एहु परमान
चम्पकें कएल पुहबि निरमान॥ध्रु०॥
एरे माधव पलटि निहार
अपुरुब देखिअ जुवति अवतार॥
कूप गभीर तरङ्गिनि[4] तीर
जनमु सेमार लता बिनु नीर।
चहकि चहकि दुइ खञ्जन खेल
काम कमान चान्द उगि गेल॥
ऊपर हेरि तिमिरें करु वाद
धमिलें कएल ताकर अवसाद।
विद्यापति भन बुझ रसमन्त
राए सिवसिंह लखिमा देवि कन्त॥

राम० पृ० १४ (क), प० ४३, प० ५

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या २७)—१ चरण। ३ पति आओब। ४ तुरङ्गिनी।

झा० (पद-संख्या १५)—पाठभेद नही है।

शब्दार्थ—कदली=केला। हास=हाँस=हस। साँचीत=सञ्चित। पतिआओब=विश्वास करेगा। परमान=(प्रमाण-स०) सत्य। पुहुबि=पृथ्वी। तरङ्गिनि=नदी। तिमिरें=अन्धकार ने। वाद=दावा। धमिलें=केश-कलाप ने। अवसाद=अन्त।

अर्थ—(नायिका के) चरण-कमल पर विपरीत कदली (स्तंभ) हैं। वे हंस की सचित कला का हरण करते है। (अर्थात्—नायिका के चरण कमल के समान है और उनके ऊपर विपरीत कदली-स्तंभ के समान जाँघें है। उसकी गति हंस के समान है।)

सं० अ०—२ हाँस।

इस सत्य का कौन विश्वास करेगा कि चम्पा ने पृथ्वी (शरीर) का निर्माण किया। (अर्थात्—नायिका का शरीर चम्पक-वर्ण है।)

अरे माधव! पलटकर देखो, युवती का अपूर्व अवतार देखो।

नदी (त्रिवली) के तट पर गहरा कुँआ (नाभि) है (और) विना पानी के सेंवार की लता (रोमावली) पैदा हो गई है।

चहक-चहककर दो खजन (नयन) खेल रहे है (और) कामदेव का धनुष (भौह) लेकर चन्द्रमा (मुख) उदित हुआ है।

ऊपर (आकाश को) देखकर अन्धकार ने (इस चन्द्रमा पर) दावा किया। (अर्थात्—ऊपर आकाश मे चन्द्रमा को नही देखकर अन्धकार ने दावा किया कि इस मुखचन्द्र पर मेरा अधिकार है। कारण, जहाँ अन्धकार रहता है, वही चन्द्रमा का रहना उचित है। किन्तु) केशपाश ने उसके (दावे का) अन्त कर दिया। (अर्थात्—केशपाश-रूपी अन्धकार के कारण यहाँ भी चन्द्रमा का रहना उचित ही है।)

विद्यापति कहते हैं कि लखिमा देवी के स्वामी रसज्ञ राजा शिवसिंह (इसे) समझते हैं।

कोलार—

[१६]

थिर पद परिहरिए जे जन
अथिरेँ मानस लाब।
सब चाहिँ (हि)न दिने दिने खिन
बहु परतर पाब॥ध्रु०॥
साजनि थिर मन कए थाक।
हठे जे जखने करम करिअ
भल नहि परिपाक॥
बुध जन मन बुझि निवेदए
सबे संसारेरि भाव।
जखने जते विभव रहए
तखने तेहिँ गमाब।

सं० अ०—६ बूझि।

भन विद्यापति सुन तञे[९] जुवति
चितें[१०] न झाँषहि आन[११]।

रामo पृo १४, पo ४४, पंo २

पाठभेद—

मिo मo (पद-सख्या २५१)—१-२ चाहिन। ३-४ खेलरत। ५ हटें।

ठाo (पद-सख्या १६)—१-२ चाहिन। ३-४ खेलरत। ५ हठे।

शब्दार्थ—थिर=स्थिर। पद=आधार। सब चाहि=सबकी अपेक्षा। परतर=पटतर=उपमा। थाक=रहो। परिपाक=परिणाम। ससारेरि=ससार का।

अर्थ—जो आदमी स्थिर आधार का परित्याग करके अस्थिर (आधार) मे मन लाता है,

(वह) सबकी अपेक्षा हीन है। (वह) दिनानुदिन खिन्न होता जाता है (और) नाना प्रकार की उपमाएँ पाता है।

हे सखी! मन को स्थिर करके रहो। जो कोई जब भी हठ से काम करता है, (उसका), परिणाम अच्छा नही होता है।

विद्वज्जन (अपने) मन मे समझकर ससार का भाव निवेदन करते है (कि)
जिस समय जितना विभव रहे, उस समय उतने से ही (समय) गँवाना चाहिए।
विद्यापति कहते हैं—हे युवती! तुम सुनो। मन मे (किसी) दूसरे की चिन्ता मत करो।

वसन्त—

[१७]

कुसुमधूरि मलआनिल[१] पूरित[२]
कोकिल[३] कल[४] सह(क)रे[५]।
हारि पुरब[६] परिपाटि हराएल[७]
आने चलल बेबहारे॥ध्रु०॥
साजनि[८] जानि ले तन्त[९]।
सिसिरे[१०] महीपति दापे[११] चापि कहुँ[१२]
राजा भेल वसन्त[१३]॥

संo अo—७ तोल। ८ आन।

मनमथ तन्त अन्त धरि पढ़िकए[14]
अवसरँ भेलिसि[15] अआनी[16]।
आजुक दिवस कालु नहि पइअए[17]
जौवन बन्ध छुट पानी॥

राम० पृ० १४, प० ४५, प० ५।

पाठभेद—

राम० (पद-सख्या ३९४)—२ पूरलि। ३ कोकिले। ४ कवलु। ५ सहारे। ६ पुरुब। ७ पराएल। ८ मानिनि। ९ तन्तू। १० सिसिर। ११ दापे। १२ लेल। १३ वसन्तू। १४ पढलए। १५ आनी। १६ अवसर गेल बहुरि नहिँ आवए।

मि० म० (पद-सख्या ८०७)—१ मलयानिल। ५ सहकारे। १४ पढ़िकए। १५-१६ भेलि सआनी।

ठा० (पद-सख्या १७)—५ सहकारे। १४-१५ भेलि सआनी।

शब्दार्थ—कुसुमधूरि=पराग। कल=कलरव=मन्द-मधुर (ध्वनि)। सहकारे=मंजरित आम्रवृक्ष। हराएल=पछाड खा गई। तन्त=(तन्त्र—स०) शासन-प्रबन्ध और शास्त्र। दापें=दर्प से। चापिकहु=दबाकर। अआनी=अज्ञानी=ज्ञानशून्य।

अर्थ—पराग से मलयानिल भर गया (और) खिले आम्र-वृक्षो पर कोकिल का कलरव हो रहा है।

पहले की परिपाटी हारकर पछाड़ खा गई। (अब) दूसरा ही व्यवहार प्रारम्भ हुआ।

हे सखी! शासन-प्रबन्ध जान लो। महीपति शिशिर को (अपने) दर्प से दबाकर (अब) वसन्त राजा हो गया।

कामदेव के शास्त्र को अन्ततक पढकर (अर्थात्—सम्पूर्ण कामशास्त्र के पढ़ने के बाद भी तुम) अवसर पर ज्ञानशून्य हो गई।

(अरे!) आज का समय कल नही पाओगी। यौवन-रूपी बाँध से पानी छूट रहा है (अर्थात्—धीरे-धीरे यौवन छीजता जा रहा है।)

विशेष—'रामभद्रपुर-पदावली' मे यह पद दो बार आया है। अत, दूसरे का पाठ-भेद दे दिया गया है।

सं० अ०—१६ अआनी।

बसन्ती—

[१८]

तन्हिकरि धसमसि विरहक सोस
तञे दिढ' कए कैतव पोस।
सोलह सहस गोपी परिहार
तन्हिकाहुं कुल भेलिसि' बनिजार'।।ध्रु०।।
मञे' कि बोलब सखि बोलइछ' कान्ह
सब परिहरि नागरि तोहि मान।
समअक' बसें' नहि' सब अनुराग
भलाहुक मन मन्देओ पद' जाग।।
पिअरी दरसने नागर दूल
घान्टू गुने' वनतुलसी फूल।
विद्यापति भन बुझ रसमन्त
राए सिवसिंह लखिमा देवि कन्त।।

राम० पृ० १५ (क), प० ४६, पं० ३

पाठभेद—

सि० म० (पद-सख्या १२४)—१ तए दिढ। २-३ भेलि सिरनिजार। ४ मए। ५ बोल-इच्छ। ६ समयक। ७ वसे नहि। ८ मन्दोअपद। ९ गुणे।

डा० (पद-सख्या १८)—१ तञे दिढ। २-३ भेलि सि···जार। ७ बसें लहि। ८ सन्देओपद।

शब्दार्थ—धसमसि=सन्देह। सोस=शोषण। कैतव=छल=कपट। परिहार=त्याग। कुल=घर। बनिजार=वणिक्। पद=वचन। पिअरी=चमक-दमक। घान्टू=घटने पर।

अर्थ—विरह के शोषण से उनका (उनके जीवन का) सन्देह है। (फिर भी) तुम दृढ करके कपट का पोषण कर रही हो (अर्थात्—कपट किये बैठी हो?)

(उन्होने तुम्हारे लिए) सोलह हजार गोपियो का त्याग कर दिया। (फिर भी) उनके घर मे (तुम) वाणिक् हो गई (अर्थात्—उनके साथ भी मोल-भाव करने लगी।)

हे सखी! मैं क्या कहूँगी? कृष्ण (स्वय) कहते है कि (वे) सबका त्याग कर तुम्हें ही चतुरा मानते है। (अर्थात्—कृष्ण सबसे बढ़कर तुम्हे मानते है।)

समय के कारण सभी अनुरक्त नही हो पाते है। (अर्थात्—अवसर नही मिलने के कारण कृष्ण सभी प्रकार के अनुराग नही जता पाते है। विना अवसर के अनुराग करने से) भले आदमियो के मन मे भी बुरा वचन जग जाता है (अर्थात्—भले आदमियो के मन मे भी बुरी बातें उत्पन्न होने लगती है।)

(तुम्हारी) चमक-दमक देखकर नागर (अभी तुम्हारे पीछे-पीछे) डोल रहा है। गुण के घट जाने पर (यौवन के ढल जाने पर तुम) वनतुलसी का फूल-हो जाओगी। (अर्थात्—जिस प्रकार वनतुलसी के फूल को कोई नही पूछता है, उसी प्रकार तुम्हे भी कोई नही पूछेगा।)

विद्यापति कहते है—लखिमा देवी के स्वामी रसज्ञ राजा शिवसिंह (इसे) समझते हैं।

मालव—

[१९]

ओ अति (कोमल)तवें[1] अति चोष
बड मतभेद बजइछसि रोष।
हुलले बुझिअहुँ किअ का लागि
जारन सरस जरए नहि आगि।।ध्रु०।।
× × ×
आनहुँ[2] पठओब ने करह ओज
चेतन बूझि छडाओब गोज।।
उचितओ बोलइते ओहि नहि लाज
फलछे वचने फरिअओ काज।
ओहे आइलि कए तुअ परथाब
अबे अवसर भेलि लोहा (भाव)।।
भनइ विद्यापति पुछिहि सिआन[3]
चिमलि[4] गिञ्जारनहि सरिस पिसान।।

राम० पु० १५, प० ४४, पं० १

पाठभेद—

मि० म०—यह पद नही है।

सं० अ०—१ तोअ। २ आनहुँ। ३ सिआन। ४ छिमड़ि।

ठा०—यह पद नहीं है।

शब्दार्थ—चोष=चोखा=तेज। हुलले=पैठने से। जारन=ईन्धन। ओज=संकोच। चेतन=विचारवान्। गोज=उलझना। फलछे=साफ=स्पष्ट। फरिअओ=सुलझता है। परथाब=प्रस्ताव। सिआन=सयाना। चिमलि=छीमी। गिञ्जारनहि=गीजने से ही। सरिस=सरसो। पिसान=पिसाई।

अर्थ—वह अत्यन्त (कोमल) है (और) तुम अत्यन्त तेज हो। ईर्ष्यावश कहते हो कि बडा मतभेद है।

पैठने से ही समझोगे कि किसलिए (ऐसा) किया? (अरे!) सरस ईन्धन आग मे नही जलता है! (अर्थात्—वह इतनी सरस है कि तुम्हारी रोषाग्नि मे नही जलेगी।)

संकोच मत करो,—दूसरे को भी भेजो। विचारवान् ही समझ-बूझकर उलझन छुडायेगा। उसे उचित (बात) बोलने मे भी लज्जा नही होगी। (कारण), स्पष्ट वचन से ही कार्य सुलझता है।

वह (जिस समय) तुम्हारा प्रस्ताव लेकर आई थी (उस समय तो वह सोना थी; किन्तु) अब अवसर पडने पर (उसका) मूल्य लोहे के बराबर हो गया।

विद्यापति कहते है कि किसी सयाने से भी पूछ लो। (वह भी कहेगा कि) छीमी को गीजने से ही (छीमी को तोडने के बाद ही) सरसों की पिसाई होती है।

विशेष—इसके बाद निम्नलिखित खण्डित पद है—

परक पिरीति सबहि त × ×
× × ×
बोबिध पओले मनसिज भाव
जे जे करए सेहे से पाव॥ध्रु०॥
साजनि कि कहब कहहि न जाए
× × ×
इसके बाद छह पृष्ठ नही है। फिर ५७ वें पद का अन्त भाग है—
× × ×
भनइ विद्यापति एहु रस जाने
राए सिवसिंह लखिमा दे रमाने॥५७॥

धनछी—

[२०]

का॑ छिउ॑ क(ा)॑ छिअ॑ इं॑ बडि॑ लाज
बिनु नञ्चले न छुटए काज।

४

का' छिअ' जेहे रहाइअ' सेह
तबे से मिलए दुलभ नेह ।।ध्रु०।।
साजनि झाटें[10] कर अभिसार
चोरी पेम संसारेरि सार।
किछु न गुनब पथक सङ्का
सिनी पलल वैरि कलङ्का ।।
तोर गतागत जीवन मोर
आसा पलल कन्हाइ[11] तोर।
तन्हि पठओलाहु[12] तोहर ठाम
दाहिन वचन बोलह[13] (जनु) वाम ।।
तइअओ तन्हिकि तहिँ पिआरि
दूती कएलए जनि सिआरि।
नागरि, हसलि दूती हेरि
टूटल बोलव मञे[14] कत बेरि ।।
भन(इ) विद्यापति ई[15] रस जानि[16]
रानि लखिमा देवि रमान ।।

राम० पृ० १९ (क), प० ५८, प० १

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ८६)—१-२ काछिड। ३-४ काछिअ। ५ इ। ६ वडि। ७-८ काछिअ। ९ वहाइअ। १० झाँटे। ११ कन्हाइ। १२ पटओ लाहुँ। १३ पाठाभाव। १४ मए। १५ इ।

ठा० (पद-सख्या १९)—१-२ काछिड़। ३-४। काछिअ। ६ वडि। ७-८ काछिअ। ९ वहाइअ। १३ पाठाभाव।

शब्दार्थ—का छिउ=क्या थी। का छिअ=क्या हो। नञ्चले= नाचने से। झाटें= झटपट। ससारेरि=ससार का। सिनी=अमावास्या। कलङ्का=कलङ्काङ्क=चन्द्रमा। गतागत=जाना-आना। तन्हि=उन्होने। तइअओ=तथापि। तहिँ=तुम्ही। कएलए=की। सिआरि=शृगाली।

सं० अ०—१४ मोञ। १६ जान।

अर्थ—क्या थी (और) क्या हो,—यही बडी लज्जा है। (अर्थात्–पहले तुम क्या थी और अब क्या हो गई हो,—यह बडी लज्जा की बात है।) बिना नाचे कार्य नही छूटता है। (अर्थात्—बिना नाचे कार्य से छुटकारा नही मिल सकता है।)

(पहले) क्या थी ? जो थी, वही रहो। उसी से दुर्लभ प्रेम मिल सकता है।

हे सखी ! झटपट अभिसार करो। चोरी का प्रेम ससार का सार है।

रास्ते की जरा भी शका मत करो। वैरी चन्द्रमा के लिए अमावस्या आ पड़ी।

कृष्ण तुम्हारी आशा मे पड़े हुए है। (इसीलिए) तुम्हारा जाना -आना ही मेरा जीवन (मेरे जीवन का लक्ष्य) हो गया है।

उन्होने ही (मुझे) तुम्हारे पास भेजा है। (अब भी तुम) दक्षिण वचन-बोलो। वाम वचन मत बोलो।

तथापि (वाम वचन बोलने पर भी) उनकी तुम्ही प्यारी हो। (व्यर्थ मे तुमने)दूती को शृगाली कर दिया। (अर्थात्—जिस प्रकार घर आई शृगाली को लोग दुत्कार देते है, उसी प्रकार तुमने मुझे व्यर्थ दुत्कार दिया।)

(दूती की बात सुनकर) नागरिका ने दूती को देखकर हँस दिया। (उसने कहा कि) मैं कितनी बार टूटी हुई बात कहूँगी ? (अर्थात्—'मै नही जाऊँगी', यह बात मै कितनी बार कहूँगी ?)

विद्यापति कहते है—रानी लखिमा देवी के रमण (राजा शिवसिह)इस रस को जानते है।

धनछी—

[२१]

मानिनि[१] मान मौने मन साजि
माधव मनसिज मन मथ झाँझि।
बिधिबसे[२] केलि मेलि रस बाध
तेसरा माथें[३] सबे अपराध ॥ध्रु०॥
दूती भए जनु जनमए नारि
बिनु भेलें[४] (सिधि) भेलिहुँ गोआरि।
एतएक कौसलें (भेलिहुँ) मन्द
तरनिक उदअ लहत की चन्द ॥

पर अनुरोधें बोध दुर जाए
नाथ वराह दुअओ हलखाए³।
विद्यापति भन बुझ रसमन्त
राए सिवसिंह लखिमा देवि कन्त॥

राम० पृ० १९ (क), प० ५९, प० ५

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या १३६)—१ मानिनी। २ वि·····से। ३ हल धाए।

झा० (पद-संख्या २०) —२ वि········से।

शब्दार्थ—मौनेमन=मन-ही-मन। झाँझि=जर्जर। गोआरि=ग्वालिन=गँवारिन। एतएक=इतने। तरनिक=सूर्य के। नाथ=नायक। वराह=(वरारोहा—सं०) नायिका। हलखाए=हड़क जाते हैं, दूर हट जाते हैं।

अर्थ—मानिनी ने मन-ही-मन मान सज लिया। हे कृष्ण! (इसीलिए) कामदेव ने (उसके) मन को मथकर जर्जर कर दिया।

दैवयोग से (दोनों की) केलि, मिलन (और) रस में बाधा हुई; (किन्तु) तीसरे के माथे (दूती के माथे) सारा अपराध (मढ़ दिया गया।)

स्त्रियाँ दूती होकर जन्म नहीं लें। (दूती होकर जन्म लेने के कारण ही कार्य की) सिद्धि नहीं होने से (मैं) गँवारिन हो गई।

इतने कौशल से भी (मैं) मन्द हो गई। (अर्थात्—इतना कौशल करने पर भी मुझे मर्यादा नहीं मिली। वास्तव में) चन्द्रमा क्या सूर्य का उदय-लाभ कर सकता है? (अर्थात्—लाख यत्न करने पर भी चन्द्रमा सूर्य की मर्यादा नहीं पा सकता।)

दूसरे के अनुरोध से (जिससे अनुरोध किया जाता है, उसका) ज्ञान दूर चला जाता है। (फल यही होता है कि) नायक (और) नायिका—दोनों दूर हट जाते हैं।

विद्यापति कहते हैं—लखिमा देवी के स्वामी रसज्ञ राजा शिवसिंह (इसे) समझते हैं।

मालव—

[२२]

सूखल सर सरसिज भेल झाल
तरुन¹ तरनि² तए³ न रहल हाल।

सं० अ०—३ हलखाए।

देखि दरनि दरसाब पताल
अबहुँ धराधर धरसि न धार ।।ध्रु०।।
जलधर जलधन' गेल असेखि
करए कृपा बड[4] परदुख देखि।
पथिक पिआसल आब अनेक
देखि दुख मानए तोहर विवेक ।।
पलटलि[5] आसा[6] निरसनिहारि[7]
कहदहुँ कओन[8] होइति ई[9] गारि।
कओन[10] हृदअ नहिँ उपजए रोस
ओल धरि करिअ एहेँ पए दोस ।।
विद्यापति भन बुझ रसमन्त
राए सिवसिंह लखिमादेवि कन्त ।।

राम० पृ० १९, प० ६०, प० ३

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या १४)—१ तरुण । २ तरणि। ३ जलधन। ४ बड। ५-६ पलट निआसा। ७ निरस निहारि। ८ कओन। ९ इ। १० कओन।

ठा० (पद-सख्या २१)—४ बड़। ५-६ पलट निआसा। ७ निरस निहारि।

शब्दार्थ—सर=तालाब। सरसिज=कमल। झाल=शुष्क। तरनि=सूर्य। हाल=नमी। दरनि=दरार। धराधर=(धाराधर—स०) मेघ। असेखि=(अशेष—स०) सारे। निरसनिहारि=खडित हो गई। ओल=अन्त।

अर्थ—तालाब सूख गया। कमल सूखकर झड़ गये। सूर्य प्रौढ हो गया, इसलिए पेड़ो मे नमी नही रही।

(पृथ्वी मे) दरारे दिखलाई पडती है, (जिससे) पाताल दिखलाई पड़ता है। हे मेघ! अब भी (तुम अपनी) धारा धारण नही कर रहे हो। (अर्थात्—अब भी तुम वर्षा नही कर रहे हो।)

हे मेघ! (पृथ्वी का) सारा जल-रूपी धन चला गया (खत्म हो गया; किन्तु तुमने कृपा नही की। यह उचित नही है। कारण,) बड़े आदमी दूसरे का दु.ख देखकर (अवश्य) कृपा करते है।

(तालाब के पास) अनेक प्यासे पथिक आते है, (किन्तु उसमे पानी नहीं रहने से) तुम्हारे विचार को देखकर (वे) दु खी हो जाते हैं।

(तालाब को देखकर पथिको की) लौटी हुई आशा भी खण्डित हो जाती है। (अब तुम्ही) कहो कि यह गाली (अभिशाप) किसे मिलेगी ?

किसके हृदय मे रोष नही पैदा होता है ? (किन्तु) अन्त तक (रोष) किये रहना ही दोष है। (अर्थात्—सर्वदा रोष किये रहना उचित नहीं है।)

विद्यापति कहते है—लखिमा देवी के स्वामी रस-मर्मज्ञ राजा शिवसिंह (इसे) समझते है।

मालव—

[२३]

करह रङ्ग पररमनी साथ[1]
तकरि अनाइति तोहें[2] पए नाथ।
से सबे परके[3] कहहिं[4] न जाए
सूनाहुँ चिन्ता सेज ओछाए ॥ध्रु०॥
माधव आओर कि कहब तोहि
धनि देखलें मन धाधसि मोहि।
दिन दुइ चारि जिउति महिँ लागि
सबतह खरि विरहानल आगि॥
से तनु जारि करतें[5] जनि छाए
पुछओं[6] काहितह[7] हों[8] पलटाए ॥६१॥

राम० पृ० २० (क), प० ६१, प०२

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ८१८)—२ तोहे। ३ परके। ४ कहनि। ६ पुछओ। ७-८ काहित हहो।

ठा० (पद-सख्या २२)—१ साथँ। ५ करत। ७-८ काहित द हहो।

सं० अ०—५ करत।

शब्दार्थ—रङ्ग=विलास। तकरि=उसकी। अनाइति=परवश। नाथ=समर्थ। सूनाहुँ=एकान्त मे। धाधसि=भय। महिँ=पृथ्वी। खरि=तीक्ष्ण। जनि=स्त्री। छाए=राख।

अर्थ—(हे कृष्ण!) वह परवश है, (किन्तु) तुम समर्थ हो—स्वतन्त्र हो। (इसीलिए) पराई स्त्री के साथ रमण कर रहे हो।

ये सब (बाते) दूसरे को कही भी नही जा सकती। एकान्त मे सेज बिछाने पर भी (सेज बिछाकर सोने पर भी) चिन्ता होती है। (अर्थात्—एकान्त मे सेज बिछाने पर भी उसे निद्रा नही होती है। मुझे इसी की चिन्ता बनी रहती है।)

हे माधव! तुम्हे और क्या कहूँ? नायिका को देखने से मन मे मुझे भय हो रहा है। (अर्थात्—उसके प्राण बचेगे या नही,—इसका भय हो रहा है।)

(अब वह) पृथ्वी के लिए दो-चार दिन ही जीयेगी। (अर्थात्—दो-चार दिन के लिए ही उसका जीवन है। कारण,) विरहानल की आग सबसे (बढकर) तीक्ष्ण होती है।

वह शरीर को जलाकर (उस) स्त्री को राख कर देगी। इसीलिए, तुमसे पूछती हूँ कि किस प्रकार (उसके प्राण) लौटाये जा सकते है?

मालव—

[२४]

बान्धल हीर अजर लए हेम
सागरतह हे गहिर छल पेम।
ओउ भरल ई गेल सुखाए
लाह[१] बलाहें[२] मेघें[३] भरि जाए।।ध्रु०।।
साजनि एतबा माङ्गओ तोहि।
मोरहुँ अएलें (रखिहसि मोहि।
नल थल घर बाहर सम नेह
आरसि कए) मोर देखितह देह।।
गत परान भेलें[४] जा लाज
भलि नहि अनुवद अपद अकाज।
मालति मधु मधुकर ले पोछि
वाहु[१] करत[२] हरि[३] अइसनि ओछि।।

राम० पृ० २० (क), प० ६२, पं० ५

पाठभेद—

ठा०—१ नाह। २ बलाहे। ३-४-५ कबहुँ हरि।

विशेष—यह पद नेपाल-पदावली में भी है। अत, इसके लिए प्रथम भाग का ४० सख्यक पद देखिए।

श्रीराग—

[२५]

कमल कोष तनु कोमल हमारे
दिढ[1] आलिङ्गन सहए के पारे।
चापि चिबुक हे अधर मधुर पीबे
कओने[2] जानल हमे[3] उबरब[4] जीवे ॥ध्रु०॥
पुरुष निठुर हिअ सहजक भावे
नोनुआ[5] अङ्ग मोराँ[6] नखखत लावे।
तखनक[7] वेदन कहहि न जाइ[8]
मञे[9] मरितहुँ ताहि तिरिबध लाइ[10] ॥
ए कपटिनि सखि कि बोलिबो तोही
हाथ बान्धि कुअ[11] मेललह मोही।
भनइ विद्यापति सुनहु मुरारि
पहु अवलेपए दोस विचारि ॥

राम० पृ० २०, प० ६३, प०२

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या २८२)—१ दिढ। २ कओने। ३-४ हमेउ धरव। ५ नोनुआ। ६ मोरा। ७-८ तखाक . . . मने। ९ पाठाभाव। ११ कुअँ।

ठा० (पद-सख्या २३)—१ दिढ़। ३-४ हमेउ धरव। ५ नोनुआ। ६ मोरा। ७-८ तखनक ..... । ११ कुअँ।

शब्दार्थ—कोष=कली। के=(कके) किस प्रकार। चापि=दबाकर। चिबुक =ठुड्डी।

सं० अ०—६ मोरा। ८ जाई। ९ मोञ। १० लाई।

मोनुआ=लावण्यमय=सुकोमल। लाइ=लगता। बोलिबों=बोलूँ=कहूँ। कुअ= कूप। मेललह्=डाल दिया। पहु=प्रभु=स्वामी। अवलेपए=अनादर करता है।

अर्थ—कमल की कली के समान मेरा शरीर कोमल है। (वह) किस प्रकार दृढ आलिंगन सहन कर सकता है?

(वे) ठुड्डी को दबाकर अधर-मधु का पान करते है। कौन जानता था कि हमारे प्राण बचेंगे।

पुरुष का हृदय निष्ठुर होता है। (निष्ठुर होना उसका) सहज (जन्मजात) भाव है। (इसीलिए वे) मेरे सुकोमल अङ्गों पर नखक्षत करते हैं।

उस समय की पीडा कही नही जाती। (यदि) मैं मरती (तो) उन्हें स्त्रीवध (का पाप) लग जाता।

हे कपटिनि सखी! तुम्हे क्या कहूँ? (तुमने) हाथ बाँधकर मुझे कुँए मे डाल दिया।

विद्यापति कहते हैं—हे कृष्ण! सुनिए। स्वामी दोष का विचार करके (स्त्री का) अनादर करता है।

बरली—

[२६]

बिरला के[१] भल खिरहर सोम्पलह्
दूध रहलि अछ डाढी।
दधि दुध घोर घीव सबो खए(ल)क
सगरि रअनि सुखे खएलक काढी॥ध्रु०॥
चेतन अबहुँ न चेतह अपाने।
अपनुक कुगति अपने नहि जानह
की उपदेसत आने॥
बटइ गराँ मुर बान्धि पठओलह्
भांनस तेलक माझे।
तेंहि बिरलवाने मुखसुखे खाएल
राति दिवस दुहु साझे॥

सं० अ०—१ आने।

मुन्दहर घर मुन्दहरिआ कएलह
मूस मानु सब छाडी[14]।
काटि संखारी खण्डे[15] खण्डे कएलक
सबे (धन) घएलक गाडी[16]॥
धेङ्गुल[17] बान्धि पटोरां घएलह
अइसनि तुअ परिपाटी।
पतरागी जओ[18] खण्डे खण्डे कएलक
मुखसुखें[19] हललक[20] काटी॥
गोबरें बान्धि बीछ घर मेललह
एकर होएत परिनामे[21]।
राजा सिवसिंह रूपनराएन[22]
लखिमा देवि रमाने॥

राम० पृ० २१ (क), प० ६४, प० १

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ८३)—१ के। २ बहलि। ३ अच्छडाढ़ो। ४-५ सओख-एक। ६ काढी। ७ जत न। ८-९ उपदेस अआने। १०-११ गराम्बर। १२ माझे। १३ सुख मुखे। १४ छाडी। १५-१६ काटि संखा विख········वेघ प्रलक गाडी। १७ घेन्दुल। १८ जओ। १९ मुस मुखे। २० हुतलक। २१ परिणामे। २२ रूपनरायण।

ठा० (पद-संख्या २४)—१ कें। २ बहलि। ३ डाढी। ४-५ सओ खएक। ६ काढी। ७ जतन। ८-९ उपदेस अआने। १०-११ गरांम्बर। १३ सुख मुखें। १४ छाडी। १५-१६ काटि सखा विख· ·· वेघएलक गाडी। १९ मुष मुख। २२ रूपनरायन।

शब्दार्थ—बिरला कें=विलाव को। खिरहर=मिट्टी का बना वह वस्तुविशेष, जिसमे बरतन रखकर दही जमाया जाता है। अचेतन=अज्ञानी। डाढी=दूध औटने के बाद उसका जो अंश बरतन मे लगा रह जाता है। रअनि=रात। अपाने=अपने को। आने=दूसरा। बटइ=(वार्त्तीक-सं०) बटेर=एक पक्षी। गरां=गला। मुर=(मुण्ड-सं०) मूडी। भानस=(महानस—सं०) रसोईघर। बिरलबाने=बिलावने। मुखसुखें=मुख-सुखार्थं। मुन्दहरघर=वह घर, जिसमे बन्द करके वस्तुएँ रखी जाती हैं। मुन्दहरिआ कएलह=बन्द किया। मूस मानु=चूहे

स० अ०—२२ रूपनारायेन।

की माँद। मंखारी=बाँस की बनी पिटारी। गाडी=गाड़कर। वेङ्गुल=झिङ्गुर=तेलचट। पटोराँ=रेशमी वस्त्र में। पतरागी=पेटरागी=पेटू। मेललह=डाल लिया।

अर्थ—(तुमने) विलाव को अच्छी तरह खिरहर सौंप दिया। (उसका फल हुआ कि पहले उसमें) दूध था, (अब) डाढ़ी रह गई।

(विलाव) सारी रात मुख से काढ़कर घी के साथ दही, दूध (और) मट्ठा भी खा गया।

अरी नादान! अब भी अपने को नहीं चेतती है? अपनी बुरी दशा को स्वयं नहीं जानती है (तो) दूसरा क्या उपदेश देगा?

कंठ (और) मुँह बाँधकर बटेर को रसोईघर में तेल के बीच डाल दिया।

रात-दिन—दोनों शाम विलाव ने मुख-मुखार्य उसे खा लिया।

(तुमने) चूहे की सारी माँद छोड़कर भण्डार को (लीप-पोतकर) बन्द किया। (इसीलिए चूहे ने) मँखारी को खण्ड-खण्ड कर दिया (और) सारे (धन को) गाड़ रखा।

तुम्हारी ऐसी परिपाटी है कि (तुमने) तेलचट को रेशमी वस्त्र में बाँध रखा। (उसने) पेटू की तरह (रेशमी वस्त्र को) खण्ड-खण्ड करके मुख-मुखार्य काट डाला।

(तुमने) गोवर से बाँधकर बिच्छू को घर में डाल लिया। सो, इसका भी फल होगा (अर्थात्—इसका कैसा फल होगा,—सो समय आने पर समझोगी।) लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह रूपनारायण (इसे समझते हैं।)

विशेष—(क) तृतीय पंक्ति में 'खएलक' है, इसलिए चतुर्थ पंक्ति का 'खएलक' अधिक प्रतीत होता है। इससे छन्दोभङ्ग भी हो रहा है।

(ख) गोवर से बिच्छू की अभिवृद्धि होती है।

मालव—

[२७]

एकहिँ वेरिँ[1] अनुराग वढाओल
पञ्चवान भेल मन्दा।
अवर विस्ववत जे (1) ति न पलिछए
न होअए दिवसक चन्दा ॥ध्रु०॥
माधव तुअ गुने लुबुधलि राही।
पिअ विसरत मरनहुँ तह आगर
तोहे नागर सब चाही॥

सं० अ०—१ बेरि।

दुइ मन रभस तेसर नहि जानए ।
पर दए समन्दए न जाइँ ।
चिन्ताजे चेतन अधिक बेआकुल
रहलि सुमुखि रहलि सिर लाईं ।।
भनइ विद्यापति सुनह मधुर पति
तोहेँ छाडि गति नहि आने ।"
बिसवास देवि पति रस कोविन्दक
नृपति पदुमसिंह जाने ।।

राम० पृ० २१, प० ६५, पं० १

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या २०६)—२ बढाओल। ३ पञ्चबाण। ४ जेति। ५ गुणे। ७ जाइ। ८ चिन्ताए। ९ लाइ। १० छड़ि।

झा० (पद-संख्या २५)—२ बढाओल। ४ जेति। ६ तोहँ।

शब्दार्थ—पञ्चबान=कामदेव। अबर=अन्तरिक्ष। पलिछए=प्रकाशित होता है। दिवसक=दिन का। राही=राधा। आगर=(अग्र—सं०) बढकर। सब चाही=सर्वापेक्षया=सबसे बढकर। रभस=रहस्य। चेतन=आत्मा। लाई=झुका लिया। रस कोविन्दक=(रसकोविद—स०) रसज्ञ।

अर्थ—(नायिका ने) एक बार ही अनुराग बढाया (कि) कामदेव मन्द हो गया।

(इसीलिए वह) अन्तरिक्ष के बिम्ब (चन्द्र-मण्डल) के समान ज्योति नही प्रकाशित करती है। (वह) दिन का चन्द्रमा हो रही है।

हे माधव ! राधा तुम्हारे गुणो से लुभा गई है।

(किन्तु तुम उसे भुला बैठे हो। हाय!) प्रिय का विस्मरण मरण से भी बढकर होता है। (फिर) तुम तो सबसे बढ़कर नागर हो। (तुम्हारे विस्मरण का क्या कहना !)

दो मनों के (परस्पर मिलन के) औत्सुक्य को तीसरा नही जानता है। दूसरे के द्वारा संवाद भी नही दिया जा सकता है।

चिन्ता से (उसकी) आत्मा अत्यन्त व्याकुल है। (इसीलिए) सुमुखी ने सिर झुका लिया है (अर्थात्—सुमुखी चिन्ता से सिर झुकाये बैठी है।)

विद्यापति कहते हैं—हे मथुरापति ! सुनो। तुम्हे छोडकर (उसकी) दूसरी गति नही है।

स० अ०—८ चिन्ताए। ११ आने।

विश्वास देवी के पति रसज्ञ राजा पद्मसिंह (इसे) जानते है।

विशेष—चतुर्थ पक्ति का 'न' और ग्यारहवी पक्ति की एक 'रहलि' अधिक प्रतीत होते है।

बराली—

[२८]

करहिँ[1] मिलल रह मुख नहि सुन्दर
जनि अवसिन[2] दिन[3] चन्दा।
प्रकृति न रह थिर नअने[4] गलए[5] निर
कमलें[6] झरए[7] मकरन्दा।।ध्रु०।।
माधव तुअ गुनें[8] झामरि वामा[9]।
दिन दिन[10] खिन तनु पिडए[11] कुसुमधनु
हरि हरि ले पए नामा।।
निन्दए[12] चान्दन[13] परिहर भूषन[14]
चान्द मानए जनि आगी।
तें[15] धनि दसमि दसा लग पाओल[15]
बधक होएब[16] तोहें[17] भागी।।
अवसर गेलें[18] कि नेह बढाओब[19]
विद्यापति कवि भाने[20]।

राम० पृ० २१, पद० ६६, प० ४

पाठभेद—

न० गु० (पद-संख्या ७८१)—१ करहि। २ खिन। ३ दिवसक। ४ नयन। ५ गरय। ६ कमल। ७ गरए। ८ गुणे। ९ रामा। १० दिने दिने। ११ पिडए। १२ निन्दय।। १३ चन्दन। १५ दसमि दसा आबे तें धनि पाओल। १६ होएबह। १८ बहला। १९ बढाओब। अन्त मे निम्नँ-लिखित पक्तियाँ है।—

राजा सिवसिंह[1] रूपनरायन[2]
लखिमा देवि[3] रमाने[4]।।

सं० क०—१ करहि। ४नअने। ५ गरए। ६ कमल। १३ चन्दन। १८ बहला। अन्त में—राजा सिवसिंह रूपनराअेन लखिमा देवि रमाने।।

मि० म० (पद-संख्या १८४)—१ करहि। २ खिन ३ दिवसक। ४ नयन। ५ गरअ। ६ कमल। ७ गरए। ८ हे माधव तुअ गुणे। ९ रामा। १० दिने दिने। ११ पिडए। १२ निन्दअ। १३ चन्दन। १४ भूसन। १५ दसमि दसा अब तें घनि पाओल। १६ होएबह। १७ तोहे। १८ बहला। १९ बढ़ाओब। २० मान। अन्त मे न० गु० की अन्तिम पक्तियाँ है, जिनका पाठभेद इस प्रकार है—१ सिवसिंघ। २ रूपनराअन। ३ देइ। ४ रमान।

ठा० (पद-सख्या २६)—१९ बढाओब।

शब्दार्थ—करहिँ=हाथ मे। अवसिन=अवसन्न=उदास। प्रकृति=स्वभाव। निर=नीर=आँसू। झामरि=सूखकर स्याह पड गई है। वामा=सुन्दरी। तनु=शरीर। कुसुमधनु=कामदेव। दसमि दसा=मृत्यु। लग=समीप।

अर्थ—(दूती कृष्ण से बाट जोहती नायिका का वर्णन करती है कि उसका) मुँह हाथ पर ही टिका रहता है। (इसलिए वह) सुन्दर नही (प्रतीत होता है। मालूम होता है,) जैसे (वह) दिन का उदास चन्द्रमा हो।

(उसकी) प्रकृति स्थिर नही रहती है (और) आँखो से आँसू झरते रहते हैं। (मालूम होता है, जैसे) कमल से मकरन्द झर रहा हो।

हे माधव! तुम्हारे गुणो से (अर्थात्—तुम्हारे गुणो से आसक्त होकर) सुन्दरी सूखकर स्याह पड़ गई है।

(उसका) शरीर दिन-दिन (क्रमश.) खिन्न होता जा रहा है। कामदेव (उसे) पीडा दे रहा है। (वह) 'हरि-हरि' (कहकर तुम्हारा) नाम ले रही है।

(वह) चन्दन की निन्दा करती है। (उसने) आभूषण का परित्याग कर दिया है। (वह) चन्द्रमा को (इस प्रकार) मानती है, जैसे (वह) आग हो।

वह धन्या मृत्यु का सामीप्य पा चुकी है। (अर्थात्—विरहिणी मृत्यु के समीप जा पहुँची है। यदि अब भी नही जाओगे तो) तुम वध के भागी हो जाओगे।

कवि विद्यापति कहते है कि (हे कृष्ण!) अवसर बीत जाने पर स्नेह क्या बढाओगे? लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह रूपनारायण (इसे जानते हैं।) (अर्थ—संपादकीय अभिमत से।)

सामरी—

[२९]

गाए[1] चराबह गोकुल वास
गोपक सङ्गे[2] जन्हिक परिहास।
अपनेहुँ गोप गरुअ की काज
गुपुते[3] बोलसि मोहि बडि[4] लाज॥ध्रु०॥

दूती बोलसि कान्ह सञो केलि
गोपवधू सञो जन्हिका मेलि॥
गामहिं बसलें बोलिअ गमार
नगरहुँ नागर बोलिअ सार।
बसथि बथान झालि दुह गाए
तें की बिलसब नागरि पाए॥
आदि अन्त दुहुँ देलक गारि
विद्यापति भन बुझथि मुरारि॥

रामo पृo २२ (क), पo ६७, पo२

पाठभेद—

छाo (पद-संख्या२७)—१ गाय। २ सञ्जें। ३ गुपुते। ४ बढि। ५ कान। ६ संसार। ७ तैं। ८ दुहु।

विशेष—यह पद 'नैपाल-पदावली' मे भी है। अतः, इसके लिए प्रथम भाग का १२४ सख्यक पद देखिए।

सुहव—

[३०]

कुचजुग धरए कुम्भथल कान्ति
बाङ्क नखर खत आङ्कुस भान्ति।
रोमावलि हें सुण्ड अनुरूप
पानि पिअए चल नाभी कूप॥ध्रु०॥
देखह माधव कए निअ साज
बालाँ चललि जौवन गजराज।
मदन महाउतें कएल पसाह
लीलाञें नागर हेरए चाह॥

संo अo—५ निव। ६ चलल। ८ लीलाए।

पुनु लोचनपथ सीम न आउ
सैसव राजा[10] भीति[11] पराउ।
विद्यापति भन बुझ रसमन्त
राए सिवसिंह लखिमा देवि कन्त।।

राम० पृ० २२ (क), पृ० ६७, प० ५

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या १९)—१-२ नगसुण्डके। ३ अनरूप। ४-५ कएलिअँ। ६ वाला चलति। ८ लीलाओ। ९ हेरय। १०-११ राजभीति।

झा० (पद-सख्या २८)—१-२ नगसुण्ड के। ४-५ कएलिअँ। ६ वाला चललि। ७ महाउतें। १०-११ राजभीतिँ।

शब्दार्थ—कुम्मथल=(कुम्भस्थल—सं०) हाथी के मस्तक का ऊँचा भाग। कान्ति=शोभा। बाङ्क=(वक्र—स०) टेढा। नखर खत=नखक्षत। निअँ=अपना। पसाहु=(प्रसाधन—सं०) शृंगार। लीलाजे=विहार के लिए। भीतिँ=भय से। पराउ=भाग गया।

अर्थ—(नायिका के) कुचयुग (हाथी के) कुम्भस्थल की शोभा धारण कर रहे हैं (और उनपर लगे हुए) वक्र नखक्षत अकुश के समान है।

(उसकी) रोमावली शुण्ड-सदृश है। (मालूम होता है, जैसे हाथी) पानी पीने के लिए नाभि-कूप को जा रहा है।

हे माधव! देखो। यौवनरूपी गजराज अपना साज करके (अर्थात्—सजधजकर) बाला मे जा रहा है। (अर्थात्—वाला मे यौवन का प्रवेश हो रहा है)।

कामदेव-रूपी महावत ने (उसका) शृंगार किया। (अतएव) नागर विहार (करने) के लिए (उसे) देखना चाहता है।

शैशव-रूपी राजा भय से भाग गया। (वह) फिर दृष्टिपथ की सीमा मे नही आया (अर्थात्—दिखलाई नही पड़ा।)

विद्यापति कहते है—लखिमा देवी के स्वामी रसज्ञ राजा शिवसिंह (इसे) समझते हैं।

श्रीराग—

[३१]

तुअ अनुराग लागि सअल रअनि जागि
तरु तर[1] तीन्तलि रामा[2] रे।

अलक तिलक मेटि केआदल³ भरि
लिहि गेल अपनुक नामा रे॥ध्रु०॥
चल चल माधव बुझल सरूप सब
वचन आन फल आन रे॥
जे नहि फले⁴ निरबाहए पारिअ
से बोलिअ कथि लागी।
से न करिअ जे पर उपहासए
धाए मरिअ बरु आगी॥
जिवओ जाए जग..........

राम० पृ० २२, पद ६८, पं० ३

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ८१३)—१ तल। २ वामा। ३ केअ देल। ४ फले।

ठा० (पद-सख्या २९)—१ तल। २ वामां।

शब्दार्थ—लागि=लिए। सअल=सकल=सारी। रअनि=रात। तीन्तलि=भीग गई। अलक-तिलक=(अलिक-तिलक—स०) प्रसाधन। केआदल=(कदली-दल—स०) केले का पत्ता। लिहि गेल=लिख गई। सरूप=सत्य-यथार्थ। कथि लागी=किसलिए।

अर्थ—रामा (रमणोत्सुका) तुम्हारा अनुराग लिये सारी रात जगकर पेड के नीचे भीगती रह गई।

(वह कस्तूरी, कुकुम आदि से किये गये) प्रसाधन को मिटाकर केले के पूरे पत्ते पर अपना नाम लिख गई। (अर्थात्—नायिका ने अपना नाम इसलिए लिख दिया कि यदि बाद में तुम जाओ, तो तुम्हे उसका नाम पढ़कर मालूम हो जाय कि वह आई थी।)

हे माधव! जाओ-जाओ। (मैंने) सब कुछ यथार्थ समझ लिया। (तुम्हारा) वचन कुछ और होता है (तथा उसका) परिणाम कुछ और होता है।

जिसका परिणाम मे निर्वाह नही किया जाय, किसलिए वह कहा जाय?

आग मे पैठकर मर जाना अच्छा है, (पर) वह (काम) नही करना चाहिए, जिसका उपहास दूसरे करे।

इससे बाद निम्नलिखित खण्डित पद है—

× × × र जानि कहब मओं ताही।
अपने मुखे अभिमत देति राही॥

सं० अ०—×

तोहें परपुरुस ओहओ परनारी।
दुहु कुल उचित पलओबह गारी ॥७६॥

मालव—

[३३]

जा भोअनें हो अइसन मन्द
अमिअ धार धरि बरिसए चन्द।
धाधि होए सब लोमक सान्ध
बैरिउ आगिं न मेलिअ बान्धि ॥ध्रु०॥
चल चल सुन्दरि कि बोलिबो तोहि
अइसन पेम जेअओ लओलह मोहि।
कुलिस पहारें जीव हल मारि
ता पाछें की करि(अ) गोहारि॥
अनुनअ दुजनाँ बुझल न मोर
देखलें मन पतिआएल तोर।
तोहें पररमनि हमर दिन दोस
आन्तर भल रह दूर परितोस॥

राम० पृ० २३ (क), प० ७७, प०-१

पाठभेद—

ठा०—१-२ भोअ नेहो। ३ जे। ४ करबि। ५ पेखलें।

शब्दार्थ—जा=जहाँ। भोअने=भोजन। मन्द=बुरा। अमिअ=अमृत। धरि=तक=पर्यन्त। धाधि=जलन। लोमक=रोएँ की। सान्धि=(सन्धि—सं०) छिद्र। आगिं=आग में। कुलिस=वज्र। पहारें=प्रहार से। गोहारि=गुहार। पतिआएल=विश्वस्त हुआ। आन्तर=(अन्तर-स०) भीतर।

अर्थ—जहाँ भोजन ही ऐसा बुरा हो (वहाँ यदि) चन्द्रमा अमृत की धारा ही बरसाता है (तो क्या? अर्थात्—पहले तुमने बुरा व्यवहार किया। अब वचन-रूपी अमृत से क्या सींचते हो?)

(तुम्हारे वचन से मेरे) सारे रोमकूप में जलन हो रही है। (इसलिए चुप रहो।) वैरी को भी बाँधकर आग मे नही डालना चाहिए।

अरी सुन्दरी! जाओ, जाओ। (तुमने) मुझसे जो ऐसा प्रेम किया,—(इसलिए मैं) तुमसे क्या कहूँ?

(तुमने) वज्र के प्रहार से (मेरे) जीव को मार डाला (अर्थात्—मेरे जीवन का अन्त कर दिया।) (अब) उसके बाद क्या गुहार कर रही हो।

दुर्जन (तुम) ने मेरा विनय-वचन नही सुना। (मुझे) देखने से ही तुम्हारा मन विश्वस्त हुआ। (अर्थात्—मेरी दशा देखकर ही तुम्हें मेरे वचन का विश्वास हुआ।)

तुम पराई स्त्री हो—(इसलिए अधिक क्या कहूँ? यह) मेरा दिन-दोष (दिन का फेर) है। (अब दोनो मे) अन्तर ही अच्छा रहेगा। (मन मे) सन्तोष करो।

धनछी—

[३४]

कोपे[१] कपटे[२] कएल माने
बाङ्क निहारि कएल समधाने।
तथिहु नाथ भेल अबे वामे
सिव सिव कइसन होएत परिनामे ।।ध्रु०।।
(चल चल दूती) कि[३] कहब तोहि[४]
कत उपताप उपजु[५] मन मोही ।।
सोझ दरस अबे हासे
अपनहिँ कण्ठ कठिन भुजपाशे ।।
पढाबने पामरि रीती
(किदहु) अधिक गुन जे[६] पहु पिरीती।
विद्यापति कवि वानी
नाह अचेतन नारि सआनी[७] ।।

राम० पृ० २३ (क) प० ७८, पं०५

पाठभेद—

ठा०—१ पाठाभाव। २ पाठाभाव। ३ पाठाभाव। ४ तोही। ५ उपज। ६ पाठाभाव।

सं० अ०—४ तोही। ७ सआनी।

शब्दार्थ—बाङ्क=वक्र। तथिहु=तथापि=फिर भी। वामे=विरुद्ध। सोझ दरस=सद्य दर्शन। पढावबे=पढ़ाती है। पामरि=गँवारिन।

अर्थ—(मैंने) कपट-कोप से मान किया; (किन्तु स्वामी को) वक्र देखकर (उसका) समाधान कर दिया। (अर्थात्—मेरा मान वास्तविक नही, केवल कपट था। स्वामी को वक्र देखकर मैंने उसे भी छोड दिया।)

फिर भी स्वामी विरुद्ध हो गये। शिव-शिव! (इसका) कैसा परिणाम होगा?

(अरी दूती! जाओ, जाओ।) तुम्हें क्या कहूँ (कि) मेरे मन मे कितना उपताप हो रहा है?

(यद्यपि) सद्य दर्शन होने पर अब (वे) हँसते है, (तथापि मैं क्या करूं? उन्होने) स्वय (मेरे) कण्ठ मे बन्धन (डाल दिया है।)

(तुम मुझे) गँवारिन की रीति पढाती हो। (मुझमे क्या) अधिक गुण है, जो स्वामी प्रीति करेंगे?

कवि विद्यापति का कहना है कि स्वामी ज्ञानहीन है, नायिका ही सयानी है।

विशेष—छन्द मे भेद होने के कारण अन्तिम छह पक्तियाँ दूसरे पद की प्रतीत होती हैं। इसीलिए, पूर्वापर मे अर्थ-सगति भी नही हो रही है।

सुहब—

[३५]

केतकि कुसुम आनि विरचि विविध वानि
चौदिस साजल साला।
घृत मधु दुध[1] दए[2] नेते[3] बाती कए
चौदिसँ[4] देलक दिपमाला[5] ।।ध्रु०।।
माधव सबे काज अइलहुँ साही।
गुरु गुरुजन डरे[6] पुछिओ न पुछलक
सङ्केत कएलक सुन ताही।।
तरनि अन्त गेल[7] चान्द उदित भेल
अति ऊजरि निसा देखी।
गगन नखत लाथे[8] लिहलक निअ[9] हाथे[10]
स्वर[11] सवो[12] ससधर रेखी।।

राम० पृ० २३, प० ७९, पं० ३

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ८१२)—१-२ दुघए। ३ नेते। ४ चौदिस। ५ जिपमाला। ६ डरे। ७ अस्त भेल। ८ लाखें। ९ निहलक निअ। १०-११ सुरसओ।

ठा० (पद-सख्या ३०)—५ जिपमाला। ७ अस्त भेल। ९ निहलक निअ।

शब्दार्थ—केतकि=केवडा। बानि=(वर्ण—स०) प्रकार। साला=(शाला—स०) घर। नेतें=(नेत्र—सं०) रेशमी वस्त्र। बाती=बत्ती। साही=सँभालकर। तरनि=(तरणि—स०) सूर्य। ऊजरि=उजली=स्वच्छ। निसा=रात्रि। गगन=आकाश। नखत=नक्षत्र। लाथें=व्याज से। ससधर=चन्द्रमा=एक की सख्या। लिहलक=लिखा।

अर्थ—(नायिका ने) केवडे का फूल लाकर अनेक प्रकार से चतुर्दिक् (अपने) घर को सजाया।

घृत, मधु (और) दूध देकर, रेशमी वस्त्र की बत्ती (बना) कर चतुर्दिक् दीपमाला दी। (अर्थात्—नायिका ने अपने प्रियतम के स्वागत की सारी तैयारी कर ली।)

हे माधव! (मैं) सब काम सँभाल आई। श्रेष्ठ गुरुजनो के डर से (उसने) पूछने पर भी (कुछ) नही पूछा। (अर्थात्—मेरे पूछने पर भी गुरुजनो के डर से उसने कुछ उत्तर नही दिया, किन्तु जो) सकेत किया, सो सुनो।

सूर्य अन्त पर जा पहुँचा, चन्द्रमा का उदय हो गया। (इसलिए) अत्यन्त स्वच्छ रात्रि को देखकर—

स्वर से चन्द्रमा की रेखा देकर (उसने) अपने हाथ से आकाश मे नक्षत्र के व्याज से लिख दिया।

विशेष—अन्तिम दो पक्तियो का अर्थ विचारणीय है। इसके बाद निम्नलिखित छह खण्डित पद हैं—

(की क)रब रूप गुन की अनुबन्ध
की करब केलिकला निरबन्ध।
जत रह भाग त(तहि रह) लोर
कतें दिने पुरत मनोरथ मोर॥ध्रु०॥
एत दिन से पिआ ज इसन अआन
(अइ . . .) सनि जैसनि सआन।
कतए मनो(र)थ कतएक आन।
. . . . ॥८०॥

वसन्त—

जाहाँ सुनिए. . . .उदित चन्द
ताहाँ. . . . . ।
. . . .
. . . . .घार ॥ध्रु०॥

रितुराए अब गए .... ञ्जह रङ्ग
......................।
....
....नहि गेल ॥८१॥
....
...............आँखिहु नहि केला
मण्डल चापि चुम्बिले तरनि मण्डल नाथे ॥८२॥
.......................।
...............गेल दूर।
रातिहुतह दिन भेल अन्धार
धनि साजल वासर अभिसार॥
....
.............भेल हरास।
घोर असनि धुनि सुनि पथें पाए
कामिनि पिअतम गिम घर धाए॥८३॥
अपने मान पिअ पर.......
....

नाट—

अपन मान पिअ पर.....ह
अरथिते आङ्क ममोलए
गरब गह गमारी ॥ध्रु०॥
रे रे सुन्दरि बिलम्ब न करबे
बिलम्ब कएलें..........।
नाथ मनोरथ र.........
..................॥
मनसिज जर जाड निवारए
सुविढ तन्हि कि आसा।
जखने ओ परिरम्भन पावए
तखने तेज निसासा॥
तबे अभिसारिनि (अति) निकाटनि
आरते रतल कान्ह।
खने एके बेरि रस निहारए
तुअ पथ परिमाने ॥८४॥

श्रीराग—

गुन अबगुन बिसे पलए जानए
दासी.......अ ताकहुँ।
ई रस..........सम जानए
नागर महुँ बराक॥ध्रु०॥
साजनि बिसरि मधु पिआस।
कासक कुसुम भमर बैसल
मलीन वदन हास
....
कोर कदम्बक कीर।
दुरें दुरें से लेइ परिमल
मधु छाडि पिब नीर॥
भन विद्यापति सुन.........
................।
राए सिवसिंह रूपनराएन
पुरुष ई बड दोस॥८५॥

बराली—

[३६]

कत नहि कुसुम कतें रस जाग
तन्हिकाँ तोहर अइसन अनुराग।
मौललि[1] माञ्जरि न करए पान
तोहि मानए जनि दोसर परान॥ध्रु०॥
केतकि भमरा दे उपराग
मधु मङ्गइतें मुह[2] पलए पराग॥
ज़कराँ जे बिनु नहि परकार
से जओ करए तकर (परिहार)।
पातक कोटि छोटि मति[3] मोरि
आओ की कहबि मञे महिमा तोरि॥८६॥

राम० पृ० २५, प० ८६, पं० २

सं० अ०—१ मउललि। २ मुंह। ३ मोन।

शब्दार्थ—मौललि=मुरझाई हुई। जाग=प्रत्यक्ष। उपराग=उलहना। पलए=पडता है। परकार=(प्रकार—सं०) उपाय। पातक=पाप।

अर्थ—कितने फूलो मे कितने रस प्रत्यक्ष नही हैं? (अर्थात्—कितने ही फूल हैं और उनमे रस भी प्रत्यक्ष है। फिर भी) उसको (भौरे को) तुम्हारा ऐसा अनुराग है।

(वह) मुरझाई मजरी का (रस) पान नही करता है। तुम्हे ही दूसरे प्राण के समान मानता है।

हे केतकी! भौरा उलाहना दे रहा है (कि) मधु माँगने पर (उसके) मुँह मे पराग (जा) पडा।

जिसको जिसके विना (कोई) उपाय नही है (अर्थात्—जिसके विना जो नही रह सकता है), वह यदि उसका (परिहार) करे (तो)—

मेरी छोटी बुद्धि है (अर्थात्-मेरी छोटी बुद्धि के अनुसार उसे) कोटियो पातक लगते है। (इससे अधिक) मैं तुम्हारी और महिमा क्या कहूँ?

विशेष—यह पद अन्यत्र नही है। इसीलिए पाठभेद नही दिया गया।

बराली—

[३७]

धाराधर जओ बरिसओ[1] सार
तेहि रअनि[2] (सम) दिवस अन्धार[3]।
निकटहुँ काहु नही केओ देख
एखने कहाँ के करत विसेख॥ध्रु०॥
साजनि कर अभिसारक साज
दिनहि समागम सपजओ काज॥
गुरुजन दुरजन डर कर दूर
बिनु साहसेँ आसा नहि पूर।
एहि संसार सार बथु सेह
तिला एक मेलि जाब जिव नेह॥

राम० पृ० २६ (क), प० ८७, पं० १

सं० अ०—१ बरिसए। २ रअनि। ३ अन्वर।

शब्दार्थ—धाराधर=मेघ। सार=(आसार—स०) मूसलधार वृष्टि। रअनि=रात्रि। सपजओ=पार लग जाय। बथु=वस्तु। जिव=जीव=जीवन।

अर्थ—मेघ जैसे मूसलधार वृष्टि कर रहा है। इसीलिए, दिन मे भी रात्रि के समान अन्धकार है।

समीप मे भी कोई किसी को नही देखता है। अभी कहाँ कौन अधिक (खोज) करेगा?

हे सखी! (झटपट) अभिसार सजाओ। दिन मे ही समागम का कार्य पार लग जाय।

गुरुजन (और) दुर्जन का डर दूर करो। विना साहस से आशा नही पूरी होती है।

इस संसार मे यही सार वस्तु है। क्षणमात्र के लिए मिलन होता है; (किन्तु) आजीवन स्नेह (रहता है।)

विशेष—यह पद अन्यत्र नही है। इसीलिए पाठभेद नही दिया गया।

बराली—

[३८]

एहि पुर पाटन के नहि सञ्चर
के नहि मदनक दासे।
काहुक कहिनि कतओ नहिं सूनिअ
हमरे पए उपहासे॥ध्रु०॥
के जान कओन बोल बोलए कुतुकिनी
दूखन हमर पए लावे॥
कतएक तन्हिकर कुचजुग सिरिफल
कतए हमर नखरेखा।
कण्टक माझ कुसुम गए तोलक
नवि नारि न बुझ बिसेखा॥
गोपक नन्दन गाए चरइतहुँ
रहितहुँ पसुक समाजेँ।
नागरि जन सओ मेलि न कएले
उतर देब कओने लाजेँ॥

राम० पृ० २६ (क), प० ८९, पं० ४

शब्दार्थ—एहि=इस। पुरपाटन=(पुर-पत्तन-स०) नगर। कहिनि=कहानी। कुतुकिनी=विनोदिनी=मजाक करनेवाली। दूखन=कलङ्क। सिरिफल=(श्रीफल-स०)वेल। कण्टक=काँटा। तोललक=तोडा।

अर्थ—इस नगर मे कौन नही आता-जाता है, (और उन आने-जानेवालो मे) कौन कामदेवं का दास नही है?

(किन्तु) किसी की कहानी कही नही सुनाई पडती है। (केवल) मेरा ही उपहास होता है।

कौन जानता है (कि) मजाक करनेवाली (सखियाँ) कौन-सी बोल बोलती है (और) मुझपर कलङ्क लाती हैं?

(कहिए तो भला,) कहाँ उसका कुचयुग-रूपी श्रीफल (और) कहाँ मेरी नखरेखा? (अर्थात्—दोनो मे सयोग होना असम्भव है।)

नई-नवेली नारी अधिक नही समझती है। (इसीलिए उसने) काँटो के बीच जाकर फूल तोडा। (अर्थात्—काँटो मे जाकर फूल तोडने के कारण ही उसके स्तनो मे खरोंच लगी।)

(मैं) ग्वाले का पुत्र हूँ, गाये चराता हूँ, पशुओ के साथ रहता हूँ। (मैंने) नागरीजनो से (कभी) मेल नही किया। (फिर मैं) लज्जावश कौन-सा उत्तर दूँगा?

विशेष—(क) यह पद अन्यत्र नही है। इसीलिए पाठभेद नही दिया गया।

(ख) ध्रुपद के बाद एक पक्ति की छूट प्रतीत होती है।

धनछी—

[३९]

की भेलि कामकला मोरि घाटि
की ओहे न बुझए रस परिपाटि।
ता खर वचन कन्ते दिहु कान
तें बिहिँ करु मोर समअ बधान॥ध्रु०॥
भमर हमर किछु कहब सन्देस
कन्त वसन्त न रहब (विदेस)[1]॥
कीदहु भमर ततए नहि नाद
पिक पञ्चम धुनि मधुर न नाद।
की धनु बान मदन नहि साज
की बिरहा नहि विरहि समाज॥

राम० पृ० २६, प० ८९, प० ३

सं० अ०—८ साद।

पाठभेद—

सि० म० (पद-सख्या ८२०)— १ कि। २ तीखर। ३ ते। ४ बिहि। ५ रहा। ६ दुर देस। ७ कीदहुँ। ९ विरही।

ठा० (पद-सख्या ३१)—१ कि। २ तीखर। ५ रह। ६ दुरदेस। ७ कीदहुँ। ९ विरही।

शब्दार्थ—घाटि = घटी = न्यून। ओहे = वे ही। ता = इसीलिए। खर = (खल—स०) पिशुन। दिहु = दिया। समअ = समय। बधान = व्यवधान। नाद = शब्द करता है। बिरहा = एक राग, जिसे विरही जन गाते है।

अर्थ—क्या मेरी कामकला घट गई? क्या वे ही रस-परिपाटी नही समझते?

क्या इसीलिए स्वामी ने पिशुन के वचनो पर कान दिया? इसीलिए, विधाता ने (उनसे) समय पर मेरा व्यवधान कर दिया।

हे भ्रमर! (उनसे) मेरा कुछ सन्देश कहना। (कहना कि) वसन्त मे (किसी के) स्वामी विदेश मे नही रहते।

क्या भ्रमर वहाँ शब्द नही करते हैं? (क्या) कोयलें (वहाँ) पंचम स्वर मे मधुर नाद नही करती हैं?

क्या कामदेव (वहाँ) धनुष-बाण सज्जित नही करता? क्या विरहियो के समाज मे (वहाँ) विरहा नही (गाया जाता है? अर्थात्—ये सब वहाँ भी होते हैं। इसलिए, उन्हे आना ही चाहिए।)

विशेष—इसके बाद ३६ पृष्ठ नही है। फिर, निम्नलिखित खण्डित पद है।

....
....न परानक ओला।
नदिआ जोरा भेल अथाहे
भीम भुअरङ्ग पथ चल (लाहे)॥
दभ अङ्कुरे दन्तुर भउ भूमा
....................।
.....(दा)दुन दादुर घन रावे
आगु न चल अभिसारिनि पावे
गुरुगृह छाडि सअनगृह जाथी
तठमाहि कुलबहु (सङ्का आथी॥१५८॥)

बराली—

[४०]

सगरिउ रअनि चान्दमअ हेरि
मने मने धनि पुलकलि कत बेरि।

कालि दिवस सओ होएत अन्धार[3]
अपने मनें[4] हे करब हे अभिसार॥ध्रु०॥
सखि मओं[5] की कहब हृदअ[6] जत रास[7]
अपनेहिं[8] निधि आइलि जनि पास॥
एकरूप रह जुग बहि जाए
तें गुन गौरवें[9] एहे उपाए।
खण्डि[10] निसाकर गरसओ राहु
हो नहि दुख विरही जन काहु॥
विद्यापति भन सुन[11] वरनारि
अवसर जानि (जे) मिलत मुरारि।
राजा रूपनराएन जान
राए सिवसिंह लखिमा दे[12] रमान॥

राम० पृ० ४७ (क), प० १५९, प० ३

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या १०३)—१ सगरिओ रअनि। २ चान्दमय। ३ आन्धार। ४ सु...। ६ हृदय। ७ वास। ८ अपनेहिं। ९ गौरवे गुण। १० खान्त। ११ सुनु। १२ देवि।

झा० (पद-संख्या ३२)—१ सगरिओ रअनि। ४ सु...। ७ वास। ८ अपनेहिं। १० खान्त। ११ सुनु। १२ देवि।

शब्दार्थ—रास=(राशि—सं०) ढेर। निधि=खजाना। बहि जाए=बीत जाय। खण्डि=खण्डित करके।

अर्थ—चन्द्रमय सारी रात देखकर (अर्थात्—पूर्णिमा की रात आने पर) धन्या मन-ही-मन कितनी बार पुलकित हुई।

कल से ही अँधेरा होगा। (फिर तो मैं) अपने मन से ही अभिसार करूँगी।

हे सखी! हृदय मे (अभिलाषाओं का) जितना ढेर है, (सो मैं) क्या कहूँगी। (मालूम होता है, जैसे अभिलाषाओ का) खजाना स्वय समीप आ गया है।

युग बीत जाता है; (किन्तु चन्द्रमा) एकरूप रह जाता है। (अर्थात्—वह चमकता ही रहता है।) इसलिए उसके गुण-गौरव का यही उपाय है (कि)—

सं० अ०—रअनि। ३ अन्धार। ५ मोब। ९ गुन गौरवें।

राहु चन्द्रमा को खण्डित करके ग्रस ले, (जिससे) किसी विरही जन को दु:ख नही हो।
विद्यापति कहते हैं—हे वरनारी! सुनो। कृष्ण अवसर जानकर मिलेंगे।
लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह रूपनारायण (इसे) समझते है।
विशेष—चतुर्थ पंक्ति का दूसरा 'हे' अधिक प्रतीत होता है।

सुहवरागे—

[४१]

बरख दोआदस लगलाह जानि
कताँ[1] जलासअँ पिउलन्हि पानि।
जानल हृदअ[2] भेल परिताप
तें[3] नहि गनले परतर पाप ॥ध्रु०॥
साजनि कि कहब कहइतें[4] लाज
अनुदिने भेल ची···(स)म[5] काज॥
प्रथम समागम दरसन लागि
बारिस रअनि[6] गमाउलि[7] जागि।
पवनहुँ सओं[8] कएलन्हि[9] अवधान
प्रथम गतागत पञ्चसर[10] जान॥१६०॥

रामo पृo ४७, पo १६०, पo १

पाठभेद—

सिo मo (पद-संख्या ८२३)—१ कतो। २ हृदय। ४ कहइते। ५ चीन्हि सम। ७ गमाओलि। १० पथ सव।

झाo (पद-संख्या ३३)—३ तें। ४ कहइतें। ५ चीन्हि सम। ७ गमाओलि। ८ सबे। ९ पथ सब।

शब्दार्थ—दोआदस=(द्वादश—सo) बारह। लगला=लगा दिया। परिताप=दु:ख। परतर=(परत्र—सo) परलोक। अवधान=ध्यान। गतागत=यातायात। पञ्चसर=कामदेव।

अर्थ—(उन्होने) जान-बूझकर (परदेश मे) बारह वर्ष लगा दिये। (अर्थात्—बारह वर्ष परदेश में बिता दिये।) कितने जलाशयो (घाटो) का पानी पिया।

संo मo—३ तें। ६ रजनि। ९ कएलहुं।

(मैंने) समझा (अर्थात्---मुझे ये बाते ज्ञात हुई, तो मेरे) हृदय मे दुःख हुआ। इसीलिए, (मैंने) परलोक के पाप की भी गणना नही की।

हे सखी ! क्या कहूँ ? कहते लज्जा होती है। क्रमश·· ····· के समान (मेरा) कार्य हो गया।

पहला समागम था। (अत उनके) दर्शन के लिए (मैंने) बरसात की (समूची) रात जगकर बिता दी।

हवा का भी (मैंने) ध्यान रखा। (अर्थात्---हवा भी मेरे अभिसार को नही जान सकी।) प्रथम यातायात को (केवल) कामदेव ही जानता है।

धनछी---

[४२]

दमन किअरिआ अरिआहिँ
मिरिगा गेल अतुराए।
मञे[1] धनि देखए गेलाहुँ
जनि (बन्धन) फोलि खाए ।।ध्रु०।।
साजनि कि कहब आब सखी
अपुरुब कहहि न जाए।।
बौर गाछँ चलि बैसल
सिरिफल धएलह चोर।
... ...
(पु) छिलाँ बोलहि बोर।।
भावक भरमलि तञे[2] सखि
मिरिगा नहि ओ कान्ह।
रूपनराञेन नागरा
लखिमा देवि रमान।।

राम० पृ० ४७, प० १६१, पं० ४

सं० अ०---१ मोन। २ तोन।

शब्दार्थ—दमन=कुन्द फूल। किअरिआ=क्यारी। अरिआहिं=मेड पर। अतुराए=उत्कण्ठित होकर। फोलि=खोलकर। बौर गाछँ=कुसुमित वृक्ष पर। सिरिफल=(श्रीफल—स०) बेल। बोर=बोल=बोलने लगा।

अर्थ—(एक सखी दूसरी सखी से कहती है) कुन्द फूल की क्यारी के मेड पर उत्कण्ठित होकर मृग जा पहुँचा।

हे धन्ये! (इस तरह) मैं देखने गई, (जिस तरह कि वह) बन्धन खोलकर (कुन्द फूल) खा रहा हो।

हे सखी! अब क्या कहूँ? (वैसा) अद्‌भुत कहा नहीं जाता।

(वह मृग) बौराये पेड पर जा बैठा (और) श्रीफल को चुरा रखा।

... ... पूछने पर (वह) बोली बोलने लगा।

(दूसरी सखी उत्तर देती है—) हे सखी! तुम भाव से भुला गई हो। (इसीलिए, इस प्रकार कहती हो। वास्तव मे) मृग नही, वे तो कृष्ण है।

लखिमा देवी के रमण चतुर रूपनारायण (इसे जानते है।)

विशेष—यह पद अन्यत्र नही है। इसीलिए पाठभेद नही दिया गया।

[४३]

(आगू)[1] दीप[2] पाछु गेलि लाज
पथँ चललें[3] बिसरलहुँ न काज।
जमुन तीरँ सञो समन्दल मान
कैसन[3] कए की बुझत[4] अआन[5]॥ध्रु०॥
ए सखि आबे[6] बोलब हमे जानि
कपटिहिँ निकट[7] तुलओलह[8] आनि[9]।
निअ[10] पिअ[11] पेम हेम सम हारि
अङ्गिरिअ कामिक दुहु कुल गारि॥
पलटि जाइते घर बड[12] बलहीन
अबे सबे किछु भेल तोर अधीन।
विद्यापति भन सुन वरनारि
धैरज[13] तरुनि[14] तिरोहित गारि॥

राम० पृ० ४८ (क), प० १६२, प० १

स० अ०—३ कइसन। ५ अआन। ९ आनि। १० निज। १३ धैरजें।

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ३६९)—१-२ पाए तक। ४ बुझल। ६ आओर की। ७-८ निकटओो लओोलह्। १०-११ निअमिअ। १२ बड। १४ तरुणि।

ठा० (पद-सख्या ३४)—१-२ पाए तक। ६ आओर की बलबह से। ७-८ निकटओो लओोलह्। १०-११ निअमिअ। १२ बड़।

शब्दार्थ—आगू=आगे। पाछु=पीछे। काज=उद्देश्य। अआन=अज्ञान। हेम=सोना। बलहीन=शैथिल्य=थकावट।

अर्थ—दीपक आगे हुआ कि लज्जा पीछे चली गई। (अर्थात्—जभी मैं दीपक लेकर घर से निकली, तभी लज्जा दूर चली गई।) मार्ग मे चलते हुए भी (मैंने अपने) उद्देश्य को नही भुलाया।

यमुना-तीर से (मैंने) सम्मान के साथ सवाद दिया। (किन्तु) ज्ञानहीन किस तरह समझेगा? (अर्थात्—सवाद भेजने पर भी वह अज्ञ नही समझ सका।)

हे सखी! अब (तुम) जान-बूझकर हमे (कुछ) कहना। (कारण, इस बार तुमने मुझे) कपटी के निकट ला पहुँचाया।

अपने प्रिय के सोने के समान (विशुद्ध) प्रेम को छोडकर कामी (पुरुष) को अगीकार करने से दोनो कुल मे अपमान होता है। (अर्थात्—स्वामी के कुल मे तो अपमान होता ही है; कामी पुरुष के कुल मे भी आदर नही मिलता है। वहाँ भी अपमान ही होता है।)

(अब) लौटकर घर जाते हुए बडी थकावट (मालूम होती है।) अब (मेरा) सब-कुछ तुम्हारे अधीन है।

विद्यापति कहते है—अरी वरनारी! सुनो। धैर्य (धारण करने) से तरुणी का अपमान तिरोहित हो जाता है।

श्रीराग—

[४४]

से अतिनागर तओे रससार
पसरओो बीथी पेम पसार॥
जौवन नगरँ बेसाहत रूप
तते मुलइहह जते सरूप॥ध्रु०॥
साजनि (हे) हरि रस बनिजार
गोप भरमे जनु बोलह गमार॥

बिधिबसे अबे करब नहि मान
जइअओ सोलह सहसपति कान्ह।।
तन्हि तोहँ उचित बहुत जे भेद
मनमथ मधथें करब परिछेद।
भन(इ) विद्यापति एहु रस जान
राए सिवसिंह लखिमा दें रमान।।

राम० पृ० ४८ (क), पद १६३, पं० ५

पाठभेद—

ठा० (पद—संख्या ३५)—१ देवि।

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अतः, इसके लिए 'प्रथम भाग' का १११ संख्यक पद देखिए।

कानलराग—

[४५]

बदर सरिस कुच परसब नहू
कत सुख पाओब करति उहूँ उहूँ।
बाहुक बेढ़े परस निबार
नीवी मोष करए के पार।।ध्रु०।।
माधव अनुभव पहिलुक सङ्ग
नहि नहि करति एहें बथु रङ्ग।
अधर पाने से हरति गेआन
कमल कोष कए धरति परान।।
बैरी डीठिं निहारति तोहि
जनु भमरसि (तबे) पुछिहिसि मोहि।
नूतन रस संसारक सार
विद्यापति कह कवि कण्ठहार।।

राम० पृ० ४८, प० १६४, पं० २

सं० अं०—२ नहूँ। १२ पुछिहसि।

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या २७७)—१ परसर। २ लहु। ३ करित। ४ उहुँ। ५ वेढे। ६ नीवि। ७ इहे। ८ गेयान। ९ पराण। १० भमरसि। ११ पाठाभाव।

ठा० (पद-सख्या ३६)—२ लहु। ४ उहुँ। ५ वेढे। ७ इहे। ११ पाठाभाव।

शब्दार्थ—बदर=बैर। सरिस=समान। कुच=स्तन। लहू=धीरे। उहूँ-उहूँ=निषेधार्थक अव्यय। बेढ़ँ=अवरोध से। परस=स्पर्श। मोष=(मोक्ष—स०) खोलना। सङ्ग=समागम। एहे—यही। वथु=वस्तु—स०। रग=आनन्द। डीठिँ=दृष्टि से। भमरसि=घबराकर छोडना। नूतन=नवीन।

अर्थ—बैर के समान (छोटे) स्तन को धीरे से छूना। (जब वह) 'उहूँ-उहूँ' करेगी (तब तुम) कितना सुख पाओगे?

बाँहू के अवरोध से (वह) स्पर्श का निवारण करेगी (तो भला) नीवी कौन खोल सकेगा?

हे माधव! प्रथम समागम का अनुभव करना। (वह) 'नही-नही' करेगी, (इससे क्या?) यही वस्तु आनन्द है।

अधर-पान (करने) से वह (अपना) ज्ञान हार देगी (अर्थात्—उसका ज्ञान चला जायगा। वह अपने) प्राण को कमल-कोष मे करके धारण करेगी। (अर्थात्—प्रथम समागम के समय वह मूर्च्छित हो जायगी; किन्तु उसके प्राण ब्रह्माण्डस्थित कमल-कोष मे सुरक्षित रहेगे।)

(वह) शत्रु की आँख से (अर्थात्—शत्रु की भाँति) तुम्हे देखेगी। (किन्तु तुम) घबराकर छोड मत देना। (तब) मुझे पूछना।

कवि-कण्ठहार विद्यापति कहते है कि नवीन रस संसार का सार है।

धनछी राग—

[४६]

गुरुजन दुरजन परिजन बारि
न गुनल-लाघव कु(ल) के गारि।
जीव कुसुम कए पूजल नेह
भरि डभकल¹ अबे तोहर सिनेह॥
.... वास
सखिँ जानब जञो बड़² उपहास॥ध्रु०॥

पुनु जनु आवह हमर समाज
मओ[3] नहि रखबे आखिक[4] लाज॥
मुनिहुँक काजें (प)लए[5] परमाद
हमराहुँ जनु से पल[6] अपवाद॥
सुन्दरि वचने हलल सिर झालि[7]
नागर न सह कुगइँआ[8] गारि॥
जत अनुराग दूर सबे गेल
भीतिक[9] पुतरी विषधर भेल॥
विद्यापति कह सुन वर नारि
पहु अवलेपिअ[10] दोस[11] विचारि॥
राजा रूपनराएन[12] जान
सिरि सिवसिंह लखिमा दे[13] रमान॥

राम० पृ० ४९ (क), प० १६५, पं० १

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ११९)--१ उमकल। २ वड़। ९ मोतिक। १३ देवि।

ठा० (पद-सख्या ३७)--१ उमकल। २ वड़। १० अवेलेपिअ। १३ देवि।

शब्दार्थ—जीव=प्राण। कुसुम=फूल। वारि=त्याग। उमकल=छलक गया। परमाद=(प्रमाद—सं०) अनवधानता। झालि=झाड़ि=डुलाना। कुगइँआ=कुग्रामवासी=गँवार। भीतिक=दीवार की। पुतरी=पुतली। अवलेपिअ=अनादर करना चाहिए।

अर्थ—गुरुजनो (और) दुर्जन परिजनो को त्याग दिया। (अपने) लाघव (और) कुल के अपमान का (भी) विचार नही किया।

(अपने) प्राण को फूल बनाकर (मैंने तुम्हारे) स्नेह की पूजा की। (किन्तु) अब तुम्हारा स्नेह भरकर छलक गया।

... ...। यदि सखियाँ जानेगी, (तो) बड़ा उपहास होगा।

फिर (तुम) मेरे समाज मे मत आना। (यदि आओगे, तो) मैं आँख की लाज नहीं रखूंगी। (अर्थात्—यह भरोसा करके मत आना कि मैं लज्जावश तुम्हारा स्वागत करूँगी।)

सं० अ०—३ मोअ। ४ आखिक। ५ पलए। ६ पळ। ७ झाळि। ८ कुगइआ। ११ दोष। १२ रूपनराअेन।

मुनियों के कार्य में भी अनवधानता होती है (अर्थात्—मुनियों को भी मतिभ्रम होता है—'मुनीनाञ्च मतिभ्रम'; किन्तु) वह अपवाद मुझपर नही पड़ता। (अर्थात्—मैं जो कुछ कह रही हूँ, सोच-समझकर कह रही हूँ। इसे तुम मेरा मतिभ्रम मत समझना।)

सुन्दरी के (इस प्रकार) कहने पर (कृष्ण ने) माथा डुला दिया। (अर्थात्—उन्होने माथा डुलाकर स्वीकार कर लिया कि 'मैं नही आऊँगा।' कारण,) नागर कुग्रामवासी की गाली नही सह सकता।

(दोनो मे) जितने अनुराग थे,—सभी दूर चले गये। (अब तो) दीवार की पुतली विषधर हो गई। (अर्थात्—जो कलतक गुड़िया थी, वह आज डरावनी प्रतीत होने लगी।)

विद्यापति कहते हैं—अरी वरनारी! सुनो। दोष का विचार करके स्वामी का अनादर करना चाहिए।

लखिमा देवी के रमण राजा श्रीशिवसिंह रूपनारायण (इसे समझते हैं।)

सुहवराग—

[४७]

चान्दक तेज रअनि[1] धर जोति
रजत सहित पहिरल धनि मोन्ति[2]॥
चान्दने तनु अनुलेप सिङ्गार
धम्मिलँ[3] थोएल कुन्दक भार॥ध्रु०॥
हरि कि[4] कहब अनुपम[5] भान्ति[6]
सखि अभिसार दिवस सम राति॥
नअनक[7] काजर दुर कर धोए
चान्दक उदअँ[8] कुमुद जनि होए॥
नअन[9] चान्द दुहु एकत[10] रङ्ग[11]
जमुना जलँ[12] विपरीत तरङ्ग॥
जमुना तरि धनि आइलि राति
तुअ अनुरागें[13] अङ्गिरि कत साति॥

सं० अ०—१ रअनि। ४ की। ५ अनूपम। ७ नअनक। ९ नअन।

विद्यापति भन अभिनव कान्ह
राए सिवसिंह लखिमा दे' रमान॥

राम० पृ० ४९ (क), प० १६६, प० ५

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या १०१)—२ धनि पहिरल मोति। ३ धम्मिल। ६ भाँति। ७ नयनक। ८ उदअ। ९ नयन। १०-११ एक तरङ्ग। १२ जल। १३ देवि।

झा० (पद-सख्या ३८)—२ धनि पहिरल मोन्ति। १०-११ एक तरङ्ग। १३ देवि।

शब्दार्थ—रअनि=रात्रि। रजत=चाँदी। मोन्ति=मोती। धम्मिलँ=जूडे मे। थोएल=स्थापित किया। भार=राशि=ढेर। भान्ति=प्रकार। एकत=(एकत—स०) एक समान। अङ्गिरि=अङ्गीकार किया। साति=(शास्ति—सं०) दण्ड=दु:ख।

अर्थ—चन्द्रमा के तेज से रात्रि प्रकाश धारण कर रही है। (अर्थात्—चन्द्रमा के तेज से रात मे भी प्रकाश फैला हुआ है। इसीलिए) धन्या ने चाँदी के साथ मोती पहन लिया। (अर्थात्—चाँदी के आभूषण और मोती की माला पहन ली।)

चन्दन से शरीर का अनुलेपन करके शृङ्गार किया (और) जूडे मे कुन्द की राशि खोस ली।

हे कृष्ण! (मैं नायिका का) अनुपम प्रकार (अद्भुत रीति) क्या कहूँगी? (यद्यपि) दिन के समान रात्रि थी, (तथापि) सखी ने अभिसार किया।

(उसने) धोकर आँखो का काजल दूर कर दिया। (जान पडता है,) जैसे चन्द्रमा के उदय से (विकसित) कुमुद हो।

(अब) आँख और चन्द्रमा—दोनो का रग एक समान हो गया। (उसके प्रतिबिम्ब से) जमुना के जल मे विपरीत तरगे उठने लगी। (अर्थात्—यमुना के श्याम जल मे स्वच्छ नेत्र और चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब से उजली तरंगे उठने लगी।)

तुम्हारे अनुराग से कितना दुःख अगीकार करके धन्या रात मे यमुना तैरकर (तुम्हारे पास) आई।

विद्यापति कहते है—लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह अभिनव कृष्ण है।

धनश्री राग—

[४८]

जहुआ कान्ह देल तोहं आनि
मने पाओल भेल चौगुन बानि॥

पर अनुराग रागें[10] गेल मोहि
से मञे[11] छडलें[12] सुमझए[13] तोहि।
भनइ विद्यापति बुझ रसमन्त
राए सिवसिंह लखिमा देवि कन्त॥

राम० पृ० ५० (क), प० १६९, पं० ५

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या १३१)—१ वाढिक। २ काढि। ३ तोहे। ४ गेयान। ५ रमणी। ६ घर। ७ सङ्ग। ८ इ। ९ बड। १० रागे। ११ मये। १२ छडले।

ठा० (पद-सख्या ४१)—१ वाढिक। २ काढि। ७ सङ्ग।

शब्दार्थ—काढि जा=वाहर निकल जाता है। जानि=जानकर। ठाम=स्थान। मानि=मानकर। एतवाहिँ=इतने मे ही। दह दिसँ=दसो दिशाओ मे। थिर=स्थिर। जातकि=चमेली। केतकि=केवडा। सार=महत्त्व। घुर=घुमता है। थावर=स्थावर—सं०। रङ्ग=अद्भुत। छडलें=छोड़ने पर। सुमझए=समझने लगेगा=मानने लगेगा।

अर्थ—बाढ का पानी वाहर निकल जाता है—(इसे) जानकर (और) जो अपना है—स्थायी है, (वही अपने) स्थान पर रह जाता है, (इसे) मानकर—

हे सुमुखी! ऐसी (परिस्थिति) मे भी तुम रोष करती हो? क्या इतने मे ही पुरुष को दोष देना चाहिए?

भौरा दसो दिशाओ मे (घूम-फिरकर) मधु पान करे,—(इससे क्या?) अपना ज्ञान स्थिर रहना चाहिए।

रमणी होकर यदि विहार करती है, तो जातकी, केतकी (या) मालती का महत्त्व है। (अर्थात्—यदि ये विहार नही करें, तो इनका महत्त्व ही क्या?)

मधु लेकर भौरे के साथ कौन घूमती है? स्थावर (जातकी, केतकी आदि) को ही (भौंरे के पास आने से) गौरव होता है। यही (भौंरे का) बड़ा अनुराग है।

दूसरे के राग-अनुराग से (वह) मुग्ध हो गया। (किन्तु) मेरे छोड़ने पर वह तुम्हे (फिर) मानने लगेगा।

विद्यापति कहते है—लखिमा देवी के स्वामी रसज्ञ राजा शिवसिंह (इसे) समझते हैं।

सं० अ०—११ मोञ। १३ समुझए।

सुहव—

[५१]

वामा नअन[1] फुरन आरम्भ
पुलक मुकुले[2] पूरल कुचकुम्भ ।
नीवी निविल[3] सँसर ते बीधि
सगुने[4] सूचि हलु[5] साहस सीधि ।।ध्रु०।।
चल चल सुन्दरि न कर बेआज
मदने महासिधि पाउबि[6] आज ।
विलम्ब न कर अङ्गिरहिँ[7] अभिसार
हठें[8] पए फाब[9] अकामिक[10] बाल[11]
ताहि तरुनि काँ कओन तरङ्ग
जकराँ मदन महीपति सङ्ग
विद्यापति कवि कहए विचारि
पुनमन्त[12] पाबए गुनमति[13] नारि

राम० पृ० ५०, प०-०, पं० ४

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ३०९)—१ नयन। ४ सगुणे। ७ अङ्गिरहि। ८ हटे॑। ९ फाएए। १० कामिक। ११ वाण। १२ पुणमन्त। १३ गुणमंति।

झा० (पद-संख्या ४२)—५ सुचिहलु। ६ पाओबि। ९ फाएए। १० कामिक। ११ बाण।

शब्दार्थ—फुरन=(स्फुरण—सं०) फड़कन। पुलक=रोमाञ्च। मुकुले=अर्द्ध-विकसित कली से। निविल=(निविड)—स०) कसकर बँधी हुई। सँसर=खिसक रही है। ते वीधि=उसी प्रकार। बेआज=(व्याज—सं०) बहाना। फाब=शोभा पाती है। अकामिक=काम-कलानभिज्ञ। बाल=बाला। तरङ्ग=हिल-डोल=सोच-विचार। सङ्ग=साथ।

अर्थ—वाम नेत्र में स्फुरण का आरम्भ हुआ। (अर्थात्—बाईं आँख फड़कने लगी।) रोमाञ्च-रूपी अर्द्ध-विकसित कली से कुचकुम्भ भर गया। (अर्थात्—स्तनों के ऊपर रोमाञ्च हो आये।)

सं० अ०—१ नअन। २ मुकुलें। ३ निविळ।

इसी प्रकार कसकर बँधी हुई नीवी खिसक रही है। शकुन से सूचित हो रहा है-(कि) साहस (करने) से सिद्धि होगी।

अरी सुन्दरी! चलो, चलो। बहाना मत करो। आज कामदेव महासिद्धि पायगा।

विलम्ब मत करो। (शीघ्र) अभिसार को अङ्गीकार करो। कामकलानभिज्ञ बाला ही हठ (करने) से शोभा पाती है। (अर्थात्—तरुणी को हठ नहीं सोहता है।)

उस तरुणी को कौन सोच-विचार है, जिसके साथ (स्वयं) राजा कामदेव है।

कवि विद्यापति विचार कर कहते हैं कि पुण्यवान् (ही) गुणवती नारी पाता है।

विशेष—इस पद के अन्त में पद-संख्या नहीं है।

धनछी—

[५२]

ई दसि हालल दखिन चीर
हीराधारँ[१] हराएल हीर।
अइसन नीरज[२] देलए जोलि[३]
बलअ भाङ्गल[४] बाँह ममोलि[५] ॥ध्रु०॥
भलि परिनति[६] (मोर) मेलि मुरारि
भल कए राखलि कुलक गारि॥
वकुल माला गान्तल[७] नाथे[८]
मोहि पिन्धउलन्हि[९] अपने हाथे[१०]।
सासु समारल फूजल[११] बार
ननन्दे[१२] गान्तल[१२] टूटल[१३] हार॥
सरस कवि विद्यापति गाव
मनक पाहुन मदन भाव।
राजा रूपनराजेन[१४] जान
सिवसिंह लखिमा दे(वि)[१५] रमान॥

राम० पृ० ५१ (क), प० १७०, पं० २।

सं० अ०—२ नीलज। ३ जोलि। ५ ममोलि। ७ गान्थल। १२ गान्थल।

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ६७)—१ हीराधार। ४ माङ्कुल। ६ परिणति। ८ नाथे ९ पिन्धओलुहुँ। १४ रूपनरायन। १५ देवी।

ठा० (पद-सख्या ४३)—९ पिन्धओलुहुँ। १० फुजल। ११ ननदें। १३ टुटल। १४ रूपनरायन।

शब्दार्थ—ई=यह। घरँ=धार मे। वलअ= (वलय—स०) कँगना। दसि हालल= सूत-सूत हो गई। नीरज=निर्लज्ज—स०। जोलि=जोड़ दिया=आलिंगन किया। हीर= माथे का भूषण। ममोलि=ममोड दिया=ऐंठ दिया। गारि=गाली=कलङ्क। गान्तल=गूँथा। पिन्धउलुहुँ=पिन्हाया। समारल=सँवारा फूजल=खुले हुए। बार=बाल। पाहुन= (प्राघुण—सं०) अतिथि।

अर्थ—दक्षिण देश की साड़ी सूत-सूत हो गई (और) माथे का आभूषण हीरा खो गया।

हे निर्लज्ज! इस प्रकार (तुमने) आलिंगन किया (और) बाँह मरोड़ दी (कि) कँगना टूट गया।

हे कृष्ण! परिणाम भला हुआ। (तुमने) कुल के कलङ्क को अच्छी तरह (ढककर) रख लिया। (व्यग्यार्थ यह है कि तुमने कुल मे कलङ्क लगा दिया।)

(किन्तु, कुल मे कलङ्क नही लगा। कारण) स्वामी ने बकुल की माला गूँथकर अपने हाथ से मुझे पिन्हा दी।

सास ने खुले हुए बाल को सँवार दिया (और) ननद ने टूटे हार को गूँथ दिया।

सरस कवि विद्यापति मन के अतिथि कामदेव का भाव गाते है।

लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह रूपनारायण (इसे) जानते है।

गुर्जरी—

[५३]

न बुझए रस नहि बुझ परिहास
नहि आलिङ्गन भओह विलास।
सब रस तहि खने चाहह ताहि
सागर कओन पएरें हो थाहि॥ध्रु०॥
माधव सखि मोरि सहज अआनि
रस बूझति तओं होइति सआनि॥

सं० अ०—२ पएरें। ४ अजानि। ६ सजानि।

अनुभवि बूझति जखने सम्भोग[७]
तहि[८] खने[९] कोपहु करवाँ जोग।
एखनक आरतिँ रह[१०] पए दन्द
मुन्दलाँ[११] मुकुलँ[१२] कतए मकरन्द॥
विद्यापति कह नव अनुराग
बड[१३] पुनमन्त पाव पए भाग।
रूपनराएन[१४] बुझ रसमन्त
राए सिवसिंह लखिमादेवि कन्त॥

राम० पृ० ५१ (क), प० १७१, प० ५

पाठभेद—

मि० (पद-संख्या ५८)—१ भउह। २-३ पएबेही। ५ तओ। ८ ताहि। ९ खन। १० हर। ११ मुन्दला। १२ मुकुल। १३ बड़।

झा० (पद-संख्या ४४) २-३ पएबेहो। ७ संभोग। ८ ताहि। ९ खन। १० हर। १३ बड।

शब्दार्थ—तहि खने=उसी समय। ताहि=उससे। अआनि=अज्ञानी। आरति=(आर्त्ति—स०) पीडा। दन्द=द्वन्द्व (सं०) झगडा। मुकुलँ=कली मे।

अर्थ—(बाला अभी) न रस समझती है, न परिहास समझती है (और) न आलिङ्गन (तथा) भ्रू-विलास समझती है।

(किन्तु तुम) इसी समय उससे सब रस चाहते हो। (अरे!) समुद्र को पैर से कौन थाह सकता है? (अर्थात्—जिस प्रकार समुद्र को पैर से थाहना असम्भव है, उसी प्रकार बाला से रसदान प्राप्त करना असम्भव है।)

हे माधव! मेरी सखी (अभी) स्वभाव से अज्ञान है। (जब) सयानी होगी, तब (स्वय ही) रस समझेगी।

जिस समय (वह स्वय) अनुभव करके सम्भोग को समझेगी, उसी समय (वह) क्रोध करने योग्य भी होगी।

इस समय पीडा (देने) से झगड़ा ही रह जायगा, (लाभ कुछ भी नही होगा। कारण,) मुंदी (अविकसित) कली में मकरन्द कहाँ?

विद्यापति कहते हैं (कि) बड़ा पुण्यवान् ही भाग्य से नये अनुराग को पाता है।

लखिमा देवी के स्वामी राजा शिवसिंह रूपनारायण (इसे) समझते हैं।

सं० अ०—१४ रूपनरायेन।

धनछी—

[५४]

वसन हरइतें लाज दुर गेल
पिअक कलेवर अम्बर भेल।
अओधें[१] नअने निझाबए दीब
मुकुलहुँ कमलें भमर मधु पीब।।ध्रु०।।
मनसिज तन्त कहओ मन लाए
बड उनमनिआ अवसर पाए।
से सबे सुमरि मनहुँ काँ लाज
जत[२] सबे विपरित तन्हिकर काज।।
हृदअक धाधसि धसमसि मोहि
आओर कहिनी कि कहबि तोहि।
सकलओ रस नहि अनुवद नारि
विद्यापति कवि कहए विचारि।।

राम० पृ० ५१, प० १७२, प० ३

पाठभेद—

ठा० (पद-संख्या ४५)—१ अवोघें। २ जते।

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे है। अतः, इसके लिए प्रथम भाग का ५८ सख्यक पद देखिए।

इसके बाद निम्नलिखित पदांश है—

सुवह—

राङ्गलि देखिअ पास ...... ।

इसके बाद चार पृष्ठ नही है। फिर निम्नलिखित पदाश है—

... . न न जाए।
रूपनराअन ई रस जान
सरस कवि विद्यापति भान ।।१८६।।

धनछी—

[५५]

पहु सओ उतरि बोलब बोल
अइसन मन न मानए मोर।
से जदि वचने फले[1] उदास
अपनि[2] छाहरि तेज न पास ॥ध्रु०॥
सखि पठाबसि[3] मन्दे[4] साथ
हरओं[5] आदर अपन[6] नाथ[7] ॥
कैरव सुरुज कमल चन्द
पर पुरुसक[8] सिनेह मन्द।
नागरि भए जदि हठें[9] विमान[10]
एकहिं[11] जनमे इछब[12] आन[13] ॥
सरस भन कवि कण्ठहार
सुन्दरि राख कुल(क) बेबहार।
ई रस[14] रूपनराएन[15] जान
रानि[16] लखिमा देवि रमान॥

राम० पृ० ५४ (क), प० १८७, प०१

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या १५)—१ फले। २ आपनि। ३ पचारसि। ४ मन्दे। ५ हर ओ। ६ आपन। ७ लाथ। ८ पुरुषक। ९-१० हटे विमान। ११ एकहि। १२ इच्छब। १६ राणि।

ठा० (पद-सख्या ४६)—३ पचारसि। ५ हर ओ। १४ सब।

शब्दार्थ—उतरि बोलब=दबकर बातें करोगी। से=वह। छाहरि=छाया। कैरव=कुमुद। विमान=असम्मानित।

अर्थ—स्वामी से दबकर तुम बातें करोगी—मेरा मन ऐसा नही मानता है।

वे यदि वचन (और) फल (कर्म) से उदास है, (तो रहे। इससे क्या ?) अपनी छाया सामीप्य नही छोड़ती है। (अर्थात्—यदि स्वामी बोलते नही है, उनसे कुछ फल-प्राप्ति नही होती है, तो भी तुम्हे उनका त्याग नही करना चाहिए।)

सं० अ०—८ पुरुषक। १३ आन। १५ रूपनराअेन।

(तुम) सखी को बुरे (वचनों) के साथ (उनके समीप) भेजती हो। (अर्थात्—सखी के द्वारा भला-बुरा कहला भेजती हो। इसीलिए) अपने होकर भी स्वामी आदर का हरण करते है। (अर्थात्—आदर नही करते है।)

(अपने स्वामी को छोडकर पर-पुरुष से प्रेम करना अच्छा नही है। कारण,) पर-पुरुष का प्रेम बरा होता है। (उदाहरण के लिए) कैरव (और) सूर्य (तथा) कमल (एव) चन्द्रमा (सामने है।)

नागरी होकर भी यदि (अपने) हठ से असम्मानित हो जाय (तो) एक ही जन्म मे दूसरे (जन्म) की इच्छा करनी चाहिए। (अर्थात्—नागरी का स्वामी से रूठकर बैठने से मर जाना अच्छा है।)

सरस कवि-कण्ठहार (विद्यापति) कहते है (कि) सुन्दरी कुल का व्यवहार रखती है। रानी लखिमा देवी के रमण (राजा शिवसिह) रूपनारायण इस रस को जानते हैं।

धनछी—

[५६]

कोकिल गाबए मधुरिम बानि[1]
ऋतु[2] वसन्त[3] हे अमिअ[4] रसें[5] सानि।
असमअ[6] प(ो)सिआ[7] ललों[8] पाए
चेओ[9] चेओ[10] करिअ काहु न सोहाए ॥ध्रु०॥
साजनि अबे[11] कत[12] देह असवास
(की पुनि) कान्हे[13] जाएब मोहि पास ॥
गुरु सुमेरु तह सुपुरुस[14] बोल
कुलक धर(म) बुडले[15] की मोर[16]।
करमक दोषे[17] बिघटि गेलि साटि
अगिलाँ[18] जनम बुझबि परिपाटि ॥
विद्यापति भन न कर विराम
अवसर जानि पुरत[19] तु(अ)[20] काम।
रूपनराएन[21] बुझ रसमन्त
राएं सिवसिह लखिमा देवि कन्त ॥

राम० पृ० ५४ (क), प० १८८, पं० ५

सं० अ०—१४ सुपुरुष। १७ दोषें। २१ रूपनराजेन।

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या १४३)—१ वाणि। २-३-४-५ ऋतु वसन्त हे अमिअ रस सानि। ६ असमय। ७-८ पसि आलाना। ९-१० चेओ। चेओ। ११-१२ अवेकत। १३ कान्हे। १४ सुपुरुष। १५ छडलें। १६ भोर। १८ अगिला। १९-२० वरत ओ।

ठा० (पद-संख्या ४७)—७-८ पसि आलाना। ११-१२ अवेकत। १५ छडलें। १६ भोर। १९-२० वरत ओ।

शब्दार्थ—बानि=(वाणी—स०) बोल। सानि=घोलकर। पोसिआ=(पोषित—स०) पाला हुआ। ललो=दुलार। असवास=आश्वासन। गुरु=वजनदार। बुडलें=डूबने से। साटि=सङ्ग। परिपाटि=रीति। विराम=अन्त।

अर्थ—कोकिल वसन्त ऋतु मे (अपने) मधुर वचन को अमृत-रस में घोलकर गाता है।

(किन्तु यदि वह) असमय मे दुलार पाकर 'चे-चे' करता है, तो किसी को नही सुहाता है।

हे सखी! अब (मुझे) कितना आश्वासन देती हो। (क्या फिर) कृष्ण मेरे पास जायेंगे?

मेरे कुलधर्म के डूबने से क्या? सुपुरुष का सुमेरु से वजनदार वचन (कहाँ गया? अर्थात्—मैंने कृष्ण के वचन को वजनदार समझकर अपने कुलधर्म को भी छोड दिया, किन्तु उन्होंने अपना वचन नही निभाया।)

कर्म के दोष से (पारस्परिक) मेल विघटित हो गया। (अब तो) अगले जन्म मे ही उनकी रीति समझूँगी।

विद्यापति कहते हैं—(अरी सुन्दरी! प्रेम का) अन्त मत करो। अवसर को जानकर (अवसर आने पर) तुम्हारी कामना पूर्ण होगी।

लखिमा देवी के स्वामी रसज्ञ राजा शिवसिंह रूपनारायण (इसे) समझते हैं।

सुहब—

[५७]

नअनक नीर चरनतल गेल
थलक कमल अम्भोरुह भेल।
अधर अरुनिमा लखि नहि होए
किसलअ[१] सिसिरे[२] छाडु जनि[३] धोए।।ध्रु०।।
माधव जतनहुँ राखए गोए
ससिमुखि नोर ओल नहि होए।

तुअ अनुराग सिथिल सखि जानि
अउलिउ बिसरलि मनसिज बानि ॥
दारुन ....

राम० पृ० ५४, प० १८९, पं० १

पाठभेद—

ठा० (पद-सख्या ४८)—१-२ सिसिरे किसलअ। ३ धनि।

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अत, इसके लिए प्रथम भाग का ४२ सख्यक पद देखिए।

इसके बाद ५६ पृष्ठ नही है। फिर निम्नलिखित खण्डित पद से प्रारम्भ होता है।

....हिनि बाला।
कत सह[1] बिसम[2] कुसु(म) सरधारा।
नअन निरन्तर नोरे।
बामां करतल मिलल कपोले॥
अवधि समअ लेखि लेखी।
रूप रहल अछ तनु अवसेखी।
दखिन पवन बह सङ्का।
हृद (अ) हुं हार भुअङ्ग ससङ्का॥
कवि विद्यापति कंह आधे।
युवति अन्त भेल विरह बेआधी।
रूपनराएन जाने।
राए सिवसिंह लखिमा दे[3] रमाने॥

राम० पृ० ८३ (क), प० ३०४, पं० १

पाठभेद—

ठा०—(पृ० स० ३६, टिप्पणी)—१-२ सहबि। ३ देवि।

लरित—

[५८]

सपने देखल हरि गेलाहुं[1] पुलके[2] पुरि
जागल कुसुमसरासन रे[3]।

सं० अ०—१ गेलिहुं।

ताहि अवसर गोरि नीन्द भाँगलि[4] मोरि
मनहि मलिन भेल वासन रे॥ध्रु०॥
की[5] सखि पओलह सुतलि जगओलह
सपनेहुँ[6] सङ्ग छडओलह रे[7]॥
सामर सुन्दर हरि रहल आञ्च(र)[8] धरि
फोअइतें किङ्किनि[9] माला रे[10]।
आओर कहब कत रस उपजल जत
के बोल कान्ह गोआला रे[11]॥
ससरि सअनसिम[12] हरि[13] गहलिहुँ गिम
मुखे मुखे[14] कमल[15] कमल मिलु रे[16]।
पुरलि सकल सिद्धि[17] सहजें आइलि निधि[18]
तोर दोखे[19] दइवे[20] अछोलि[21] लिहु रे[22]॥
भनइ विद्यापति अरेरे वरयुवति[23]
अनुसअ पेम पुराना[24] रे।
राजा सिवसिंह रूपनराएन[25]
लखिमा देवि[26] रमाना रे॥

राम० पृ० ८३ (क), प० ३०५, पं० ३।

पाठभेद—

रागतरंगिणी (पृष्ठ ५४)—१ गेलिहुँ। ३ हे। ५ आरे की। ६ सपनहुँ। ७ हे। ८ आँचर। १० डोरा हे। ११ गोआरा हे। १२ शयनसिम। १३ हरि। १४ मुखें मुखें। १५ भमर। १६ हे। १७-१८ पुरलि मनंक सिधि आनि देहलि बिहिँ। १९ तोरें दोसे। २० दैवे। २१-२२ अछोरि लेल रे। 'रागतरंगिणी' मे इस पद की तीसरी और चौथी पंक्तियाँ तथा अन्त की चार पंक्तियाँ नही हैं।

मि० म० (पद-संख्या १९२)—२ पुलके। ४ भाङ्गलि। १३ हरि। १४ मुखे मुखे। १७ सिधि। १९ दोखे। २० दइव। २१-२२ अंघोलिंलिहु रे। २४ पुराणा। २६ देवी।

सं० अ०—८ आञ्चर। १२ सअनसिम। १३ हरि। १४ मुखें मुखें। १७ सिधि। २१-२२ अछोलि हल रे। २३ अरे वरजउवति। २५ रूपनराअेन।

छा० (पद-संख्या ४९)—९ किङ्किणि। १४ मुखे मुखे। १७ सिधि। २० दइव। २२ अछोलि लिहुरे।

शब्दार्थ—पुलकें=रोमाञ्च से। कुसुमसरासन=कामदेव। भाँगलि=तोड़ दी। बासन=वासना। फोअइते=खोलते। गोआला=गँवार। सअनसिम=(शयनसीम-स०) शय्या के किनारे। गिम=(ग्रीवा—स०) गरदन। दइवें=भाग्य ने। अछोलिलिहु=अपहरण किया। अनुसअ=(अनुशय—स०) पछतावा।

अर्थ—(मैंने) स्वप्न मे कृष्ण को देखा (तो शरीर) रोमाञ्च से भर गया और कामदेव जग उठा।

अरी गोरी! (तुमने) उसी समय मेरी नीद तोड दी (फिर तो) मन की वासना ही मलिन हो गई।

अरी सखी! (तुमने) क्या पाया (कि) सोई हुई को जगा दिया (और) स्वप्न मे भी (प्रिय का) सङ्ग छुडा दिया?

श्यामसुन्दर कृष्ण आँचल पकडकर (कटि की) किङ्किणी (और गले की) माला खोल रहे थे।

और भी जितना रस (कामक्रीडा) उपजा, (सो सब) कितना कहूँगी? कौन कहता है कि कृष्ण गँवार है?

(मैंने) शय्या के किनारे खिसककर (शय्या से उतरकर) कृष्ण के गले मे लिपट गई। (उस समय इस प्रकार) मुँह से मुँह मिल गया, (जैसे) कमल से कमल मिला हो।

(मेरी) पूरी हुई सारी सिद्धियो (और) अनायास आई हुई निधियो का विधाता ने तुम्हारे दोष से अपहरण कर लिया।

विद्यापति कहते है—अरी वरयुवती! प्रेम के पुराना होने पर पश्चात्ताप होता ही है। (अर्थात्—प्रेम का अन्तिम परिणाम पश्चात्ताप ही होता है।)

लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह रूपनारायण (इसे समझते है।)

विशेष—ध्रुपद के बाद एक पक्ति की छूट प्रतीत होती है।

विभास—

[५९]

वदन कामिनि रे बेकत जनु करिहह
चउदिस होएत उजोर।
चान्दक भरमे अमिअ रस लालस
अओठ कए जाएत चकोर॥ध्रु०॥

सुन्दरि तुरित चलहिँ अभिसार।
अबहिँ उगत ससि तिमिर तेजत निसि
उसरत मदन पसार॥
मधुर वचन भरमहुँ जनु बाजह
सौरभे जानत आन।
पङ्कज भरमे भमरेँ भमि आओब
करत अधर मधु पान॥
तजे रस भावि(नि)[१] मधुक जामिनि
गेल चाहिअ पिअ सेव।
राजा सिवसिंह रूपनराएन
कवि अभिनव जयदेव॥

राम० पृ० ८३, प० ३०६, पं० ३

पाठभेद—

ठा० (पद-संख्या ५०)—१ कामिनि।

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अत, इसके लिए प्रथम भाग का २४२ संख्यक पद देखिए।

इसके बाद ५० पृष्ठ नही हैं। फिर निम्नलिखित खण्डित पद से प्रारम्भ होता है—

.... रे
हरिनि[१] हतासलि[२] केसरि कोरे॥
घर घरखने[३] हे धमिल मुख मन्दा।
चम्पक कोरक कुच अभिरामे
सरबस साञ्चि बएलह[४] अछ कामे॥
सैसव सेख जउवन परबेसे
मनसिज गुरु देल हित उपदेसे।
अमिल मिलल कवि विद्यापति भाने
राए सिवसिंह लखिमा दे[५] रमाने॥

राम० पृ० १०९ (क), प० ३८१, पं०-१

पाठभेद—

ठा०—१-२ हरि निहतासलि। ३ घर घर खने। ४ बएल। ५ देवि।

मालव—

[९०]

जिव जओ हमे सिनेह लाओल
तोहरि[1] हृदअ[2] जानि।
भल जन भए वाचा चूकह
इ बडि[3] लागए हानि ॥ध्रु०॥
माधव बूझल तोहर नेह।
निठुर पेम पराभव पाओल
जीवहु भेल सन्देह ॥
अथिर[4] जिवन जउवन थोला[5]
जगत के नहि जान।
मन[6] निकारुन[7] हटल न रह
तइअओ तोहिहि[8] मान ॥३८२॥

राम० पृ० १०९ (क), प० ३८२, प० ३

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ८१९)—१-२ तोहें विहृदअ। ३ बडि। ४ आनुब। ६-७ मलविका बल।

ठा० (पद-संख्या ५१)—१-२ तोहे विहृदअँ। ३ बडि। ४ आनुव। ६-७ मलविका बल।

शब्दार्थ—जिव=प्राण। वाचा=वचन। निकारुन=(निष्करुण—स०) निष्ठुर। हटल=रोक।

अर्थ—तुम्हारे हृदय को जानकर मैंने (तुमसे) प्राण के समान स्नेह किया।

(किन्तु तुम) भला आदमी होकर भी वचन चूकते हो (अर्थात्—अपने वचन का प्रतिपालन नही करते हो)—यही बड़ी हानि है।

हे माधव! (मैंने) तुम्हारा स्नेह समझ लिया। निष्ठुर के (साथ) प्रेम (करने) से (मैंने) पराभव पाया—जीवन मे भी सन्देह हो गया।

ससार मे कौन नही जानता (कि यह) जीवन अस्थिर है और यौवन (उससे भी) थोड़ा है। तो भी यह निष्ठुर मन रोके नही रुकता, तुम्हे ही मानता है। (अर्थात्—तुम्हारे ही पीछे दौड़ता है।)

सं० अ०—५ थोळा। ८ तोहिहिं।

मालव—

[६१]

विकच कमल तेजि भमरी
सेओल मधुरि फूल।
समअ सम्पद देखि उराएल[1]
बडेओ[2] वचन भूल॥ध्रु०॥
साजनि भल भेल अभिसार।
सुपहु एलिए[3] जथाँ गेलि हे
तकर पुन अपार॥
गुनक बान्धल आएल नागर
मन्दिरें न देख(ल)[4] तोहि[5]।
मदनसरें[6] बेआकुल मानस
आएल चौदिस जोहि॥
सुनि सेज सुति रहल बापुल[6]
नअनें[7] तेजए नीर।
हरि हरि हरि हरि[8] पुकारए
देह न मानए थीर॥

राम० पृ० १०९, प० ३८३, प० १

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ८१६)—१ डराएल। २ बड़ेओ। ४ देखल। ६ बाकुल। ७ नयने। ८ हरि हरि हरि।

झा० (पद-संख्या ५२)—१ डराएल। २ बड़ेओ। ४ देखल। ६ वाकुल। ८ हरि हरि हरि।

शब्दार्थ—विकच=विकसित=खिले हुए। सेओल=सेवा की। मधुरि फूल=गुल दुपहरिया।। उराएल=ओराएल=समाप्तप्राय। एलिए=अहित करके=अनादर करके। जथाँ=जहाँ। मन्दिरें=घर मे। जोहि=खोजकर। सुनि=(शून्य—सं०) सूना। वापुल=बेचारा।

सं० अ०—३ एळिए। ५ मदनसरें। ७ नअने।

अर्थ—भ्रमरी ने खिले हुए कमल को तजकर गुल दुपहरिया की सेवा की। (अर्थात्—तुमने सर्वगुणसम्पन्न स्वामी को तजकर पर-पुरुष का अनुसरण किया।)

अवसर पर सम्पत्ति को समाप्तप्राय देखकर बड़े भी (अपने) वचन को भूल जाते हैं।

हे सखी! (तुम्हारा) अभिसार अच्छा रहा। स्वामी का अनादर करके जहाँ (जिसके समीप) गई थी, उसका पुण्य अपार है। (अर्थात्—उसके पुण्य का अन्त नहीं है।)

(तुम्हारे) गुणो से बँधा (तुम्हारे गुणो से आकृष्ट होकर) नागर आया; (किन्तु उसने) घर मे तुम्हे नही देखा।

कामदेव के बाण से (उसका) मन व्याकुल हो गया। (इसलिए वह) चारो ओर (तुम्हे) ढूँढ़ आया।

(तुम कही नही मिली, तो हारकर) बेचारा सूनी सेज पर सो रहा (है और) आँखो से आँसू बहा रहा है।

(वह अपने) शरीर को भी स्थिर नही मानता है (अर्थात्—तुम्हारे विना उसके प्राण शरीर को कब छोड देंगे—इसका ठिकाना नही। इसीलिए वह) 'हरि! हरि! हरि! हरि!' (कहकर) पुकार रहा है। (अर्थात्—अपना अन्त समय जानकर वह ईश्वर का नाम ले रहा है।)

कोलार—

[६२]

एक कुसुम मधुकर न रम[१]
एके[२] स(ह)[३] न[४] रह नाह।
इ दुइ सार्जनि जगत सम्भव
सबे अनुभव चाह।।ध्रु०।।
न बोल न बोल पउरुस वच (न)[५]
तहि[६] सुबुधि सआनी[६]।
ततेहि माने अनल[७] पजारहअ[८]
जेहे[९] निझाइअ पानी।।
पिअ अनुचित किछु न[१०] धरब
मने न मानब दूर।

सं० अ०—५ परुष वचन। ६ समानी। ७ ग्रनल। ८ पजारिअ।

मुखरपन सारि[11] जओ सोभए
तओ[12] कि सो[13]पिअ[14] नुपूर[15] ॥

रामο पृο १०९, पο ३८४, पο ४

पाठभेद—

मिο मο (पद-संख्या ८१५)—१-२-३-४ बसए कैसने। ५ वच। ८ पजारह। ९ अजेहे। १० ने। ११ मारि। १२ तखो। १३ सोंपि। १४ अनुपूर।

ठाο (पद-सख्या ५३)—१-२-३-४ बसए कैसने। ५ वच। ८-९ पजारह अजे हे। १० ने। ११ मारि। १३ सोपि। १४ अनुपूर।

शब्दार्थ—मधुकर=भ्रमर। रम=रमण करता है। सम्भव=होनहार। पउरुस=(परुष—सο) कठोर। माने=प्रमाण मे। अनल=आग। पजारहअ=(प्रज्वालय—सο) जलाओ। जेहे=जो। निझाविअ=(निर्वापित—सο)बुझाया जा सके। मुखरपन=वाचालता। सारि=सारिका=मैना।

अर्थ—भौरा एक (ही) फूल मे नही रमण करता है (और) स्वामी एक ही (स्त्री) के साथ नही रहता है।

हे सखी! ससार मे ये दोनो सम्भव हैं। (अर्थात्—भौरे का अनेक फूलो मे रमण करना, और स्वामी का अनेक स्त्रियों के साथ रहना;—ससार में ये दोनों होते आये हैं तथा होते रहेंगे। कारण,) सभी (नवीनता का) अनुभव चाहते हैं।

मत बोलो—कठोर वचन मत बोलो। (कारण) तुम सुबुद्धि हो—सयानी हो।

उतने ही प्रमाण मे आग को प्रज्वलित करना चाहिए, जिसे पानी से बुझाया जा सके।

प्रिय के अनुचित (व्यवहार) को जरा भी (हृदय में) धारण नही करना चाहिए,—मन को (उनसे) दूर नही मानना चाहिए।

यदि मैना को मुखरपन सोहता है, तो क्या (कोई अपना) नूपुर समर्पित करती है? (अर्थात्—पिंजडे की मैना बडी मुखर होती है। वह जिसकी आवाज सुनती है, उसी की नकल कर लेती है। किन्तु, इस डर से कोई रमणी अपना नूपुर नहीं उतार फेंकती है।)

मालव—

[६३]

हरि रिपु अनुज वास को[1] रातल[2]
दए सरीर हमरा[3]।
खटपद बन्धु[4] बन्धु[5] सुअ अरि घनि
सोदर सुअ कर धारा[6] ॥ध्रुο॥

संο अο—६ धरा।

सखि हे हरि न बुझाबए[7] कोइ।
पावक सेख[8] युदअ[9] वर संपुट
हेरि से चउगुन[9] होइ॥
हिमगिरि सुता सुअ वाहन भोअन
भोअन ता सुत रे।
ता पिअ बारक ता रिपु अतिसख
हरि तिथि रअनि हते॥

राम० पृ० ११० (क), प ३८५, प० १

पाठभेद—

डा० (पद-संख्या ५४)—१-२ कोवा (रा) तल। ३ हमारा। ४-५ बटुरथु। ७ छझाबए। ९ चतुगुन।

शब्दार्थ—हरि=श्रीकृष्ण (कर्त्ता)। रिपु=कंस। अनुज=देवकी। वास=वास-स्थान=मथुरा। रातल=अनुरक्त। खटपद=भ्रमर। बन्धु=कमल। बन्धु=सूर्य। सुअ=कर्ण। अरि=अर्जुन। घनि=सुभद्रा। सोदर=भ्राता = श्रीकृष्ण। सुअ=प्रद्युम्न=कामदेव। करधरा=हाथ पकड़ रहा है। पावक=अग्नि। सेख=अन्त। पावक-सेख=अग्नि का अन्त करनेवाला=जल। युदअ=जल मे जिसका उदय होता है। कमल। सपुट=मुँद गया। हिमगिरि-सुता=पार्वती। सुअ=कार्त्तिकेय। वाहन=मयूर। =भोअन=सर्प। भोअन=वायु। ता सुत=हनुमान्। ता पिअ=रामचन्द्र। बारक=बालक=कुश। ता रिपु=चाणक्य। का अतिसख=चन्द्रगुप्त=(नामैकदेशे नामग्रहणम्—इस न्याय से) चन्द्र। हरि तिथि=द्वादशी। रयनि=(रजनी—स०) रात्रि। हते=खत्म हो गया=डूब गया।

अर्थ—श्रीकृष्ण मुझे (अपना) शरीर देकर (सौपकर) मथुरा मे अनुरक्त हो गये (अर्थात्—मथुरा जा बैठे।)

(और यहाँ) कामदेव हाथ पकड रहा है।

हे सखी! कृष्ण को कोई नही समझाता है।

कमल मुँद गया (और मुँदे कमल को), देखकर वह (कामदेव) चतुर्गुण हो रहा है। (अर्थात्—दिन बीत गया, रात हो गई। इसलिए, कामदेव चतुर्गुण होकर आक्रमण कर रहा है)

द्वादशी का चन्द्रमा डूब गया। (अर्थात्—भोर होने को है; पर कृष्ण नही आये!)

सं० अ०—८ उदय।

धनछी—

[६४]

पवन सुआ पति अरि जे दसल[1] मति
ता सुत चउदिसे आब।
तासु तनअ सुअ मन मनसिज हुअ
सब दिस धुनि कए गाब॥ध्रु०॥
ए सखि,
मोर असन पति तनआ आइलि
न आएल पहु पिआस॥
सिखर सुखिण्डि चलि अनल करए धुनि
अनल बमए[2] तिमिरारी॥
सबतहुँ सब पहुँ बिपति आइलि सहु[3]
मनमथ गेल परचारी[4]॥
हेम समअ गेल पिआ परबत भेल हिआ
मअ न मअन[5] तहि पास।
पअुअज[6] अरि अरि ता सुअ मने धरि
अबे हमे करब गरास॥

राम० पृ० ११० (क), प० ३८६, प०४

पाठभेद—

ठा० (पद-संख्या ५५)—१ दसल (दमन)। २ बसए। ३ सहु। ४ पररत। ५ मअन। ६ पअु अज।

विशेष—इसका अर्थ विचारणीय है।

धनछी—

[६५]

पावक सिखा निच[1] न धावए
उँच[2] न जा जलधारा।

सं० अ०—१ नीच। २ ऊँच।

तत से पए अबस करए
जकर जे बेबहारा ॥ध्रु०॥
माधव गरुबि[3] आरति तोरि।
निअ[4] मने जदि आगु न गुनल
कइलि रे बिथा मोरि॥
कत न वासर पलटि आबिह
कति न होइह राती।
पर दोस[5] दए तिरिबध लए
कओन[6] से[7] पुरुस[8] जाती[9]॥
ओ नवि नागरि निसा सगरि
सुरत अवधि गेला।
नाह निरदए[10] अरुन[11] उदअ[12]
उपसम नहि भेला॥

राम० पृ० ११०, प० ३८७, पं० ३

पाठभेद—

मि० म० (पद०-संख्या ८०९)—३ गुरुबि। ६-७-८-९ कओन पेखब सजाती। १० निरदय। ११ अरुण। १२ उदय।

झा० (पद-संख्या ५६)—२ ऊँच। ७-८-९ पेखब सजाती १० निरदय।

शब्दार्थ—पावक=आग। तत=उसे। गरुबि=(गुर्वी—स०) बड़ी। आरति=(आर्त्ति—सं०) पीडा। कइलि=किया-कराया। बिथा=वृथा—स०। कत=कितने। वासर=दिन। तिरिबध=स्त्रीवध—सं०। पुरुस जाती=पुरुषवर्ग मे। निसा=रात। सगरि=समूची। उपसम=वासना से निवृत्त।

अर्थ—आग की लपट नीचे को नही दौडती है (और) पानी की धारा ऊपर को नही जाती है।

जिसका जो व्यवहार है, वह उसे अवश्य करता है।

हे माधव ! तुम्हारी (काम-) पीडा बहुत बड़ी है। यदि (तुमने) अपने मन में आगे का विचार नही किया (तो) मेरा किया-कराया (सब) व्यर्थ !

सं० अ०—४ निज। ५ दोष। ८ पुरुष। १० निरदअ।

कितने दिन लौटकर नही आयेंगे (और) कितनी रातें नही होंगी? (अर्थात्—बार-बार दिन लौटकर आयेंगे और बार-बार रातें होंगी।)

(किन्तु) पुरुषों के समूह मे (तुमको छोडकर दूसरा) कौन ऐसा है, (जो) दूसरे को कलङ्क लगाता है (और स्वयं) स्त्रीवध करता है। (अर्थात्—तुम आज की रात मे ही सारा रतिरङ्ग करना चाहते हो। दूसरे दिन और दूसरी रात के लिए कुछ भी नही छोडना चाहते हो। अत, नायिका के प्राण जायेंगे और मुझे कलङ्क लगेगा।)

वह नागरी नवीना है, (फिर भी) सुरत की अवधि मे (अर्थात्—कामक्रीडा करते ही) सारी रात बीत गई।

अरुणोदय होते पर भी (पौ फटने पर भी) निर्दय स्वामी वासना से निवृत्त नही हुए।

धनछी—

[६६]

कतें[1] कतें[2] भान्ति लता नहि थाक
तुलना करए न पारए जाक।
बाहर कण्टक भितर पराग
तइअओ तोहरा तन्हिकें अनुराग॥ध्रु०॥
बुझिहल भमर जइसन तोहें[3] रसी
जनम गोमओलह[4] केतकि बसी॥
मालति माधए कुन्दलता
आओर[5] रसमति अछए[6] कता।
ताहेरि[7] सबहु जदि गुन[8] परिहार
ताकें बोलब की सहज गमार॥

राम० पृ० १११ (क), प० ३८८, पं० १

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ८१४)—१-२ कत कत। ४ गमओलह। ५ आगोर। ६ अच्छए। ७ ता हेरि। ८ गुण।

झा० (पद-संख्या ५७)—३ तोहे। ४ गमओलह। ७ ता हेरि।

शब्दार्थ—कतें=कितनी। थाक=है। जाक=जिनकी। कण्टक=काँटा। गमओलह=

सं० अ०—४ गमओलह।

गँवाया। केतकि=केवड़ा। माधए=माधवी—स०। कता=कितनी। ताहेरि सबहु=उन सबके। परिहार=अनादर।

अर्थ—कितनी भाँति की कितनी लताएँ नहीं है, (अर्थात्—भाँति-भाँति की अनेक लताएँ है।) जिनकी तुलना नहीं की जा सकती।

फिर भी, तुमको उसी का अनुराग है, (जिसके) बाहर काँटे है (और) भीतर पराग है।

हे भ्रमर ! (मैंने) समझ लिया (कि) तुम जैसे रसिक हो। (कारण, तुमने) केवड़े में रहकर जन्म बिता दिया।

मालती, माधवी, कुन्दलता (आदि) और भी कितनी रसवती (लताएँ) हैं।

यदि उन सबके गुणों का (कोई) अनादर करता है (तो) उसे क्या कहा जायगा—सहज गँवार।

मालव—

[६७]

दरसन लागि पुजए निते[1] काम
अनुखन जपए तोहरि पए नाम।
अवधि समापलि मास अखाढ़[2]
अबे दिने दिने जिवन काँ गाढ़[3] ॥ध्रु०॥
कहब समाद कृष्ण कें[4] मोर
सबतह जलद समअ बड[5] घोर॥
हमे अबला हे गुपुत पञ्चबान
मरम लखिए कर सरस[6] सन्धान[7]।
तुअ गुण[8] (बान्धल) अछए परान
परक वेदन दुख पर नहि जान॥

रामा०पृ० १११ (क), प० ३८९, पं० ३

पाठभेद—

ठा० (पद-सख्या ५८)—१ नित। २ अखाढ। ३ गाढ। ४ के। ५ वड़। ६-७ सरसन्धान। ८ गुन।

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अत, इसके लिए प्रथम भाग का ७५ सख्यक पद देखिए।

बरली—

[६८]

कत[1] अछ[2] कानन कुसुमित साहर
पङ्कज परम साहसे[3]।
तहुँ[4] मकरन्द[5] अछए····(ज)दि[6]
तोहि बिनु विकल पिआसे ॥ध्रु०॥
मालति तोहि सम के जग आने[7]।
जसु परिमल रसे[8] परबस मधुकर
कतहु न कर मधुपाने ॥
वासर कुमुद विकास न दरसए
केतकि[9] कण्टक मारे[10]।
नव मधुमासहि तइसन न देखिअ
जे अनुरञ्जए पारे[11] ॥
सहज जुवति वर सबगुन[12] नागर
तहुँ पुनु ताहेरि सउभागे।
निज[13] मने पिअतमें ससि कुमुदिनि सम
जसु अनुरत अनुरागे ॥

राम० पृ० १११, प० ३९०, प० १

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ८०६)—१-२ पाठाभाव। ३ सहासे। ४ (ज)त। ५ रन्द। ६ दि। ८ परिमलसँ। ९ केतकी। १० मारे। ११ पारे। १२ गुण। १३ निअ।

ठा० (पद-संख्या ५९)—१-२ पाठाभाव। ४-५ त रन्द। ६ दि। ८ परिमलसँ। ११ पारे।

शब्दार्थ—कानन=जंगल। साहर=(सहकार—सं०) आम्रवृक्ष। सहासे=खिले हुए। वासर=दिन। केतकि=केवड़ा। अनुरत=अनुरक्त =प्रेमी।

अर्थ—जगल मे कितने ही कुसुमित आम्रवृक्ष (और) खिले हुए कमल हैं। उनमें मकरन्द भी है, (किन्तु भौरा) तुम्हारे विना प्यास से विकल है।

सं० अ०—३ सहासे। ७ आने। ११ पारे।

हे मालती ! ससार मे तुम्हारे समान दूसरी कौन है ? (कारण,) जिसके परिमल-रस से परवश होकर भौरा कही मधुपान नही करता।

कुमुद दिन मे विकसित नही होता (और) केतकी मे काँटो का ढेर है।

(इसलिए) नये मधुमास मे वैसी (कोई) नही दीखती, जो (भौरे को) प्रसन्न कर सके।

(तुम) स्वभाव से ही युवतियो मे श्रेष्ठ हो (और) नागर भी सर्वगुणसम्पन्न है। फिर, तुम्हारा यह सौभाग्य है कि—

प्रियतम चन्द्रमा मे कुमुदिनी के समान अपने मन मे प्रेमी के साथ जिसका अनुराग है।

[६९]

धनछी—

दरसने ससिमुखि मधुर हास देखि
हेरइते[२] हरए गेआँने[१]।
करे[३] धरि केसपास पिअइ अधररस
कतए मानिनि[४] जन माने ॥ध्रु०॥

सुन्दरि,
तोके[५] बोलओं[६] पुनु[७] जतन करहु जनु
मञे[८] न जाएबे ता पिआ पासे ॥
न दइन दखिन मान न मोह ममत जान
न रमए मनोरथ राखि।
सून सङ्केतन[९] दीप अचेतन
के धरब[१०] तखनुक साखि ॥
प्रमोद कपोत रव[?] कुचकुम्भ परिभव
कत कत निधुवन भान्ति।
तखनुक सिव सिव रे रे उबरल[११] जिव[११]
भागें[१२] पोहाइलि राति ॥

राम० पृ० १११, प० ३९१, पं० ५

सं० अ०—१ गेआने। ६ मोञ। १२ आगें।

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ८१०)—१ गेआने। २ करे। ३ मलिनि। ४ बोलओ। ५ पाठाभाव। ६ मए। ७ सङ्केत न। ८ रब। १०-११ डरब न जिव।

ठा० (पद-संख्या ६०)—३ मलिनि। ५-पाठाभाव। ८ रब। ९ वर। १०-११ डरब न जिव।

शब्दार्थ—केसपास=चोटी। दइन=दैन्य—सं०। दखिन=दाक्षिण्य—सं०। ममत=ममता।। सङ्केतन=मिलन-स्थान। अचेतन=चेतनाहीन। साखि=साक्ष्य। प्रमोद-कपोत=नायिका के खेलने का कबूतर। रव=शब्द करने लगा=घुटकने लगा। परिभव=अनादर। निधुवन=कामक्रीडा। उबरल=बच गये। जिव=प्राण। पोहाइलि=बीत गई।

अर्थ—(नायिका की उक्ति सखी के प्रति—) शशिमुखी के दर्शन होने पर (उसकी) मधुर मुस्कान देखते ही (स्वामी का) ज्ञान-हरण हो जाता है।

(वे) हाथ से चोटी पकडकर अधरामृत पान करने लगते है। (ऐसी स्थिति मे) मानिनी जनो का मान कहाँ (रह सकता है?)

हे सुन्दरी! तुम्हे फिर कहती हू (कि) यत्न मत करो। मैं वैसे प्रियतम के पास नही जाऊँगी।

(वे) न दैन्य-दाक्षिण्य मानते है; न मोह-ममता जानते है (और) न मनोरथ को रखकर रमण करते है। (अर्थात्—सारा मनोरथ उसी समय पूर्ण कर लेना चाहते है।)

मिलन-स्थान सूना रहता है। (वहाँ रहनेवाला) दीपक चेतनाहीन है। (फिर भला,) उस समय का साक्ष्य कौन धरेगा (देगा?)

(वे) हर्ष से कबूतर की तरह घुटकने लगते हैं,[1] कुचकुम्भ का पराभव (मर्दन) करते है (और) कई भाँति से (भाँति-भाँति से) कामक्रीडाएँ करते हैं।

उस समय का · ! शिव-शिव! ! अरे, भाग्य से रात बीत गई। (इसीलिए) प्राण बच गये।

---

१. कुर्यात्कूजितमामर्दे दंशे सव्यथहुङ्कृतिम्।
नखक्षतेषु सीत्कारमाघाते स्तनितं स्फुटम्॥
—नागरसर्वस्व, परिच्छेद ३७, श्लोक ८।

हृष्यत्कपोतादिविहङ्गमानां यथा कृतं कूजितमामनन्ति।
आयासनिःश्वासनिरोधहृद्यं मनीषिणस्तच्छ्वसितं वदन्ति॥
—वही, परि० २१, श्लोक २।

धनछी—

[७०]

अविरल बिसरस[1] बरिस[2] ससी
देह दाह ,कर पवन परसी।
बिसम बिसमसर बोधि न देइ
सिव सिव जिवन केओ नहि लेइ ।।ध्रु०।।
ए सखि ए सखि हे[3] मोहि (म) न भास
मरन[4] चाहि बड[5] विरह हुतासे[6] ।।
आबे मञे[7] निअ[8] मने दिढ[9] कए जानु
कतहु सेस नहि कपटे बिनु।
सहज पेम जदि विरह न होइ
हो(इ) तहि विरह[10] जिवए जनु कोइ ।।

राम० पृ० ११२ (क), प० ३९२, पं० ३

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ८२४)—१-२ बिस बस रवि। ३ पाठाभाव। ४ सवन। ५ बड। ६ हुतास। ७ मए। ९ दिढ। १० होतहि।

ठा० (पद-सख्या ६१)—१-२ बिस बस रवि। ३ पाठाभाव। ४ सवन। ५ बड। ६ हुतास। ९ दिढ।

शब्दार्थ—अविरल=सघन=जोरो से। बिसरस=विषयुक्त अमृत। परसी=स्पर्श करके। बिसम=(विषम—स०) दुष्ट। बिसमसर=कामदेव। बोधि न देइ=समझा नही देता। भास=प्रतीत होता है। हुतासे=अग्नि। सेस=शेष—स०।

अर्थ—चन्द्रमा जोरो से विष-रस की वर्षा कर रहा है। हवा स्पर्श करके शरीर मे जलन (पैदा) कर रही है।

दुष्ट कामदेव (प्रियतम को) समझा नही देता। शिव! शिव!! (दुःख तो सभी देते है, पर) कोई प्राण नही लेता है।

हे सखी! मेरे मन मे होता है कि विरहाग्नि मरण से भी बड़ी होती है।

अब मैंने अपने मन मे दृढ करके समझ लिया कि विना कपट के कही (कुछ) शेष नही है।

सं० अ०—३ पाठाभाव। ६ हुतास। ७ मोञ। ८ निज।

(अन्त मे विरहिणी कहती है—) यदि (कही) अनायास प्रेम हो जाय, तो विरह नही हो। (यदि) विरह हो, तो कोई जीये नही।

कोलार—

[७१]

कुसुमधूरि मलआनिल[१] पूरलि[२]
कोकिले[३] कबलु[४] सहारे।
हारि पुरुब परिपाटि पराएल
आने चलल वेबहारे॥ध्रु०॥
मानिनि जानिले तन्तू।
सिसिर महीपति दापे चापि लेल
राजा भेल वसन्तू॥
मनमथ तन्त अन्त धरि पढलए
अवसर भेलिसि (अ) आनी।
अवसर गेल बहुरि नहि आबए
जौवन बन्ध छुट पानी॥
भनिता॥

राम० पृ० ११२, प० ३९४, पं० ४

विशेष—यह पद पहले आ चुका है। अतः, इसके लिए १७ संख्यक पद देखिए।

[७२]

तुअ गुणे अमिअ[१] निवास
बिरुख[२] वचन कि के[३] भास।
बाँरि[४] सम हिहंए[५] हमारि
हेम कर गलल तगारि॥ध्रु०॥
परिहर दारुण मान
देहे अध(र) मधु पान।

सं० अ०—१ अमिअ। ३ कके। ४ बारि। ५ हृदय।

रोसे[6] दारुन मुह[7] मन्द
निन्दइ साझक[8] चन्द ॥
कथि[9] भेल सुललित हास
उचितेहु[10] कमल बिगास[11] ।
परमुखे सुनिअ[12] अपवानी[13]
रोष करब पहु जानी[14] ॥
किछु दोष नहिक हमारि
हृदयहु[15] चाहह विचारि।
आभोग्य ॥

राम० पृ० ११३ (क), प० ६१, प० १

पाठभेद—

ठा० (पद-सख्या ६४)—२ विरूप। ९ कानु। १० उठितेहु। ११ विकास।

शब्दार्थ—अमिअ=अमृत। बिरूख वचन=(विषवचन-स०) कटु वचन। कि के= किस प्रकार। बाँरि=(वारि-स०) जल। हिईंए=हृदय। हेम=सोना। कर=हाथ। गलल= गिर गया। त=तो। गारि=गाली। दारुण=भयकर। मन्द=मलिन। कथि भेल=क्या हुआ। कमल=कम हो गया=घट गया। अपबानी= (अपवाणी—स०) अपवाद। हृदयहु=मन मे भी।

अर्थ—तुम्हारे गुणो से (जान पडता है कि तुममे) अमृत का निवास है। (फिर) कटु वचन किस प्रकार बोलती हो?

मेरा हृदय जल के समान (स्वच्छ है। फिर भी, तुम मुझे छोड रही हो, तो लोग तुम्हे ही बुरा कहेगे। कारण,) सोना हाथ से गिर जाय, तो (गिरानेवाले को ही) गाली होती है।

भयकर मान को छोड दो। (तुम) अपने अधर-मधु का पान (करने) दो।

उग्र रोष से (तुम्हारा) मुँह मलिन हो गया है। (अर्थात्—रोष से आरक्त तुम्हारा मुख भला नही दीखता है। मालूम होता है, जैसे वह) शाम के चन्द्रमा की निन्दा करता है।

(तुम्हारा) सुन्दर हास्य क्या हुआ? (जहाँ) उचित है, (वहाँ भी उसका) विकास घट गया।

दूसरे के मुँह से अपवाद सुनकर (रोष नही करना चाहिए।) स्वामी को (अच्छी तरह) जान-बूझकर रोष करना चाहिए।

मेरा कुछ भी दोष नही है। (तुम्हे अपने) मन मे भी विचार करना चाहिए।

सं० अ०— ६ रोषें। ७ मुंह। ८ साँझक। १२ सुनि। १३ अपवानि। १४ जानि। १५ हृदअहु।

कोलार—

[७३]

आनन[1] देखि भान मोहि लागल
जिनि सरसिज जिनि चन्दा।
सरसिज मलिन रयनि[2] दिन ससधर
ई[3] दिन रयनि[4] सानन्दा ।।ध्रु०।।
रूपे रूप[5] हिनुकि रेखा।
एहि सम[6] दैवे[7] आन[8] नहि बिहले
ऐसन[9] बुझिअ बिसेखा ।।
अनुपम रूप घटइते सब विघटल
जत छल रूपक सारे।
से जानि दैवे[10] आनि[11] कए निरमल
कामिनि कुन्तल[12] भारे ।।
भँनिता ।।

राम० पृ० ११३ (क), प० ३९५, प० ५

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ८०५)—३ इ। ५ रूपे। ६ समय। ९ एसन। १२ अन्त न।

ठा० (पद-सख्या ६५)—५ रूपे। ६ समय। १२ अन्त न।

शब्दार्थ—आनन=मुंह। जिनि=जीत लिया। सरसिज=कमल। रयनि=रात। ससघर=चन्द्रमा। रूपे=सौन्दर्य मे। हिनुकि=उन्ही की। रेखा=आकृति। विहले=विधान किया। निर्माण किया। विसेखा=असाधारण=अनुपमेय। घटइते=घटना करते हुए=रचना करते हुए। विघटल=विघटित हो गया=सूना हो गया। सारे=सम्पत्ति=खजाना। कुन्तल भारे=केशराशि।

अर्थ—(नायिका के) मुंह को देखकर मुझे (ऐसा) बोध हुआ, (जैसे उसने) कमल (और) चन्द्रमा को जीत लिया है।

(कारण,) कमल रात मे (और) चन्द्रमा दिन मे मलिन हो जाता है; (पर) यह दिन-रात सानन्द रहता है।

सं० अ०—१ आनन। २ रअनि। ४ रअनि। ५ रूपे। ७ दइवें। ८ आन। ९ अइसन। १० दइवें। ११ आनि।

रूप-रूप में (सौन्दर्यमात्र मे) इसी की आकृति है। विधाता ने इसके समान दूसरे का निर्माण नही किया,—(मैं इसे) ऐसी असाधारण समझता हूँ। (अर्थात्—विधाता की सृष्टि मे इसके समान यही है।)

(विधाता के पास) सौन्दर्य का जितना खजाना था, (इसके) अनुपम सौन्दर्य की रचना करते हुए, सो सब सूना हो गया।

यही जानकर विधाता ने (शून्य को) लाकर कामिनी की केशराशि का निर्माण किया (अर्थात्—रूपहीन होने पर भी शून्य मे नीलत्व का आभास होता है। यथा—'नीलन्तमश्चलति', 'नीलनभो वर्त्तते' आदि। अतएव, कवि का कथन है कि शून्य को, अर्थात्—अभाव-रूप अन्धकार को लाकर विधाता ने कामिनी की केशराशि का निर्माण किया।)

कोलार—

[७४]

पहिनहि[1] अमिअ[2] लोभायी
अबे सिनुबसि[3] विषवचन कोहायी।
कैसनि[4] भेलि तुअ[5] रिती[6]
आदि मधुर परिनामक तीती ॥ध्रु०॥
के तोके बोलए सआनी[7]
कोप न कएलह अवसर जानी।
निधुवन लालस नाहे
पेम लुबुध परिरम्भन चाहे ॥
यदि खण्डसि तसु आसा
सुतसि समिध दए बहत[8] हुतासा[9]।
विद्यापति कह जानी
हरि सओ[10] कोप न करए सआनी[11] ॥

राम० पृ० ११३, प० ३९६, पं० ३

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ४२२)—१ पहिलहि। २ अमिअ। ३ सिन्धु बसि। ६ रीति। ८ बहल। ९ बतासा। १० सओ।

सं० अ०—४ कइसनि। ६ रीती। ७ सआनी। १० सओ। ११ सआनी।

ठा० (पद-सख्या ६६)—३ सिन्धु धसि। ५-६ ओम रीती। ८ वहत। ९ वतासा। १० सभो।

शब्दार्थ—पहिनहि=पहले। लोभायी=लुभाकर। सिनुवसि=सुनाती हो। कोहायी=क्रुद्ध होकर। तीती=तिक्त—स०। निधुवन=कामक्रीडा। नाहे=(नाथ—स०) स्वामी। परिरम्भन=आलिङ्गन। समिध=इन्धन। धहत=प्रज्वलित। हुतासा=अग्नि।

अर्थ—पहले अमृत (के समान वचन) से लुभाकर अब क्रुद्ध होकर विष के समान वचन सुनाती हो?

आरम्भ मे मधुर (और) अन्त मे तिक्त—तुम्हारी यह रीति कैसी हुई?

अवसर समझकर तुमने क्रोध नही किया। (अर्थात्—विना अवसर के ही तुमने क्रोध किया, इसलिए) कौन तुम्हे सयानी कहेगी?

स्वामी कामक्रीडा की लालसा से, प्रेमलुब्ध होकर, आलिङ्गन चाहता है।

यदि उसकी आशा खण्डित करती हो (तो) प्रज्वलित अग्नि मे ईन्धन देकर सोती हो। (अर्थात्—इससे स्वामी की क्रोधाग्नि बल उठेगी और तुम उसमे जल मरोगी।)

विद्यापति सोच-समझकर कहते है कि सयानी (चतुरा) कृष्ण से कोप नही करती है।

मलारी—

[७५]

दाहिन दिढ[1] अनुरागे
पिआ परवचन न लागे।
बुझल सबे अवगाही
सूते[2] सरवर थाही।।ध्रु०।
राधे,
चिते जनु झाखह[3] आने[4]
तोके[5] परसन पञ्चबाने।
सुपहु सुनारि सिनेह[6]
चान्द कुमुद सम रेह[7]।।

सं० अ०—२ सुते। ३ झाँखह। ४ आने। ५ तोंके। ६ सिनेहा। ७ रेहा।

दिवसे दिवसे धर जोति[8]
सोना मेलाऊलि[9] मोति[10]।
सुकवि विद्यापति भान[11]
पुने मिल[12] पिआ गुणमान[13]॥

राम० पृ० ११४(क), प० ३९७, प० १

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ४२६)—१ दिढ। ९ मेलाओलि। १२ मिले।

ठा० (पद-सख्या ६७)—१ दिढ। २ मेलाओलि।

शब्दार्थ—दाहिन=दक्षिण (नायक)। अवगाही=पैठकर। सूते=धागे से। सरवर=सरोवर। तोके=तुमपर। परसन=प्रसन्न। पञ्चबाने=कामदेव। रेह=(रेखा—स०) गणना। मेलाउलि=मिलाया हुआ।

अर्थ—दक्षिण* नायक का अनुराग दृढ होता है। (ऐसे) स्वामी दूसरे की बात मे नही आते।

(मैंने) पैठकर—धागे से सरोवर को थाहकर—सब-कुछ समझ लिया।

हे राधे! तुम (अपने) मन मे अन्यथा मत सोचो। तुमपर कामदेव प्रसन्न है।

योग्य स्वामी (और) योग्य नारी मे स्नेह होता (ही) है। चन्द्रमा (और) कुमुद के स्नेह के समान (उन दोनो के स्नेह की) गणना होती है।

(उन दोनो का स्नेह) प्रतिदिन प्रकाश पाता है। (जैसे), सोना मे मिलाया (गुँथा) हुआ मोती (प्रकाश) पाता है।)

सुकवि विद्यापति कहते है (कि) पुण्य से ही गुणवान् स्वामी मिलते है।

मलारी—

[७६]

दूहुक[1] अभिमत एक न मिलले[2]
दूती के अपराधे।
आन आन खने[3] सङ्केत भुलाएल
दुहुक मनोरथ बाधे॥ध्रु०॥

स० अ०—८ जोती। ९ मेलानुलि। १० मोती। ११ माने। १३ गुणमाने।

* एषु त्वनेकमहिलासमरागो दक्षिणः कथितः।

—साहित्यदर्पण, परिच्छेद ३, श्लोक ९५।

तरुणी कहओं[4] कहा
सफल[5] भेले[6] अभिसार॥
राधा नयन[7] जरद[8] जओं[9] बरिसए
कन्हायी रहल लजाई[10]।
दूती अपन चतुरपन खाएल
चारिम कहहि न जाई[11]॥
दूअओ[12] परम बेआकुल मानस[13]
जसु[14] राधा तसु कान्ह।
एक मनोभव परिभवदाता
दुअहु समहि समधान॥
भणइ[15] विद्यापति एहु रस जानए
रायनि[16] मह रसमन्ता।
सिवसिंह राजा रूपनराओन[17]
राए[18] सिवसिंह[19] लखिमा देवि[20] कन्ता॥

राम० पृ० ११४, प० ३९९, पं० ३

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या १०९)—१ दुहुक। २ एकन मिलने। ३ बने। ५ सकल। ६ मेने। १० न जाइ। ११ जाइ। १२ दुअओ। १३ मानल। १४ जस। १५ मनइ। १७ रूपनराएन। १८-१९ पाठाभाव। २० देवी।

झा० (पद-संख्या ६९)—१ दुहुक। २ एक न मिलने। ६ भेने। १० न जाई। १४ जस। १५ भनइ। १८-१९ पाठाभाव। २० देवी।

शब्दार्थ—मिलले = मिला = हो सका। भेले = हुआ। सङ्केत = मिलनस्थान। कहा = क्या। जरद = (जलद—सं०) मेघ। खाएल = खा गई। चारिम = चौथे को। मानस = हृदय। परिभव = पराभव। समधान = सन्धान = लक्ष्य।

अर्थ—दूती के अपराध से दोनो का अभिमत एक नही हो सका। (अर्थात्—अभिमत पूरा नही हुआ।)

सं० अ०—३ बान बान सने। ४ कहओ। ७ नअन। ८ जलद। ९ जओ। १५ भनइ। १६ रायनि।

भिन्न-भिन्न समय मे (दोनो) मिलन-स्थान मे भुला गये। (अर्थात्—कृष्ण किसी दूसरे समय मे और राधा किसी दूसरे समय मे भूलकर मिलन-स्थान मे जा पहुँचे। इसीलिए) दोनो के मनोरथ मे बाधा हो गई।

हे सखी! क्या कहूँ? सफल होने पर ही अभिसार है। (अर्थात्—यदि सफल नही हुआ, तो अभिसार क्या?)

राधा की आँखे मेघ के समान बरस रही है (और) कृष्ण लज्जित होकर बैठे है। दूती अपनी चतुराई से (सब-कुछ किये-कराये को) खा गई। चौथे से (कुछ) कहा भी नही जा सकता है।

जैसी राधा, वैसे कृष्ण,—दोनो के हृदय अत्यन्त व्याकुल है। एक ही कामदेव दोनो (राधा और कृष्ण) को लक्ष्य करके एक-सा पराभव दे रहा है।

विद्यापति कहते है—राजाओ मे रसज्ञ, लखिमा देवी के स्वामी राजा शिवसिंह रूपनारायण इस रस को जानते है।

विशेष—भणिता मे शिवसिंह का नाम दो बार आ गया है। इससे पुनरुक्ति दोष हो जाता है। छन्दोभङ्ग भी हो रहा है। अत, उसका अभिमत पाठ इस प्रकार होना चाहिए—

राजा सिवसिंह रूपनराजेन
लखिमादेवि सुकन्ता।।

मलारी—

[७७]

नूपुर[1] रसना परिहरि[2] देह
पीत वसन हे युवति[3] पिधि[4] लेह।
सिथिल विलम्बे[5] होएत[6] ऊपहास
गए नहि होएते[7] कान्हक पास।।ध्रु०।।
गमन करह सखि वल्लभ गेह
पूरत अभिमत सकल सिनेह[8]।।
कुङ्कुमे तओन[9] पसाहहि देह[10]
नयन[11] युगल[12] भय[13] काजर रेह।
अबहि उदित होत तम पिबि चन्द[14]
जानि पिसुन जने[15] बोलब मन्द।।

अ० सं०—३ जुवति। ४ पिन्धि। ५ विलम्बे। ९ तओन। ११ नअन। १२ जुगल। १३ भए।

भनइ विद्यापति सुन[17] वरनारि
अभिनव नागर रूपे[17] मुरारि।
रूपनराएन[18] एहु रस जान
राए सिवसिंह लखिमा दे[19] रमान॥

राम० पृ० ११५ (क), प० ४००, पं० २

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ९०)—२ परिहर। ३ जुवति। ६ हास। ७ नहि गए होएत। ८ अभिमत होएत इथि न सन्देह। १० कुङ्कुम पक पसाहह देह। १२ जुगल। १३ दुअ। १४ अबहि उगत तम पिबि कहु चन्द। १५ जन। अन्त की दो पक्तियाँ नही हैं।

झा० (पद-संख्या ७०)—१नूपुर। ६ (उप)हास। १६ सुनु। १९ देवि।

शब्दार्थ—नूपुर=घुंघरू। रसना=(रशना—सं०) कांची। परिहरि देह=त्याग दो। पिन्धि लेह=पहन लो। सिथिल=आलस्य। वल्लभ=प्रियतम। गेह=घर। अभिमत=मनोनुकूल। तओन=तया=उसी प्रकार। भय=भए=होकर। होत=होगा। तम=अन्धकार। पिसुन जने=चुगलखोर।

अर्थ—हे युवती! घुंघरू (और) मेखला का त्याग कर दो। पीला कपडा पहन लो।

शिथिलता और विलम्ब (करने से) उपहास होगा। (कारण,) कृष्ण के पास नही जा सकोगी।

हे सखी! प्रियतम के घर चलो। (तुम्हारे) सारे अभिलषित प्रेम पूर्ण होंगे।

(जिस प्रकार घुंघरू और मेखला का त्याग कर पीला कपडा पहनोगी,) उसी प्रकार कुङ्कुम से (अपने) शरीर का प्रसाधन करो। दोनों आँखो मे होकर काजल की रेखा करो। (अर्थात्—काजल की रेखा इस प्रकार करो कि वह आँख मे ही रहे। बाहर थोडा भी न लगने पाये।)

चन्द्रमा अभी अन्धकार को पीकर (अन्धकार का नाश कर) उदित होगा। (इसलिए शीघ्रता करो। चन्द्रोदय हो जाने से) चुगलखोर जानकर बुरा कहेंगे।

विद्यापति कहते है—अरी वरनारी! सुनो। अभिनव नागर और रूप मे (दूसरे) कृष्ण—लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह रूपनारायण इस रस को जानते हैं।

सं० अ०—१७ रूपें। १८ रूपनराबेन।

मलार—

[७८]

बरिस[1] सघन घन पेमे पुरल[2] मन
पिआ परदेस हमारे।
ऐसनि[3] पाउस राति पुरुष कँमन जाति
गृह परिहरइ गमारे ।।ध्रु०।।
सजनी दुर कर[4] दुरजन नामे।
तोहहि[5] सआनि[6] धनि अपन परान सनि
तें[7] करिअ चित बिसरामे ।।
कमलफुल बिगसु केओ बोल मअन[8] हसु[9]
भमरा भमरि विवादे।
मुइल कुसुमधनु से कैसे[10] जीउल पुनु
कि बोलब हर परमादे ।।
बिजु (रि) चमक घन बिसहर बिसहरे[11]
ऊनमुखे[12] नाच मयूरे।
कदम पवन बह से कैसे[13] युवति सह
हृदय[14] भमइ कति[15] दूरे ।।
आभोग्य ।।

राम० पृ० ११५, प० ४०१, प० १

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ८२२)—१ वारिस। २ पूरल। ३ एसनि। ४ करु। ७ ते। १२ उनमुखे। १५ बाति।

ठा० (पद-सख्या ७१)—१ वारिस। ११ विसह रे। १२ उनमुखे।

शब्दार्थ—बरिस=वरसता है। घन=मेघ। पाउस=(पावस—स०) वर्षा ऋतु। कमन=कैसी। परिहरइ=छोड देता है। सनि=समान। ते=इसीलिए। विगसु= खिले हैं।

सं० अ०—३ अइसनि। ५ तोहहिँ। ६ सआनि। ८ मअन। ९ हँसु। १० कइसे। ११ बिषहर। १२ उनमुखें। १३ कइसे। १४ हृदअ।

मअन=मदन=कामदेव। मुइल=मरा हुआ। कुसुमधनु=कामदेव। हर=महादेव। परमादे=(प्रमाद—स०) अनवधानता। बिसहर=(विषधर—स०) साँप। उनमुख=(उन्मुख—स०) ऊपर मुँह करके। भमइ=घूमता है।

अर्थ—मेघ जोरो से बरस रहा है, मन प्रेम से भरा है; (किन्तु) मेरे स्वामी परदेश मे है।

वर्षा ऋतु की ऐसी रात! (हाय!) पुरुषों की जाति कैसी होती है (कि ऐसी रात मे भी) गँवार घर छोड़ देता है।

हे सखी! (ऐसे) दुर्जन का नाम दूर करो। (अर्थात्—ऐसे दुर्जन का नाम मत लो।) हे धन्ये! तुम सयानी हो, (मेरे) अपने प्राण के समान हो। इसीलिए (तुमसे हृदय की बात कहकर) चित्त को शान्त करती हूँ।

भ्रमर (और) भ्रमरी मे विवाद हो रहा है। (कोई कहता है कि) कमल के फूल खिले है (और) कोई कहता है (कि) कामदेव हँस रहा है। (अर्थात्—कामदेव के हास्य के समान कमल के फूल खिले है और उनमे भ्रमरी और भ्रमर झकार कर रहे है।)

हाय! कामदेव तो मर चुका था,—सो, वह फिर कैसे जी उठा? महादेव की अनवधानता क्या कहूँ?

मेघ मे बिजलियाँ कौध रही है। (जान पडता है, जैसे विरहिणी को डँसने के लिए) साँप-ही-साँप हो। (इसीलिए) मयूर ऊपर मुँह करके नाच रहे है।

कदम्ब की (गन्ध लिये) हवा बह रही है,—युवतियाँ उसे कैसे सह सकती है? (कारण,) उनके हृदय कही दूर मे घूम रहे है।

मलारी—

[७९]

ओहु राहुभीत एहु निसङ्क[१]
ओहु कलङ्की इ (f)नकलङ्क[१]।
सम बोलइते अनुचित मन जाग
सोनाक तुरना[२] काग की[३] लाग[४]॥ध्रु०॥
ए सखि पिआ मोर बड[५] अगेआन[६]
बोलथि वदन तोर चान्द समान॥
चान्दहु चाहि[७] कुटिल कटाख
तञे[८] कामिनि[९] किङ्करए[१०] राख।

सं० अ०—२ तुलना। ३ कि। ६ अगेआन। ७ चाहि इथि।

उथि अछ[११] सुधा इथी अछ[१२] हास
एतबा अछ[१३] किछु तुलना भास॥
भनइ विद्यापति कवि कण्ठहार
तनिका दोसर काम प्रहार।
राजा रूपनराएन[१४] जान[१५]
राए सिवसिंह लखिमा दे[१६] रमान॥

राम० पृ० ११५, प० ४०२, प० ५

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या २८)—१ न कलक। ४ नाग। ५ बड। ८ तए। ९ कामिनी। १० किकिरए। ११ अच्छ। १२ अच्छ। १३ अच्छ। १५ भान। १६ देवि।

ठा० (पद-संख्या ७२)—१ न कलक। ४ नाग। ५ बड़। १६ देवि।

शब्दार्थ—ओहु=वह। राहुभीत—राहु से डरा। सम=बराबर। सोनाक=हस की। तुरना=तुलना। अगेआन=अज्ञान। वदन=मुख। चाहि=अपेक्षा। कुटिल=वक्र=टेढा। कटाख=कटाक्ष। किङ्किरए=(किङ्करी—सं०) दास। उथि=उसमे। सुधा=अमृत। इथी=इसमे। भास=प्रत्यक्ष। तनिका=उसको। कामप्रहार=कामबाण।

अर्थ—वह (चन्द्रमा) राहु से डरा रहता है (और) यह (नायिका का मुख) निशंक है।

(इसीलिए दोनो को) बराबर कहते हुए मन मे अनुचित प्रतीत होता है। (कारण,) हस की तुलना क्या कौए से लग सकती है (दी जा सकती है?)

हे सखी! मेरे स्वामी बडे अज्ञान हैं। (कारण, वे) कहते है (कि) 'तुम्हारा मुँह चन्द्रमा के समान है।'

(किन्तु) चन्द्रमा की अपेक्षा (मुँह मे) कुटिल कटाक्ष (अधिक है)। इसीलिए, कामिनी (ससार को) दास बनाकर रखती है।

उसमे (चन्द्रमा मे) अमृत है (और) इसमे (कामिनी के मुँह मे) हास्य है। (बस, दोनों मे) इतनी-सी तुलना प्रत्यक्ष है।

कवि-कण्ठहार विद्यापति कहते है—उसको (कामिनी को) दूसरा कामबाण भी है।

अ०सं०—१४ रूपनरानेन।

(अर्थात्—कामिनी के कटाक्षरूपी काम-बाण की तुलना के लिए चन्द्रमा के पास कोई साधन नहीं है। कामिनी मे चन्द्रमा से यही विशेषता है।)

लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह रूपनारायण (इसे) जानते हैं।

मलारी—

[८०]

कतएक[1] हमे धनि कतए गोआडा[2]
जले थरे कुसुम कैसनि हो माला।
पवन न सह (ए) दीपक जोती
छुइनेहु[3] (काच[4]) मलिनि हो मोती।।ध्रु०।।
कि बोलिबो अरे सखि कि बोलिबो (लाजे)[5]
(जनु)[6] आबह पुनु ऐसना कासे।।
काजि[7] निवेदसि कुमति सआनी
सरभन[8] मधुर तीन्ति बडि बानी।
परधन[9] लोभ[10] करए सब कोई[11]
करिअ[12] पेम जओ विर (ह) न होई[13]।।
नागरि जन के वाक्क[14] विलासा[15]
रूषेहु वचने राखि गेलि आसा।
भणइ विद्यापति एहु रस जानें
राए सिवसिंह लखिमा दे[16] रमाने।।

राम० पृ० ११६, (क), प० ४०३, पं०४

पाठभेद—

ठा० (पद—संख्या ७३)—१ कत एक। २ गोआडा। ३ छुइलेहु। ४ पाठाभाव। ५ पाठाभाव। ६ अब। ७ काजे। ८ सब भन। ९-१० परव न नोत। ११ कोइ। १२ करिए। १३ होइ। १४ वचहुँ। १५ विनासा। १६ देवि।

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अत, इसके लिए प्रथम भाग का १४२ संख्यक पद देखिए।

मलारी—

[८१]

चारि पहर राति सङ्गहि गमाओल
अबे पहु भेल भिनसारा।
चान्द मलिन भेल नखतमण्डल गेल
हम देह[1] मुकुति गोपाला ॥ध्रु०॥
माधव धनि समदह उठि जागी।
ऐसनि[2] कए परिबोधि पठइह(ह)[3]
पुनु आबए तुअ[4] लागी[5] ॥
ये[6] किछु[7] पिआ देल कञ्चुआ झापि[8] लेल
हृदय[9] कएलनि[10] (बिस) वासे[11]।
केस रुझाएल अधर सुखाएल
सखिन्हि[12] कर बड[13] उपहासे ॥
भनइ[14] विद्यापति सुन[15] वरजौवति[16]
दण्ड निकट परमाने।
राजा सिवसिंह रूपनरावेन[17]
लखिमा देवि रमाने ॥

राम० पृ० ११६, प० ४०४, पं० ३

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ६४)—१ देहु। २ एसनि। ३ पटइहह। ४-५ ओ अनुरागी। ६ जे। १०-११ कएल नि... वाँसे। १३ बड। १४ भणइ। १५ सुनु। १७ रूपनराएन।

ठा० (पद-सख्या ७४)—१ देहु। ४-५ ओ अनुरागी। ६ जे। ११-१२ कएल नि... वासे। १३ बड। १५ सुनु।

शब्दार्थ—भिनसारा = भोर। देह = दो। मुकुति = मुक्ति। समदह = समझाओ।

सं० अ०—१ अबे देह। २ अइसनि। ६-७ जे कुच। ८ झाँपि। ९ हृदुअ। १२-१३ सखिन्हि करब। १६ वरजउवति।

परिबोधि=समझाकर। पठइहह्=पठाओ=भेजो। लागी=लिए। ये=जे =जो। कञ्चुआ=(कचुक—स०) चोली। रुझाएल=उलझ गया।

अर्थ—हे स्वामी! (नायिका ने) साथ रहकर चारो पहर रात बिताई। अब भोर हो गया।

चन्द्रमा मलिन हो गया, नक्षत्रमण्डल (भी) चला गया (आँखो से ओझल हो गया।) हे गोपाल! अब मुक्ति दो (छोड दो)।

हे माधव! उठो—जगकर नायिका को समझाओ। इस प्रकार समझा-बुझाकर (उसे) भेजो (कि वह) फिर तुम्हारे लिए आये। (अर्थात्—तुम्हारे पास आये)।

स्वामी ने स्तन मे जो (नखत) दिया, (नायिका ने उसे) चोली से ढक लिया (और) हृदय मे विश्वास कर लिया (कि रति-रग छिप गया।)

(किन्तु उसके) केश उलझे है (और) होठ सूखे है। (इसीलिए) सखियाँ उपहास करेंगी।

(सखियो के उपहास को लक्ष्य करके) विद्यापति कहते है—अ री वरयुवती! सुनो। पास मे प्रमाण रहने से दण्ड होता ही है।

लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह रूपनारायण . (इसे जानते हैं।)
(अर्थ— संपादकीय अभिमत से)।

लरित—

[८२]

पुरुष भमर सम कुसुमे कुसुमे रम
पेअसि करए कि पारे।
उर[१] न राखल पहु परतख भेल लहु[२]
ओर धरि भेल न[३] विचारे॥ध्रु०॥
भल न कएल तोहे[४] सुमुखि सरुप कोहे[५]
उलेपल[६] पिअ अपराधे॥
सेहेसे आनी[७] नारि पिआगुणे[८] परचारि
बेकतेओं[९] दोस[१०] नुकावे।
निसि निसि कुमुदिनि ससधर पेम जिनि[११]
अधिक अधिक रस पावे॥

सं० अ०—६ सआनी। ७ गुन। ९ दोष।

भनइ विद्यापति अरेरे वरजुवति[11]
अबहु करिअ अवधाने।
राजा सिवसिंह रूपनरायण[12]
लखिमा देवि रमाने।।

राम० पृ० ११७ (क), प० ४०४, प० २

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या १२५)—१ डर। २ नहु। ३ पाठाभाव। ४-५ कोहोँउ लेपन ६ सआनी। ७ पिआगुण। ८ वेकतओ। १० जिमि। १२ रूपनरायन।

ठा० (पद-सख्या ७५)—१ डर। २ नहु। ३ पाठाभाव। ४-५ कोहोँ उ लेपन। ६ सआनी १० जिमि। १२ रूपनरायन।

शब्दार्थ—पेअसि=प्रेयसी। पारे=सकती है। उर=हृदय। पहु=(प्रभु – स०)स्वामी परतख=प्रत्यक्ष – स०। लहु=लघु – स०। ओर=अन्त। सरूप=(स्वरूप – स०)सत्य। कोहेँ= क्रोध से। उलेपल=(उल्लिप्त-स०) खोल दिया। सेआनी=सयानी। बेकतेओ=व्यक्त को भी। नुकावे=छिपाती है। ससधर=चन्द्रमा। जिनि=जैसे=समान। अवधान= ज्ञान।

अर्थ—पुरुष (और) भ्रमर समान होते है। (वे) फूल-फूल मे रमण करते है। (इसमे) प्रेयसी क्या कर सकती है?

(तुमने) स्वामी को (अपने) हृदय मे नही रखा। (अर्थात्—अपने हृदय मे स्थान नही दिया। इसीलिए वे) स्पष्ट रूप से लघु हो गये (अर्थात्—तुच्छ करके गिने जाने लगे। अन्त तक (तुम्हे) विचार नही हुआ।

हे सुमुखी! तुमने अच्छा नही किया (कि) क्रोध से सचमुच स्वामी के अपराध को खोल दिया (अर्थात्—ढिंढोरा पीट दिया।)

वही नारी सयानी है, (जो कि) स्वामी के गुणो का प्रचार करके (उनके) व्यक्त दोष को भी छिपाती है—

(और) रात-रात भर कुमुदिनी तथा चन्द्रमा के प्रेम को जीतकर अधिकाधिक रस पाती है।

विद्यापति कहते है—अरी वरयुवती! अब भी ज्ञान करो।

लखिमा देवी के रमण राजा शिव सिंह रूपनारायण (इसे समझते है।)

स०अ०—११ अरे बरजउवति। १२ रूपनराएन।

करित—

[८३]

डरे न हेरए इन्दु निन्दए[1] चन्दन[2] बिन्दु
मलयानिर बोल आगी।
तुअ गुण कहि कहि मुरुछि[4] पलए[5] महि
रयनि[6] गमाबए जागी॥ध्रु०॥
सुन्दरि कि कहब अधिक[7] सिनेहा।
तुअ दरसने बिनु अनुखने खिन तनु[8]
अबे तसु जिवन सन्देहा॥
नोरे[9] नयन[10] भरि तुअ पथ हेरि हेरि
अनुखन रोअ(ए) कन्हाई[11]।
तोहरि वचन लए धएल[12] आस दए
अबे न वचन पतिआइ[13]॥
भनइ विद्यापति अरेरे कलामति
न कर मनोरथ बाधे।
अधर सुधा दए पीपि[14] बढाबहि[15]
पूरओ मनमथ साधे॥

राम० पृ० ११७ (क), प० ४०५, प० ५

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ५४५)—१-२ पाठाभाव। ३ मलआनिल। ४ मुरझि। ७ आवक। ८ तसु। १० नअन। ११ कन्हाइ। १२ धाएल। १४ पीति। १५ वढावहि।

ठा० (पद-संख्या ७६)—१-२ पाठाभाव। ३ मन आनिर। ४ मुरझि। ७ आवक। ८ तसु। १० नअन। ११ कन्हाइ। १३ पतिआई। १४ पीति। १५ वढ़ावहि।

शब्दार्थ—इन्दु= चन्द्रमा। मलयानिर=मलयानिल =दक्षिण पवन। मुरुछि=मूर्च्छित

सं० अ०—३ मलयानिल। ५ पळए। ६ रजनि। ९ नोरें। १० नअन। १३ पतिआई। १४ प्रीति।

होकर। महि=पृथ्वी। रयनि=रात। गमावए=बिताती है। खिन=खिन्न। तनु=शरीर। तसु=उसके। पथ=मार्ग। धएल=रखा है। पतिआइ=विश्वास करता है। अधर सुधा=अधरामृत। मनमथ=कामदेव।

अर्थ—(दूती कृष्ण के विरह का वर्णन करती है—) भय से (कृष्ण) चन्द्रमा को नही देखते है, चन्दन-बिन्दु (बिन्दुमात्र चन्दन) की भी निन्दा करते है (और) दक्षिण पवन को आग कहते (समझते) है।

तुम्हारा गुण कह-कहकर (तुम्हारे गुणो का बखान कर-करके वे) मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिरते है (और) जगकर रात बिताते है।

हे सुन्दरी! (इससे) अधिक (और) स्नेह क्या कहूँ? तुम्हारे दर्शन के विना प्रतिक्षण (उनका) शरीर खिन्न हो रहा है। अब (तो) उनके जीवन मे भी सन्देह है।

आँखो मे आँसू भरकर तुम्हारे मार्ग को देख-देखकर कृष्ण प्रतिक्षण (सर्वदा) रोते है।

तुम्हारी बात लेकर (अर्थात्—तुम अवश्य आओगी,—यह कहकर उन्हे) आशा दे रखा है; (किन्तु) अब (वे) बात का विश्वास नही करते है।

विद्यापति कहते है—अरी कलावती! (कृष्ण के) मनोरथ मे बाधा मत करो (बाधा मत डालो।)

अधरामृत देकर (अधरामृत का पान कराकर) प्रीति बढाओ (और) कामदेव की साध पूरी करो। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

ललित—

[८४]

जामिनि दुर गेलि नुकि गेल चन्द
भेलिहु सिद्धि[1] न बढाइअ[2] दन्द।
तम्बचुल[3] धुनि[4] सुनि जीव मोर काप[5]
मञे[6] जाएब जमुना जोरि[7] झाप[8] ।।ध्रु०।।
हठ[9] तेज माधव जा(ए)बा देह
राखल चाहिअ गुपुत सिनेह।।
जागि जाएत पुर परिजन मोर
फाब चोरि जञो[10] चेतन चोर।
मञे[11] जानल पि(अ हिअ जनि हे)म[12]
उसठ न कर सठ बढाओल[13] पेम।।

सं० अ०—१ सिधि। ५ काँप। ६ मोञ। ७ जोड़ि। ८ झाँप। ११ मोञ।

धनि परबोधलि हरि रस राखि
बोललिए वचन सुधा मधु माखि।
भनइ[15] विद्यापति एहु[16] रस जान
राए सिवसिंह लखिमा दे[16] रमान॥

राम० पृ० ११७, प० ४०६, प० ४

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ६३)—२ बढाइअ। ३-४ तसु छलधुनि। ६ मए। ९ हुट। १० जओ। १२ मए जानल पि म। १३ बढाओल। १४ भणइ। १५ इ। १६ देवी।

ठा० (पद-सख्या ७७)—१ बढाइअ। ३-४ तसु छलधुनि। १२ मवे जानल पि··म। १५ ई। १६ देवि।

शब्दार्थ—जामिनि = रात। नुकि गेल = छिप गया। दन्द = (द्वन्द्व – स०) झझट। तम्बचुल = (ताम्रचूड–स०) मुरगा। झाप = परदा। गुपुत = गुप्त। फाव = फबता है। चेतन = चतुर। हेम = सोना। उसठ = नीरस। रस = प्रेम। सुधा = अमृत। माखि = मिला।

अर्थ—रात दूर गई (बीत गई), चन्द्रमा छिप गया। (फिर भी मुझे जाने नही देते हो ? अरे! कार्य की) सिद्धि होने पर झझट नही बढाना चाहिए।

मुरगा की आवाज सुनकर मेरे प्राण काँप रहे है। (यदि अब भी मुझे नही जाने दोगे तो) मैं परदा जोडकर (परदा करके) यमुना चली जाऊँगी। (अर्थात्—लोकापवाद के भय से मैं कही भी मुँह दिखाने लायक नही रहूँगी। इसलिए परदा करके यमुना मे जाकर डूब मरूँगी।)

हे माधव ! हठ छोडो। मुझे जाने दो। (कारण,) स्नेह को गुप्त ही रखना चाहिए।

मेरे पास-पडोस के लोग जग जायेंगे (तो मेरा जाना कठिन हो जायगा।) यदि चोर चतुर रहता है, तो चोरी फबती है।

मैंने स्वामी के हृदय को स्वर्ण के समान समझा था (अर्थात्—स्वामी के हृदय को स्वर्ण के समान पवित्र समझकर मैंने प्रेम बढाया था।) अरे शठ ! बढाये हुए (उस प्रेम) को नीरस मत करो।

कृष्ण ने अमृत (और) मधु से मिला (अर्थात्—मधुर) वचन बोलकर प्रेम की रक्षा करके नायिका को सान्त्वना दी।

विद्यापति कहते हैं—लखिमा देवी के रमण महाराज शिवसिंह इस रस को जानते हैं।

ललित—

[८५]

सुरभि[1] निकुञ्ज वेदि भलि भेलि
जनमगेँठि दुहु मानस मेलि।
कामदेवे[2] करु कनेआदान[3]
विधि मधुपरक अधर मधुपान।।ध्रु०।।
भल भेल राधे भेल निरबाह
पानिगहन विधि[4] (भेल) बिवाह[5]।
उजर[6] ऐपन[7] मुकुताहार
नयनें[8] निबेदल बन्दनेवार।।
पीन पयोधर[9] पुरहर भेल
करस[10] झापन[11] नव पल्लव देल।
भनइ विद्यापति रसमय रीति
राधा माधव उचित पिरीति।।

राम० पृ० ११८ (क), ४०७, पं० ३

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या २९६)—१ सुरभ। ४ वोध। ५ बिआह। ७ एपन। ११ झापस।

झा० (पद-सख्या ७८)—४बोध। ५ बिआह।

शब्दार्थ—सुरभि=सुगन्धि। निकुञ्ज=लतामण्डप। जनमगेँठि=(जन्मग्रन्थि – सं०) जन्मगाँठ। कनेआदान=कन्यादान। मधुपरक=मधुपर्क। भल=भला, अच्छा। भल भेल= अच्छा हुआ। पानिगहन=पाणिग्रहण। उजर=उजला। ऐपन=(आलेपन – सं०) अलपना। मुकुताहार=मुक्ताहार। पुरहर=पूर्णघट – स०। करस=कलश।

अर्थ—सुरभि-युक्त लतामण्डप ही अच्छी वेदी हुआ (और) दोनो (राधा-कृष्ण) के मन का मिलन ही जन्मगाँठ हुआ।

अधरामृत के पान से मधुपर्क का विधान हुआ। और कामदेव ने कन्यादान किया।

सं० अ०—२ कामदेवें। ३ कनेआदान। ६ ऊजर। ७ अइपन। ८ नअने। ९ पओधर। १० कलस। ११ झाँपन।

हे राधे ! अच्छा हुआ, निर्वाह हो गया। पाणिग्रहण की विधि से विवाह हो गया। (अर्थात्-वैदिक रीति से न सही, गान्धर्व रीति से तो विवाह हो गया। गान्धर्व विवाह मे वैदिक विधिविधान की आवश्यकता नही होती है। पाणिग्रहण-मात्र होता है।)

(तुम्हारा) मुक्ताहार उज्ज्वल अलपना हुआ (और तुम्हारी) आँखो ने वन्दनवार का निवेदन (बन्दनवार का सम्पादन) किया।

(तुम्हारे) पीन स्तन पूर्णघट हुए (और कृष्ण ने) कलश का ढक्कन नव पल्लव (नवपल्लव-तुल्य हाथ) दिया।

विद्यापति कहते हैं—राधा-कृष्ण की समुचित प्रीति की यही रसमय रीति है।

सारङ्गी—

[८६]

सहज सितल छल चन्द
सबतह से भेल मन्द।
विरह सहाइअ नारि
जिवे[1] कके[2] न हलिअ[3] मारि॥ध्रु०॥
सखि हे,
पिआ के कहब हम लागि[4]
अबहु मिझाइ (अ) आगी[5]॥
पर सओं[6] पेम बढाए[7]
धनि कुलधम्म छडाए[8]।
इ सबे कएल हमे मोहि
इथि सब कारण तोहि॥
अनुसर मलय समीर
मनमथ[9] सोभ समीर[10]।
भल जन मन्द विकार
तथि नहि कओन[11] परकार॥
सुकवि भनथि कण्ठहार
होएब विरह नरि पार।

सं० अं०—१ जिवें। ५ आगि। १० सरीर। ११ कओन।

राए अरजुन रस जान
गूना[12] देवि रमान॥

राम० पृ० ११८, प० ४०८, पं०१

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या २१०)—१-२ जिवैकके। ३ हनिअ। ४ लागी। ६ सओ। ७ वढ़ाए। ८ छडाए। ९ मनयथ। १२ गुणा।

ठा० (पद-सख्या ७९) १२ जिवैकके। ३ हनिअ। ४ लागी। ७ बढाए। ८ छड़ाए। ९ मनयथ। १२ गूणा।

शब्दार्थ—सवतह=सबसे। मन्द=नीच। सहाइअ=सहन करवाते है। जिवे=प्राण से। कके=क्यो। लागि=लिए। मिझाइआ=बुता दें। वढाए=वढाती है। छडाए=छोड़ती है। मोहि=मुग्ध होकर। अनुसर=पीछा कर रहा है। इथि=इसमे। मलय-समीर=मलय-पवन= दक्षिण पवन। मनमथ=कामदेव। मन्द विकार=वुरी वासना। तथि=उसमे। परकार= (प्रकार–सं०) उपाय। नरि= नदी।

अर्थ—चन्द्रमा स्वभाव से ही शीतल था; (किन्तु) वह भी सबसे नीच हो गया। (अर्थात्—चन्द्रमा भी अपनी शीतलता त्यागकर नीच के समान सन्ताप देने लगा।)

(वे) नारी से विरह सहन करवाते है, (सो) प्राण से ही क्यो नही मार डालते हैं?
हे सखी! मेरे लिए प्रिय को कहना (कि) अब भी (विरह-रूपी) आग को बुता दें।
दूसरे से प्रेम वढाकर धन्या का (अर्थात्—मेरा) कुलधर्म छुडा दिया।
मैंने (भी) मुग्ध होकर ये सब किये। इसमे सारा कारण तुम्ही हो।
दक्षिण पवन (मेरा) पीछा कर रहा है, (जिससे) शरीर मे कामदेव शोभित हो रहा है। (अर्थात्—दक्षिण पवन शरीर मे कामवासना जागरित कर रहा है।)

(दक्षिण पवन के लगने से) भले आदमी मे भी बुरी वासना (हो जाती है।) उसका (उसके-प्रतीकार का) कोई उपाय नही है।

सुकवि कण्ठहार (विद्यापति) कहते है—(घवराओ मत। शीघ्र ही) विरह-रूपी नदी पार करोगे।

गूना देवी के रमण राय अर्जुन (इस) रस को समझते है। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

सारङ्गी —

[८७]

कुसुम बोलि केश परिहल हार
काजरे रञ्जु[1] पयोधर भाल।
ऐसने (भूखन परि)हन लाग[2]
आरति जानल अधिक अनुराग॥ध्रु०॥
कान्हु[3] हे (आजु) सकल सुखसार[4]।
आइति राधा फलल अभिसार॥
कुसुमसरासने साजलि के(लि)[5]
दुलभ अछलि सुलभ भए गेलि।
पुनु पुनु[6] कन्त कहओं[7] करे जोरि
तत राखब जत आनिअ[8] बोलि॥
एक दिस जीवन अओका[9] दिस पेम
(गुञ्जा) ए तौलि चढाओल हेम[10]॥
हठे[11] न धरल कर वचन हमार
आरति धस दए भेलि जौन पार॥
सरस अनुराग बुझ यदि केव
अभिमत भने अभिनव जयदेव।
रसमय रूपनरायन[12] जान
राए सिवसिंह लखिमा दे[13] रमान॥

राम० पृ० ११८, प० ४०९, पं० ५।

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या १०७)—१ बण्हु। ३ कान्तु। ४ सुधासार। ५ को...। ६ पुन-पुन। ७ कहओ। ९ अओक। १० एतौ निचा ओटाओल हेम। ११ हटे। १३ देवि।

सं० अ०—१ काजरें रञ्जु। २ अइसने भूखन परिहन लाग। ८ आनिअ। ११ हठ। १२ रूपनराअेन।

ठा० (पद-सख्या नही है।)—१ बण्डु। ३ कान्तु। ५ को . .। १० एतौ निचा ओटाओल हेम। १३ देवि।

शब्दार्थ—कुसुम=फूल। परिहल=पहन लिया। रञ्जु=रँग दिया। भाल=भल= अच्छी तरह। आरति=(आर्त्ति—स०) मनोव्यथा। आइति=(आयत्ति—स०) अधीन। फलल=फलीभूत=सफल। कुसुमसरासने= कामदेव ने। दुलभ=दुर्लभ। करे जोरि=हाथ जोडकर। अओका दिस=दूसरी ओर। गुञ्जाए=घुँघची से। हेम=सोना। धस दए=झम्प देकर। जौन=यमुना। केव=कोई।

अर्थ—(राधा ने) फूल बोलकर (समझकर) केश मे हार पहन लिया (और) काजर से स्तन को अच्छी तरह रँग लिया।

इसी प्रकार (राधा भूषण पहनने) लगी। (अर्थात्—यथास्थान भूषण नही पहनकर जहाँ-का-तहाँ पहन लिया।) मनोव्यथा से (ही उसका) प्रेमाधिक्य समझा गया।

हे कृष्ण! (आज) सभी सुखो का सार अभिसार राधा के अधीन होकर सफल हुआ।

कामदेव ने केलि सजाई। (अर्थात्—कामासक्त होकर राधा स्वय केलि के लिए आ गई। इसीलिए जो) दुर्लभ थी, (वह) सुलभ हो गई।

हे स्वामी! (मैं) बार-बार हाथ जोडकर कहती हूँ (कि) जितना कहकर लाइए, उतना रखिएगा। (अर्थात्—जितने समय के लिए कहकर उसे लाई हूँ, उससे अधिक समय तक नही रखिएगा।)

(राधा के) एक ओर जीवन है (और) दूसरी ओर प्रेम है। (अर्थात्—उसके लिए प्राण और प्रेम,—दोनो बराबर है। जान पडता है, जैसे) घुँघची से तौलकर सोना चढाया गया है। (अर्थात्—जैसे घुँघची से सोना तोला जाता है, वैसे ही उसने अपने प्राण से प्रेम को तौल रखा है।)

(इसीलिए उसने) दुराग्रह नही किया। मेरे वचन (का पालन) किया। कष्ट से (अर्थात्—कष्ट सहन करके) झम्प देकर यमुना पार हो गई।

अभिनव जयदेव (विद्यापति अपना) अभिमत कहते है कि (इस) सरस अनुराग को यदि कोई समझता है तो—

लखिमा देवी के रमण रसमय राजा शिवसिंह रूपनारायण (ही) समझते है। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

सारङ्गी—

[८८]

जाडल[१] बास्मन[२] तेज सनान
जाडलि मानिनि तेजए मान।[३]

जाडल[1] राड[2] घौकरी लाब[3]
जाडल रसिक (क)ते ना गाव[7] ॥ध्रु०॥
जाड[8] आएल कहब काही
बड पराभव पवन चाही ॥
... . करथि[9]
पिठिक जाड सेहओ नहि हरथि[10]।
अनल फुकिअ हेरिअ[11] सूर[12]
सिसिर पाबि सेहओ[13] भेल दूर ॥
जुझि का................हर[14]
जाडल[15] वीर कैसे[16] होएत बाहर।
मनहि मन करिअ नेआर[17]
तैसन[18] सिंह तइसन सिआर[19] ॥
सरस कवि विद्यापति गाब
केओ नहि ऐसन[20] जाड छडाब।[21]
सकल जगत जाड[22] हरण[23]
कुमर अमरसिंह सरण[24] ॥

राम० पृ०११९ (क), प० ४१०, प०४

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या २१३)—१ जाउन। २ बामुन। ३ जाउनि मा......... नन। ४ जाउन। ५ बाड़। ६ नाब। ७ जाउन रसि कते लागाव। ८ जाउ। ९ पाठाभाव। १० पिठेक जाउ सेह ओ लह बथि। ११ हेरि। १२ असूर। १३ सेह ओ। १४ बूझि (?)......। १५ जाउन। १६ के से। १७ मनहि मनक बिमने आब। १८ तेसन। १९ सिआरा। २१ जाउछ भाव। २२ जाउ। २३ छरण। २४ सर।

शब्दार्थ—जाडल=जाडे से सीदित। बाम्मन=ब्राह्मण। राड=शूद्र। घौकरी=सिमट-सिकुड़कर बैठना। जाड=जाडा। अनल=आग। सूर=सूर्य। नेआर=निश्चय। सरण=रक्षक।

सं० अ०—१६ कइसे। १८ जइसन। २० अइसन।

अर्थ—जाडे से सीदित ब्राह्मण स्नान छोड़ देता है (और) जाड़े से सीदित मानिनी मान छोड़ देती है। (अर्थात्—जाडे से सीदित होने पर मानिनी भी मान छोड़कर सिमटती-सिकुड़ती हुई पति के अक मे जा बैठती है।)

जाड़े से सीदित शूद्र चौकडी लगाता है (और) जाडे से सीदित रसिक कितना नही गाता है? (अर्थात्—जाड़े से सीदित रसिक नीद नही आने के कारण रात-रातभर जगकर गाता रहता है।)

जाड़ा आया। (अपना दु.ख) किसे कहूँगा? हवा से बड़ा कष्ट हो रहा है।

·· ··· ···। वह भी पीठ का जाड़ा नही हरता।

(जाडे से बचने के लिए) आग फूँकता हूँ, सूरज को देखता हूँ (खोजता हूँ; किन्तु) वह भी शिशिर ऋतु को पाकर दूर हो गया।

··· ··· ···। जाड़े से सीदित वीर कैसे बाहर होगा।

अन्त में, मैंने मन-ही-मन निश्चय किया (कि जाड़े के कारण) जैसा सिंह, वैसा सियार। (अर्थात्—जाड़े मे दोनो बराबर)।

सरस कवि विद्यापति गाते है (कहते है—) कोई ऐसा नही, जो जाडा छुड़ाये।

(इसलिए अब) सम्पूर्ण ससार के जाड़ा छुडानेवाले कुमार अमरसिंह (ही) रक्षक हैं।

सारङ्गी—

[८९]

जखने सङ्केत चलु ससिमुखि
तखने छल अन्धार।
आन्तर पान्तर बाट उगि गेल
चन्दा करमचण्डार॥
परम पेम पराभवे पाओल
देखि गमनेरि बाध।
उतिम वचन जदि बिहुचर
आओर की अपराध॥ध्रु०॥
साजनि मन्दिर भेल असार।
अपनि आरति आगु न गुनल
साजि हल अभिसार॥

सुखम हेतु कमने विचारब
कमने चिन्हल चोर।
आसा दइअ सुपुरुखे[1] बञ्चल[2]
दूषन[3] लागत मोर॥
न परे पौलिहुँ न घरे गेलिहुँ
दुहु कुल मेलि हानि।
बिहि निकारुन[4] परम दारुन
अबे कि करब जानि॥
सङ्केत वन गमन न सम्भव
पुनु पलटए न जाए।
युवति बध बेआध[5] पञ्चसर
(काहु न कहल) जाए॥
भने विद्यापति सुन तए[6] युवति
अछए गुणनिधान।
राए सिवसिंह रूपनराएन[7]
लखिमा दे(वि) रमान॥

राम० पृ० ११९, प० ४११, प० ४

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ९९)—१ सुपुरुसें। २ वञ्चन। ३ दूषण। ४ निकारुण।
५ रे आव।

ठा० (पद-संख्या ८०)—१ सुपुरुखे। २ वञ्चन। ५ रे आव।

शब्दार्थ—सङ्केत=मिलन-स्थान। अन्धार= अन्धकार। आन्तर=(अन्तर—स०) बीच। पान्तर=(प्रान्तर-स०) छाया आदि से रहित वीरान स्थान। वाट=मार्ग। करमचण्डार=(कर्मचाण्डाल—सं०) कर्म से चाण्डाल। परम पेम=उत्कृष्ट प्रेम। परामवे=कष्ट। गमनेरि=यात्रा की। उतिम=(उत्तम—सं०) श्रेष्ठ। विहुवर=(व्यभिचार—स०)

सं० अ०—६ तजें। ७ रूपनराजेन।

इधर से उधर हो जाना। मन्दिर=घर। असार=निरर्थक। आरति=(आर्त्ति—स०) पीडा। गुनल=विचार किया। साजि हल=सजाया। सुखम हेतु=सुख के कारण। कमने=किसने। वञ्चल=धोखा दिया। वेआध=व्याध—स०। पञ्चसर=कामदेव। अछए=है।

अर्थ—चन्द्रमुखी (नायिका) जव मिलन-स्थान को चली, तव अन्धकार था।

(किन्तु) प्रान्तर के वीच—वाट मे ही कर्मचाण्डाल चन्द्रमा उग गया।

यात्रा मे वाधा देखकर (अर्थात्—यात्रा मे वाधा उपस्थित हो जाने के कारण) उत्कृष्ट प्रेम पराभव को प्राप्त हो गया। (अर्थात्—जितना वड़ा प्रेम था, उससे भी वडा पराभव उपस्थित हो गया।)

श्रेष्ठ (जन) का वचन यदि इधर से उधर हो जाय (तो इससे वढ़कर) और क्या अपराध (हो सकता है?)

हे सखी! घर निस्सार हो गया था। (अर्थात्—प्रियतम के विना घर निस्सार मालूम होता था।) अपनी पीडा से आगे का विचार नही किया। (विना समझे ही) अभिसार सजाया।

किसने सुख के कारणो का विचार किया, किसने चोर को पहचाना? (अर्थात्—सुख के सावक और वावक कारणो का किसने विचार किया?)

(हाय! मैंने) आशा देकर सुपुरुष को धोखा दिया! मुझे दोष लगेगा।

न दूसरे को (पराये पुरुष को) पा सकी (और) न घर (ही) जा सकी। दोनो वश की हानि हो गई।

विवाता निष्करुण है, अत्यन्त कठोर है। (किन्तु) अव समझकर क्या करूँगी?

इंगित वन का गमन सम्भव नही हुआ। फिर लौटकर जा (भी) नही सकती।

युवतियों के वध के लिए कामदेव व्याध हो गया। (हाय! किसी को अपना दु ख) कहा (भी) नही जा सकता।

विद्यापति कहते हैं—हे युवती! तुम सुनो। लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह रूपनारायण गुणनिधान (वर्त्तमान) हैं।

सारङ्गी—

[९०]

जत जत तोहें[1] कहल सुन्दरि[2]
से सबे भेल सरूप।
माधुर जाइते आजे मए[3] देखल
कतेओ कान्हक रूप॥

सं० अ०—१ तोहें। २ मोंन।

रूपहि)[4] सओं[5] मनसिजें[6] बेआकुल
थीर मन नहि मोर।
भल कए हरि हेरि न भेले
ई बड[7] लागल भोर॥ध्रु०॥
साजनि (नहि मनोरथ ओल)[8]।
अपन वेदन जाहि निवेदओं[9]
तैसन[10] मेदिनि थोल[11]॥
हमहु नव कुरबहु[12] से (चेतन)[13] पहु
राखलि चाहिअ (लाज)[14]।
(कुलक धरम अ)पन[15] चाहिअ
भेल चाहिअ समाज॥
से सबे कामिनि तोहतह सम्भव
हेन मोर अनुमान।
की[16] (त)न्हि[17] मोहि छाटें[18] मेराबह
की[19] मोर लेहें[20] परान॥
भने विद्यापति सुन तए[21] युवति
निअ[22] मने अनुमान।
रतने जदि जतने गोपिअ
तैअओ[23] न जानए आन[24]॥

राम० पृ० १२०(क), प० ४१२, प० ५

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ५६२)—२ सुजानि। ४ पाठाभाव। ७ बड। ८-१३-१४-१५ पाठाभाव। १६-१७ को...न्हि। १९ को। २० नेहे। २३ नेअओ।

सं० अ०—५ सओ। ६ मनसिजें। ८ ओळ। ९ निवेदओ। १० तइसन। ११ थोळ। १८ छाटें। २१ तोअ। २२ निअ। २३ तओ नहि। २४ आन।

ठा० (पद-संख्या ८१)—२ सुजानि। ४ पाठाभाव। ५ सखो। ७ बड़। ८-१३-१४-१५ पाठाभाव। १२ नवकुरबकहु। १६ की...न्हि। २० नेहे। २३ तेअओ।

शब्दार्थ—जत=जितना। माधुर=मथुरा। रूप=सौन्दर्य। मनसिजे=कामदेव से। थीर=स्थिर। भल कए=अच्छी तरह। भोर=भूल। ओल=अन्त। वेदन=दु:ख। मेदिनि=पृथ्वी। थोल=थोडा। कुरबहु=कुलवधू—स०। चेतन=समर्थ। पहु=प्रभु। समाज=मिलन। तोहतह=तुमसे। झाटे=शीघ्र। हेन=ऐसा। मेराबह=मिलाओ। लेहे=लेलो। गोपिअ=छिपाओ।

अर्थ—हे सुन्दरी! तुमने जितना कहा,—जितना कहा, सो सब सत्य हुआ।

आज मथुरा जाते हुए मैंने देखा—कृष्ण का कितना सौन्दर्य था!

(उनके) सौन्दर्य से ही (सौन्दर्य को देखकर ही मैं) कामदेव से व्याकुल हो गई। मेरा मन स्थिर नही रहा।

(इसीलिए) कृष्ण को अच्छी तरह देख भी नही सकी। यही बडी भूल हो गई।

हे सखी! (उन्हे देखने के बाद) मनोरथ का अन्त नही हो रहा है। (किन्तु) अपना दु:ख जिन्हे निवेदन करूँ, पृथ्वी पर वैसे थोड़े है।

मैं नई कुलवधू हूँ (और) वे समर्थ प्रभु है। (अत, किसी प्रकार) लज्जा रखनी चाहिए। (अर्थात्—हठात् ऐसा काम नही करना चाहिए कि दोनो की लाज चली जाय।)

अपने कुलधर्म की (रक्षा और) मिलन (दोनो) होना चाहिए।

हे कामिनी! ये सब तुमसे (ही) सम्भव है,—ऐसा मेरा अनुमान है।

उनसे मुझे शीघ्र मिलाओ या, मेरे प्राण (ही) ले लो।

विद्यापति कहते है—हे युवती! तुम सुनो (और) अपने मन मे विचार करो।

यदि रत्न को यत्न से छिपाते हैं, तो दूसरे नही जानते है? (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

कानल—

[९१]

नगरक बानिनि[१] ओरे[२] हरि पुछ हरि पुछा
किए किए हाट बिकाए।
... ...
... ...॥ध्रु०॥
हिर(ा)[३] मनि मानिक[४] ओरे[५] अनुपम अनुपमा
नाना रतन पसार॥

सं० अ०—३ हीरा।

एक नाल[6] दुइ[7] ओले[8] सिरिफर[9] सिरिफला
सोना के (र स) मान ॥
अधरा सिरिफल[10] ओरे[11] आञ्चर आञ्चरा
अधरा अधिके बिकाए ॥
विद्यापति कवि[12] ओरे[13] गाबिह गाबिहा
झूमरि[14] बुझ रसमन्त ॥
सिरि महेसर सुत[15] गुनीसर[16] हे[17]
जूडम[18] देवि सुकन्त ॥

राम० पृ०१२१ (क), प० ४१४, पं० ४

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या २२२)—१-२ बानिनिओ रे। ६ लागु। ७-८ दुइओ ले। १०-११ सिरिफलओ रे। १२-१३ कविओ। १५ पाठाभाव। १६ महेसर।

झा० (पद-संख्या ८३)—१-२ बानिनिओ रे। ४-५ मानिकओ रे। ६ लागु। ७-८ दुइओ ले। ९ सिरिफल। १०-११ सिरफलओ रे। १२-१३ कविओ। १४ झूमरि। १५ पाठाभाव। १६ महेसर। १७ पाठाभाव। १८ जुडम।

शब्दार्थ—बानिनि=बनिआइन। ओरे=सबोधनार्थक अव्यय। पुछ=पूछते है। किए-किए=क्या-क्या। पसार=प्रसार—स० नाल=पौधे का तना। सिरिफर=(श्रीफल—स०) बेल। अधरा=(अर्ध—स०) आधा। गाबिह=गाते है। झूमरि=एक रागिणी।

अर्थ—कृष्ण पूछते है—अरी नगर की बनियाइन! हटिया मे क्या-क्या बिक रहा है?

... ...

(बनियाइन कहती है—) अरे! हटिया मे हीरा, मणि-माणिक्य (और) नाना भाँति के रत्नों का प्रसार है।

अरे! एक तने मे सोने के समान (स्वर्णवर्ण) दो बेल है।

अरे! आधा बेल आँचर मे (छिपा) है। आधा (ही) अधिक (दाम मे) बिक रहा है।

अरे! कवि विद्यापति गाते हैं (और) श्रीमहेश्वर के पुत्र (तथा) जूडम देवी के स्वामी रसज्ञ गुणीश्वर (इस) झूमरि को समझते है।

सं० अ०— ८ ओरे। ९ सिरिफल।

कानल—

[९२]

करहि[1] अलक तिलक राधे[2]
अङ्ग विलेपन न[3] कर बाधे।
तञे[4] अनुरागिनि[5] से अनुरागी
भूषन[6] होएत दूखन लागी।।ध्रु०।।
चल चल तञे[7] चेतन साईं[8]
आसे पिआसल जाबे[9] कन्हायी।।
समुद कुमुद लुबुध रसी
अबहि[10] उगत लुबुध ससी।
आएल चाहिअ तरुणि तोर
पिसुन नयन भम चकोर।।
चरण नेपुर उपर सारी
मुखर मेखर करे नेबारी।
अम्बर[11] सामर देह नुकाई[12]
चलहि तिमिर पथ समाई[13]।।
भन विद्यापति युवति रीती
मधुर जानि कर परत (रीती)।
राजा रूपनराएन जान
सुखे सुखमा देवि रमान।।

राम० पृ० १२१, प० ४१५, प० २

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या १०२)—१ करहि सुन्दरि। २ बावे। ३ पाठाभाव। ४ तए। ५ . लि। ६ भूषण। ७ तए। ८ साइ। ९ जनु। १० आबहि। ११ आमुर। १२ नुकाइ। १३ समाइ।

ठा० (पद-सख्या ८४)—१ करहि सुन्दरि। २ बाबे। ५ . . लि। ९ जनु। ११ असुर।

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। उपर्युक्त पाठ मे पक्ति-व्यतिक्रम है; किन्तु 'नेपाल-पदावली' का पाठ युक्तियुक्त प्रतीत होता है। अतः, इसके लिए प्रथम भाग का १६४ सख्यक पद देखिए।

कानल—

[९३]

बाङ्क[1] क(मान भौंह जुग)[2] बङ्किम[3]
लोला लोचन बान।
मार चण्डार गमार न मारए
छोपए छैल परान ॥ध्रु०॥
साई ए आजे मनोभवे (साजल)[4]
कामिनि[5] तु(अ)[6] अभिसार॥
कङ्कन किङ्किनि रिमिझिमि[7] बाजए[8]
चरण[9] तओ[10] रबए नुपूर।
ते नव रङ्ग[11]
बए[12] कति दूर॥
कुच कुम्भस्थरे[13] गयथन[14] साजल
विद्यापति कवि गाव।
राजा (सिवसिह)[15] रूपन (राएन)[16]
लखिमा देवि (परथाव) ॥

पाठभेद—

ठा०—१-२ पाठभाव। ३ बङ्किम। ४ पाठाभाव। ५-६ कामिनिओ। ७ रिमझिम। ८ पाठाभाव। ११ रङ्गहि। १२ गए। १३-१४ कुच कुम्भवेग यखन। १५ पाठाभाव। १७ रमान।

शब्दार्थ—बाङ्क=(वक्र—स०) टेढ़ा। कमान=धनुष। बङ्किम=टेढ़ा। लोला=चचल। मार=कामदेव। चण्डार=चाण्डाल। गमार=गँवार। छोपए=काटता है। साई=सखी। मनोभवे=कामदेव ने। कङ्कन=कँगना। किङ्किनि= करधनी। रबए=शब्द

सं० अ०—९-१० चरणे। १६ रूपनरावेन।

करता है। कुच-कुम्भस्थरे=स्तन-रूपी कुंभस्थली मे। गयथन=(गोस्तन—स०)एक प्रकार का हार। परथाव=प्रस्ताव।

अर्थ—(नायिका की) दोनो टेढी भौहे टेढ़े धनुष है (और)चंचल आँखें बाण है। चाण्डाल कामदेव (उनसे) गँवारों को नही मारता है, (केवल) रसिको के प्राणों को काटता है (अर्थात्—रसिको के प्राण लेता है।)

ऐ सखी! ऐ कामिनी! आज कामदेव ने तुम्हारा अभिसार सजाया है।

(तुम्हारे) कंगन (और) करधनी 'रिम-झिम-रिमझिम' बोल रहे हैं। (तुम्हारे) पैरो मे नूपुर शब्द कर रहे है।

. . . .

कवि विद्यापति गाते हैं(कहते है कि नायिका ने) स्तन-रूपी कुम्भस्थल मे हार सजाया। राजा शिवसिंह रूपनारायण (और) लखिमा देवी (का यही प्रस्ताव है।)

कानल—

[९४]

प्रथमहिं[१] हाथ पयोधर लागु
पुलके प्रमोदे[२] मनोभव जागु।
नीबीबन्ध के जान कि भेला
चेतनपन[३] कि.....................॥ध्रु०॥
कि सखि कहब मञे[४] कहल न जाई[५]
हरिक चरित कहइते रहओ[६] लजाई[७]।
धम्मिल धरइ अधर मधु पीबे
र[८]....................................जीबे[९]।
दइन[१०] न मानए[११] दोष न जाने
गहबर गाढ[१२] अलिङ्गन[१३] दाने॥
अइसनि कहिनी[१४] न कहिअ आने[१५]
.... कह दो(स)र[१६] पराने।
भनइ विद्यापति एहु रस जाने
राए सिवसिंह लखिमा 'दे'[१७] रमाने॥

राम० पृ० १२२ (क), प० ४१७, पं० ५

सं० अ०—२ प्रमोदें। ४ मोन। १३ आलिङ्गन। १५ आने।

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ७२)—१ प्रथमपि। ३ पाठाभाव। ४ मए। ५ जाइ। ६ रहओ। ७ लजाइ। ८ वह। ९ जावे। १० दइन। ११ माने। १२ गाढ। १४ काहिनी। १५ आ । १६ दोर। १७ देवि।

ठा० (पद-संख्या ८५)—३ पाठाभाव। ५ जाई। ७ नजाइ। ८ वह। ९ जावे। ११ माने। १५ आ । १६ दोर। १७ देवि।

शब्दार्थ—पयोधर=स्तन। पुलके=रोमाञ्च। प्रमोदे=आनन्द। मनोभव=कामदेव। धम्मिल=जूडा। अधर मधु=अधरामृत। दइन=दैन्य। दोष=कलङ्क। गहवर=आत्मविस्मृत।

अर्थ—पहले-पहल स्तन पर हाथ पडा (तो) आनन्द से रोमाच हो आया। (जान पडा, जैसे—) कामदेव जग उठा।

कौन जानता है कि नीवीबन्ध का क्या हुआ?

हे सखी! मैं क्या कहूँ? (कुछ) कहा नही जाता। कृष्ण का चरित्र कहते लज्जा हो आती है।

(वे) जूडा पकड़कर अधरामृत पीते हैं।

(वे) न (मेरा) दैन्य (वचन) मानते हैं (और) न कलङ्क जानते हैं। आत्म-विस्मृत होकर गाढ आलिङ्गन देते हैं।

ऐसी बातें दूसरे से कही भी नही जा सकती।

विद्यापति कहते है—लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह रूपनारायण इस रस को जानते है।

[९५]

निसि निसिअरे भम भीम भुअङ्गम
जलधर बीजु उजोर।
तरुन तिमिर निसि तइअओ चललि जासि
बड़ सखि साहस तोर॥ध्रु०॥

सुन्दरि,
कमन पुरुष धन जे तोर हरल मन
ताहेरि उदेसे अभिसार॥
आगे तओ जौन नरि से कैसे जाएब तरि
आरति न करिअ झाप।

तोरा अछि पंचसर तें[१] तोहि नहि डर
मोर हृदअ बड काप॥
भनइ विद्यापति अरे वर जउवति
साहस कहहि न जाए।
अछए जुवति गति कमला देवि पति
मन बस अरजुन राए॥

राम० पृ० १२२, प० ४१८, प० २

पाठभेद—

ठा० (पद-सख्या८६)—१ वड। २ ते।

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अत, इसके लिए प्रथम भाग का १६३ सख्यक पद देखिए।



परिशिष्ट (क)

रामभद्रपुर-पदावली में उपलब्ध अन्य कवियों के पद

मलारी—

[१]

सुनि मनमथ सर साजे।
समन्दि पठाबह अओबह आजे॥
वचनहु नहि निरबाहे।
जनि लोभी[1] तह किअ[2] अस ताहे[3]॥ध्रुवं॥

पेअसि पेम बुझाई[4]।
कैतव[5] कएने कि फल कन्हाई[6]॥
सुपुरुष के सब आसा।
चान्द चकोरी हरइ[7] पिआसा॥

अभिमव[8] कहहि न जाइ।
पवनहु परसे कुसुम असिलाइ॥
अधर न लहइ[9] उपामे।
विद्रुम थोएल जनि एकहि ठामे॥

समय न सह विधि मन्दा।
मालति फुलति बासि मकरन्दा॥
मनइ अमृत अनुरागे।
कपटे कुसुमसर कौतुके गावे[10]॥

जसमा देवि रमाने।
भैरव सिंह भूप रस जाने॥

राम० पृ० ११४ (क), प० ३९८, पं० ४

कोलार—

[२]

एथाँ मनमथ सर साजे।
समन्दि" पठावह आओब आजे॥
वचनहु" नहि निरवाहे।
ज...लोभी तह किअ अस ताहे" ॥ध्रु०॥
पेअसि पेम" चिन्हायी।
कैतव कएले कि फल कन्हायी॥
नवि नागरि नव नेहा।
नव जउवन देल रूपक रेहा॥
अभिनव कहइ" न जाइ।
पवनहु परसे कुसुम असिलाइ॥
सुपुरुस के सब आसा।
चान्द चकोरी हरए पिआसा॥
समअ न सह बिहि मन्दा।
मालति फुलिल बासि मकरन्दा॥

राम० पृ० ११२, प० ३९३, प० १

पाठभेद—

झा० (पद-स० ६८-६२) २-३-किअअ सताहे। ६ कन्हायी। ९ होइ। १० गारे। ११ समदि। १३. किअअ सताहे। १५ कहहि।

मि० म० (परिशिष्ट 'च', पद-स० १ और ८२१) १ लोभो। २-३ किअअ सताहे। ४ वुझायी। ५. कइतव। ६ कन्हायी। ७ हरह। ८ अभिनव। ९ होइ। ११. समदि। १२ वचनहु। १३ किअअ सताहे। १४ प्रेम।

विशेष—यत्किंचित् पाठभेद रहने पर भी ये दोनो पद एक ही हैं। किन्तु, मित्र-मजूमदार ने दोनो को दो पद मान लिये है और प्रथम को 'अन्य कवियो के पद' मे तथा द्वितीय को 'भणिता-हीन पद' मे स्थान दे दिया है।

कानल—

[३]

आनन विकच सरोरुह रे
देखि कैसन हो भाने।
नागर लोचन (मधुक) र रे
भमि भमि कर मधुपान ॥ध्रुवं॥
तोर नयन धनि नोनुअ रे
हेरइते न रहए लोभ कि ॥
केसर कुसुम कपोलतल रे
अध (र) सुधाकर मन्द।
जे न बुझए बरु से भल हे
जे बुझ ता सओ मन्द ॥
उर अरगज मुकुतावलि रे
कइसन दहु परिभास।
(कु)च युग चकोर बझाओल रे
मअने मेलल[2] जनि फास ॥[3]
सुकवि अमृतकरे गाओल रे
पुहवी नव पञ्च (वा)न,।
मधुमति देवि × ×
ल...हरि विरेसर जान ॥

राम० पृ० १२०, प० ४१३, प० ५

पाठभेद—

ठा० (पद-स० ८२) १. लोचनवरे। २. मेललि। ३. पाठाभाव।
मि० म० (परिशिष्ट 'घ', पद-स० २) १ लोचन वरे। २ मेलिल। ३ पाठाभाव।

●●

रागतरङ्गिणी में प्राप्त विद्यापति के पद

राघवीय बराडी—

[१]

साँझक बेराँ[1] जमुनाक तीराँ[2]
कदबेरि[3] वन तरु तराँ[4]।
अकमि[5] कानरा कि कहब काला[6]
सोझाँहि[7] जुझल[8] सखि कुसुमसरा ।।ध्रु०।।
मोहि भेटल कान्हू
अनतए कहिनी कहह जनू ।।
उर चिर हरी करे कच[9] धरी
अधर पिबए मुख हेरी ।।
पुनु पुनु भोरा परस कुच मोरा
निधने पाओल जनि कनय कचोरा[10] ।।
अरेरे[11] जुवती बुझलि[12] जुगती[13]
दोसर मधु(क)र[14] मधु(र)पती[15] ।।
तोरे अनुमाने विद्यापति भाने
राए शिवसिंह लखिमादेइ रमाने[16] ।।

रागतरङ्गिणी, पृ० ४१

पाठभेद—

न० ग० (पद-सख्या ५८०)—१ वेरा। २ तीरा। ३ कदम्बेरि। ४ तरा। ५ अङ्कमि। ६ समरा। ७ सोझहि। ८ जूझल। १० कटोरा। ११ अरे। १२ बुझसि। १३ जुगुती। १४ दोसरें मधुप। १५ मधुरपती। १६ रमाने।

मि० म० (पद-सख्या ७६)—१ बेरा। २ तीरा। ३ कदम्बेरि। ४ तरा। ९ कुच। १० कटोरा। ११ अरेर। १२ बुझली। १३ जुगति। १६ रमाने।

शब्दार्थ—साँझक वेराँ=सन्ध्या समय। तीराँ=तीर पर। कदवेरि=कदम्ब के। तरु तराँ=पेड के नीचे। अकमि=अँकवार कर। कानरा=कृष्ण। कि करा=क्या किया।

सं० अ०—३ कंदबेरि। ६ कि करा। १६ रमाने।

सोझाँहि=सामने। कुसुमसरा=कामदेव। भेटल=मिले। अनतए=अन्यत्र—स०। कहिनी=कथा। उर=छाती। चिर=(चीर—स०) कपडा। करे=हाथ से। कच=केश। अधर=ओष्ठ। हेरी=देखकर। भोरा=विभोर होकर। कुच=स्तन। जनि=जैसे। कनय=(कनक—स०) सोना। कचोरा=कटोरा। मधुप=भौरा। मधुरपती=मथुरापति=कृष्ण। जुगती=(युक्ति—स०) चतुराई।

अर्थ—सन्ध्या समय, यमुना के तीर पर, कदम्ब के वन मे, पेड के नीचे—

हे सखी! क्या कहूँ (कि कृष्ण ने अँकवार कर) क्या किया? (जान पडता था, जैसे) कामदेव सामने होकर (स्वय) जूझने लगा।

मुझे कृष्ण मिल गये। (अर्थात्—कृष्ण से मेरी भेट हो गई।) अन्यत्र (यह) कथा मत कहना। (अर्थात्—किसी दूसरे के सामने इसकी चर्चा मत करना।)

(उन्होने) छाती पर से वस्त्र हटाकर हाथ से केश पकड लिया और मुँह देखते हुए अधर-पान किया।

बार-बार विभोर होकर (उन्होने) मेरे स्तनो का स्पर्श किया। (मालूम होता था, जैसे) निर्धन ने सोने का कटोरा पाया हो।

(सखी कहती है—) अरी युवती! (मैंने तुम्हारी) चतुराई समझ ली। (अर्थात्—तुम युवती हो—सब-कुछ समझती हो। इसलिए स्वय सब-कुछ करके भी कृष्ण को दोष दे रही हो।) कृष्ण तो दूसरे भ्रमर हैं। (अर्थात्—भ्रमर के समान उन्हे किसी का मोह नही है।)

विद्यापति कहते है—तुम्हारे अनुमान से (मैं समझता हूँ, वे कृष्ण नही,) लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह थे। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

देशीय बराडी—

[२]

आनन लोनुअ[1] बचने[2] बोलए हँसि[3]
अमिअ[4] बरिस जनि सरद पुनिमा[5] ससि ॥ध्रु०॥
अपरुब रूप[6] रमनिआँ[7]
जाइते[8] देखलि गजराज गमनिआँ[9] ॥
काजरे[10] रञ्जित धवल नयनवर
भमर मिलल जनि अरुन कमलदल[11] ॥

सं० अं०—२ वचन। ५ पुनिम।

भान भेल मोहि माँझ खीनि घनि
कुच सिरिफल[11] भरे[12] भाँगि[13] जा(ए)ति[14] जनि।।
कविशेखर भन अपरुब रूप देखि
राए[15] नसरद साह भजलि[16] कमलमुखि।।

—इति विद्यापतेः।

रा० त०, पृ० ४५

पाठभेद—

न० गु० (पद-संख्या ३४)—१ लोलए। २ वचन। ३ हसि। ४ अमिअ। ५ पुनिम। ६ रमनियाँ। ७ जाइत। ८ गमनियाँ। ९ काजर।। १० विमल कमल पर। ११ सिरिफले। १२ भरे। १३ भाङ्गि। १४ जाइति। १५ राय। १६ भूललि।

मि० म० (पद-संख्या ९३२)—१ लोनुअ। ४ अमिअ। ६ रमनिआँ। ८ गमनिआँ। ९ काजरे। १२ भरे। १४ जाति।

शब्दार्थ—आनन=मुख। लोनुअ=लावण्यमय=सुन्दर। अपरुब=अपूर्व। धवल=स्वच्छ। अरुन=लाल। दल=पत्र। भान भेल=जान पड़ा। माँझ=मध्य। खीनि=क्षीण। सिरिफल=(श्रीफल—सं०) बेल। भरे=भार से। भाँगि जाएति=टूट जायगी।

अर्थ—(नायिका जब) सुन्दर मुख से हँसकर वचन बोलती है (तब ऐसा मालूम पड़ता है), जैसे शरद् ऋतु की पूर्णिमा का चाँद अमृत बरसा रहा हो।

आज मैंने गजराज के समान चलनेवाली अपूर्व रूपवती रमणी को जाते हुए देखा।

काजल से (उसकी) स्वच्छ आँखे अनुरञ्जित थी। (मालूम होता था,) जैसे भौरा रक्त कमल-दल से आ मिला हो।

(उसे देखकर) मुझे जान पड़ा, जैसे मध्य मे क्षीण (तनुमध्या) नायिका स्तनरूपी श्रीफल के भार से टूट जायगी।

कविशेखर (विद्यापति) कहते है—अपूर्व रूप देखकर राजा नशरत शाह ने कमलमुखी का सेवन किया।

मालवीय बराडी—

[३]

ससन परसें[1] खसु अम्बर रे
देखल धनि देह।
नव जलधर तरं[2] चमकए[3] रे
जनि बीजुरि[4] रेह।।

आज देखल[5] धनि जाइते[6] रे
मोहि उपजल रङ्ग।
कनकलता जनि संचर रे
महि निरअवलम्ब॥
ता पुनु[7] अपरुब देखल रे
कुचयुग[8] अरविन्द।
बिगसित नहि किछु कारन रे
सोझा[9] मुखचन्द॥
विद्यापति कवि गाओल रे
बूझए[10] रसमन्त।
देवसिंह नृपनागर रे
हाँसिनि[11] देवि कन्त॥

रा० त०, पृ० ४६

पाठभेद—

न० गु० (पद-सख्या ३२)—१ परस। २ तरे। ३ सञ्चर। ५ देखलि। ६ जाइत। ७ पुन। ९ सोझा। १० रस बुझ। ११ हासिनि।

मि० म० (पद-सख्या ५)—१ परस। ३ चमकये। ४ बीजुरी। ५ देखलि। ६ जाइते। ७ पुन। ८ कुच-जुग। ९ सोझा। १० रस बुझए। ११ हासिनि।

शब्दार्थ—ससन=(श्वसन—स०) वायु। परसें=स्पर्श से। खसु=गिर गया। अम्बर=वस्त्र। जलधर=मेघ। बीजुरि=बिजली। रेह=रेखा। रङ्ग=आनन्द। कनकलता=सोने की लता। महि=पृथ्वी। ता=उसमे। अरविन्द=कमल। नृपनागर=राजाओ मे श्रेष्ठ।

अर्थ—वायु के स्पर्श से वस्त्र खिसक पड़ा। (इसीलिए मैंने) नायिका का शरीर देखा। (देखकर मुझे ऐसा जान पडा), जैसे नवीन मेघ के नीचे बिजली की रेखा चमकती हो। आज मैंने नायिका को जाते देखा। (देखकर) मुझे आनन्द हो आया।

(देखने के बाद ऐसा जान पडा), जैसे पृथ्वी पर सोने की लता निरवलम्ब लहरा रही हो। फिर, (एक) आश्चर्य (और) देखा (कि) उस (लता) मे कुचयुगरूपी कमल (लगे थे।) (किन्तु वे) खिले नही थे। (इसमे भी) कुछ कारण था। (कारण यह था कि)

सामने मे मुखरूपी चन्द्रमा था। (अर्थात्—कमल सूर्य के सामने खिलता है; किन्तु चन्द्रमा के सामने मुँद जाता है।)

कवि विद्यापति ने कहा—हाँसिनी देवी के स्वामी—राजाओ मे श्रेष्ठ—रसज्ञ राजा देवसिंह (इसे) समझते है।

भठिआली—

[४]

नन्दक नन्दन कदबेरि[१] तरु तरे[२]
धिरे[३] धिरे[३] मुरलि बोलाब[४]।
समय संकेत[५] निकेतन बैसल[६]
बेरि बेरि बोलि पठाब॥ध्रु०॥
सामरी,
तोरा लागि अनुखने विकल मुरारि॥
जमुनाक तीर[७] उपवन उदबेगल
फिरि फिरि ततहि निहारि।
गोरस बिकेनिके[८] अबइते[९] जाइते[१०]
जनि जनि पुछ बनबारि[११]॥
तोहे[१२] मतिमान सुमति मधुसूदन
वचन सुनह किछु मोरा।
भनइ विद्यापति सुन बरजौवति[१३]
बन्दह नन्दकिशोरा[१४]॥

रा० त०, पृ० ४७

पाठभेद—

न० गु० (पद-सख्या१)—१ कदवेरि। २ तरे। ३ धिरे धिरे। ४ बलाव। ५ सकेत। ६ बइसल। ७ तिर। ८ बिके। ९ अबइते। १० जाइते। ११ बनमारि। १२ तोंहे। १४ नन्दकिसोरा।

सं० अ०—१ कँदबेरि। ६ बइसल। १३ बरजउवति।

मि० म० (पद-सख्या २५३)—१ कदम्बेरि। २ तरे। ३ घिरे घिरे। ५ सङ्केत। ६ बइसल। ७ तिर। ८ बिके निके। ९ अवइते। १० जाइते। १२ तोहे। १४ नन्द-किसोरा।

शब्दार्थ—कदवेरि= कदम्ब के। सँकेत निकेतन=मिलनस्थान। वेरि वेरि= बार-बार। बोलि पठाव=बुला भेजते है। सामरी=(श्यामा-स०) गोपी=राधा। तोरा लागि= तुम्हारे लिए। अनुखने=(अनुक्षण—स०) प्रतिक्षण। उदवेगल=उद्विग्न=उत्कण्ठित। फिरि फिरि=बार-बार। ततहि=वही। गोरस=दूध, दही आदि। विकेनिकें=बेचने को। जनि जनि=(जन—स्त्री०) प्रत्येक स्त्री को। बनबारि=(वनमाली—स०) कृष्ण।

अर्थ—कृष्ण कदम्ब के पेड के नीचे धीरे-धीरे वशी बजाते हैं।

(सो, जान पडता है, जैसे) समय पर मिलनस्थान मे बैठे हुए (वे) बार-बार (तुम्हे) बुला रहे है।

हे राधे! तुम्हारे लिए कृष्ण प्रतिक्षण विकल हैं।

यमुना के तीर पर, उपवन मे, उद्विग्न होकर, बार-बार उस ओर देखकर—

दूध-दही बेचने को आती-जाती हुई प्रत्येक स्त्री से कृष्ण पूछते है।

तुम बुद्धिमती हो (और) कृष्ण (भी) बुद्धिमान् हैं। (इसलिए) मेरी कुछ बात सुनो।

विद्यापति कहते है—अरी वरयुवती! सुनो। कृष्ण की वन्दना करो।

कौशिक—

[५]

लता तरुअर मण्डप दीअ[1]
निरमल ससधर[2] भिति[3] धवलीअ[4]।
पौंअनाल[5] ऐपन[6] भल भेल
सत परीहन पल्लव देल॥
गाबह[7] माइ हे मङ्गल[8] आए[9]
वसन्त बिआह वने पए जाए[10]।
मधुकर रमनी[11] मङ्गल गाब
दुजवर कोकिल मन्त्र पढ़ाब॥
करु मकरन्द हथोदक नीर
विधु बरिआती[12] धीर समीर।

कनए केआ सुति[१३] तोरन तूल[१४]
लाबा बिथरल बेलिक फूल[१५]॥
केसु[१६] कुसुम करु सिन्दुर[१७] दान
जौतुक[१८] पाओल मानिनि माँन[१९]।
केलि कुतूहल नव पँचबान[२०]
विद्यापति कवि दिढ[२१] कए भाँन[२२]॥
अभिनव नागर बुझए[२३] रसवन्त[२४]
मति[२५] महेस[२६] रेणुका[२७] देवि[२८] कन्त।

रा० त०, पृ० ४९

पाठभेद—

न० गु० (पद-सख्या ६१०)—१ जीति। २ शशधर। ३-४ धबलिय भीति। ५ पँउअ नाल। ६ अइपन। ७ देखह्। ८-९ मनचित लाय। १० वसन्त विवाह् कानने थलि आय। ११ मधुकर रमणी। १२ बरियाती। १३-१४ कनय केसुया मुति तोरण तूल। १५ फुल। १६ केशु। १७ सीदुर। १८ जउतुक। १९ भान। २० खेलए कउतुक नव पचवान। २१-२२ दृढ कय भान। २३-२४ बुझय वसन्त। २५ मति। २६ महेश।

मि० म० (पद-सख्या २१९)—१ जीति। ३-४ धबलिए भीति। ५ पँउअ नाल। ६ अइपन। ७ देखह्। ८-९ मन चित लाय। १० वसन्त-विवाह् कानन-थलि आय। ११ मधुकरि-रमनी। १३-१४ कनक किंसुक मुति तोरन तूल। १६ केसर। १७ सिँदुर। १८ जउतुक। १९ मान। २० खेलए कउतुक नव पँचवान। २१-२२ दृढ कए भान। २३-२४ बुझय वसन्त। २७ रेनुका। २८ देदू।

शब्दार्थ—दीअ=दिया। ससधर=चन्द्रमा। भिति=(भित्ति—स०) दीवार। धवलीअ=उजला कर दिया=पोत दिया। पौअनाल=(पद्मनाल-स०) कमल का समूह। ऐपन=अलपना। भल=अच्छा। भेल=हुआ। रात=(रक्त—स०) लाल। परीहन=परिधान—स०। मधुकर रमनी= भ्रमरी। दुजवर= (द्विजवर—सं०) श्रेष्ठ ब्राह्मण। मकरन्द=पुष्परस=मधु। हथोदक=हस्तोदक—स०। विधु=(व्यध्व—स०) रास्ते का थका-माँदा। बरिआती=(वरयात्री—स०) बराती। कनए केआ=(कनक-कदली—प्र०) चम्पा केला। सुति=(सूति—स०) सन्तान=पौध। तोरन=वन्दनवार। तूल=तुल्य। बिथरल=

सं० अ०—६ अइपन। ७ देखह्। १७ जउतुक। १९ मान। २० खेलए कउतुक नव पँचवान। २२ भान। २३ बुझ। २५ मन्ति।

बिखरा हुआ। केसु=(किंशुक--स०) पलाश। जौतुक=(यौतुक--स०)दहेज। कउतुक=हास्य-विनोद।

अर्थ—लता (और) तरुवर ने मण्डप सुलभ किया। (अर्थात्—लता से आच्छादित तरुवर ही मण्डप हुआ।) निर्मल चन्द्रमा ने (उसकी) दीवार पोत दी।

कमल का समूह अच्छा अल्पना हुआ (और) नव पल्लव ने लाल परिधान दिया।

अरी मैया! आकर देखो। जगल मे चलकर वसन्त का विवाह देखो।

भ्रमरी मगल गा रही है। ब्राह्मण-श्रेष्ठ कोकिल मन्त्र पढा रहा है।

पुष्परस (मधु) ने हस्तोदक का काम किया। मन्द पवन रास्ते का थका-माँदा बराती हुआ।

चम्पा केला की पौधे बन्दनवार के समान है (और) बेली के फूल बिखरे हुए लावा हैं।

पलाश के फूल ने सिन्दूर दान किया (और दूल्हे ने) दहेज मे मानिनी का मान पाया।

कवि विद्यापति निश्चयपूर्वक कहते है (कि) नूतन कामदेव हास्य-विनोद (करके) खेल रहा है।

रेणुका देवी के स्वामी रसज्ञ अभिनव नागर मन्त्री महेश (महेश्वर इसे) समझते है। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

बेशदेशाख—

[६]

मान परीहर हे करु वचन मोरा
मार मनोभव हे धरु सरन तोरा॥

न कर न कर हे मोहि विमुख आजे
अपुरुब पेमे हे पुनु भेल समाजे॥

कमलवदनि हे करु आकम[1] दाने
विनजे के नहि हे जग तेजए माने॥

—इति विद्यापतेः।

रा० त०, पृ० ५०

---

[1] सं० अं०—४ आँकम।

पाठभेद—

न० गु० (पद-संख्या ३५३)—१ शरन। २ अपरुब। ३ पुन। ४ आँकम। ५ विनये। ६-७ जगते जय। अन्त मे निम्नलिखित भणिता है—

विद्यापति कवि हे भन कवि धीरे।
राजा शिवसिंह हे नरपति वीरे॥

शब्दार्थ—परीहर=छोड़ दो। मनोभव= कामदेव। समाजे=मिलन। आकम= आलिंगन। विनवे=विनय से।

अर्थ—हे (मानिनी!) मान छोड़ दो। मेरा वचन (स्वीकार) करो। कामदेव आहत कर रहा है। (इसीलिए, मैंने) तुम्हारी शरण ली।

मुझे आज विमुख मत करो—मत करो। अपूर्व प्रेम से (अपूर्व प्रेम के कारण) ही फिर मिलन हुआ।

हे कमलवदनी! आलिङ्गन दान करो। विनय से ससार मे कौन नही मान तजता है? (अर्थात्—विनती करने पर सभी प्रसन्न हो जाते हैं।)

देशरामकरीय—

[७]

कुसुमवान विलास कानन
केस सिन्दुर रेह।
निविल नीरद रुचिर दरसए
अरुन[1] जनि निज[2] देह॥
आज देखु गजराज गति[3] वर-
जुअति[4] त्रिभुवन सार।
जनि कामदेवक विजयवल्ली
विहलि विहि संसार॥
सरद ससधर सरिस सुन्दर
वदन लोचन लोल[5]।
विमल कञ्चन कमल चढ़ि जनि
खेल[6] खञ्जन जोर[7]॥

अधर नव पल्लव मनोहर
दसन दालिम[7] जोति।
जनि निविल विद्रुमदले[8] सुधारसे[9]
सीँचि धरु गजमोति॥
मत्त कोकिल बेनु[10] वीना[11]
नाद तिहुअन[12] मास।
जनि[13] मधुर हाक[14] पसाहि आनन[15]
करए वचन विकास[16]॥
अमर भूधर सम पयोधर
महघ मोतिम हार।
हेम[17] निर्मित शम्भु[18] शेखर[19]
गङ्ग निर्मल[20] धार॥
करभ कोमल कर सुसोभन[21]
जङ्घ जुग[22] आरम्भ।
जनि[23] मदन मल्ल बेआम कारने[24]
गढल[25] हाटक थम्भ॥
सुकवि एहू[26] कण्ठहारे गाओल
रूप सकल सरूप।
देवि लखिमा कन्त जानए
सिरि[27] सिवए[28] सिह भूप॥

रा० त०, पृ० ५२-५३

पाठभेद—

न० गु० (पद-संख्या ५४१)—१ अरुण। २ निज। ४ जुनति। ५ वेलु। ६ जोल। ८ विद्रुमदल। १२ त्रिभुवन। १३ पाठाभाव। १४ हासँ। १५ मानलि। १६ विलास।

सं० अ०—३ वरजुवति। ५ जोळ। ७ दाळिम। १४ हासेँ। १५ मानल। १६ विलास। २६ एहो।

१७ जनि हेम। १८-१९ सम्भुसेखर। २० निम्मल। २१ सुशोभित। २२ जुअ। २३ पाठाभाव। २५ गढल। २६ एहो। २७ राज। २८ सिव।

मि० म० (पद-सख्या ३०)—१ अरुण। २ निअ। ३ गजराजपति। ९ सुधारसे। १०-११ वेणु वीणा। २४ कारणे।

शब्दार्थ—कुसुमवान=कामदेव। विलास कानन=प्रमदवन। रेहृ=रेखा। निविल=(निविड—स०)घना। नीरद=मेघ। रुचिर=सुन्दर। जनि=जैसे। वल्ली=लता। बिहलि=विधान किया। बिहि=विधाता। ससधर=चन्द्रमा। लोल=चचल। जोर=जोडा। विद्रुमदलेँ=मूँगे के पत्ते मे। सुधारसेँ=अमृत से। गजमोति=गजमुक्ता। तिहुअन=त्रिभुवन। हाक=पुकार। पसाहि=(प्रसह्य—स०) हठात् (जीतकर)। अमर भूधर=सुमेरु। पयोधर=स्तन। महघ=(महार्घ—स०) बहुमूल्य। मोतिम=मोतियो का। हेम=सोना। शेखर=मस्तक। करभ=हाथी का बच्चा। करभ कर=हाथी के बच्चे की कोमल सूँड। आरम्भ=निर्माण। मल्ल=पहलवान। बेआम=व्यायाम। हाटक=सोना। थम्भ=(स्तम्भ—स०) खूँटा। सकल सरूप=यथार्थ।

अर्थ—कामदेव के प्रमदवन-रूपी केश मे सिन्दूर की रेखा (ऐसी मालूम पड़ती है), जैसे सघन मेघ मे अरुण अपना सुन्दर शरीर दिखला रहा है।

आज गजराज के समान चलनेवाली (और) त्रिभुवन के सार-स्वरूप वरयुवती को देखा। (देखकर ऐसा जान पडा), जैसे विधाता ने ससार मे कामदेव की विजयलता लगाई है।

शरत्कालीन चन्द्रमा के समान सुन्दर (उसका) मुख है (और उसकी) आँखे चचल है। (जान पडता है), जैसे विशुद्ध सुवर्ण-कमल पर चढकर खजन का जोडा खेल रहा है।

(उसके) ओष्ठ नवपल्लव के समान मनोहर है (और) दाँतो मे दाडिम के बीज की ज्योति है। (मालूम होता है,) जैसे गजमुक्ता को अमृत से धोकर निविड (अच्छिद्र) मूँगे के पत्ते मे रख दिया गया है।

त्रिभुवन मे (जितने) मत्त कोकिल, वेणु (और) वीणा के शब्द सुनाई पडते है, (मालूम होता है) जैसे (नायिका) वचन-विलास करने के लिए मधुर पुकार से (उन सबको) हठात् (जीतकर) ले आई है।

सुमेरु के समान (उन्नत उसके) स्तन है। (उनपर) बहुमूल्य मोतियो का हार है। (जान पडता है, जैसे) सुवर्ण-निर्मित शिवजी के मस्तक पर गङ्गा की निर्मल धारा है।

हाथी के बच्चे की कोमल सूँड के समान शोभायमान (उसकी) दोनो जाँघों का निर्माण है (मालूम होता है), जैसे (विधाता ने) कामदेव-रूपी पहलवान के व्यायाम के लिए सोने के खूँटे का निर्माण किया है।

सुकवि-कण्ठहार (विद्यापति) ने रूप का यह यथार्थ वर्णन किया। लखिमा देवी के स्वामी राजा श्रीशिवसिंह (इसे) जानते है। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

ललित—

[८]

सपने देखल हरि गेलिहुँ पुलकें पुरि
जागल कुसुमसरासन हे।
आरे,
की सखी पओलह सुतलि जगओलह
सपनहुँ सङ्ग छड़ओलह हे॥
सामर सुन्दर हरि रहल आँचर धरि
फोअइते किङ्किणि डोरा हे।
अओर कहब कत रस उपजल जत
के बोल कान्ह गोआरा हे॥
ससरि शयन सिम हरि गहलिहुँ गिम
मुखे मुखे भमर कमल मिलु हे।
पुरलि मनक सिधि आनि देहलि बिहिँ
तोरें दोसे दैवें अछोरि लेल हे॥

रा० त०, पृ० ५४-५५

विशेष—यह पद 'रामभद्रपुर-पदावली' में भी है। अत, इसके लिए 'रामभद्रपुर-पदावली' का ५८ सख्यक पद देखिए।

शुद्ध केदार—

[९]

जनि हुतवहँ[1] हरि[2] आनि[3] मेराओल
ता सम भेल विकार।
दुअओ नयन तोर विषम[4] मदनसर[5]
सालए[6] हृदय हमार॥
हरि हरि,
काँ लागि सुमुखि[7] बिहुँसि[8] हसि[9] हेरलह[10]
जीवन परल सन्देह॥

सं० अ०—२ हवि। ३ आनि। ९ हँसि।

पीन पयोधर अपरुब सुन्दर
ऊपर[11] मोतिम हार।
जनि कनकाचल उपर विमल जल
दुइ वह सुरसरि धार॥
भनइ विद्यापति सुनु[12] वर नागर
सबहुँ[13] होएत[14] परकार।
राजा सिवसिंघ[15] गाओलएन[16]
लखिमा देवि[17] उदार॥

रा० त०, पृ० ५५

पाठभेद—

न० गु० (पद-संख्या ११९)—१ हुतवहे। २ हवि। ५ मदनगर। ६ शाल्य। ७ नुमुख। ८ विहुसि। १० हेरह। ११ उपर। १२ सुन। १३ सवहु। १४ होयत। १५ सिवसिंह। १६ रूपनरायन। १७ कन्त।

मि० म० (पद-संख्या ४०)—१ हुतवह। २ हवि। ४ विसम। ६ शाल्य। ८ विहुसि। ११ उपर। १३ सवहु। १६ गाओल-एन। १७ देवी।

शब्दार्थ—हुतवहँ=अग्नि में। हरि(?)=हवि=होमीय द्रव्य=घृत। मेराओल= मिलाया। ता सम=उसी के समान। विकार=परिवर्त्तन=प्रज्वलन। विषम=कठिन। कौं लागि= किसलिए। कनकाचल=सुमेरु। परकार=(प्रकार—सं०) उपाय।

अर्थ—जैसे आग मे घी लाकर मिलाया गया हो, उसी के समान परिवर्त्तन हो गया है। (अर्थात्—कामानल धधक रहा है।)

तुम्हारे दोनों नेत्र कठिन कामशर हैं। (वे) मेरे हृदय को साल रहे है।

हरे! हरे!!

हे सुमुखी! किसलिए (तुमने) हँस-हँसकर देखा (कि मेरा) जीवन सन्देह में पड़ गया। (अर्थात्—मेरा जीना दूभर हो गया।)

(तुम्हारे) उन्नत स्तन अपूर्व सुन्दर हैं। (उनके) ऊपर मोतियों का हार है।

(मालूम होता है,) जैसे सुमेरु के ऊपर विमल जलवाली गंगा की दो धाराएँ बह रही हैं।

विद्यापति कहते हैं—हे नागर! सुनिए। सबका उपाय होगा।

(कारण), राजा शिवसिंह रूपनारायण लखिमा देवी के प्रति उदार है। (अर्थ— सम्पादकीय अभिमत से।)

सं० अ०—१५ सिवसिंह। १६ रूपनराञेन।

केदारारकेदार—

[१०]

आँचरे वदन झपाबह गोरि
राज सुनैछिअ चाँदक चोरि।
घरें घरें पैंहरि गेलछ जोहि
एषने दूषन लागत तोहि॥
बाहर सुतह हेरह जनु काहु
चाँन भरमे मुख गरसत राहु॥
निरखि निहारि फाँस गुन तोलि
बान्हि हलत तोहें खञ्जन बोलि।
भनहि विद्यापति होहु निशङ्क
चाँन्दहुँ काँ किछु लागु कलङ्क॥

रा० त०, पृ० ५६

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अत, इसके लिए प्रथम भाग का २१५ संख्यक पद देखिए।

विहागरकेदार—

[११]

उधसल केस' कुसुम छिरिआएल'
खण्डित दशन अधरे।
नयन देखिअ' जनि अरुन' कमलदल
मधुलोभे बैसल' भमरे॥ध्रु०॥
कलावति कैतव न करह आज।
कओन' नागर सङ्ग' रयनि गमओलह
कह मोहि परिहरि लाज॥
पीन पयोधर नखरेख सुन्दर
करें' बाँधह' काँ गोरि।

मेरु शिखर नव उगि गेल ससधर[10]
गुपुति न रहलिए[11] चोरि॥
बेकतेओ चोरि गुपुत कर कति खन
विद्यापति कवि भान।
महलम जुगपति चिरें[12] जीबें[13] जीबथु
ग्यासदीन[14] सुरतान॥

रा० त०, पृ० ५७

पाठभेद—

न० गु० (पद-सख्या २६८)—१ केश। २ छिरियाएल। ३ देखिय। ४ अरुण। ५ बइ-सल। ६ कओन। ७ सङ्के। ८ करे। ९ राखहु। १० शशधर। ११ रहलिय। १२-१३ चिरेजिव। १४ ग्यासदेव।

मि० म० (पद-सख्या २)—१ केश। ८ करे।

शब्दार्थ—उधसल=अस्त-व्यस्त हो गये। कुसुम= फूल। छिरिआएल=बिखर गये। दशन=दाँत। अरुन=लाल। कैतव=छल। रयनि=रात। गमओलह=बिताई। परिहरि=त्याग कर। करे=हाथ से। गोरि=गोडि=ढककर। ससधर=चन्द्रमा। गुपुति=गुप्त—स०। बेकतेओ=व्यक्त (प्रकट) को भी। महलम=(महरूम—अरबी। दे०—बृहत् हिन्दी-शब्दकोश) रोककर रखा गया=नजरबन्द। युग=दोनो।

अर्थ—(सखी पूछती है—अरी सुन्दरी! तुम्हारे) केश अस्त-व्यस्त हैं। (इसीलिए केश मे गुँथे) फूल भी बिखर गये है। (नायक के) दाँतो से अधर भी खण्डित हो गया है।

(रात्रि-जागरण के कारण तुम्हारी उनीदी) आँखे (ऐसी) दिखाई देती हैं, जैसे (वे) लाल कमल के पत्ते है (और उनपर) मधु के लोभ से भौरे बैठे हैं।

हे कलावती! आज बहाना मत करो। लज्जा त्यागकर मुझसे कहो (कि) किस नागर के साथ (तुमने) रात गँवाई?

पीन पयोधर के ऊपर जो सुन्दर नख-रेखा है, उसे हाथ से ढककर किसलिए रखती हो?

(उसे देखकर ऐसा जान पडता है,) जैसे सुमेरु की चोटी पर नया चन्द्रमा उगा है। (इसलिए तुम्हारी) चोरी गुप्त नही रही।

कवि विद्यापति कहते है (कि) प्रकट चोरी को कबतक छिपाओगी?

नजरबन्द दोनो (महाराज शिवसिंह और महाकवि विद्यापति) के स्वामी सुलतान गयासुद्दीन बहुत दिनो तक जीवे। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

सं० अ०—८ करें। ९ राखह।

विशेष—जब महाराज शिवसिंह दिल्ली मे नजरबन्द थे, तब विद्यापति भी उनके साथ थे। यह पद उसी समय का है। प्रथम भाग की भूमिका देखिए।

कामोद केदार—

[१२]

अबला अंशुक[१] बालमु[२] लेला
पानि पलब धनि आँतर[३] देला।
हठ न करह[४] कान्हु[५] न पुरत[६] कामे
प्रथमक रभस विचारक ठामे॥
आबे नव जौवन[७] समय[८] निहारी
अपनहि बेकत होएत[९] परचारी।
मदन भँडारक[१०] सुरत सयानी
मोहर[११] सुनल[१२] अछ असमय जानी॥
मुकुलित लोचन नहि परगासे
काँप कलेवर हिरदए[१३] तरासे।

सं० अ०—

अबला अंसुक बालमु लेला।
पानि पलव धनि आतर देला।
हठ न करह पहु न पुरत कामे
प्रथमक रभस विचारक ठामे॥ ध्रु०।
मदन भण्डार सुरत रस आनी
मोहरे मुन्दल अछ असमय जानी।
मुकुलित लोचन नहि परगासे
काँप कलेवर हृदअ तरासे॥
आबे नव जौवन समअ निहारी
अपनहि बेकत होएत परचारी।
भनइ विद्यापति नव अनुरागी
सहिअ पराभव पिअ हित लागी॥

भनइ विद्यापति नव अनुरागी
सहिअ पराभव पिआ[14] हिआ[15] लागी ॥

रा० त०, पृ० ५९

पाठभेद—

न० गु० (पद-संख्या १६४)—१ असुक। २ बालम्भु। ३ आँतर। ४ करिह। ५ पहु। ६ पूरत। ७ जीवन। ८ होयत। ९ भण्डार। १० रसआनी। ११ मोहरे। १२ मुन्दल। १३ हृदय। १४ पिय। १५ हित।

मि० म० (पद-संख्या २८१)—१ असुक। २ बालम्भु। ३ आँतर। ४ करिह। ५ पहु। ६ पूरत। ९ भण्डार। १० रस आनी। ११ मोहरे। १२ मुन्दल। १३ हृदय। १४ पिय। १५ हित।

शब्दार्थ—अबला=स्त्री। असुक=वस्त्र। बालमु=वल्लभ=स्वामी। आँतर=(अन्तर –स०) ओट। कामे=कामना। रभस=मिलन। विचारक ठामे=विचार का स्थान=विचारणीय। बेकत=व्यक्त। परचारो=प्रचार करके। सुरत रस=रतिरग-रूपी अमृत। मोहर=मुहर। मुन्दल=बन्द किया हुआ। मुकुलित=अर्द्धविकसित। अधखुली। परगासे=प्रकाश। कलेवर=शरीर। तरास=(त्रास–स०) भय।

अर्थ—स्वामी ने स्त्री का वस्त्र (पकड़ लिया), तो नायिका ने पाणि-पल्लव का अन्तर दे दिया।

(दूती कहती है—) हे कृष्ण[1] हठ मत करो। (अभी तुम्हारी) कामना पूरी नही हो सकती है। (कारण), प्रथम मिलन विचारणीय होता है। (अर्थात् विना विचार किये, शीघ्रता मे, जिस-किसी के साथ प्रथम मिलन नही किया जाता है।)

असमय जानकर कामदेव ने रतिरग-रूपी अमृत लाकर (अपने) भाण्डार मे मुहर लगाकर (उसे) बन्द कर दिया है।

(इसीलिए नायिका की) अधखुली आँखो मे प्रकाश नही है। (उसका) श रीर काँप रहा है (और उसके) हृदय मे भय हो रहा है।

(किन्तु) अब (शीघ्र ही) नवयौवन का समय देखकर प्रचार करके (रतिरग) स्वय प्रकट हो जायगा।

विद्यापति कहते है—नव अनुरागी स्वामी के हित के लिए कष्ट सहना (ही) चाहिए। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

श्रीराग—

[१३]

कुन्द भमर सङ्गम सम्भाषब
नअने जगाओब अनङ्गे।

आशा दय अनुराग बढाओब
नङ्गिम अङ्ग विभङ्गे॥
सुन्दरि हे उपदेश धरिए धरि
सुन सुन सुललित वानी।
नागरिपन किछु कहबा चाहों
कहलहुँ बुझय सयानी॥
कोकिल कूजित कण्ठ बैसाओब
अनुरञ्जब रितुराजे।
मधुर हास मुखमण्डल मण्डब
घड़िएक तेजब लाजे॥
कैतव कए कातर नागर सब
गाढ आलिङ्गन दाने।
कोप कैए परबोधल मानब
घड़िएक न करब माने॥
समय सेब निसह तनु चाँद न
मुकुलित लोचन हेरी।
नखें हनि पिआ मनिधाम छडाओब
सुरत बढाओब केली॥
जूझल मनमथ पुनु जे जुझाबए
बोलि वचन परचारी।
गेल भाव जे पुनु पलटाबए
सेहे कलावति नारी॥
रस सिंगार सबस करि गाओल
बुझए सकल रसमन्ता।

राजा शिवसिंघ रूपनरायण
लखिमा देविक कन्ता ॥

रा० त०, पृ० ६२-६३

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अत, इसके लिए प्रथम भाग का २०९ सख्यक पद देखिए।

वसन्त—

[१४]

माघ मासँ[1] सिरिपञ्चमि गँजाइलि[2]
नवए मासँ[3] पञ्चम[4] हरुआइ[5]।
अतिघन पीडा दुख बड[6] पाओल
बनसपती के[7] बधाइ[8] हे ॥
सुभ खन बेरा सुकल पख हे[9]
दिनकर उदित समाइ[10]।
सोलह सँपुने बत्तिस लखनें[11]
जनम लेल रितुराइ[12] हे ॥
नाचए जुवतिगन हरखित[13]
जनमल[14] बाल मधाइ[15] हे।
मधुर महारस मङ्गल गाबए
माननि मा उड़ाइ[16] हे ॥
बह मलयानिल ओत उचित हे
वन[17] घन भउ[18] उजिआरा[19]।
माधवि फूल[20] भल गजमुकता[21] तुल
तें[22] देल बन्दनेवारा ॥
पीअरि पाँडरि[23] महुअरि गाबए
काहर कार धुथूरा[24] ॥

सं० अ०—१ मास। ३ मास। ५ हलु आइ। ९ पक्ख। ११ लखने। १३ मन अति हरषित। १६ उडाइ। २० फुल।

नागेसर कलि संखधूनि पुर[२५]
तगर[२६] ताल समतूला ॥
मधु लए मधुकरे[२७] बालक दए[२८] हलु
कमल पखुरिआ[२९] झुलाइ ।
पौँअनाल[३०] तोरि करि सुत[३१] बाँधल
केसु कइलि बघनाही[३२] ॥
नव नव पल्लव सेज ओछाओल
सिर दहु कदबेरि[३३] माला ।
बैसलि भमरी हर उदगारए[३४]
चक्का चन्द निहारा ॥
कंनए केआ[३५] सुतिपत्र लिखिए हलु
रासि नछत्र कए लोला ।
कोकिल गणित[३६] गुणित[३७] भल जानए
ऋतु[३८] वसन्त नाम थोएला[३९] ॥
बाल वसन्त तरुण[४०] भए धाओल
बेढ़ए[४१] सकल संसारा ।
दखिन पवन घन आँग[४२] उगारए
कुबलए[४३] कुसुम परागे ।
सुललित हार मंजरि[४४] घन कज्जल
आखि[४५] तओ[४६] अञ्जन लागे ॥
नव वसन्त ऋतु[४७] अनुसर जौवति[४८]
विद्यापति कवि गाया ।
राज(T)[४९] सिवसिंह[५०] रूपनराएन[५१]
सकल कला मन भाया ॥

रा० त०, पृ ६३–६४

सं० अ०—२७ मधुकरेँ । ३१ कटिसुत । ३३ कँदबेरि । ४१ वेढए । ४८ जउवति । ४९ राजा । ५१ रूपनराजेन ।

पाठभेद—

न० गु० (पद-संख्या ६०१)—१ मास। २ गजाइल। ३ मास। ४-५ पञ्चमहु रुआइ।' ६ बड। ७–८ भेलि धाइ। ११ सपुने बतिस लखने। १२ जुवतिगण। १३ हरषित। १४ जनम लेल। १६ उडार। १७ नव। १९ उजियारा। २० फुल। २१ गजमुकुता। २२ ते। २३ पाँडरि। २६ तकर। २७ मधुकरे। २८ दय। २९ पखुरिया। ३० पौअनाल। ३२ बघनाही। ३३ कदम्वेरि। ३५ केसुआ। ३८ रितु। ३९ थोला। ४१ बडए। ४२ अङ्ग। ४३ किसलय। ४४ मजरि। ४५–४६ अखितौ। ४७ रितु। ४९ राजा।

मि० म० (पद-संख्या १३८)—१ मास। २ सिरिपञ्चमी गँजाइलि। ३ मास। ५ हरुआई। ६ पीडा दुख बड। ९ सुकुल पक्ख। १० समाई। ११ सँप्पुने बत्तिस लखने। १२ रितुराई। १३ जुवतिगण हरखित। १५ मवाई। १६ उडाई। १८ भओ। १९ उजियारा। २१ गजमुकुता। २२ ते। २३ पाँउरि। २४ बतूरा। २५ पूर। २७ मधुकरे। ३० पौँअनाल। ३२ बघना। ३३ कदम्बक। ३४ उदगाबए। ३५ केसुआ। ३६ गनित। ३७ गुनित। ३८ रितु। ३९ थोला। ४० तरुन। ४२ आग। ४४ मजरि। ४५-४६ आखितओ। ४७ रितु। ४९ राजा। ५० सिवसिंघ।

शब्दार्थ—सिरिपञ्चमि=(श्रीपञ्चमी—स०) वसन्तपचमी। गजाइलि=गंजित हो गई=दुर्दशाग्रस्त हो गई।' नवए मास=नवाँ महीना। हरु आइ=हलु आइ=आ गये। अति घन=बड़े जोरो की। पीडा=दर्द। वनसपती=वनस्पति। खन=क्षण-स०। वेरा=वेला। सुकल पख=शुक्लपक्ष। दिनकर=सूर्य। उदित=उदय। समाइ=समय। सँपुने=सम्पूर्ण। लखने=लक्षणो से। रितुराइ=(ऋतुराज—स०) वसन्त। मघाइ=मधु ऋतु=वसन्त। महारस=बहुत रसवाला=सरस। मलयानिल=दक्षिण पवन। ओत=ओट। घन=निविड। उजिआरा=प्रकट। भल=सुन्दर। तुल=तुल्य। ते=उसने। बन्दनेवारा=बन्दनवार=तोरण। पाँडरि=(पाटली–स०) गुलाव। महुअरि=वाद्यविशेष=तूँबी। काहर=(काहल–स०) वाद्य-विशेष। कार=काला। सखधूनि=शखध्वनि। पुर=पूर्ण करती है। तगर=पुष्प-विशेष। दए हलु=दिया। पँखुरिया=पखुडी। पौँअनाल=(पद्मनाल—स०) कमल की डडी। करिसुत=कटिसूत्र—सं०। केसु=(किंशुक—स०) पलाश। बघनाही=बघनखा। कदवेरि=कदम्व की। हर उदगारए=हलराती है। चक्का=(चक्र—स०)मडल। निहारा=गौर से देखकर। कनए केआ=(कनक-कदली—स०) चम्पा केला। सुतिपत्र=जन्मपत्र। लिखिए हलु=लिख दिया। लोला=जीभ। गुणित=गुणन किया गया। थ,एला=रख दिया। धाओल=दौड चला। वेढए=घेरने के लिए। घन=निरन्तर। उगारए=उबटन लगाता है। कुवलए=

---

१. देखिए—नवि पनारि गज्रें गंजि नडाउलि
परसलि सूर किरने।—दस अवधान(रागतरंगिणी, पृ० ८६)।

नील कमल। परागे=पुष्परज से। घन=(घना—सं०) रुद्रजटा=एक लता, जिसका फूल काला होता है।

अर्थ—नौ महीने पाँच दिन होने को आये। (इसीलिए) माघ महीने की वसन्तपचमी मे (वनस्पति) दुर्दशाग्रस्त हो गई।

उसे बड़े जोरो का दर्द होने लगा—उसने बहुत दु ख पाया। वनस्पति को बधाई है। शुभ क्षण में, शुभ अवसर मे, शुक्ल पक्ष मे, सूर्योदय के समय—

सोलह (कलाओ से) पूर्ण (और) बत्तीस लक्षणो से (युक्त) ऋतुराज ने वनस्पति के गर्भ से जन्म लिया।

बालक वसन्त ने जन्म लिया। (इसीलिए) युवतियाँ हर्षित होकर नाचने लगी।

मानिनी मान को उडाकर (छोड़कर) मधुर, सरस मगल। (गीत) गाने लगीं।

मलयानिल बह रहा है। (इसलिए) ओट (करना) उचित है। (अत) जगल घना होकर प्रकट हो आया।

माधवी का फूल सुन्दर गजमुक्ता के तुल्य होता है। (इसलिए) उसने बन्दनवार दिया।

पीला गुलाब महुअरि (के समान और) काला धतूरा काहल (के समान) गा रहा है।

नागेसर की कली शंखध्वनि पूरा कर रही है (और) तगर ताल के समान पूरा कर रहा है। अर्थात्—ताल दे रहा है।

कमल की पँखुड़ी पर झुलाकर भौंरो ने मधु लेकर बालक (वसन्त) को दिया।

कमल का डठल तोडकर कटिसूत्र बाँधा (और) पलाश को (बालक के गले मे बाँधने का) बघनखा किया।

(बालक के लिए) नये-नये पल्लवो की शय्या बिछाई और माथे में (अर्थात्-सिर के नीचे तकिया के लिए) कदम्ब की माला दी।

बैठी हुई भ्रमरी चन्द्रमण्डल को दिखलाकर (बालक वसन्त को) हलराती है।

राशि (और) नक्षत्र को जीभ पर कर के (अर्थात्—राशि और नक्षत्र को गणना करके) चम्पा केला ने जन्मपत्र लिख दिया।

कोकिल गुणन किया हुआ गणित तो अच्छी तरह जानता है। (इसलिए) उसने 'वसन्त ऋतु' नाम रखा।

बालक वसन्त युवा होकर सम्पूर्ण ससार को घेरने के लिए दौड चला।

दक्षिण पवन नीलकमल के पराग से निरन्तर (उसके) अग को उगारता है (अर्थात्—उसके अग मे उबटन लगाता है।)

मजरी (उसके गले मे) सुन्दर हार हुई (और) रुद्रजटा (उसकी) आँखो मे अजन होकर आ लगी।

कवि विद्यापति गाते है (कहते है–) हे युवती! वसन्त ऋतु का अनुसरण करो।

(ये) सारी कलाएँ राजा शिवसिंह रूपनारायण के मन को भाती है। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

विशेष—'वेढए सकल ससारा' के बाद दो पक्तियो की छूट प्रतीत होती है।

विततमालव—

[१५]

विकट जटाचय किछु न[1] लोकभय हे
उर फनिपति[2] दिग वास ॥ध्रु०॥
कओन[3] पथ भेटताह हे
आगे माइ जाइत[4] उमत हमार॥
त्रिपुर दहन करु[5] छारे[6] छाल[7] भरु हे
बसह[8] चढ़ल वर बूढ़[9]॥
तीनि नयन हर एक अनल बर[10] हे,
सिर[11] सुरसरि जलधार॥
भनइ विद्यापति गोरि[12] विकलमति हे
ओहि उमताक उदेस[13]॥

पाठभेद—

न० गु० (पद-सख्या, हरगौरी ३३) —१ नइ। २ फणीपति। ३ कओन। ४ आइत। ५ कर। ६ छारइ। ७ खाल। ८ बसहा। ९ बुढ। १० भर। ११ शिरे। १२ गौरी। १३ उदेश।

मि० म० (पद-सख्या ५९५)—२ फनीपति। ३ कओन। ४ याइत। १० भर। १२ गौरी।

शब्दार्थ—विकट=भयकर। जटाचय=जटा-समूह। लोकभय=लोगो का भय। उर=हृदय=छाती। फनिपति=वासुकि। दिगवास=दिगम्बर=नग्न। पथ=मार्ग।

सं० अ०—१२ गउरि।

भेटताह=मिलेंगे। उमत=उन्मत्त-सं०। छारे=क्षार-स० राख से। वर=अत्यन्त। अनल=आग। बर=बलती है। सुरसरि=गगा। विकलमति=हतबुद्धि। उदेस=(उद्देश्य—स०) खोज।

अर्थ—(गौरी पूछती है—जिनके माथे पर) भयकर जटा-समूह है, (जिन्हे) थोडा भी लोगो का भय नही है, (जिनके) हृदय पर वासुकि है (और जो) दिगम्बर है,

अरी मैया! ऐसे हमारे उन्मत्त (स्वामी) किस मार्ग पर जाते हुए मिलेंगे?

(गौरी और पहचान बतलाती है—जिन्होने) त्रिपुर का दहन किया, (अपने शरीर के) चर्म को भस्म से भर लिया, जो बसहा पर चढे (और) अत्यन्त बूढे है।

(जो) त्रिनयन है, हर (अन्तकाल मे सृष्टि के हरण करनेवाले) है (और जिनके) सिर पर गगा की जलधारा है।

विद्यापति कहते है—उस उन्मत्त की खोज मे गौरी हतबुद्धि है (अर्थात्—गौरी की बुद्धि ठिकाने नही है।)

श्रीमालव—

[१६]

यदि[1] तोरा नहि खन नहि अवकास[2]
परके[3] जतने[4] कके[5] देल बिसवास।
बिसवास दए[6] कके सुतह निचीत
चारि पहर राति भमत सुचीत॥
कर जोरि पैआ[7] परि कहबि विनती
बिसरि न हलबिए पुरुब पिरिती।
प्रथम पहर राति रभसें[8] बहला
दोसर पहर परिजन निंद[9] गेला॥
नींद तिरुपइतें भेलि[10] अधराति
तखने[11] उगल चाँदा[12] परम कुजाति।
भनइ[13] विद्यापति तखनुक भाव
जेहे पुनमत सेहे[14] जन पए[15] पाव॥

रा० त०, पृ० ६६

सं० अ०—१ जदि। ३ परके। ४ जतने। ५ कके। ७ पइआ। रभसे। १० तिरुपइते। १२ चन्दा।

पाठभेद—

न० गु० (पद-सख्या २७४)—१ जदि। २ अवकाश। ३ परके। ४ जतने। ५ कते। ६ कइ। ७ पइँया। ८ रभसे। ९ निन्द। १० निरुपइत भेलि। ११ तावत। १२ चन्दा। १३ भनहि। १४ सेह। १५ पय।

मि० मि० (पद-सख्या ३२४)—१ जदि। ३ परके। ४ जतन। ५ कते। ६ कइ। ७ पइँया। ८ रभसे। ९ निन्द। १० निरुपइत भेल। ११ तावत। १२ चन्दा। १४ से। १५ पय।

शब्दार्थ—खन=क्षण—स० समय। कके=क्यो। निचीत=निश्चिन्त। भमत=घूमता है। सुचीत=सुचित्त—स० सावधान होकर। कर=हाथ। पैंआ=पैर। परि=पडकर। बिसरि न हलबिए=भुला मत दे। रभसें=हास्य-विनोद। बहला=बीत गई। परिजन=बन्धु-बान्धव। निरुपइते=निरूपण करते।

अर्थ—(दूती पूछती है—) यदि तुम्हे समय नही था,—अवकाश नही था (तो) यत्नपूर्वक दूसरे (पराये पुरुष) को क्यो विश्वास दिया?

विश्वास देकर (फिर) क्यो निश्चिन्त होकर सो रही हो (कि वह) चारो पहर रात सावधान होकर (तुम्हारी खोज मे) घूमता है।

(सखी कहती है—तुम मेरी ओर से) हाथ जोडकर, पैर पडकर (मेरी) विनती कहना (कि इस अपराध के लिए) वे पहले की प्रीति को मत भुला दे।

पहली पहर रात तो हास्य-विनोद मे ही बीत गई। दूसरी पहर रात मे परिजन सोये।

(उनकी) नीद का निरूपण करते (टोह लेते) आधी रात हो आई। तभी अत्यन्त कुजाति (अछूत) चन्द्रमा उग गया।

विद्यापति उस समय का भाव कहते है कि वही आदमी (उस भाव को) पाता है, जो पुण्यवान् है।

विजयपुरमालव—

[१७]

कुण्डल[1] तिलकें[2] बिराज मुख शोभित सीदुर[3] बिन्दु।
हेमलता में[4] समारु विधि कवि रवि तारा इन्दु॥
इन्दुवदनि धनि नयन विशाला।[5]
कमलकलित जनि मधुकर माला॥
देखलि कलावति अपुरुब रमनी।
जिनए[6] आइलि सुरपुर गजगमनी॥

सं० अ०—२ तिलके। ३ सिन्दुर बिन्दु। ४ मे।

बेनी विमल बिराज तसु रस[7] कुसुमावलि हार।
स्याम[8] भुअङ्गम[9] देखि कहु किओ[10] काम परहार॥
करु परहार मदन सर बाला।
कुटिल कटाख वान कनिआरा[11]॥
कम्बु कण्ठ मृणाल[12] भुज बलित पयोधर भार[13]।
कनककलस रसे[14] पूरि रहु सञ्चित मदन भण्डार[15]॥
मदनभण्डार[16] पयोधर गोरा।
जनि उलटाओल कनयकचोरा[17]॥
स्यामा[18] सुलोचनि सुरति रति अपुरुव[19] भूषन भार[20]।
विद्यापति कविराज कह सुफलें[21] करथु अभिसार॥
करु अभिसार मदनसर बाला।
कुटिल कटाख बान कनिआरा॥

रा० त०, पृ० ६९-७०

पाठभेद—

न० गु० (पद-सख्या २५१)—१ कुन्तल। २ तिलक। ३ सीदुर। ४ मे। ६ जनि। ७ तनु वस। ८ श्याम। ९ भुजगम। १० कियो। ११ कनियाला। १३ हार। १४ रसे। १५ भँडार। १६ मदनभँडार। १७ कनक कटोरा। १८ ष्यामा। १९ अपरुब। २० सार। २१ सुफले। अन्त की दो पक्तियाँ नही है।

मि० म० (पद-सख्या ३०३)—२ तिलके। ३ सोभित सीदुर। ४ मे। ५ विसाला। १० कियो। ११ कनियारा। १२ मृनाल। १४ रसे। १५ भँडार। १७ कनक कटोरा। २१ सुफले। अन्त की दो पक्तियाँ नही हैं।

शब्दार्थ—तिलक=टिकली=विन्दिया। विराज=चमत्कृत। हेमलता=स्वर्णलता। समारु=सजाया। विधि=ब्रह्मा। कवि=शुक्र। रवि=सूर्य। इन्दु=चन्द्रमा। इन्दुवदनि=चन्द्रमुखी। कमलकलित=कमल से युक्त। जिनए=जीतने के लिए। सुरपुर=स्वर्ग। तसु=उसकी। रस=लस=दिखाई देता है। भुअगम (भुजंगम—सं०) सर्प। परहार=प्रहार (सं०)। कुटिल=वक्र। कटाख=कटाक्ष। कनिआरा=नुकीला। कम्बु=शंख। मृणाल=कमल का डंठल। वलित=युक्त। पयोधर=स्तन। कनककलस=

सं० अ०—१४ रसें। २१ सुफलें।

स्वर्ग-कलश। रसे=अमृत से। मदन=काम देव। कनयकचोरा=सोने का कटोरा। सुरति=(सूरत—अ०) सौन्दर्य। रति=कामदेव की पत्नी। सुफले=सफल होकर।

अर्थ—कुण्डल (और) बिन्दिया से चमत्कृत मुख सिन्दूर के बिन्दु से (और अधिक) शोभित हो रहा है। (जान पडता है, जैसे) विधाता ने स्वर्णलता मे शुक्र (कुण्डल), सूर्य (बिन्दिया), तारा (सिन्दूर-बिन्दु और) चन्द्रमा (मुख) को (एक साथ) सजाया है।

चन्द्रमुखी नायिका की बडी-बडी आँखे (ऐसी शोभती है,) जैसे—कमल से युक्त (अर्थात्—कमल पर बैठी हुई) भौरो की पक्ति हो। (मैंने) कलावती (चौसठ कलाओ से युक्त) अपूर्व रमणी को देखा। (देखने पर ऐसा भान हुआ, जैसे) स्वर्ग की गजगामिनी (अप्सरा ससार को) जीतने के लिए आई है।

उसकी (पीठ पर) सुन्दर चोटी विराज रही है, (जिसमे) नाना प्रकार के फूलो का हार दिखाई देता है। (जान पडता है, जैसे) कामदेव ने कृष्ण सर्प को देखकर (अपने पुष्पबाण का) प्रहार किया है।

बाला ने कुटिल कटाक्ष-रूपी नुकीले कामबाण का प्रहार किया।

कठ-रूपी शख (और) बाहु-रूपी मृणाल से युक्त (नायिका के) पीन पयोधर ऐसे जान पडते है, जैसे जुगाकर रखे हुए कामदेव के भण्डार-रूपी स्वर्ण-कलश को अमृत से भर दिया गया है।

(नायिका के) मदनभण्डार-रूपी गोरे स्तन (ऐसे जान पड़ते है,) जैसे सोने के कटोरे उलटाये गये है (अर्थात्—उलटकर रख दिये गये है।)

कविराज (कवियो मे श्रेष्ठ) विद्यापति कहते है कि षोडशी, सुलोचना, अपूर्व आभूषणो को धारण करनेवाली, रति के समान सुन्दरी (नायिका) सफलतापूर्वक अभिसार करे।

बाला ने कामदेव के प्रहार से (पीडित होकर, अपने बचाव के लिए) कुटिल कटाक्ष-रूपी बाण को कानतक खीचकर अभिसार किया (अर्थात्—चारो ओर कटाक्षपात करती हुई नायिका अपने प्रियतम के समीप चली।)

जोगिआ मालव—

[१८]

कतन वेदन मोहि देहे मदना।
हर नहि बाला मोजे जुवतिजना॥
नहि मोहि जटाजूट चिकुरक बेनी।
सिरँ सुरसरि नहि कुसुमक सेनी॥
चाँद तिलक मोहि नहि इन्दु छोटा।
ललाट पावक नहि सिन्दुरक फोटा॥

कण्ठ गरल नहि मृगमद चारु।
फनिपति मोराँ नहि मुकुताहारु॥
भनइ विद्यापति सुन देव कामा।
एक दोस अछ ओहि नामक वामा॥

रा० त०, पृ० ७०-७१

पाठभेद—

न० गु० (पद-सख्या ६९)—

कत न बेदन मोहि देसि मदना
हर नहि बला मोहि जुबति जना।
बिभूति भूषन नहि चान्दनक रेनू
बाघछाल नहि मोरा नेतक बसनू॥
नहि मोरा जटाभार चिकुरक बेनी
सुरसरि नहि मोरा कुसुमक सेनी।
चान्दनक बिन्दु मोरा नहि इन्दु गोटा
ललाट पावक नहि सिन्दुरक फोटा॥
नहि मोरा कालकूट मृगमद चारु
फनिपति नहि मोरा मुकुताहारु।

सं० अ०—

कतन वेदन मोहि देसि मदना
हर नहि बाला मोजे जुवतिजना।
विभूति भूषन नहि चान्दनक रेनू
बाघ छाल नहि मोरा नेतक बसनू॥
नहि मोरा जटाजूट चिकुरक बेनी
सिरें सुरसरि नहि कुसुमक सेनी।
चान्दनक विन्दु मोरा नहि इन्दु गोटा
ललाट पावक नहि सिन्दुरक फोटा॥
कण्ठ गरल नहि मृगमद चारु
फनिपति नहि मोरा मुकुता हारु।
भनइ विद्यापति सुन देव कामा
एक दोष अछ ओहि नामक वामा॥

भनइ विद्यापति सुन देव कामा
एक पए दूपन अछ ओहि नामक वामा ॥

मि० म० (पद-संख्या २४५, न० गु० से)—पाठभेद नहीं है।

शब्दार्थ—कतन=कितना। वेदन=दुःख। देहे=देते हो। भूपन=सजावट। चिकुरक=केश की। वेनी=वेणी–सं० चोटी। सेनी=श्रेणी—सं० समूह। रेनू=रेणु–सं० धूल। नेतक=नेत्रक—सं० रेशमी। वसनू=वसन—सं० वस्त्र। इन्दु=चन्द्रमा। फोटा=स्फोट—सं० बिन्दी। कालकूट=विष। मृगमद=कस्तूरी। चारु=सुन्दर। फनिपति=वासुकि। देव कामा=कामदेव।

अर्थ—हे कामदेव! मुझे कितना दुःख दे रहे हो? महादेव नहीं, मैं वाला युवती (ज्ञाताज्ञातयौवना नारी) हूँ।

(मेरे शरीर पर यह) भस्म की सजावट नहीं, चन्दन की धूल है। मेरा (यह परिधान) व्याघ्रचर्म नहीं, रेशमी वस्त्र है।

(मेरे माथे पर यह) जटाजूट नहीं, केश की वेणी है—गंगा नहीं, फूलों की श्रेणी है।

मेरे मस्तक पर (यह) चन्दन का विन्दु है, पूर्णचन्द्र नहीं; सिन्दूर की बिन्दी है, आग नहीं।

मेरे (कण्ठ में यह) विप नहीं, सुन्दर कस्तूरी है; वासुकि नहीं, मुक्ताहार है।

विद्यापति कहते हैं—हे कामदेव! सुनिए। (नायिका में) एक ही दोष है (कि) उस नाम का 'वाम' (शब्द इसमें भी) है। (अर्थात्—शिवजी का एक नाम 'वामदेव' है और स्त्रियाँ भी 'वामा' कहलाती है। सो, शिवजी के नाम के 'वाम' शब्द से स्त्रियाँ भी पुकारी जाती हैं,—यही एक दोष इसमें है।)

विशेष—'रागतरंगिणी' के पाठ में न० गु० (तरौनी-पदावली) के पाठ से दो पंक्तियाँ कम हैं। सम्भव है, पाठोद्धार के समय छूट गई हैं।

वितत्तासावरी—

[१९]

कामिनि करए सनाने
हेरितहिं हृदए हन पँचवाने।
चिकुर गरए झलधारा
मुखससि तरें जनि रोअए अधारा॥
तितल वसन तनु लागू
मुनिहुंक मानस मनमथ जागू।

कुचयुग चारु चकेवा
निअ कुल मिलत आनि कोने देवा॥
तें सङ्काओ भुजपासे
बान्धि धरिअ उड़ि जाएत अकाशे॥ इति विद्यापतेः॥

रा० त०, पृ० ७३

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अत, इसके लिए प्रथम भाग का १९८ सख्यक पद देखिए।

जोगिया आसावरी—

[२०]

कालि कहल पिआवे[1] साँझहि रे[2]
जाएब मोवे[3] मारुअ देश[4]।
मोवे[5] अभागलि[6] नहिं[7] जानल रे
सँगहिं[8] जैतहु[9] सेह[10] देश[11]॥
(मोर) हृदय बड़ दारुन[12] रे
पिआ[13] बिनु बिहरि न जाए[14]॥
एकहि[15] सयन[16] सखि सूतल[17] रे
अछल बाँलभ[18] निसि[19] मोर।
न जानल कति खन तेजि गेल रे
बिछुरल चकेवा जोर॥
सून[20] सेज[21] हिअ[22] सालए[23] रे
पिआवे[24] बिनु मरब[25] मोवे[26] आजि।
विनति करवों[27] सहिलोलिनि रे
मोहि देहे[28] अगिहर[29] साजि॥
विद्यापति कवि गाओल रे
आए[30] मिलत पिअ[31] तोर।

लखिमा देइ वर नागर रे
राए[32] सिवसिंह[33] नहिं[34] भोर॥

रा० त०, पृ० ७५

पाठभेद—

न० गु० (पद-संख्या ६२७)—१ पिया ए। ३ जायब मोय। ४ मारूअ देश। ५ मोये। ६ अभागली। ७ नहि। ८ सङ्ग। ९ जइतँओ। १०-११ योगिनी वेश। १२ दारून। १३ पिया १४ जाय। १५ एक। १६ शयन। १७ शुतल। १८ वालभु। १९ निशि। २० शून। २१ शेज। २२ हिय। २३ शाल्य-। २४ पिआए। २५ घर। २६ मोये। २७ करहु। २८ देह। २९ अगि हर। ३० आवि। ३१ पिय। ३२ राय। ३३ शिवसिंह। ३४ नहि।

मि० म० (पद-सख्या १५८)—१ पियाए। २ साँझहिर। ३ जाँएव मोये। ४ मारुअ देस। ५ मोवें। ७ नहि। ८ सङ्गहि। ९ जइतँहु। ११ देस। १३ पिया। १४ जाये। १८ वालभ। २२ हिय। २३ सालये। २४ पियाए। २६ मोयें। २७ करओ। ३१ पिय। ३३ सिवसिंघ। ३४ नहि।

शब्दार्थ—कालि=कल। पिआवे=प्रिय ने। मारुअ देश=मरु देश। दारुन=कठोर। विहरि=फटना। सयन=सेज। वालभ=वल्लभ=स्वामी। निसि=रात मे। कति खन=किस समय। चकेवा=चक्रवाक—स०। जोर=जोड़ा। आजि=आज। सहिलोलिनि=सखी। देहे=दो। अगिहर=चिता। भोर=मूर्ख।

अर्थ—स्वामी ने कल शाम को ही कहा (कि) मैं मरुदेश जाऊँगा।

मैं अभागिन जान नही पाई। (जान पाती तो मैं) योगिनी के वेश मे (उनके) साथ चली जाती।

मेरा हृदय बड़ा कठोर है, (जो) स्वामी के विना फट नही जाता।

हे सखी! मेरे स्वामी रात मे एक ही सेज पर (अर्थात्—मेरे साथ ही) सोये थे।

(किन्तु मैं) जान नही सकी (कि) किस समय (मुझे) त्यागकर (वे) चले गये! (हाय!) चक्रवाक का जोडा विछुड गया।

(यह) सूनी सेज (मेरे) हृदय को सालती है। स्वामी के विना आज मैं मर जाऊँगी।

हे सखी! (मैं) विनती करती हूँ कि मेरे लिए चिता रच दो।

कवि विद्यापति ने कहा कि तुम्हारे स्वामी आकर मिलेंगे (अर्थात्—अवश्य लौट आयेंगे।)

स० अ०—७ नहि। ८-९-१०-११ सङ्ग जइतहुँ योगिनि वेश। १८ वालभु। २७ करओ। ३४ नहि।

लखिमा देवी के स्वामी राजा शिवसिंह नागरिक हैं—मूर्ख नहीं हैं। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

तिरहुतासावरी—

[२१]

आज पुनिमाँ[1] तिथि जानि मोजें[2] ऐलिहुँ[3]
उचित तोहर अभिसार।
देह जोति ससि किरन[4] समाइति
के बिभिनाबए पार॥ध्रु०॥
सुन्दरि अपनहुँ[5] हृदय विचार[6]॥
तोहें जनु तिमिर हीत कए[7] मानह
आनन[8] तोर तिमिरारि।
सहज[9] विरोध दूरें[10] परिहर बनि[11]
चल उठि जतए[12] मुरारि॥
दूती - वचन हीत कए[13] मानल
चालक भेल पचवान[14]।
हरि अभिसार चललि वर कामिनि
विद्यापति कवि भान॥

रा० त०, पृ० ७६

पाठभेद—

न० गु० (पद-संख्या ३१०)—१ पुनिमा। २ मोये। ३ ऐलिहु। ४ ससि किरण। ५ अपनहु। ६ विचारि। ७ कय। ८ आनन। ९ सहस। १० दूर। ११ बनि। १२ जतय। १३ कय।

सं० अ०—१ पुनिमा। ३ अइलिहुं। ६ विचारि। १० दूर। ११ घनि। १४ पंचवान। ५वीं पंक्ति के बाद न० गु० की निम्नलिखित पंक्तियाँ आवश्यक प्रतीत होती हैं—

आखि पसारि जगत हम देखल
के जग तुअ सम नारि॥

मि० म० (पद-संख्या ३३५)—१ पुनिमा। २ मोये। ३ ऐलिहु। ५ अपनहु। ७ तोहें जनु तिमिर हीत कर। १० दूर। ११ धनि। १४ पँचवान।

विशेष—न० गु० और मि० म० के संस्करण मे 'सुन्दरि....विचार' के बाद निम्नलिखित दो पंक्तियाँ और है—

आँखि पसारि जगत हम देखलि
के जग तुअ सम नारि ॥

शब्दार्थ—पुनिमाँ=पूर्णिमा—सं०। ससि किरन=ज्योत्स्ना=चाँदनी। बिभिनाबए पार=अलग कर सकता है। तिमिर=अन्धकार। हीत=हित। आनन=(आनन—सं०) मुख। तिमिरारि=अन्धकार का वैरी। सहज=स्वाभाविक। परिहर=त्याग दो। चालक=प्रेरक। पचवान=कामदेव।

अर्थ—आज पूर्णिमा तिथि जानकर मैं आई हूँ। (आज) तुम्हारा अभिसार उचित होगा।

(कारण, तुम्हारी) देह की ज्योति चाँदनी मे पैठ जायगी (चाँदनी मे मिल जायगी, तो) कौन (तुम्हे) अलग कर सकता है? (अर्थात्—कौन तुम्हे अलग करके पहचान सकता है?)

हे सुन्दरी! मैने अपने हृदय मे विचार लिया, आँखें फैलाकर संसार को देख लिया। संसार मे तुम्हारे समान कौन नारी है? (अर्थात्—संसार मे तुम्हारी-जैसी दूसरी सुन्दरी नही है।)

(हे सुन्दरी!) तुम अन्धकार को (अपना) हित करके मत मानो। (कारण,) तुम्हारा मुख अन्धकार का वैरी है (अर्थात्—चन्द्र-स्वरूप है। इसलिए, अँधेरी रात मे अभिसार की बात मत सोचो।)

हे सुन्दरी! स्वाभाविक वैर को दूर ही छोड़ दो। जहाँ कृष्ण है, (वहाँ) उठकर चलो।

(नायिका ने) दूती के वचन को हित करके स्वीकार किया। (दूती के वचन को स्वीकार करते ही कृष्ण के समीप चलने के लिए) कामदेव प्रेरक हो गया।

कवि विद्यापति कहते है—(फिर तो) वरकामिनी कृष्ण के उद्देश्य से अभिसार को चली। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

सरसा आसावरी—

[२२]

चल चल सुन्दरि शुभ कर आज
ततमत करइते नहिं होए काज।
गुरुजन परिजन डर कर दूर
बिनु साहसें सिधि आस न पूर॥

विनु जपलें सिधि केओ नहि पाव
बिनु गेले घर निधि नहि आव।
ओ परवल्लभ तोहें पर नारि
हम पए मध्यँ दुहु दिस गारि॥
तोहँ हुन्हि दसरन ईं हम लाग
तत कए देखिअ जेहन तुअ भाग।
भनइ विद्यापति सुन वरनारि
जे अगिरिअ ताँ न गुनिअ गारि॥

रा० त०, पृ० ७८-७९

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अत., इसके लिए प्रथम भाग का ७२ संख्यक पद देखिए।

द्राविड़ी आसावरी—

[२३]

जौवन रूप अछल दिन चारि
से देखि आदर कएल मुरारि।
अब भेल झाल कुसुम सवे छूछ
वारि बिहुन सर केओ नहि पूछ॥
हमरिओ विनति कहव सखि रोए
सुपरुष वचन अफल नहि होए।
जावे रहए धन अपना हाथ
तावे से आदर कर संग साथ॥
धनिकक आदर सवतहु होए
निरधन वापुर पुछ नहि कोए।
भनइ विद्यापति राखव सील
जओ जग जिबिअ नवो निधि मील॥

रा० त०, पृ० ७९

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अत., इसके लिए प्रथम भाग का १३३ संख्यक पद देखिए।

शुद्धा मलारी—

[२४]

रोपलह पहु लहु लतिका आनि[1]
परतह जतने पटबितह पानि।
तैं[2] अरथित उपचित मेलि[3] से
तोहें बिसरलि[4] भल बोलत के॥
माधव बुझल तोहर अनुरोध
हेरितहु[5] कएलह[6] नयन निरोध।
एकहु भवन बसि दरसन बाध
किछु न बुझिअ पहु की[7] अपराध॥
सुपरुष[8] वचन सबहु[9] विधि फूर
अमरखें[10] विमरख न करिअ दूर।
भनइ विद्यापति एहु[11] रस जान
राए[12] सिवसिंह[13] लखिमा देइ रम(ा)न[14]॥

रा० त०, पृ० ८१

पाठभेद—

न० गु० (पद-सख्या ४७५)—२ तँइ। ३ उपजित भेल। ४ तोहे बिसरिल। ५ हेरितहुँ। ६ कयलह। ७ कि। ८ सुपुरुष। ९ सबहुँ। ११ एहो। १२ राए बुझ। १४ रमान।

मि० म० (पद-सख्या १५०)—१ तँइ। ४ तोहें बिसरलि। ८ सुपुरुस। ९ सबहुँ। १२ राए बुझ। १३ सिवसिंघ। १४ रमान।

शब्दार्थ—पहु=(प्रभु—स०) स्वामी। लहु=लघु=छोटी। परतह=(प्रत्यह—स०) प्रतिदिन। पटबितह=पटाते। तैं=तुमसे। अरथित=प्रार्थी=याचक। उपचित=लिप्त। अनुरोध=विचार। भल=भला। हेरितहु=देखते हुए भी। निरोध=रोक। फूर=(स्फुट—स०) सत्य। अमरखें=अमर्ष से=क्रोध से। विमरख=विमर्श=विचार।

अर्थ—हे प्रभो! (तुमने प्रेम-रूपी) छोटी लता लाकर रोप दी। (उचित था कि तुम) प्रतिदिनि (उसमे) पानी डालते! (किन्तु तुमने ऐसा नही किया।)

सं० अ०—१ आनि। २ तओ। ४ तोहें बिसरलि। ५ हेरितहुँ। ९ सबहुँ। १० अमरखें। १४ लखिमा दे रमान।

तुम याचक थे, (इसीलिए, तुमसे) वह लिप्त हो गई। किन्तु तुमने (उसे) भुला दिया। कौन (इसे) भला कहेगा ?

हे माधव ! (मैंने) तुम्हारा विचार जान लिया। देखते हुए भी (तुमने) आँखो का निरोध कर लिया। (अर्थात्—देखकर भी तुमने उपेक्षा कर दी।)

एक घर मे रहते हुए भी दर्शन मे बाधा हो रही है। (अर्थात्—एक साथ रहते हुए भी तुम्हारे दर्शन नही होते।) हे प्रभो ! कुछ समझ नही पाती कि (उसका) क्या अपराध है ?

सुपुरुष का वचन सब प्रकार से सत्य होता है। (अर्थात्—तुम सुपुरुष हो। तुम्हे अपने वचन से डिगना नही चाहिए।) क्रोध से विचार को दूर नही करना चाहिए।

विद्यापति कहते है—लखिमादेवी के रमण राजा शिवसिंह रूपनारायण इस रस को जानते हैं।

रम्या भीमपलासी—

[२५]

सुरुज सिन्दुर बिन्दु चान्दने लिहए इन्दु
तिथि कहि गेलि तिलके।
विपरित अभिसार बरिस अमिअ धार
अङ्कुश कएल ति(ल)के॥
हे माधव भेटलि पसाहनि बेरी।
आदर हरलक पुछि (ओ ने पुछलक
चतुर सखी ज)न मेरी॥
केतकि दल लए चम्पक फुल दय
कवरी फोएलक आनी।
मृगमद कुंकुमें नगरुचित लओलक
समए निवेद सयाँनी॥
भनइ विद्यापति सुनु वरजौवति
कुहु नीकट परमाने।
राजा शिवसिह रूपनराएन
लखिमा देवि रम(ा)ने॥

रा० त०, पृ० ८५

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' और 'तरौनी-पदावली' मे भी है। अत, इसके लिए प्रथम भाग का २४१ सख्यक पद देखिए।

धन्या भीमपलासी—

[२६]

नवजौवन[1] अभिरामा।
जेत[2] देखल तत कहि[3] न पारिअ[4]
छओ[5] अनुपम[6] एक ठामा[7]॥
हरिन इन्दु अरविन्द करिनि[8] हिम[9]
पिक बूझल[10] अनुमानी[11]॥
नयन बरन[12] परिमल छवि[13] तनुरुचि
अओ अति सुललित वानी॥
कुचयुग[14] उपर[15] चिकुर फुजि पसरल
ता अरुझाएल[16] हारा॥
जनि सुमेरु ऊपर[17] मिलि ऊगल
चान्द[18] बिहुनि सबे[19] तारा॥
भनइ विद्यापति सुनु[20] वरजौवति[21]
आन[22] न पावए कोइ[23]॥
कंसदलन नाराएन[24] सुन्दर
तासु[25] रमनि[26] पए होइ[27]॥

रा० त०, पृ० ८५-८६

सं० अ०—
कि आरे, नवजउवन अभिरामा।
जत देखल तत कहि न पारिआ
छओ अनुपम एक ठामा॥
हरिन इन्दु अरविन्द करिनि हिम
पिक बूझल अनुमानी।
नअन वअन परिमल गति तनुरुचि
अओ अति सुललित वानी॥
कुचयुग उपर चिकुर फुजि पसरल
ता अरुझाएल हारा।

पाठभेद—

न० गु० (पद-सख्या १४)—१ कि आरे नव जौवन। २ जत। ३ कहहि। ४ पारिअ। ५ छओ। ६ अनुपम। ७ ठामा। ८ करिणि। १० बूझ। ११ अनुमानी। १२ बयन। १३ गति। १४ कुचजुग। १५ पर। १६ अरुझायल। १७ उपर। १८ चाँद। १९ बिहुन सबे। २०-२१ से वरनागरि। २२ आन। २३ कोई। २४ नारायन। २५ तसु। २६ रङ्गिनी। २७ होई। और, भणिता से पहले निम्नलिखित पक्तियाँ है—

लोल कंपोल ललित माल[1] कुण्डल
अधर बिम्ब अध जाई।
भौंह[2] भमर[3] नासा पुट सुन्दर
से देखि कीर लजाई॥

मि० म० (पद-सख्या २१४)—१ कि आरे[1] नव जौवन। २ जत। ३ कहए। ४ पारिअ। ५ छओ। ६ अनुपम। ७ ठामा। ९ हेम। ११ अनुमानी। १२ बयन। १३ गति। १४ कुचजुग। १५ पर। १६ अरुझायल। १८ चाँद। १९ बिहिन सब। २०-२१ से वरनागरि। २२ आन। २३ कोई। २४ नारायन। २५ तसु। २६ रङ्गिनी। २७ होई। भणिता से पहले इसमे भी उपर्युक्त पक्तियाँ है, जिनका पाठभेद —

१ मनि। २ भौंह। ३ भ्रमर।

शब्दार्थ—अभिरामा=सुन्दर। जत=जितना। तत=उतना। इन्दु=चन्द्रमा। अरविन्द=कमल। करिनि=हस्तिनी। हिम=पाला (गोराई से तात्पर्य है)। पिक=कोकिल। बयन=(वदन—सं०) मुख। परिमल=सुगन्ध। तनुरुचि=शरीर की गोराई। बानी=(वाणी—स०) वचन। चिकुर=केश। फुजि=खुलकर। पसरल=फैल गये। ता=उसमे। अरुझाएल=उलझ गया। बिहुनि=(विहीन—सं०) विना। लोल=डोलते थे। कपोल=गाल। ललित=सुन्दर। अधर=ओष्ठ। अध=नीचे। कीर=सुग्गा।

जनि सुमेरु ऊपर मिलि ऊगल
चान्द बिहुनि सबे तारा॥
लोल कपोल ललित मणि-कुण्डल
अधर बिम्ब अध जाई।
भौंह भमर नासापुट सुन्दर
से देखि कीर लजाई॥
भनइ विद्यापति सुनु वरजउवति
जान न पावए कोई।
कंसदलन नाराअेन सुन्दर
तसु रङ्गिनि पए होई॥

अर्थ—अहा! (नायिका का) कितना सुन्दर नवयौवन था? जितना देखा, उतना कह नही सकता। (कारण), छह अनुपम (पदार्थ) एक स्थान मे थे। (अर्थात्—दो-एक रहते, तो वर्णन भी किया जाता! छह का वर्णन करना कठिन है।)

(छह अनुपम कौन? इसी का उत्तर कवि देता है—) अनुमान से समझा कि हरिण, चन्द्रमा, कमल, हस्तिनी, पाला (और) कोकिल (एक स्थान मे थे।)

(कवि पुन अनुमान का कारण बतलाता है—नायिका की) आँख, मुँह, (उसके शरीर की) सुगन्ध, (उसकी) गति, (उसके) शरीर का लावण्य और (उसका) सुन्दर वचन! (अर्थात्—इन्ही छहो से अनुमान किया कि उपर्युक्त छह अनुपम पदार्थ एक स्थान मे है।)

(नायिका के) दोनो स्तनो के ऊपर केश खुलकर फैल गये थे (और) उनमे हार उलझ गया था।

(जान पडता था,) जैसे सुमेरु के ऊपर, विना चन्द्रमा के, सभी तारे मिलकर उगे हों।

(उसके) गालो पर सुन्दर मणि-कुण्डल डोलते थे। (उसके) ओष्ठ से बिम्बफल नीचे जा रहा था (दब रहा था।)

(उसकी) भौहे भौरे (के समान थी।) (उसकी) नासिका सुन्दर थी, जिसे देखकर सुग्गा लजा रहा था।

विद्यापति कहते है—अरी वरयुवती! सुनो (ऐसी शोभा) कोई दूसरी नही पा सकती है। कस को मारनेवाले नारायण (सबसे) सुन्दर है। (अतः, यह) उन्ही की रमणी हो सकती है। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

गोपीवल्लभ—

[२७]

गमने गमाउलि गरिमा
अगमने जिवन सन्देह।
दिने[१] दिने[२] तनु अवसन भेल
हिम कमलिनि सम नेह॥
अबहु न सुमिरह[३] मधुरिपु
कि करति सुन्दरि नाम[४]।
(बिनु दोषे[५])मोहि[६] बिसरलह[७]
कहिनि[८] रहु[९] ठाम[१०]॥
एक दिस कान्ह[११] अओका[१२] दिस[१३]
सुवितत वंश[१४] विशाला[१५]।

दुइ पथ चढ़लि नितम्बिनि
संसमे[17] पड़ु[15] कुलबाला ॥
पाँचवान[16] अतिआतए[17]
धैरजे[18] कर[19] पगु[20] थीरे[21] ।
आँचर[22] मुँह[23] दए काँदए
झाँषए[24] नयन बह नीरे ॥ इति विद्यापतेः ॥

रा० त०, पृ०८७

पाठभेद—

न० गु० (पद-संख्या ३०४)—१-२ दिने दिने । ३ सुमरह । ४ विनु दोष मोहि । ५ विसरलहुँ । ६ कहिनी । ७ रहति । ८ वहु ठाम । ९ कान्हु । १० अओका । ११ दिस । १२ वस । १३ विसाला । १४ ससअ । १५ पड़ु । १८ धैरजे । १९ करु । २० मन । २२ आँचरे । २३ मुह । २४ झाँख ।

सिं० म० (पद-संख्या ४४८)—१-२ दिने दिने । ३ सुमरह । ६ कहिनी । ७ बहु ठाम । १०-११ अओका दिस । १२ वस । १३ विसाला । १४ ससअ । १६ पँचवान । १८ वैरजे । २० पशु । २१ थिरे । २२ आँचरे । २३ मुह । २४ झाँखए ।

शब्दार्थ—गरिमा=गौरव । अवसन—(अवसन्न-स०) खिन्न । हिम=पाला । मधुरिपु=कृष्ण । कहिनी=कहानी । ठाम=स्थान । अओकाँ दिसैं=दूसरी ओर । सुवितत=फैला हुआ । नितम्बिनि=नितम्बवाली=नायिका । पाँचवान=(पञ्चवाण—स०) कामदेव । अतिआतए=अरिआतए=आगे को विदा कर रहा है । धैरजे=साहस से । पगु=पैर । थीरे=स्थिर । काँदए=रोती है । झाँषए=झँखती है ।

अर्थ—(हे कृष्ण! तुम्हारे समीप) आने से (वह अपना) गौरव गँवायगी (और) नही आने से (उसके) जीवन मे सन्देह है ।

दिन-दिन (क्रमश: उसका) शरीर खिन्न हो गया । (जान पडता है, जैसे) पाला (और) कमलिनी का स्नेह हो । (अर्थात्—जैसे पाला से कमलिनी गलती है, वैसे ही वह तुमसे प्रेम करके गल गई ।)

हे कृष्ण ! (यदि) अब भी (तुम उसका) स्मरण नही करते हो (तो वह) 'सुन्दरी' नाम से क्या करेगी ? (अर्थात्—यदि अब भी तुम उसका स्मरण नही करते हो, तो वह 'सुन्दरी' कहलाकर क्या करेगी ?)

(दूती नायिका का सन्देश कहती है—) विना दोष के मुझे भुला दिया ! (समय बीत जायगा; किन्तु) कहानी (अपने) स्थान पर (अर्थात्—ससार मे) रह जायगी ।

सं० अ०—१-२ दिने दिने । ४ बिनु दोखें मोहि । ६ कहिनी । १७ अडिआतए । १८ धैरजें ।

(दूती पुन नायिका की दशा का वर्णन करती है कि नायिका के) एक ओर कृष्ण हैं (और) दूसरी ओर फैला हुआ विशाल वश है।

नितम्बिनी कुलबाला दो मार्ग पर चढ चुकी है। (इसीलिए, वह) सशय मे आ पड़ी है। (अर्थात्—जैसे कोई अनजान आदमी ऐसे स्थान पर पहुँच जाय, जहाँ से दो मार्ग दो ओर जाते हैं, तो जिस प्रकार वह सशय मे पड जाता है कि किस मार्ग से जाना चाहिए और किस मार्ग से नही, उसी प्रकार कुलबाला समझ नही पा रही है कि तुम्हारे समीप आकर वह अपने विशाल वश को छोड़ दे अथवा नही आकर अपने प्राण से हाथ धो बैठे।)

कामदेव (उसे) आगे को विदा कर रहा है। (अर्थात्—तुम्हारे समीप आने को प्रेरित कर रहा है, किन्तु वह) साहस से पैर को स्थिर किये है।

(वह) आँचल मे मुँह देकर (आँचल से मुँह ढँककर) रोती है—झँखती है। (उसकी) आँखो से आँसू बह रहे है। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

देशी सारंगी—

[२८

विदिता देवी विदिता हो
अविरल केस सोहन्ती।
एका[१] एक[२] सहस को धारिनि
जनि[३] रंगा पुर[४] नटी[५]॥
कज्जल रूप[६] तुअ काली कहिअ[७]
उज्जल[८] रूप तुअ वानी[९]।
रविमण्डल परचण्डा कहिअए
गङ्गा कहिए पानी॥
ब्रह्मा घर ब्रह्मानी कहिए
हरघर कहिअए[१०] गोरी[११]।
नारायन[१२] घर कमला कहिए
के जान उत्पति तोरी॥
विद्यापति कविवरें[१३] एहो गाओल
जाचक जन के गती।

हाँसिनि[14] देइपति गरुडनरायण[15]
देवसिंह नरपती॥

रा० त०, पृ० ८९-९०

पाठभेद—

न० गु० (पद-संख्या, हरगौरी-१)—१-२ एकानेक। ३ जरि। ४-५ पुरन्ती। ६ रूप। ७ कहिअओ। ८ उज्ज्वल। १० कहिए। ११ गौरी। १३ कविवर। १४ हानिनि। १५ गरुड़नरायन।

मि० म० (पद-संख्या १)—१-२ एकाएक। ९ वाणी। १२ नारायण। १३ कविवरे। १४ हासिनि।

शब्दार्थ—विदिता=विख्यात। अविरल=सघन। सोहन्ती=शोभित। एकाएक=अचानक=हठात्। जनि=(जन—स्त्री०) नारी। रङ्गा=रङ्गस्थल। पूरन्ती=(पूरयन्ती—सं०) पूर्ण करनेवाली। कज्जल=काला। वानी=(वाणी—सं०) सरस्वती। गोरी=गौरी। कमला=लक्ष्मी। तोरी=तुम्हारी। गती=(गति—सं०) अवलम्बन।

अर्थ—हे विख्याता देवी! (तुम सर्वत्र) विख्यात हो। (तुम) सघन केश से शोभित हो।

सं० अ०—

विदिता देवी विदिता हो
अविरल केस सोहन्ती।
एकाएक सहस को धारिनि—
जनि रंगा पूरन्ती॥
कज्जल रूप तुअ काली कहिअए
उज्जल रूप तुअ वानी।
रविमण्डल परचण्डा कहिअए
गंगा कहिअए पानी॥
ब्रह्मा घर ब्रह्मानी कहिअए
हर घर कहिअए गोरी।
नारायेन घर कमला कहिअए
के जान उतपति तोरी॥
विद्यापति कविवरे एहो गाओल
जाचक जन के गती।
हाँसिनि देइ पति गरुडनराएन
देवसिंह नरपती॥

(तुम) हठात् हजारो को धारण करनेवाली (और इस) रंगस्थल (संसार को) पूर्ण करनेवाली नारी हो।

तुम्हारे काले रूप को काली कहते है और उज्ज्वल रूप को सरस्वती। (तुम्हारे ही) प्रचण्ड (रूप) को सूर्यमण्डल कहते है (और) जल (-रूप) को गगा।

(तुम्हारे ही रूप को) ब्रह्मा के घर मे ब्रह्माणी कहते है (और) शिव के घर मे गौरी। तुम्हारे (ही रूप को) विष्णु के घर मे लक्ष्मी कहते है। कौन तुम्हारी उत्पत्ति जानता है?

कविवर विद्यापति कहते है (कि) हाँसिनी देवी के पति गरुडनारायण महाराज देवसिंह याचको के अवलम्ब है। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

अभिरामा सारंगी—

[२९]

नमित अलकें बेढ़ला मुख कमल सोभे।
राहुक बाहु परसला शशिमण्डल लोभे॥
मदन सरें मुरुछली चिर चेत न बाला।
देखलि से धनि हे बासि मालति माला॥
कलस कुच लोटाइली घन सामरि बेनी।
कनय पबय सूतली जनि कारि नागिनी॥
भने विद्यापति भाविनी थिर थाक न मने।
राजाहुँ सिवसिंह रूपनराएन लखिमादेइ रमने॥

रा० त०, पृ० ९०

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अत, इसके लिए प्रथम भाग का २०१ सख्यक पद देखिए।

अनूपा सारङ्गी—

[३०]

तोरए मोञे गेलिहुँ फूल
मोती मानिके तूल।
साजनि साजी[4] अछोरसि मोरि
गरुबि गरुबि आरति तोरि
डिठि[5] देखइतें दिवस चोरि॥

सं० अ०—४ साजलि साजी। ५ डीठि देखइतें।

एत कन्हाइ परधन लोभ
जे नहि लुबुध सेहे पए सोभ।
निकुञ्ज केर समाज
इथि[6] नही मुख लाज।।
ढाँकिबो[7] बे[8] न[9] अपजस रासि
से करे[10] कान्हु[11] जे[12] न[13] लजासि
जखने नागर नगर जासि।
पीन पयोधर भार
मदन राए भण्डार[14]।।
रतने जडिलो ता हरि[15] माथ
मलिन होए[16] तन[17] देहे हाथ
बड़ से कठिन हमर नाथ[18]।
कवि[19] भन[20] कण्ठहार
रस[21] एतए के पार।।
सिरि शिवसिंह[22] जानए[23] तन्त
रतन सन लखिमा[24] कन्त
सब[25] कलारसँ[26] जे गुनमन्त।।

रा० त०, पृ० ९१-९२

पाठभेद —

न० गु० (पद-सख्या १२२)—१ मोवे। २ गेलहु। ४ साजि। ५ दिठि देखइते।
६ इथी। ७-८-९ ढाकि रहे न। १० करए। ११ कान्ह। १२-१३ जेन। १४ भडार। १५ ताहेरि।
१६-१७ हो तन। १८ यह पक्ति नही है। १९-२० भन कवि। २१ वस। २२ सिवसिंह।
२३ जानै। २४ लखीमा। २५ सकल। २६ कलारस।

मि० म० (पद-सख्या ४८)—१ मोवे। २ गेलहु। ३ माणिके। ४ साजि। ५ दिठि
देखइत। ६ इथी। ७-८-९ ढाँकि वोवे न। १२-१३ जेन। २१ वस। २६ कलारस। २७ गुण-
मन्त।

सं० अ०—६ इथीं। ८ रे। १५ ताहेरि। १९-२० भन कवि कण्ठहार। २१ बस।

शब्दार्थ—तोरए=तोडने के लिए। तूल=तुल्य। साजलि=सजी-सजाई। साजी=डलिया। अछोरसि=छीनता है। गरुबि=(गुर्वी—स०) बडी। आरति=(आर्त्ति—स०) पीडा=कामपीडा। डीठि=दृष्टि। दिवस=दिन। एत=इतना। लुबुध=लोभ करते है। निकुञ्ज=लतागृह। समाज=सग। इथि=इसीलिए। ढँकिबो=छिपेगा। रासि=ढेर। से=वह। करे=करना चाहिए। जे=जिससे। लजासि=लजाओ। जखने= जिस समय। मदन राए=कामदेव। जडिलो=जडा हुआ। ताहरि=उसका। बस=निवास। एतए=यहाँ। के=कौन। पार=सकता है। तन्त=(तन्त्र—स०) तत्त्व।

अर्थ—मैं मोती (और) माणिक्य के तुल्य फूलो को तोडने (आ) गई।

(हे कृष्ण!) मेरी सजी-सजाई डलिया छीनते हो? (हाय!) तुम्हारी कामपीडा बहुत बडी है! (अरे!) आँख देखते (आँखो के सामने) दिन मे चोरी?

हे कृष्ण! दूसरे के धन का इतना लोभ? (अरे!) जो लोभ नही करता है, वही सोहता है। (अर्थात्—लोभी को कोई भला नही कहता है।)

लतागृह का सग है। इसीलिए (तुम्हारे) मुख मे लज्जा नही है। (अर्थात्—मुझे अकेली पाकर तुम लजाते नही हो।)

हे नागर! जिस समय (तुम) नगर मे जाओगे, (उस समय तुम्हारा यह) अपयश का ढेर (छिपाये) नही छिपेगा। (इसलिए तुम्हे) वही करना चाहिए, जिससे लजाना नही पडे।

(मेरा यह) पीन पयोधर का भार कामदेव का भाण्डार है।

उसका माथा रत्न से जडा हुआ है। (तुम इसपर) हाथ मत दो। (कारण, तुम्हारे हाथ देने से यह) मलिन हो जायगा। मेरे स्वामी बडे कठोर है। (वे इसे क्षमा नही करेंगे।)

कवि-कण्ठहार विद्यापति कहते है—(ऐसी परिस्थिति मे) यहाँ कौन बस सकता है?

सब कलारसो में जो गुणवान् है (अर्थात्—जो सभी कलारसो के गुण जाननेवाले हैं, सो) रत्न के समान लखिमा देवी के स्वामी श्रीशिवसिंह (इसके) तत्त्व को जानते है। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

सूहव—

[३१]

पिआ[१] परवास[२] आस तुअ पासहिं[३]
तें कि[४] बोलह जदि[५] आन[६]।
जे पतिपालक से भेल पावक
इथी (क)[७] कि बोलत आन[८]॥ध्रु०॥

सं० अ०—४ तजे कि। ५ सखि।

साजनि अघट न[9] घटाबह मोहि।
पहिलहिं आनि[10] पानि पिअतमे[11] गहि
करें[12] धरि सोंपलहुँ[13] तोहि॥
कुलटा भए जदि पेम बढ़ाइअ[14]
ते[15] जीवने की काज।
तिला एक रंग[16] रभस सुख पाओब
रहत जनम भरि लाज॥
कुलकामिनि भए निज[17] पिअ[18] बिलसए[19]
अपथें[20] कतहु नहि जाइ।
की मालति[21] मधुकर उपभोगए[22]
किम्बा[23] लताँहि[24] सुखाइ॥
विद्यापति कह कुल[25] रखले[26] रह
दूति वचने नहि काज।
राजा सिवसिंह[27] रूपनराएन[28]
लखिमा देवि[29] समाज॥

रा० त०, पृ० ९२-९३

पाठभेद—

न० गु० (पद-संख्या २१५)—१ पिय। २ परदेस। ३ पासहि। ४ पाठाभाव। ५ सखि। ६ आन। ७ (क) इथी। ८ आन। ९ अघटन। १० पहिलहि आनि। ११ पियतमे। १२ करे। १३ सोप-लिहु। १४ बढ़ाविअ। १५ ते। १६ रङ्ग। १७ निअ। १८ पिय। १९ बिलसे। २० अपथे। २१ मालती। २२ उपमोगय। २३ किंवा। २४ लताहि। २५ कूल। २६ रखले। २८ रूपनरायन। २९ देइ।

मि० म० (पद-संख्या ४६)—१ पिया। ३ पासहि। ४ तें कि। ६ आन। ७(क) इथी। ८ आन। ९ अघटन। १० पहिलहि आनि। ११ पियतमे। १२ करे। १३ सोपल्हि। १५ तें। १६ रङ्ग। १८ पिय। २० अपथे। २१ मालती। २४ लताहि। २६ रखले। २७ सिवसिंघ।

शब्दार्थ—परवास=(प्रवास—स०) परदेश का वास। तुअ=तुम्हारे। तें=इसी से। पारक=(पारक्य—स०) पराया। इथी=इसीलिए। आन=अन्यथा। अघट=न होने योग्य=

सं० अ०—१० पहिलहिं आनि। ११ पिअतमे। १२ करें। १३ सोंपलन्हि। १५ ते। २० अपथें। २३ किंवा। २४ लतासिंह। २६ रखलें। २८ रूपनराजेन।

अनुचित। घटावह=घटन कराओ=प्रवृत्त कराओ। आनि=लाकर। पानि=(पाणि—स०) हाथ। कुलटा=व्यभिचारिणी। भए=होकर। तेँ=उस। तिला एक=क्षण-भर। रग-रमस=कामक्रीडा। अपथे=बुरे मार्ग मे। समाज=सङ्ग।

हे सखी! स्वामी प्रवास मे है। (अब) समीप मे तुम्हारी ही आशा है। क्या इसीलिए (तुम) अन्यथा बोलती हो? (अर्थात्—तुम्हे जो नही बोलना चाहिए, वह बोलती हो।)

जो प्रतिपालन करनेवाला है, वह पराया हो गया। क्या इसीलिए (दूसरे) अन्यथा बोलेंगे?

हे सखी! मुझको अनुचित (कार्य) मे मत प्रवृत्त कराओ। स्वामी ने प्रारम्भ मे (प्रवास मे जाने से पहले) ही हाथ पकडकर, (मुझे) लाकर, (तुम्हारा) हाथ धरकर तुम्हे सौप दिया। (अर्थात्—स्वामी ने जाने से पहले विश्वास करके तुम्हारे हाथो मे मुझे सौप दिया। किन्तु, तुम ऐसी हो कि मुझे कुमार्ग पर चलाना चाहती हो?)

व्यभिचारिणी होकर यदि (किसी से) प्रेम बढाया जाय (तो) उस जीवन से क्या काम?

क्षण-भर कामक्रीडा का सुख पाऊँगी, (किन्तु) जन्म-भर लज्जा रहेगी।

कुलकामिनी होकर अपने स्वामी के साथ विलास करना चाहिए। कही कुमार्ग मे नही जाना चाहिए।

क्या मालती भौरे का उपभोग करती है अथवा लता मे ही सूख जाती है।

विद्यापति कहते है (कि) कुल रखने से (ही) रहता है। दूती के कहने से काम नही (करना चाहिए।)

(जैसे) राजा शिवसिंह रूपनारायण (और) लखिमा देवी का सङ्ग है। (अर्थात्—जैसा उन दोनो का पवित्र प्रेम है, वैसा ही पवित्र प्रेम सर्वत्र पति-पत्नी मे होना चाहिए। अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

शुद्ध सूहब—

[३२]

सरदक ससधर सम मुखमण्डल
काजे[१] झँपावह[२] वासे।
अलपओ[३] हास सुधारस बरिसओ
छाडओ नमित्र[४] पिआसे॥ध्रु०॥
कि[५] आरे[६],
मानिनि अपनहुँ[७] मने अनुमान[८]।

सं० अ०—१ काजि। ४ नमन।

रुसैतें[9] आनहुँ[10] बोलब[11] अगेआन[12] ॥
हाटक घटन सिरीफल सुन्दर
कुचयुग कोटि[13] करु आवे ।
पानि परस रस अनुभव[14] सुन्दरि
न कर[15] मनोरथ बाधे ॥
नागरि अङ्ग विभङ्गक आगरि
विद्यापति कवि भाने ।
राजा सिवसिंह रूपनराएन[16]
लखिमा देवि रम (I) ने ॥ रा० त०, पृ० ९३

पाठभेद—

न० गु० (पद-संख्या ३५४)—१ काँइ। २ झपावसि। ३ अलपेओ। ४ नयन। ५-६ पाठाभाव। ७ अपनेहु। ८ अनुमान। ९ रुसइते। १० आनहु। ११ वोल। १२ अगेआन। १३ कुचजुग कुटि। १४ अनुभव। १५ करु। अन्त की चार पक्तियो के स्थान मे निम्न-लिखित चार पक्तियाँ हैं—

भनइ विद्यापति सुन वरजौवति
विभव दया थिक सारा।
माह छाह ककरो नाहि भावय
ग्रीषम प्रान पियारा॥

मि० म० (पद-सख्या १३३)—१ काँइ। २ झपावसि। ३ अलपेओ। ४ नयन। ५-६ पाठाभाव। ७ अपनेहु। ८ अनुमान। ९ रुसइते। १० आनहु। ११ वोल। १२ अगेआन। १३ कुचजुग कुटि। १४ अनुभव। १५ करु। अन्त की चार पक्तियो के स्थान मे उपर्युक्त चार पक्तियाँ हैं।

शब्दार्थ—ससधर=चन्द्रमा। काले=क्यों। वासे=कपडे से। अलपओ=थोडा भी। रुसैतें=रूठने से। आनहुँ=दूसरे भी। अनुमान=अन्दाज करो। हाटक=सुवर्ण। घटन=निर्माण। हाटक-घटन=(व० व्रीहि) सुवर्ण-निर्मित। सिरीफल=बेल। कोटि=कुटि=तोडकर=फोड़-कर। पानि=(पाणि—सं०) हाथ। परस=स्पर्श—सं०। रस=स्वाद। अङ्ग-विभङ्गक=अङ्ग-भङ्गी की=मोहक अग-संचालन की। आगरि=खान।

अर्थ—शरद् (ऋतु) के चन्द्रमा के समान (अपने) मुखमण्डल को कपड़े से क्यों ढकती हो? (तुम) थोडा भी हँसकर अमृत की वर्षा कर दो (कि मेरी) आँखें प्यास छोड़ दें। (अर्थात्—तुम थोडा भी हँस दो कि मेरी आँखें तृप्त हो जायँ।)

सं० अ०— ९ रुसइते। १३ कुचयुग काटि। १६ रूपनरायेन।

अरी मानिनी ! अपने मन मे भी अन्दाज करो। रूठने से दूसरे भी (तुम्हे) अज्ञान कहेंगे।

(मालूम होता है, जैसे) सुवर्ण-निर्मित सुन्दर बेल को काटकर, आधा करके (अर्थात्—दो भागो मे बाँटकर, तुम्हारे) दोनो स्तन (बनाये गये है।)

हे सुन्दरी ! कर-स्पर्श का स्वाद अनुभव करो। मनोरथ मे बाधा मत डालो।

कवि विद्यापति कहते है—नागरी मोहक अग-सचालन की खान है। (अर्थात्—नागरी मोहक अंग-संचालन मे चतुर है।)

लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह रूपनारायण (इसे जानते है)। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

काम सूहब—

[३३]

वदन चाँद[1] तोर नयन चकोर मोर
रूप अमिअ रस पीबे।
अधर मधुरि फुल पिअ मधुकर तुल
मधु बिनु कति खन जीबे ॥ध्रु०॥
हे[2] मानिनि मन तोर गढ़ल पसाने।
अपने रभसें[3] हसि[4] किछुओ उतर देसि
सुषे[5] जाओ निसि अवसाने॥
निअ मने[6] न गुनसि पर बोल न सुनसि
न (बुझसि) छैलरि[7] बानी।
अपन[8] अपन कजा कहेतें[9] परम लजा
अरथित आदर हानी॥
भनइ विद्यापति सुनु वरजौवति[10]
सबे खन न करिअ माने।
राजा सिवसिंह रूपनराएन[11]
लखिमा देवि रम(ा) ने॥

रा० त०, पृ० ९४

सं० अ०—१ चान्द। २ पाठाभाव। ३ रभसें। ४ हंसि। ५ सुखें। ६ मने। ७ छइलेंरि। ८ अपने। ९ कहइनें। १० वरजउवतिं। ११ रूपनराजेन।

पाठभेद—

न० गु० (पद-संख्या ३५५)—

वदन चाँद तोर नयन चकोर मोर
रूप अमिय[1] रस पीवे।
अधर मधुरि फुल पिया मधुकर तुल
विनु मधु कत खन जीवे॥
मानिनि मन तोर गढल पसाने।
कके न रभसे हसि किछु न उतर देसि
सुखे जाओ निसि अवसाने॥
पर मुखे न सुनसि निअ मने न गुनसि[2]
न बुझसि छाइलरि[3] वानी।
अपन अपन काज कहइते[4] अधिक लाज
अरथित आदर हानी॥
कवि भने[5] विद्यापति अरेरे सुन[6] जुवति
नेह नुतन भेले माने।
लखिमा देवि[7] पति सिवसिंह[8] नरपति
रूपनरायन जाने॥

मि० म० (पद-संख्या १२१, न० गु० से)—१ अमिअ। २ गुणसि। ३ छइलरी। ४ कहइत। ५ भन। ६ सुनु। ७ देइ। ८ सिवसिंघ।

शब्दार्थ—वदन=मुख। अमिअ=अमृत—स०। रूप=सौन्दर्य। मन=हृदय। पसाने=(पाषाण—स०) पत्थर से। रभसें=प्रेमोत्साह से=खुशी से। निसि अवसाने=रात्रि का अन्त। गुनसि=विचार करती हो। छैलरि=छैले की। वानी=(वाणी—स०) वात। कजा=कार्य। लजा=लज्जा। अरथित=याचना से। खन=क्षण—स०।

अर्थ—तुम्हारा मुख चन्द्रमा (के समान) है और मेरी आँखें चकोर (के समान)। (रूठने पर भी वे तुम्हारे) सौन्दर्य-रूपी अमृत-रस को पी रही है।

(तुम्हारा) अधर गुलदुपहरिया (के समान) है (और) स्वामी भमर (के समान)। (रूठने पर) विना मधु के (वे) कबतक जीयेंगे? (अर्थात्—तुम्हारे रूठने पर भी मेरी आँखें तुम्हें देखकर तृप्त हो जायेंगी; किन्तु तुम्हारे अधरामृत का पान किये विना मैं कबतक जीता रहूँगा?)

हे मानिनी! तुम्हारा हृदय पत्थर से गढा गया है। अपनी खुशी से हँसकर कुछ भी उत्तर दो (अर्थात्—थोड़ा भी हँस-बोल लो, जिससे कि) सुख से रात्रि का अन्त हो जाय। (अर्थात्—जाने के समय भी तो मान छोड़कर हँस-बोल लो।)

अपने मन मे विचार नही करती हो, दूसरे का कहना नही सुनती हो (और) छैले की बात भी नही समझती हो।

स्वय अपना काम कहते बड़ी लज्जा होती है (और) याचना (करने) से आदर की हानि होती है।

विद्यापति कहते है—अरी वरयुवती! सुनो। सभी समय मे मान नही करना चाहिए। (अर्थात्—समय देखकर मान करना चाहिए। ऐसा नही कि जब मन मे आया, मान कर लिया।) लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह रूपनारायण (इसे जानते हैं।)

करुणा सूहब—

[३४]

कुल गुन गौरव शील सोभाओ
सबे लए चढ़लिहु तोहरहि नाओ।
हमे अबला कत कहब अनेक
आइति पड़लाँ बुझिअ विवेक॥
हठ तेज माधव कर मोहि पार
(सबतहु बड थिक पर उपकार)।
हमरा भेलि आबे तोहरि आस
से न करिअ जे हो उपहास॥
तोहें पर पुरुष हमहु पर नारि
हृदए काँप तुअ रीति विचारि।
भल मन्द जानि करिअ परिनाम
जस अपजस पए रह गए ठाम॥
भनइ विद्यापति तोहें गुनमान
हाथि महतें नब के नहि जान॥

रा० त०, पृ० ९४-९५

सं० अ०—

कुल गुन गौरव सील सोभाओ
सबे लए चढलिहुँ तोहरहि नाओ।

पाठभेद—

न० गु० (पद-संख्या १२५)—

तुअ गुन[1] गौरव सील सोभाव
सेहे लए चढ़िलिहु[2] तोहरी नाव।
हठ[3] न करिअ कन्हु कर मोहि पार
सबतह बड़ थिक पर उपकार॥
आइलि सखि सवे साथे हमार
से सवे मेलि निकहि विघि पार।
हमरा मेलि कान्हु तोहरेओ आस
जे अँगिरिअ ता न होइअ उदास॥
भल मन्द जानि करिअ परिनाम[4]
जस अपजस दूर[5] रह गए ठाम।
हमे अवला कत कहव अनेक
आइति पड़ले वुझिअ विवेक॥
तोहें[6] पुर नागर हमे पर नारि
काँप हृदय तुअ प्रकृति विचारि।
भनइ विद्यापति गावे
राजा सिवसिंह रूपनराएन इ रस सकल से पावे॥

सं० अ०—कुल गुन गौरव सील सोभाओ
सबे लए चढ़लिहु तोहरहि नाओ।
हमे अवला कत कहव अनेक
आइति पडलाँ वुझिअ विवेक॥
आइलि सखि जे साथे हमार
से सबे भेलि निकहि विवि पार।
हठ तेज माधव कर मोहि पार
सबतह बड थिक पर उपकार॥
हमरा भेलि आबे तोहरि हि आस
से न करिअ जे हो उपहास।
तोहें[7] पर-पुरुख हमहुँ पर-नारि
हृदअ काँप तुअ रीति विचारि॥
भल मन्द जानि करिअ परिनाम
जस अपजस पए रह गए ठाम।
भनइ विद्यापति तोहें[8] गुनमान
हाथि महतें[9] नब के नहि जान॥

मि० म० (पद-सख्या ४९, न० गु० से)—१ गुण। २ चढ़लिहु। ३ हुउ। ४ परिणाम। ५ दुइ। ६ तोहें।

शब्दार्थ—नाओ=नाव। अनेक=नाना प्रकार। आइति=(आयत्ति—स०) अधीनता। परिनाम=(परिणाम—स०) फल। ठाम=(स्थाम—स०) स्थान। महते=महावत से। नव=नवता है=झुकता है।

अर्थ—कुल, गुण-गौरव और शील-स्वभाव–सब कुछ लेकर (मैं) तुम्हारी नाव पर चढ़ी। मैं अबला हूँ। (इसलिए) तरह-तरह की कितनी (बातें) कहूँगी? (एक ही बात कहती हूँ कि) अधीनता मे पड जाने पर (किसी के अधीन हो जाने पर ही उसका) विवेक समझा जाता है।

मेरे साथ जो सखियाँ आई थी, वे सब अच्छी तरह पार हो गई।

हे माधव! हठ का त्याग करो—मुझे पार कर दो। (जीवन मे) सबसे बढकर परोपकार है।

अब तो मुझे तुम्हारी ही आशा हुई। (इसलिए) वह (काम) मत करो, जिससे (कि) उपहास हो।

तुम पर-पुरुष हो (और) मैं पराई नारी हूँ। (इसीलिए) तुम्हारी रीति का विचार कर (मेरा) हृदय काँप रहा है।

परिणाम को समझकर भला (या) बुरा (काम) करना चाहिए। (कारण,) यश (और) अपयश ही अपनी जगह (इस ससार मे) रह जाते हैं।

विद्यापति कहते है—तुम गुणवान् हो। (अर्थात्—तुम स्वय निपुण हो। तुम्हे अधिक कहने की आवश्यकता नही। इतना ही कहता हूँ कि) हाथी महावत से ही झुकता है, इसे कौन नही जानता? (अर्थात्—यह नायिका तुमसे ही झुकेगी, दूसरे से नही। अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

स्मरसन्दीपन कोडार—

[३५]

सखि हे,
आज जायब[1] मोहीं[2]।
घर गुरुजन डर न मानब
वचन चूकब नहीं[3]॥
चाँदन[4] आनि आनि[5] अङ्ग लेपब
भूषन कए गजमोती।
अञ्जन बिहुँन[6] लोचन युगल[7]
धरत धवल जोती॥

सं० अ०—१ जाएब। २ मोही। ३ नही। ५ आनि आनि। ६ बिहुन।

धवल वसनें[८] तनु झपाओब
गमन करब मन्दा ।
जैअओ[९] सगर गगन[१०] उगत
सहसें[११] सहसें[१२] चन्दा ॥
न हमें[१३] काहुक डीठि निबारबि
न हमं[१४] करब ओते ।
अधिक चोरि[१५] पर सओं[१६] करिअ
इहे[१७] सिनेहक लोते ॥
भने विद्यापति सुनह जुवति
साहसें[१८] सकल[१९] काजे ।
बुझ सिवसिंह रस रसमय
सोरम देवि समाजे ॥

रा० त०, पृ० ९६

पाठभेद—

न० गु० (पद-संख्या ३०९)—१ जाएब। २ मोही। ३ नही। ४ चाँदने। ५ आनि। ६ बिहुन। ७ जुगल। ८ वसने। ९ जइओ। १० गगने। ११-१२ सहसे सहसे। १३ हमे। १४ हम। १५ चोरी। १६ सँओ। १७ एहे। १८ साहसे।

मि० म० (पद-संख्या ९५)—२ मोही। ३ नही। ४ चाँदने। ५ आनि। ६ बिहुन। ७ जुगल। ८ वसने। ९ जइओ। ११-१२ सहसे सहसे। १३ हम। १४ हम। १५ चोरी। १६ सँओ। १८ साहसे।

शब्दार्थ—आनि आनि=ला-लाकर। बिहुँन=विहीन—सं०। लोचन युगल=दोनो आँखें। धवल=स्वच्छ। वसनें=वस्त्र से। तनु=शरीर। सगर=सकल—सं०। सहसें सहसें=हजारों-हजार। मन्दा=धीरे-धीरे। डीठि=दृष्टि—स०। ओते=ओट। लोते=निम्नता—स०।

अर्थ—हे सखी! आज मैं अवश्य जाऊँगी। घर के गुरुजनो (माँ, बाप आदि) का भय नहीं मानूँगी। (अपने) वचन से नही चूकूँगी।

चन्दन ला-लाकर अग में लेपूँगी (और) गजमुक्ता का आभूषण करूँगी (पहनूँगी।)

सं० अ०—८ वसने। ९ जइअओ। २० ऊगयु। ११-१२ सहसें सहसें। १३ हमे। १४ हम। १६ सओ। १८ साहसें। १९ सफल।

अजन-हीन दोनो आँखे स्वच्छ प्रकाश धारण करेगी। (अर्थात्—मैं आँखों का अञ्जन धो डालूँगी।)

स्वच्छ वस्त्र से अपना शरीर ढक लूँगी (और) धीरे-धीरे (प्रियतम के पास) गमन करूँगी।

यद्यपि समूचे आकाश मे हजार-के-हजार चन्द्रमा उग जायँ (तथापि मेरा गमन नही रुकेगा।)

न मैं किसी की दृष्टि का निवारण करूँगी (और) न (किसी से) ओट करूँगी।

दूसरे से अधिक चोरी करना (दूसरे से छिपकर प्रेम करना)—यही तो प्रेम की निम्नता है। (अर्थात्—जिसका प्रेम ऊँचा है, वह छिपकर प्रेम नही करती है।)

विद्यापति कहते है—(अरी) युवती! सुनो। साहस से ही कार्य सिद्ध होते है।

सोरम देवी के साथ रसमय शिवसिंह (इस) रस को समझते है। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

वियोगि कोडार—

[३६]

सिरिहिं मिलल[1] देहा न कुचँ[2] चाँद[3] रेहा
घामे न पिउल सुगन्धा।
अधर मधुरि[4] फुल[5] देखिअ ताहेरि तुल[6]
धएलहि[7] अछ मकरन्दा ॥ध्रु०॥
रामा अइलिहें[8] पिआ[9] बिसराइ।
पुरुष[10] केसरि जनि दमनलता धनि
चुअइतें[11] जा असिलाइ ॥
गेलहि कएलह[12] मान की अवसर आन[13]
किं[14] सिसु बालँभ[15] तोरा।
मुसए गेलिहे[16] धन जागल परिजन
लगहि कलाओक[17] चोरा ॥

सं० अ०—१ सिरिहिँ मिलल। ३ चान्द। ७ धएलहिँ। १० छुअइते। १७ गहल न कनय कचोरा। १४ की। १९ वरजउवति। २० ई।

भनइ विद्यापति सुनु[19] वरजौवति[19]
इ[20] रस केओ केओ जाने।
राजा सिवसिंह[21] रूपनराएन[22]
लखिमा देवि रम(ा)ने[23]॥

रा० त०, पृ० ९७

पाठभेद—

न० गु० (पद-संख्या २३१)—१ सिरिहिं मिलल। २ कुच। ३ चान। ४ मधुरी। ५ फूल। ६ तूल। ७ धयलहि। ८ अइलि हे। ९ पिया। ११ छुअइते। १२ गेलिहि कयलह। १३ आन। १४ की। १५ बालभु। १६ गेलि। १८ सुन। २२ रूपनरायन।

मि० म० (पद-संख्या ८०)—१ सिरिहिं मिलिल। २ कुचे। ३ चान। ६ तूल। ७ धयेलहि। ८ अइलि हे। ९ पिया। १० पुरुस। ११ छुअइत। १२ गेलहि कयलह। १३ आन। १४ की। १५ बालँभु। १८ सुन। २१ सिवसिंघ। २३ रमने।

शब्दार्थ—सिरिहिं=(श्री—स०) शोभा में। कुचं =स्तन में। रेहा=रेखा। घामे= पसीना। ताहेरि=उसके। तुल=तुल्य—सं०। धएलहि अछ=रखे हुए हैं=सँजोये है। अइलिहे=आई। केसरि=सिंह। जनि=जैसे=समान। दमनलता=द्रोणलता। छुअइते=छूते ही। असिलाइ=अलसा जाती है=कुम्हला जाती है। गेलहि=जाते ही। बालंभ=(वल्लभ—स०) स्वामी। मुसए=चोरी करने के लिए। कनय कचोरा=सोने का कटोरा।

अर्थ—(सखी नायिका से पूछती है—तुम्हारा) शरीर श्री से युक्त (शोभा-सम्पन्न ही) है, (तुम्हारे) स्तनो पर चन्द्रमा की रेखा (नखरेखा) भी नही है (और) न घाम ने (तुम्हारे शरीर की) सुगन्ध ही पी ली है?

(तुम्हारा) अधर गुलदुपहरिया के समान है (और) उसी के समान (अपने) मकरन्द को भी सँजोये है? (अर्थात्—स्वामी के समीप से लौट आने पर भी तुम्हारा शरीर पूर्ववत् क्यो है? रतिचिह्न क्यो नही दिखलाई पडता है?)

हे रामा! (क्या तुम) स्वामी को भुलाकर आई? (यदि तुम स्वामी को नही भुलाती,—रतिरंग करती, तो तुम्हारा यह रूप नही रहता। कारण,) पुरुष सिंह के समान (प्रबल होते है और) स्त्रियाँ द्रोणलता के समान (कोमल होती है, जो) छूते ही कुम्हला जाती हैं।

(क्या तुमने) जाते ही मान कर लिया? क्या वह दूसरा अवसर था? (अर्थात्—जिस समय तुम स्वामी के समीप गई, वह रतिरंग का समय नही था?) क्या तुम्हारे स्वामी बालक हैं?

क्या धन चुराने को जाते ही परिजन जग गये (कि चोर) सोने का कटोरा (स्तन) नही ले सका?

सं० अ०—२२ रूपनराअेन।

विद्यापति कहते हैं—अरी वरयुवती! सुनो। कोई-कोई ही इस रस को जानता है। लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह रूपनारायण (इसे जानते हैं।) (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

पञ्चमस्वरा धनछी—

[३७]

आकुल चिकुरे बेढ़ल मुख सोभ
राहु कएल ससिमण्डल लोभ।
उभरल कुसुम माल धर अङ्ग
जनि जमुना मिलु गङ्ग तरङ्ग॥
वदन सोहाओन स्रम जलबिन्दु
मदने मोति लए पूजल इन्दु।
पिअ मुख सुमुखि चुम्ब तेजि ओज
चाँद अधोमुख पिबए सरोज॥
कुच विपरीत विलम्बित हार
कनक कलस बम दूधक धार।
किंकिनि सबद नितम्बिनि छाज
मदन विजयरथ बाजन बाज॥
भनइ विद्यापति मने अनुमानि
कामिनि रम पिआ अनुमत जानि॥

रा० त०, पृ० १०२-१०३

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' में भी है। अत, इसके लिए प्रथम भाग का ३ सख्यक पद देखिए।

श्रीविमिश्रा धनछी—

[३८]

मलिन कुसुम तनु चीरे
कर पर वदन नयन ढरु नीरे।

कि कहब माधव ताही
तुअ गुन लुबुधि मुगुधि भेलि राही॥
उरँ लुर सामरि बेनी
कमल कोष जनि कारि नागिनी।
केओ सखि ताकए साँसे
केओ नलिनीदलें[1] करए बतासे॥
केओ बोल आएल हरी
उससि उठलि सुनि नाम तोहरी।
सुकवि विद्यापति गावे
विरहिनि वेदन सखिं समुझावे॥

रा० त०. पृ० १०३-१०४

पाठभेद—

न० गु० (पद-संख्या ३५८)—

नलिन कुसुम तनु चीरे
करतल कमल नयन ढर नीरे।
कि कहब माधव ताही
तुअ गुने लुबुधि मुगुधि भेलि राही॥
उर पर सामरि[1] बेनी
कमल कोष[2] जनि कारि नागिनी[3]।
केओ सखि ताकए निसासे[4]
केओ नलिनीदले कर बतासे॥
केओ बोल आएल हरी
सुमरि उठलि चिर नाम मुरारी।
विद्यापति कवि गावे
विरह वेदन निज सखि समुझावे[5]॥

सि० म० (पद-संख्या ५४८, न० गु० से)—१ सामरि। २ कोष। ३ नागिनी। ४ निसासे। ५ समुझावे।

शब्दार्थ—तनु=शरीर। चीरे=वस्त्र। कर=हाथ। वदन=मुख। नीरे वस्त्र=

सं० अ०—१ नलिनिदलें।

आँसू। ताही=उसे। मुगुधि=(मुग्धा—स०) मोहित। उरँ=हृदय पर। लुर=झूल रही है। सामरि=काली। बेनी=(वेणी—स०) चोटी। नलिनीदले=कमल के पत्ते से। बतासे=हवा। उससि=उसाँस लेकर। तोहरी=तुम्हारा। वेदन=दुःख।

अर्थ—(राधा के) फूल के समान कोमल शरीर पर मलिन वस्त्र है, हाथ पर मुख है (और) आँखो से आँसू ढलक रहे हैं।

हे माधव! मैं उसे क्या कहूँगी? (अर्थात्—क्या कहकर समझाऊँगी?) तुम्हारे गुणों से लुभाकर राधा मोहित हो गई है।

(उसके) हृदय पर काली चोटी झूल रही है। (जान पड़ता है,) जैसे कमल-कोष पर काली नागिन (झूल रही) है।

कोई सखी (उसकी) साँस का पता लेती है और कोई सखी कमल के पत्ते से हवा करती है।

किसी ने कहा (कि) कृष्ण आ गये। (फिर क्या था?) तुम्हारा नाम सुनकर, (वह) उसाँसें लेकर उठ बैठी।

सुकवि विद्यापति कहते है—सखी (कृष्ण को) विरहिणी का दुःख समझा रही है।

जोगिआ धनछी—

[३९]

लाखहुँ लता कोटि तरुअ
जूवति कत न लेख।
सबहि फूलाँ मधु मधुमय
मधुहुँ मधु विसेष॥
साजनि हमर वचन सूँन।
सबे परिहरि तोहि इछ हरि
अओकि सराहसि पून॥
तोरिए चिन्ता तोरि बरता
सेजहु तोरिए ठाम।
सपनहुँ हरि तोहि न बिसर
लए उठ तोरिए नाम॥
आलिङ्गन बेरॉ पाछु निहारए
तोह बिनु सुन कोर।

हृदय कथा गुपुति बेथा
लाजे न छाडए नोर॥
सरस कवि विद्यापति गाओल
निञ मने अवधारि।
जकर पेमे पराधिन बाँलभु
सेहे कलावति नारि॥

रा० त०, पृ० १०४-१०५

विशेष—यह पद नेपाल-पदावली मे भी है। अत, इसके लिए प्रथम भाग का २१ सख्यक पद देखिए।

शोभना धनछी—

[४०]

सपने आएल सखि मझु पिअ[1] पासे
तखनुक की[2] कहब हृदय हुलासे॥ध्रु०॥
न देखिअ धनु गुन न देखु सन्धाने
चौदिस परए कुसुमसर बाने।
बंक[3] विलोचन बिगसित[4] थोरा
चाँद[5] उगल जनि समुद्र हिलोरा॥
उठलि चेहाए आलिगन[6] बेरी
रहलि लजाए सूनि सेज हेरी।
भनइ विद्यापति सुनह सपने
जत देखलह तत पुरतौह म(द)ने[7]॥

रा० त०, पृ० १०६

पाठभेद—

न० गु० (पद-सख्या ७९७)—१ पिया। २ कि। ४ विकसित। ५ आलिङ्गन।
मि० म० (पद-सख्या ५६४)—३ बङ्क। ४ विकसित। ६ आलिङ्गन।

शब्दार्थ—मझु=मेरे। हुलासे=उल्लास। धनु=धनुष। गुन=(गुण—सं०)

सं० अ०—१ पिआ। २ कि। ३ बाँक। ५ चान्द। ६ आलिङ्गन। ७ मदने।

डोरी। सन्धाने=निशाना। कुसुमसर=कामदेव। बक=(वक्र—स०) टेढी। हिलोरा=तरग। चेहाए=चौककर। वेरी=समय। सूनि=(शून्य—सं०) सूनी। हेरी=देखकर। जत=जितना। तत=उतना। पुरतौह=पूर्ण होगा।

अर्थ—हे सखी! स्वप्न मे मेरे पास प्रियतम आये थे। (सो,) उस समय के हृदय का उल्लास (मैं) क्या कहूँ?

न (कामदेव का) धनुष दिखलाई पडता था, न (धनुषकी) डोरी दिखलाई पडती थी (और) न निशाना ही दिखलाई पडता था। (फिर भी) चारो ओर कामदेव के वाण बरस रहे थे।

(उनकी) टेढी आँखे थोडी खुली (अधखुली) थी। (जान पडता था,) जैसे चन्द्रोदय होने पर समुद्र में तरंगें उठ रही है। (प्रसिद्ध है कि चन्द्रोदय होने पर समुद्र मे तरंगे उठती है।)

आलिगन के समय (अर्थात्—आलिगन करने के लिए जब मैं) चौककर उठी (तब) सूनी सेज देखकर लजा गई।

विद्यापति कहते है—(अरी वरयुवती!) स्वप्न (स्वप्न का फल) सुनो।। (तुमने) जितना देखा, कामदेव उतना पूरा कर देगा।

गौडमालव—

[४१]

बाँधए विकट जटा तथिहु¹ चंदिन² फोटा
कत जुग सहस बयस³ बहि⁴ गेला
उमत महादेव समत⁵ न भेला।।
मौलि मेलए छार सहज⁶ न तेजए पार
सुकवि विद्यापति गाऊ⁷
जिवओ⁸ सिवसिह राऊ⁹।।

रा० त०, पृ० १०७

पाठभेद—

न० गु० (पद-सख्या—हर-गौरी-पदा० ३५)—१ तँइ थिहु। २ चँदिन। ३ विति। ५ सुमत। ६ सहजइ। ७ गाउ। ८ जीव। ९ राउ।

मि० म० (पद-सख्या १२)—१ तथिहु। २ चँदिन। ५ सुमत। ७ गाउ। ९ राउ।

शब्दार्थ—तथिहुँ=उसमे। चन्दिल=(चन्दिर-स०) चन्द्रमा का। फोटा=(स्फोट—

सं० अ०—१ तथिहुँ। २ चन्दिल। ३ बएस। ८ जीवओ।

सं०) खण्ड। बहि गेला=बीत गया। उमत=उन्मत्त—स०। समत=सम्मत—स०। मौलि=मस्तक। मेलए=डालते हैं। छार=(क्षार—स०) भस्म। सहज=स्वभाव=प्रकृति।

अर्थ—(शिवजी) भयकर जटा बाँधते है, और उसमे चन्द्रमा का खण्ड (अर्थात्—अर्धचन्द्र धारण करते हैं।) कितने सहस्र युग वय (उम्र) बीत गये, (फिर भी) उन्मत्त महादेव सम्मत (प्रकृतिस्थ) नही हुए।

(शिवजी) माथे पर भस्म डालते है, अपनी प्रकृति को छोड नही सकते है। सुकवि विद्यापति कहते है (कि) राजा शिवसिंह जीवें। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

विशेष—आरम्भ से पद खण्डित प्रतीत होता है।

मैथिलमालव—

[४२]

गेलाहुँ[1] पुरुब पेमे उतरो न देइ
दाहिन वचन वाम कए[2] लेइ।
ए हरि रस दए रुसलि रमनी
हमतह न आउति कुंजरगमनी[3]॥
गैए[4] मनावह रहओ समाजे
सबतह बड[5] थिक आँखिक[6] लाजे।
जे किछु कहलक से अछि लेले
भल कहि[7] बुझब[8] अपनहि गेले॥
भनइ विद्यापति नारि[9] सोभावे
रुसलि रमनि पुनु पुनमत पावे॥

रा० त०, पृ० १०७

पाठभेद—

न० गु० (पद-सख्या ४००)—१ गेलाँहु। २ कइ। ३ कुञ्जरगमनी। ४ गइए। ५ बड। ६ आँखिक। ७ कय। ८ बूझब। ९ नारी।

मि० म० (पद—सख्या ४४२) १ गेलाँहु। ३ कुञ्जरगमनी। ४ गइये। ५ वड। ६ आँखिक। ८ बूझब। ९ नारी।

सं० अ०—४ गइए। ६ आखिक। ७ कए। ८ बूझब।

शब्दार्थ—गेलाहुँ=जाने पर भी। दाहिन=(दक्षिण—स०) अनुकूल। वाम=प्रतिकूल। हमतह=हमसे=मुझसे। गैए=जाकर। समाजे=मिलन। से=वह। भल कए=अच्छी तरह।

अर्थ—पूर्वप्रेम के कारण जाने पर भी (वह) उत्तर नही देती है। अनुकूल वचन को भी प्रतिकूल करके लेती है (अर्थात्—प्रतिकूल मानती है।)

हे कृष्ण ! रमणी (एक बार) रस देकर (प्रेम बढाकर) रूठी है। (इसीलिए वह) कुंजरगमनी मुझसे नही आयगी।

जाकर (स्वय) मनाओ। (फिर एक बार तुम दोनो का) मिलन रहे। (कारण,) सबसे बडी आँख की लाज होती है। (अर्थात्—आँख के सामने लज्जावश 'ना' करते नही बनता है।)

(उसने) जो कुछ कहा, उसे (तो) स्वयं लिये हुए है। (अर्थात्—उसने 'नहीआने' का जो कारण कहा, उसे तो स्वय लिये बैठी है।) मै क्या कहूँ ? अच्छी तरह (तो) अपने जाने पर ही समझोगे।

विद्यापति नारियो का स्वभाव कहते है (अर्थात्—स्त्रियो के स्वभाव का वर्णन करते है।) रूठी हुई रमणी (तो) फिर पुण्यवान् (ही) पाते है। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

देवराज विजय—

[४३]

कतहु श्मश्रु घर[1] कतहु पयोघर
भल वर मिलल सुशोभे[1]।
अधॅग[2] धइलि नारि(न)गुनलि[4] निअ[5] गारि
गरुअ गौरि[6] गुन लोभे ।।ध्रु०।।
आलो शिव शम्भू तुमी शिव शम्भू[7]
तुमी जों[8] बधलों[9] पचबाने ।।
गाँग[10] लागि गिरिजाक मनौलि हे[11]
कके देवि बोलह मन्दा।
चरन नमित फनि[12] मनिमय भूषन[13]
घरखि खिआएल[14] चन्दा ।।

सं० अ०—२ अघङ्ग। ४ न गुनलि। ८ जे। ९ बधिलो। १० गांग लागि गिरिजा कें।

भनइ विद्यापति सुनह तिलोचन[15]
पय[16] पङ्कज मोरि सेवा।
चन्दल देइ पति बैदनाथ[17] गति
नीलकण्ठ हर देवा॥

रा० त० पृ० १०८

पाठभेद—

न० गु० (हरगौरी-पदा०, पद-संख्या १९)—१ समसवर। ३ अवङ्ग। ४ व गुनलि। ५ निज। ६ गोरी। ७ जे। ९ वधिलो। १० गाङ्ग। ११ मनउलिहे। १२ फनी। १४ घर खिखिआयल। १५ त्रिलोचन। १६ पअ। १७ वैद्यनाथ।

मि० म० (पद संख्या ५९६)—१ समसवर। २ सुसोमे। ३ अवङ्ग। ५ निज। ६ गौरी। ७ आलो सिव सम्भू तुमी सिव सम्भू। ९ वधिलो। १० गाङ्ग। ११ मनउलिहुं। १२ फनी। १३ भूसन। १४ घर खिखियायल। १५ त्रिलोचन। १६ पअ। १७ वैद्यनाथ।

विशेष—न० गु० और मि० म० के सस्करण मे यह पद मेनका-शम्भु-सवाद के रूप मे है।

शब्दार्थ—कतहु=कही। श्मश्रु=दाढ़ी-मूंछ। पयोवर=स्तन। भल=अच्छा। वर=स्वामी। मिलल=मिला हुआ। सुशोभे=शोभा। अवँग=(अर्द्धांग—स०) आधे अंग मे। गुनलि=विचार किया। गारि=गाली। गरुअ=(गुरु—सं०) महान्। आलो=अरे=हे। अथवा आलो=(अलोलु—सं०) विषयो से उदासीन। वधलो=वध किया। पचवाने=(पञ्चवाण—स०) कामदेव। गाँग=गगा। लागि=लिए। मनौलिहे=मनाया। कके=क्यों। मन्दा=बुरा। नमित=(लम्बित—स०) लटक आया। फनि=(फणी—सं०) साँप=शेषनाग। घरखि=घिसकर। खिआएल=क्षीण हो गया। पयपकज=पद-पंकज। चन्दल देइ=चन्द्रावती देवी। गति=अवलम्ब।

अर्थ—(शिवजी के अर्धनारीश्वर-रूप को देखकर गौरी की सखी व्यग्य करती है—) कही दाढ़ी-मूंछ धारण करनेवाला (तो) कही स्तन धारण करनेवाली! अच्छा स्वामी मिला, (जो ऐसी) शोभा है!

गौरी के महान् गुण के लोभ से (शिवजी ने) अपनी गाली (कलंक) का (भी) विचार नही किया—स्त्री को आधे अंग में रख लिया!

हे शिव! हे शंकर! (आप तो) विषयों से उदासीन हैं, कल्याण-स्वरूप हैं, कल्याण करनेवाले हैं। क्या इसीलिए आपने कामदेव का वध किया था?

(शिवजी उत्तर देते हैं—) हे देवी! बुरा क्यो कहती हो? (मैंने तो) गगा के लिए गौरी को मनाया है। (अर्थात्—मेरे मस्तक पर गंगा को देखकर सापत्न्यभाव से गौरी रुठ गई। गौरी के मनाने के लिए ही मैंने उसे अपने आधे अंग मे धारण कर लिया।)

(शिवजी का उत्तर सुनकर) आभूषण का मणिवर साँप (शेषनाग) पैरो पर लटक आया। (अर्थात्—शिवजी को अपना दोष गौरी के माथे डालते देखकर गले मे लिपटा शेषनाग अपनी हँसी नही रोक सका। किन्तु, वहाँ वह हँस नही सकता था। इसीलिए, वह पैरो पर लटक आया और) चन्द्रमा (हँसते-हँसते) घिसकर क्षीण हो गया।

विद्यापति कहते है—हे त्रिलोचन! सुनिए। (आपके) पद-कमल मे मेरी सेवा रहे। चन्द्रावती देवी के स्वामी वैद्यनाथ के अवलम्ब नीलकण्ठ महादेव है। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

अलानाराजविजय—

[४४]

जय जय भगवति भीमा भयानी[१]
चारि वेदें[२] अवतरु ब्रह्मवादिनी।
हरि हर ब्रह्मा पुछइत[३] भमें[४]
एकओ न जान तुअ आदिमरमें[५]॥
भनइ विद्यापति राए[६] मुकुटमणि
जिवओ रूपनराएन[७] नृपति धरणि[८]॥

रा० त०, पृ० १०८

पाठभेद—

न० गु० (हरगौरी-पदा०, पद-संख्या ४)—१ भवानी। २ वेदे। ४ भमे। ५ आदिमरमे। ६ राय। ७ रूपनरायन।

मि० म० (पद-संख्या ११)—२ वेदे। ३ पुछइते। ४ भमे। ५ आदिमरमें। ८ धरनि।

शब्दार्थ—भयानी=भवानी। ब्रह्मवादिनी=गायत्री। भमे=भ्रमण करते है=फिर रहे है। राए=राजा। धरणि=पृथ्वी।

अर्थ—हे भगवती भीमा भवानी! (तुम्हारी) जय हो, जय हो! हे गायत्री! (तुमने) चारो वेद (के रूप) मे अवतार लिया है।

विष्णु, शिव (और) ब्रह्मा (एक दूसरे से) पूछते हुए फिर रहे है। (उनमे) एक भी तुम्हारे आदि मर्म को नही जानते है।

विद्यापति कहते है—राजाओ के मुकुटमणि नृपति रूपनारायण (शिवसिंह) पृथ्वी पर जीवे।

सं० अ०—१ भवानी। २ वेदें। ४ भमे। ५ आदिमरमे। ७ रूपनराओन।

देशराजविजय—

[४५]

जाति पदुमिनि सहति कता
गजें[1] दमसलि दमनलता।
लोभे[2] अधिक मूल न मार
जे मूल राखए से बनिजार॥
अछल जोर सिरीफल भाँति[3]
कएलह छोलंग[4] नारँग[5] काँति[6]।
भनइ विद्यापति न कर[7] लाथ
भूषल[8] न[9] खाह[10] दूहू[11] हाथ॥

रा० त०, पृ० १०९

पाठभेद—

न० गु० (पद-संख्या १८०)—३ भाति। ४ छोल। ५ नारङ्ग। ६ काति। ७ करह। ९-१० नखा। ११ दुहु।

मि० म० (पद-संख्या २९१)—१ गजें। ३ भाति। ५ नादङ्ग। ६ काति। ९-१० नख।

शब्दार्थ—कता=कितना। गजे=हाथी ने। दमनलता=द्रोणलता। मूल=मूलधन। बनिजार=व्यापारी। अछल=थे। जोर=जोड़ा। सिरीफल=(श्रीफल—स०) बेल। छोलग=नीबू। नारग=नारगी। लाथ=बहाना। खाह=खाता है।

अर्थ—जाति की पद्मिनी (नायिका) कितना सहन करेगी? (उसे देखकर ऐसा जान पड़ता है, जैसे) हाथी ने द्रोणलता को मसल दिया है।

लोभ से मूलधन को अधिक नही मारना चाहिए (अर्थात्—उचित से अधिक मूलधन नही खरचना चाहिए।) जो मूलधन को (बचाकर) रखता है, वही (सच्चा) व्यापारी है।

जोड़ा श्रीफल के समान (उसके स्तन) थे। (किन्तु, तुमने उन्हें मसलकर) नारगी (और) नीबू के समान कान्तिवाला कर दिया (अर्थात्—लाल कर दिया।)

विद्यापति कहते है—बहाना मत करो। भूखा (आदमी) दोनो हाथ से नहीं खाता है।

सं० अ०—१ गजें। २ लोभें। ५ नारङ्ग। ८ भूखल।

१३ चन्दने। १४ करू। १५ हिमे। १६ बुडि। १७ सुमेरू। १८ भनइ विद्यापति कवी। अन्त की दो पक्तियाँ नही है।

मि० म० (पद-सख्या ९७)—२ निपुन पुनिम। ३ तिलके। ४ सहजहि। ५ बडि। ६ करबि। ७ काजरे। ८ कर। ९ बुडि। १० सामरा। ११ कनक। १२ कटोरा। १३ चन्दने। १४ करू। १५ हिमे। १६ बुडि। १७ सुमेरू। १८ भनइ विद्यापति कवी। अन्त की दो पक्तियाँ नही है।

शब्दार्थ—मृगमद=कस्तूरी। अलका=(अलक—सं०) लेप। सँपुन=सम्पूर्ण। कलके=कलंक से। मन्दा=खराब। पसाहृी=प्रसाधन करके। उजर=उज्ज्वल—स०। नयन नलिना=नेत्र-रूपी कमल। भमरा=भौंरा। मसि=स्याही। बुडि जाएत=डूब जायगा। समरा=(श्यामल—सं०) काला। कनए=(कनक—स०)सोना। कचोरा=कटोरा। धवल=उज्ज्वल। हिमे=पाला से। तिमिर=अन्धकार। रवी=सूर्य। तौलि हलत=तोल देंगे।

अर्थ—(राधा के शरीर मे) कस्तूरी के पक का लेप (और उसके) मुँह मे तिलक मत करो।

(कारण,) कलंक से पूर्णिमा का पूर्णचन्द्र खराब हो जायगा। (अर्थात्—राधा के मुखचन्द्र मे कलंक लग जायगा।)

राधा जन्मजात (जन्म से ही) बड़ी सुन्दरी है। (इसलिए) अधिक प्रसाधन करके क्या करोगी?

(उसके) उज्ज्वल नेत्र-रूपी कमल को काजल से मलिन मत करो।

(कारण,) दूध का धोया भौंरा स्याही मे डूब जायगा, (तो) काला (हो जायगा।)

(राधा के) गोरे पुष्ट स्तन (ऐसे जान पड़ते है, जैसे) उलटे हुए सोने के कटोरे है।

(उन्हें) चन्दन से उंजला मत करो, (अर्थात्—उनपर चन्दन का आलेपन मत करो।

(कारण,) पाले से सुमेरु ढक जायगा।

कवि विद्यापति कहते है—जहाँ सूर्य, वहाँ अन्धकार कहाँ? (अर्थात्—जहाँ राधा, वहाँ कुरूपता कहाँ?)

प्रभु रूपनारायण (शिवसिंह) बड़े-छोटे को तोल देंगे। (अर्थात्—अच्छे-बुरे का विचार कर देंगे।) (अर्थ—स० अभिमत से।)

मलारी नाट—

[४७]

गगन गरज मेघा उठय धरणि थेघा
पचसर हिअ गेल साली।
सुमुखि देह खिन जिउति आजुक दिन
के जान कि होइति काली॥ध्रु०॥

माधव मन दए सुन तसु बानी।
कुजन निरूपि सुजन सखि संगति
जे किछु कहए सेआनी॥
की हमे साँझक एकसरि तारा
भादव चौठिक चन्दा।
ऐसन कए पिआजे मोर मुख मानल
मो पति जीवन मन्दा॥
बामहु गति जत समदि पठओलन्हि
से सबे कहि कहि गेली।
तेरसि तिथि ससि सामर पख निसि
दसमि दसा मोरि भेली॥
भनइ विद्यापति सुन वरजौवति
मने जनु मानह आने।
राजा सिवसिंह रूपनराएन
लखिमा देवि रम(I)ने॥

रा० त०, पृ० ११४

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अत, इसके लिए प्रथम भाग का ७६ सख्यक पद देखिए।

मलारी नाट—

[४८]

रयनि काजर बम भीम भुअङ्गम
कुलिश परए दुरबार।
गरजे तरस मन रोसें बरिस घन
संसजे परु अभिसार॥ध्रु०॥
सजनी वचन छडैतें मोहि लाज।
जे होएअ से होअओ बरु सबें हमे अँगिकरु
साहसँ मन दए आज॥

ठामहि रहिअ घूमि परसें चिन्हिअ भुमि
दिगमगें उपजु सन्देह।
हरि हरि सिव सिव तावे जाइह जिव
जावे न उपजु सिनेह॥
चरन वेढ़ले फनि हित कए मानल धनि
नूपुर न करत रोर।
सुमुखि पुछञो तोहि सरूप कहसि मोहि
पेमक कतएक ओर॥
अपन सुहित मित देखिअ से परतख
न पाइअ पेमक ओर।
चाँद हरिन वह राहु कवल सह
पेम पराभव थोर॥
भनइ विद्यापति सुनह सुचेतनि
गमन न करह विलम्बे
राजा सिवसिंह रूपनराएन
सकल कला अवलम्बे॥

रा० त०, पृ० ११५

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' में भी है। अतः, इसके लिए प्रथम भाग का २४० संख्यक पद देखिए।

शङ्कर भाट—

[४९]

करतल कमल नयन ढर नीर
न चेतए कुन्तल सँभर न चीर।
तुअ पथ हेरि हेरि चित नहि थीर
सुमरि पुरुब नेहा दगध सरीर॥

कतें[4] परि माधव साधब मान[5]
विरहि[6] जुवति माँग दरसन दान ।
जलमधे कमल गगनमधे सूर
आँतर[7] चाँदहु[8] कुमुद कत दूर ॥
गगन गरज मेघा सिषर[9] मयूर
कत जन जान[10] सिनेह[11] कत दूर ।
भनइ विद्यापति विपरित मान
राधा वचने लजाएल कान्ह[12] ॥

रा० त०, पृ० ११६

पाठभेद—

न० गु० (पद-सख्या ५०६)—१-२-३ सभरन कुन्तल । ४ कते । ५ मान । ७ आँतर । ८ चान । ९ शिखर । १०-११ जानसि नेह ।

मि० म० (पद-सख्या ४४३)—१-२-३ सँभरन कुन्तल । ५ मान । ६ विरही । ७ आँतर । ९ सिखर । १०-११ जानसि नेह । १२ कान ।

शब्दार्थ—चेतए=चेतती है=ठिकाने रखती है । कुन्तल=केश । सँभर=सँभलता है । चीर=वस्त्र । पथ=मार्ग=बाट । पुरुब नेहा=पूर्व-प्रेम । कते परि=कितनी तरह से । साधब=साधिएगा=पूरा कीजिएगा । जलमधे=पानी मे । गगनमधे=आकाश मे । सूर=सूर्य । आतर=अन्तर—स० । सिखर=चोटी । सिनेह=स्नेह=प्रेम ।

अर्थ—(सखी कृष्ण से कहती है— राधा के) करतल मे कमल (मुख) है (और उसकी) आँखो से पानी (आँसू) ढलक रहा है । (वह) न केश को ठिकाने से रखती है (और) न (उससे) वस्त्र (ही) सँभलता है ।

तुम्हारी बाट जोह-जोहकर (उसका) चित्त स्थिर नही है । तुम्हारे पूर्व-प्रेम का स्मरण कर (उसका) शरीर दग्ध हो रहा है ।

हे माधव ! कितनी तरह से (अपने) मान को पूरा करोगे ? (अर्थात्—कितना दुःख देकर अपने मान को पूरा करोगे ?) विरहिणी युवती (तुमसे) दर्शन का दान माँगती है ।

पानी मे कमल (और) आकाश मे सूर्य (रहता है ।) अन्तर रहने पर भी चन्द्रमा से कुमुद कितनी दूर है ? (अर्थात्—जिस प्रकार कमल और सूर्य तथा चन्द्रमा एव कुमुद मे एक दूसरे से दूरी है, फिर भी उनमें प्रेम है, उसी प्रकार दूर रहने पर भी तुम दोनो मे प्रेम रहना चाहिए ।)

सं० अ०—४ कते । ५ मान । ७ आतर । ९ सिखर ।

आकाश मे मेघ गरजता है (तो पर्वत की) चोटी पर मयूर (नाचने लगता है।) कितने ही आदमी जानते हैं कि प्रेम के लिए दूरी कितनी है? (अर्थात्—प्रेम के लिए दूरी कुछ भी नही है।)

विद्यापति विपरीत मान कहते है (विपरीत मान का वर्णन करते हुए कहते हैं कि) राधा के वचन से कृष्ण लजा गये।

शङ्कुक नाट—

[५०]

गगन गरज घन[1] जामिनि घोर
रतनहु[2] लागि न सञ्चर[3] चोर।
अेहना तजि[4] अएलाहु[5] निअ[6] गेह
अपनेँहु[7] न देखिअ अपनुक देह॥
तिला एक माधव परिहर मान
तुअ लागि संसअे[8] परल परान॥
दुसह जमुना नरि ऐलिहु[9] भाँगि[10]
कुचजुग तरल तरनि तँ[11] लागि।
देह अनुमत[12] हे जुझयो[13] पचवान[14]
तोहे[15] सन नगर नागर नहि आन[16]।
भनइ विद्यापति नारि[17] सोभाव
अपनुक अभिमत उकुति बुझाव[18]।
राजा रूपनराएन[19] जान
राए सिवसिह लखिमा देइ[20] रम(I)न[21]॥

रा० त०, पृ० ११६-११७

पाठभेद—

न० गु० (पद-संख्या ४७७)—१ मेघा। २ रतनह्‌ु। ३ सञ्चर। ४ एहना

सं० अ०—४ अइसना। ५ अइलिहुँ। ७ अपनहुँ। ८ संसअ। ९ अइलिहुँ। ११ तौं। १२ अनुमति। १३ जुझओ। १४ पँचवान। १५ तोहें। १६ वान। १९ रूपनराअेन। २० दे।

तजि । ५ अएलाहु । ६ निअ । ७ अपनहु । ८ ससय । ९ अइलिहु । १० भागि। ११ ता । १२ अनुमति । १३ जुझओ। १४ पंचवान। १५ तोहे । १७ नारी। १८ जनाव। १९ रूपनरायन। २१ रमान।

मि० म० (पद-सख्या १२८)—४ एहना तेजि। ५ अएलाहुँ। ६ निअ । ७ अपनहु। ८ ससय । ९ एलिहु। १२ अनुमति। १३ जुझओ। १४ पँचबान। १५ तोहे। १७ नारी। २१ रमान।

शब्दार्थ—गगन=आकाश । घन=मेघ । जामिनि=रात। घोर=भयानक। लागि=लिए। सञ्चर=चलता है। एहना=ऐसी। गेह=घर। अपनहुँ=स्वय भी। अपनुक= अपनी। तिला एक=तिलमात्र=क्षण-भर। परिहर=त्याग करो। दुसह=(दुस्सह—स०) सहन-शक्ति से बाहर। नरि=नदी। भाँगि=लाँघकर। कुचजुग=स्तनद्वय। तरल=चचल= हिलती-डुलती। तरनि=नाव। ताँ लागि=उसी से लगकर=उसी के सहारे। अनुमत=अनुमति। जुझयो=जूझ पड़े। पचवान=(पञ्चवाण—स०) कामदेव। उकुति=(उक्ति—स०) कहकर।

अर्थ—आकाश मे बादल गरज रहा है। भयावनी रात है। रत्न के लिए भी चोर नही चलता है।

ऐसी (अवस्था) मे भी मैं अपना घर तजकर आई। स्वय अपनी देह भी नही देख पाती हूँ।

हे माधव ! क्षण-भर (के लिए भी) मान का त्याग करो। तुम्हारे लिए (मेरे प्राण) सशय मे पड़े है।

कुचयुग-रूपी हिलती-डुलती नैया के सहारे (मैं) सहन-शक्ति से बाहर की यमुना नदी लाँघकर आई हूँ।

(हे कृष्ण !) अनुमति दो (कि) कामदेव जूझ पड़े ! (हाय !) नगर मे तुम्हारे समान दूसरा नागर (चतुर) नही है।

विद्यापति कहते है—नारियो का स्वभाव है (कि वे) अपना अभिमत कहकर (भी) समझा देती है।

लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह रूपनारायण (इसे) जानते है।

उत्तमनाट—

[५१]

सखि हे
बालँभ[१] जितब बिदेसे[२]।
हमे कुलकामिनि[३] कहइते[४] अनुचित[५]
तोहन्हुँ[६] देहुन्हि[७] उपदेसे[८]॥

सं० अ०—१ बालभु। ६ तोहँहि।

ई[9] न विदेसक[10] बेलीं[11] ।
दुरजनें[12] हमर दुख न अनुमापब[13]
तें तोहें[14] पिआ[15] (ल)गे लएली[16] ॥

किछु दिन करथु निवासे ।
हमे पूजल जे सेहे पए[17] भुजब[18]
राखथु पर उपहासे ॥

होएताहे[19] किए[20] बधभागी ।
जहि खने हुन्हि[21] मने माधव चिन्तब
हमहुँ[22] मरब धसि आगी ॥

विद्यापति कवि भाने[23] ।
राजा सिवसिंह रूपनराएन[24]
लखिमा देवि[25] रम(।)ने[26] ॥

रा० त०, पृ० ११८

पाठभेद—

न० गु० (पद-संख्या ६१८)—१ बालमु । २ विदेशे । ३ कुलकामिनी । ५ अनुचित । ६ तोंहहु । ७ दे हुनि । ८ उपदेशे । ९ इ । १० विदेशक । ११ बेलि । १२ दुरजन । १३ अनुमापब । १४ तोहे । १५-१६ पिया गेलइलि । १७ पय । १८ भुञ्जब । १९ होयताह । २० किये । २१ हुनि । २२ हमहु । २३ भने । २४ राजा सिवसिंह रूपनारायन । २६ रमने ।

मि० म० (पद-संख्या १५६)—४ कहइत । ५ अनुचित । ६ तोंहलु । ७ दे-हुन्हि । ९ इ । ११ बेलि । १२ दुरजन । १३ अनुमापब । १४ ते तोहें । १५ पिया । १६ एलि । १८ भुञ्जब । २२ हमहु । २४ राजा सिवसिंघ रूपनाराएन । २५ देइ ।

शब्दार्थ—बालम=(वल्लभ—स०) प्रिय=स्वामी । जितव=जायँगे । वेली=(वेला—स०) समय । अनुमापव=अनुमान कर सकेंगे । लएली=ले आई हूँ । पूजल=(पुञ्जित—स०) इकट्ठा किया । सेहे पए=उसे ही । भुञ्जव=भोग करूँगी । हुनि=उसे । धसि=पैठकर ।

सं० अ०–१४ तञे तोहें । १८ भुञ्जब । २१ हुनि । २४ राजा शिवसिंह रूपनराञेन ।

अर्थ—हे सखी ! (मेरे) स्वामी विदेश जायेंगे। मैं कुलकामिनी हूँ। कहते अनुचित (मालूम होता है।) इसलिए तुम्हीं (उन्हे) उपदेश दो।

यह विदेश (जाने) का समय नही है। दुर्जन मेरे दु ख का अनुमान नही कर सकेंगे। इसलिए (मैं) तुम्हे स्वामी के पास (उन्हे समझाने के लिए) ले आई हूँ।

कुछ दिन (और यहाँ वे) निवास करे। मैंने जो इकट्ठा किया है, उसे ही (मैं) भोग करूँगी। (किन्तु) दूसरों के उपहास की (वे) रक्षा करे।

(वे मेरे) वध के भागी क्यो होगे ? जिस समय (कृष्ण अपने) मन मे उसे विचारेंगे (अर्थात्—विदेश-गमन का विचार करेंगे, उसी समय) मैं भी आग मे पैठकर मर जाऊँगी।

विद्यापति कवि कहते है (कि) लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह रूपनारायण (इसे जानते है।)

विशेष—मुद्रित 'रागतरङ्गिणी' मे 'तें तोहे पिआ गे लएली' मे 'गे' से पहले 'ल' की छूट प्रतीत होती है।



तरौनी (दरभंगा) में प्राप्त विद्यापति के पद

[१]

पीन पयोधर दूबरि गता।
मेरु उपजल कनक लता॥
ए कान्ह[1] ए कान्ह[2] तोरि दोहाई[3]।
अति अपुरुब देखलि साई[4]॥
मुख मनोहर अधर रङ्गे।
फूललि मधुरि[5] कमल सङ्गे॥
लोचन जुगल भृङ्ग अकारे।
मधुक मातल उड़ए न पारे॥
भँऊहेरि[6] कथा पूछह जनू।
मदने जोड़लि[7] काजर धनू॥
भने विद्यापति दूति वचने।
एत सुनि कान्ह[8] करु[9] गमने॥

न० गु०, पद-संख्या १२

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या २३२)—१-२ ए कान्हु ए कान्हु। ३ दोहाइ। ४ साइ। ५ मधुरी। ६ भंउहेरि। ७ जोड़ल। ८ कान्हु। ९ करत।

शब्दार्थ—दूबरि=दुर्बल। गता=(गात्र-स०) शरीर। उपजल=फला है। कनक-लता=सोने की लता। दोहाई=शपथ। साई=वह। मधुरि=गुल दुपहरिया। कथा=बात। जोड़लि=तरतीब से सजाकर रखा है। अकारे=आकार=समान।

अर्थ—(नायिका के) दुर्बल शरीर मे पीन पयोधर (ऐसा जान पड़ता है, जैसे) सोने की लता मे मेरु (पर्वत) फला है।

हे कृष्ण! हे कृष्ण!! तुम्हारी शपथ! वह (राधा) अत्यन्त अपूर्व दिखाई पड़ी।

(उसका) मनोहर मुख (और रगीन) अधर (मालूम होता है, जैसे) कमल के साथ गुल दुपहरिया खिला है।

(उसकी) दोनों आँखे भ्रमर के समान मधुमत्त है, (इसीलिए) वे नेत्र-भ्रमर उड़ नही सकते हैं।

सं० अ०—६ भमुहेरि। ७ जोड़ल।

(उसकी) भौंह की बात मत पूछो। (जान पड़ता है, जैसे) कामदेव ने काजल का धनुष तरतीब से सजाकर रखा है।

विद्यापति कहते हैं—दूती के वचन से, अर्थात् दूती के मुख से सुनकर कृष्ण ने प्रस्थान किया।

[२]

कि आरे नव जौवन अभिरामा।
जत देखल तत कहहि न पारिअ
छओ अनुपम एक ठामा॥
हरिन इन्दु अरविन्द करिणि हिम
पिक बूझल अनुमानी।
नयन बयन परिमल गति तनु रुचि
अओ अति सुललित बानी॥
कुच जुग उपर चिकुर फुजि पसरल
ता अरुझायल हारा।
जनि सुमेरु उपर मिलि ऊगल
चाँद विहुन सबे तारा॥
लोल कपोल ललित भल कुण्डल
अधर बिम्ब अध जाई।
भौंह भमर नासा पुट सुन्दर
से देखि कीर लजाई॥
भनइ विद्यापति से वर नागरि
आन न पावए कोई।
कंसदलन नारायन सुन्दर
तसु रङ्गिनि पए होई॥

न० गु०, प० १४, रा० त०, पृ० ८५,

विशेष—यह पद 'रागतरङ्गिणी' में भी है। अतः, इसके लिए 'रागतरङ्गिणी' मे प्राप्त २६ संख्यक पद देखिए।

[३]

लघु लघु सञ्चर कुटिल कटाख।
दुअओ नयन लह एकहोक लाख॥
नयन बयन दुइ उपमा देल।
एक कमल दुइ खञ्जन खेल॥
कन्हाइ नयना हलिअ निबारि।
जे अनुपम उपभोग न आबए
की फल ताहि निहारि॥
चाँद गगन बस अओ तारागन
सूर उगल परचारि।
निचय सुमेरु अधिक कनकाचल
आनब कओने उपारि॥
जे चूरू कए सायर सोखल
जिनल सुरासुर मारि।
जल थल नाव समहि सम चालए
से पाबए एहि नारि॥
भनइ विद्यापति जनु हरड़ाबह
नाह न हियरा लाग।
दूती वचन थीर कए मानब
राए सिवसिंह बड़ भाग॥

न० गु०, प० १५

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' में भी है। अतः, इसके लिए प्रथम भाग का १०३ सख्यक पद देखिए।

[४]

अधर सुशोभित वदन सुछन्द।
मधुरी फूले[1] पूजू[2] अरविन्द॥

सं० अ०—१ फुलें। २ पूजु।

(उसकी) भौंह की वात मत पूछो। (जान पड़ता है, जैसे) कामदेव ने काजल का धनुष तरतीव से सजाकर रखा है।

विद्यापति कहते है—दूती के वचन से, अर्थात् दूती के मुख से सुनकर कृष्ण ने प्रस्थान किया।

[२]

कि आरे नव जौवन अभिरामा।
जत देखल तत कहहि न पारिअ
छओ अनुपम एक ठामा॥
हरिन इन्दु अरविन्द करिणि हिम
पिक बूझल अनुमानी।
नयन बयन परिमल गति तनु रुचि
अओ अति सुललित बानी॥
कुच जुग उपर चिकुर फुजि पसरल
ता अरुझायल हारा।
जनि सुमेरु उपर मिलि ऊगल
चाँद बिहुन सबे तारा॥
लोल कपोल ललित भल कुण्डल
अधर बिम्ब अध जाई।
भौंह भमर नासा पुट सुन्दर
से देखि कीर लजाई॥
भनइ विद्यापति से वर नागरि
आन न पाबए कोई।
कंसदलन नारायन सुन्दर
तसु रङ्गिनि पए होई॥

न० गु०, प० १४, रा० त०, पृ० ८५,

विशेष—यह पद 'रागतरङ्गिणी' मे भी है। अत., इसके लिए 'रागतरङ्गिणी' में प्राप्त २६ संख्यक पद देखिए।

[३]

लघु लघु सञ्चर कुटिल कटाख।
दुअओ नयन लह एकहोक लाख॥
नयन बयन दुइ उपमा देल।
एक कमल दुइ खञ्जन खेल॥
कन्हाइ नयना हलिअ निबारि।
जे अनुपम उपभोग न आबए
की फल ताहि निहारि॥
चाँद गगन बस अओ तारागन
सूर उगल परचारि।
निचय सुमेरु अथिक कनकाञ्चल
आनब कओने उपारि॥
जे चूरू कए सायर सोखल
जिनल सुरासुर मारि।
जल थल नाव समहि सम चालए
से पाबए एहि नारि॥
भनइ विद्यापति जनु हरड़ाबह
नाह न हियरा लाग।
दूती वचन थीर कए मानब
राए सिवसिंह बड़ भाग॥

न० गु०, प० १५

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' में भी है। अतः, इसके लिए प्रथम भाग का १०३ संख्यक पद देखिए।

[४]

अधर सुशोभित वदन सुछन्द।
मधुरी फूलें[1] पूजू[2] अरविन्द॥

सं० अ०—१ फुलें। २ पूजु।

तहु दुहु सुललित नयन[3] सामरा।
विमल कमल दल बइसल भमरा॥
विशेखि[4] न देखलिए निरमलि रमनी।[5]
सुरपुर सञो चलि आइलि गजगमनी॥
गिम सञो लावल[6] मुकुताहारे।
कुचजुग चकेब चरइ गङ्गाधारे॥
भनइ विद्यापति कवि कण्ठहार।
रस बूझ[7] शिवसिंह[8] नृप महोदार॥

न० गु०, प० २०

मि० म० (पद-संख्या २०)—१ फुले। २। पूजु। ५ रमणी। ८ सिवसिंह।

शब्दार्थ—वदन=मुख। सुछन्द=सुडौल। मधुरी=गुल दुपहरिया। अरविन्द=कमल। तहु=उसमें। सामरा=(श्यामल—सं०) कजरारी। विशेखि=बढ़कर। देखिए=देखा। निरमलि=निर्माण की हुई। सुरपुर=स्वर्ग। गिम=(ग्रीवा—सं०) गरदन। लावल=लटक रहा है। चकेब=चक्रवाक। चरइ=विचर रहे है।

अर्थ—(नायिका का) सुडौल मुख अधर से (इस प्रकार) सुशोभित है, (जैसे) गुल दुपहरिया के फूल से कमल पूजा गया है।

उसमे (मुख में) दोनों सुन्दर कजरारी आँखे (ऐसी जान पड़ती हैं, जैसे) स्वच्छ कमल-दल पर भ्रमर बैठे है।

(उससे) बढ़कर निर्मित रमणी नही देखी। (अर्थात्—ब्रह्मा ने जिन रमणियों का निर्माण किया, उनमे उससे बढकर कोई नही दिखाई पड़ी। जान पड़ता है, जैसे) स्वर्ग से (कोई) गजगामिनी (अप्सरा) चली आई है।

(उसकी) गरदन से मुक्ताहार लटक रहा है। (जान पड़ता है, जैसे) दोनों स्तन-रूपी चक्रवाक गङ्गा की धारा मे विचर रहे है।

कविकण्ठहार विद्यापति कहते है—महोदार राजा शिवसिंह (इस) रस को समझते है।

सं० अ०—३ नअन। ४ विसेखि। ६ लाँवल। ७ बुझ।

[५]

चाँद[1] सार लए मुख घटना करु
लोचन चकित चकोरे।
अमिय[2] धोए आँचरे[3] जनि पोछल
दह दिस भेल उजोरे॥
कामिनि कोने[4] गढ़ली।
रूप सरूप[5] मोहि कहइते असम्भव
लोचन लागि रहली॥
गुरु नितम्ब भरे[6] चलए न पारए
माझ खीनिम[7] निमाइ[8]।
भाँगि जाइति मनसिजे[9] धरि राखलि
त्रिवलि लता अरुझाइ[10]॥
भनइ विद्यापति अदभुत कौतुक
इ[11] सब वचन सरूपे।
रूपनरायन[12] इ[13] रस जानथि
सिवसिंह[14] मिथिला भूपे॥

न० गु०, प० २१

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या २१)—५ स्वरूप। १४ शिवसिंह।

शब्दार्थ—घटना=रचना। लोचन=आँख। चकित=आश्चर्यित=चौंका हुआ। अमिय=अमृत=जल (पयः कीलालममृतं जीवनं भुवनं वनम्—अमर)। जनि=('जन' का स्त्रीलिंग) स्त्री=नायिका। दह दिस=दस दिशाएँ। उजोरे=(उद्योत—सं०) प्रकाश। कोने=किसने। सरूप=सत्य=यथार्थ। नितम्ब=कमर के नीचे का भाग। माझ=मध्य—सं०। खीनि सनि=समाप्तप्राय। साइ=वह। भाँगि जाइति=टूट जायगी। मनसिजे=कामदेव ने। कौतुक=तमाशा।

सं० अ०—१ चान्द। २ अमिअ। ३ आँचरें। ४ कओने। ६ भरें। ७-८ खीनि सनि माई। ९ मनसिजें। १० अरुझाई। ११ ई। १२ रूपनराओन। १३ ई।

अर्थ—(जान पड़ता है, जैसे विधाता ने) चन्द्रमा का सार (तत्व) लेकर (नायिका के) मुख की रचना की है (और) चकित चकोर से आँखों की।

(इसीलिए) नायिका ने (जब अपने मुख को) पानी से धोकर आँचल से पोंछा (तब) दसो दिशाओ मे उजाला छा गया।

किसने (ऐसी) कामिनी की रचना की? (उसका) यथार्थ रूप कहते मुझे असम्भव लगता है। (अर्थात्—उसके यथार्थ रूप का वर्णन करना मेरे लिए सम्भव नही है। वह तो) आँखों मे लगी रह गई।

गुरु नितम्ब के भार से (वह) चल नहीं सकती है। अरी मैया! (उसका) मध्य (भाग तो) समाप्तप्राय लगता है। (अर्थात् जान पड़ता है कि नायिका का मध्यभाग है ही नहीं।)

(नयिका बीच से ही) टूट जायगी, (इसी भय से) कामदेव ने त्रिवली-रूपी लता मे उलझाकर (उसे) बाँध रखा है।

विद्यापति कहते हैं—अद्भुत तमाशा है, (फिर भी) ये सारी बातें सत्य है।

मिथिला के राजा शिवसिंह रूपनारायण इस रस को जानते है। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[६]

भल भेल दम्पति शैशव[1] गेल।
चरन[2]-चपलता लोचन लेल॥
दुहुक नयन कर दूतक काज।
भूषण[3] भए परिणत भेल लाज॥
आबे[4] अनुखन[5] देअ आँचर हाथ।
बाज[6] सखी सजें[7] नत कए माथ॥
हमे[8] अवधारल[9] सुन सुन कान्ह।
नागर करथु अपन अवधान॥
भँउह[10] धनुषि[11] गुण[12] काजर रेख।
मारति रहत[13] पोख अवसेख॥
रसमय विद्यापति कवि गाब।
राजा शिवसिंह[14] बुझ रस-भाव॥

न० गु०, प० २७

सं० अ०—२ चरण। ५ अनुखन। ७ सजी। १० भउह।

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या १७)—१ सैसव। २ चरण। ३ भूसन। ४ आव। ६ काज। ७ सँय। ८ हूम। ९ अववारलि। ११ धनु। १२ गुन। १३ मार नयन सर पुह्न अवशेख। १४ सिवसिङ्घ।

शब्दार्थ—भल भेल =अच्छा हुआ। दम्पति—पति और पत्नी=नायक और नायिका। शैशव=बचपन। चरन-चपलता=पैरों की चञ्चलता। लोचन=आँख। अनुखन=(अनुक्षण—सं०) सतत। नत कए=नम्र करके=झुकाकर। अवधारल=निश्चय किया। नागर=चतुर नायक। गुण=डोरी। पोख=(पुह्न—सं०) बाण का पुच्छ भाग। अवसेख=छोड़कर।

भावार्थ—अच्छा हुआ, (जो) नायक (और) नायिका का बचपन चला गया। (परिणाम यह निकला कि) पैरों की चंचलता आँखों ने ले ली।

दोनों की आँखें दूत का काम करने लगी। (अर्थात्—आँखों के इशारे से ही दोनों में बातें होने लगीं।) लज्जा आभूषण होकर परिणत हो गई। (अर्थात्—नायिका में लज्जा का आधिक्य हो गया।)

अब (नायिका) सतत आँचल में हाथ दिये रहती है। (अर्थात्—आँचल में हाथ डालकर कुचमण्डल को छिपाये रहती है।) माथा झुकाकर सखियों से बातें करती है।

(सखी कहती है—) हे कृष्ण! सुनो, सुनो। मैंने निश्चय कर लिया (कि अब) नायक (ही) अपना अवधान करें—चेत करे।

(नायिका की) भौंह धनुष है, कज्जल की रेखा डोरी है। (वह) पुह्न को छोड़कर (समूचा बाण=कटाक्ष) मार रही है।

रसमय कवि विद्यापति गाते है (और) राजा शिवसिंह इस रस का भाव समझते है।

[७]

चिकुर निकर तम सम पुनु
आनन पुनिम ससी।
नअन¹ पङ्कज के पतिआओव।
एक ठाम रहु बसी॥

आजे मोजे देखलि वारा।
लुबुध मानस चालक मअन²
कर की परकारा॥

सहज सुन्दर गोर कलेवर
पीन पओधर सिरी।
कनअलता अति विपरित
फलल जुगल गिरी॥

भन विद्यापति बिहिक घटन
के न अदबुद जाने।
राए सिवसिंह रूपनराएन[3]
लखिमा देवि रमाने॥

न० गु०, प० २९

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ३२)—पाठभेद नही है।

शब्दार्थ—चिकुर निकर=केशपाश=बालों का समूह। तम=अन्धकार। आनन=मुख। पुनिम ससी=पूर्णिमा का चन्द्रमा। पङ्कज=कमल। पतिआओब=प्रत्यय करेगा=विश्वास करेगा। ठाम=(स्थाम—स०) स्थान। बारा=बाला। मानस=मन। मअन=(मदन—स०) कामदेव। परकारा=(प्रकार—स०) उपाय। कलेवर=शरीर। पीन=पुष्ट। पओधर=(पयोधर—सं०) स्तन। सिरी=(श्री—सं०) शोभा। क़नअलता।=(कनकलता—सं०) सोने की लता। विपरित=नियमविरुद्ध। जुगल=दो। गिरी=पर्वत। बिहिक=विधाता की। घटना=रचना। अदबुद=अद्भुत।

अर्थ—(नायिका का) केशपाश अन्धकार के समान, मुख पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान (और) आँखे कमल के समान है। कौन विश्वास करेगा कि अन्धकार, चन्द्रमा और कमल एक स्थान मे वस रहे हैं।

आज मैंने बाला (नायिका) को देखा। (देखते ही मेरा) मन लुभा गया। (कारण,) कामदेव (मन को) चलानेवाला था (तो मैं) कौन उपाय करता?

(उसके) सहज-सुन्दर गोरे शरीर में पुष्ट पयोधर की शोभा (ऐसी जान पड़ती है, जैसे) सोने की लता मे अत्यन्त नियम विरुद्ध दो पर्वत फले हैं।

विद्यापति कहते है—कौन नही जानता कि विधाता की रचना अद्भुत होती है। लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह रूपनारायण (इसे समझते हैं।)

सं० अ०—१ नअन। २ मअन। ३ रूपनराअेन।

[८]

अमिअक[1] लहरी वम अरविन्द।
विद्रुम पल्लव फूलल कुन्द॥
निरवि[2] निरवि[3] मोजें[4] पुनु पुनु हेरु।
दमनलता पर देखल सुमेरु॥
साँच कहओं[5] मोजें[6] साखि अनङ्ग।
चान्दक मण्डल यमुना[7] तरङ्ग॥
कोमल कनंककेआ मुति पात।
मसि लए मदने लिखल निज बात॥
पढ़हि न पारिय[8] आखर पाति[9]।
हेरइते[10] पुलकित हो तनु काति[11]॥
भनइ विद्यापति कहओं[12] बुझाए।
अरथ असम्भव के पतिआये[13]॥

न० गु०, प० ३०

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या २३१)—४ मैं। ५ कहओं। ६ मै। ७ जमुना। ८ पारिअ। ९ पाँति। १० हेरइत। ११ काँति। १२ कहओं। १३ पतिआए।

शब्दार्थ—अमिअक=अमृत की। लहरी=लहर=तरंग। वम=उगिल रहा है। अरविन्द=कमल। विद्रुम=प्रवाल=मूँगा। निरवि निरवि=आँखें फाड़-फाडकर। हेरु=देखा। दमनलता= द्रोणलता—सं०। साखि=साक्षी— स०। अनङ्ग=कामदेव। कनककेआ=(कनक-कदली—सं०) चम्पा केला। मुति पात=(मुक्तिपत्र—सं०) आदेशपत्र। मसि=(मसी—सं०) स्याही। आखर=अक्षर। पाँति=पक्ति। आखर पाँति=अक्षरों की पक्ति। पतिआए=विश्वास करेगा।

अर्थ—कमल (मुख) अमृत की लहर उगल रहा था। (अर्थात्—नायिका के मुखारविन्द से अमृत के समान वचन निकलते थे।) प्रवाल के पल्लव (अधर) में कुन्द (दाँत) फूले हुए थे। (अर्थात—नायिका के अधर प्रवाल-पल्लव के समान और दाँत कुन्द फूल के समान थे।)

सं० अ०—१ अमिअक। २-३ निररि निररि। ५ कहओ। ८ पारिअ। ९ पाँति। ११ काँति। १३ पतिआए।

मैंने आँखे फाड़-फाड़कर वार-वार देखा। (सो, ऐसा जान पड़ा, जैसे) द्रोणलता के ऊपर सुमेरु देखा है। (अर्थात्—नायिका के द्रोणलता के समान सुकुमार शरीर पर सुमेरु के समान दो विशाल स्तन दिखलाई पड़े।)

(दूती कृष्ण से कहती है—)' मैं सत्य कहती हूँ, कामदेव साक्षी है, चन्द्रमण्डल मे यमुना लहरा रही थी। (अर्थात्—नायिका के चन्द्रमा के समान मुख मे यमुना की लहर के समान काले केश थे।)

कामदेव ने चम्पा केला के कोमल (और) मोती के समान (चमकते) पत्ते पर स्याही लेकर अपनी वात लिख दी। (अर्थात्—नायिका के उदर-प्रदेश मे रोमावली कामदेव की लिखावट-सी जान पड़ती थी।)

(किन्तु कोई उन) अक्षरों की पक्ति को पढ़ नही सकता है। (फिर भी, उसके) शरीर की शोभा को देखते ही प्रसन्न हो जाता है।

विद्यापति कहते है (कि यद्यपि) मैं समझाकर कहता हूँ, (तथापि इस) असम्भव अर्थ (विषय-वस्तु) का कौन विश्वास करेगा? (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[९]

कामिनि करए सनाने।
हेरितहि हृदय हनए पचवाने।
चिकुर गरए जलधारा।
जनि मुख ससि डरे रोअए अन्धारा॥
कुच जुग चारु चकेवा।
निअ कुल मिलत आनि कौने देवा॥
ते सङ्काने भुज पासे।
बाँधि धयल उड़ि जाएत अकासे॥
तितल बसन तनु लागू।
मुनिहुक मानस मनमथ जागू॥
भनइ विद्यापति गावे।
गुनमति धनि पुनमत जन पावे॥

न० गु०, प० ३७

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अतः, इसके लिए प्रथम भाग का १९८ सख्यक पद देखिए।

[१०]

लोचन चपल वदन सानन्द।
नील नलिनि दले[1] पूजल चन्द॥
पीन पयोधर रुचि उजरी।
सिरिफले फलिल कनक मजरी[2]॥
गुनमति रमणी[3] गजराज गती।
देखलि मोजें[4] जाइतें[5] वर जुवती॥
गरुअ नितम्ब उपर कुच भार।
भाँगिवाके चाहए थेघिवा के पार॥
तनु रोमावलि देखिए[6] न[7] भेलि।
निज धनु मनमथे थेघ[8] न[9] देलि॥
सम्भ्रम सकल सखीजन बारि।
पेम बुझओलक पलटि निहारि॥
आओर चतुरपन कहहि न जाए।
नयने[10] नयन मिलि रहलि नुकाए॥
तखन सञो[11] चाँद चँदन न सोहाव।
अबोध नअन[12] पुनु तठमाहि धाव॥

न० गु०, प० ४७

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ८२५)—२ मंजरी। ३ रमनी। ४ मोयें। ५ जाइत। १० नयन। ११ सयें। १२ नयन।

शब्दार्थ—लोचन=आँख। चपल=चञ्चल। वदन=मुख। नलिनि=कमल। पीन=पुष्ट। उजरी=(उज्ज्वल—सं०) उजली। सिरिफले=(श्रीफल—सं०) बेल। कनक मजरी=सोने की मंजरी। गरुअ=(गुरुक—सं०) बड़ा। नितम्ब=कमर से नीचे पीछे का भाग। कुच=स्तन। भाँगिवा-के चाहए=टूटना चाहती है। थेघिवा के पार=कौन अवलम्ब दे सकता है। तनु=पतली। एन=एना=('अइसन' का संक्षिप्त रूप) ऐसी। थेघन=अवलम्ब। सम्भ्रम=शीघ्र। वारि=बचाकर। तठमाहि=उसी स्थान मे=वही।

सं० अ०—१ नलिनिदलें। ६-७ देखि एन। ८-९ थेघन। १२ नअन।

अर्थ—(नायिका की) आँखे चञ्चल हैं (और) मुख प्रसन्न है। (दोनो को साथ देखकर ऐसा जान पड़ता है, जैसे) नील कमल की पँखुड़ियों से चन्द्रमा पूजा गया है।

(उसके) स्तन पुष्ट हैं (और) कान्ति उज्ज्वल है। (जान पड़ता है, जैसे) सोने की मंजरी मे बेल फले हैं।

मैंने गजराज के समान चलनेवाली (और) युवतियों मे श्रेष्ठ गुणवती रमणी को जाते देखा।

(उसके) गुरु नितम्ब के ऊपर (पीन) पयोधर का भार है। (इसीलिए, वह बीच से) टूटना चाहती है। (उसे) कौन अवलम्ब दे सकता है?

(किन्तु उसकी) पतली रोमावली को देखकर ऐसा जान पड़ता है, (जैसे) कामदेव ने अपने धनुष का अवलम्ब दिया है।

(उसने) शीघ्र (झटपट) सारे सखीजनो को बचा, मुड़ करके देखकर (अपना) प्रेम समझाया (दरसाया।)

(उसकी) और चतुराई नहीं कही जाती। आँखो से आँखे मिलते ही (वह) छिप गई।

तबसे (मुझे) चन्द्रमा (और) चन्दन (भी) नही सुहाता है। (मेरी) अबोध आँखें वही दौड़ती हैं। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[११]

अलखिते हमे हेरि विहुँसलि थोर।
जनि रयनि भेल चाँद उजोर॥
कुटिल कटाख लाट पड़ि गेल।
मधुकर डम्बरें अम्बर देल॥
काहिक सुन्दरि के ताहि जान।
आकुल कए गेलि हमर परान॥
लीला कमले भमर धरु वारि।
चमकि चललि गोरि चकित निहारि॥
तें भेल वेकत पयोधर शोभ।
कनय कमल हेरि काहीं न लोभ॥
आध नुकायलि आध उदास।
कुचकुम्भें कहि गेल अपनक आस॥

से सवे अमिल निधि[10] दए गेलि सन्देस।
किछु नहि रखलन्हि रस परिसेस॥
भनइ विद्यापति दुहु मन जागु।
विसम कुसुमशर[11] काहु जनु लागु॥

न० गु०, प० ४९

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या २३०)—२ डम्बर। ३ भेल। ४ तें। ६ काहि। ८ कुचकुम्भ। १० नीधि।

शब्दार्थ—अलखिते=(अलक्षिते—सं०) अनजाने ही। रयनि=(रजनी—सं०) रात। उजोर=(उद्योत—सं०) प्रकाश। लाट=अनुप्रास=आवृत्ति। डम्बरे=आडम्बर=विस्तार। अम्बर=आकाश। लीलाकमले=क्रीडा के लिए हाथ मे लिये हुए कमल से। वारि=निवारण करके। शोभ=सुन्दर। कनय=(कनक—सं०) सोना। उदास=(उदवास—स०) वस्त्रहीन। अमिल=दुष्प्राप्य। निधि=खजाना। परिसेस=(परिशेष—सं०) अवशेष।

अर्थ—अनजाने ही (उसने) मुझे देखकर थोड़ा हँस दिया। (सो, ऐसा जान पड़ा,) जैसे रात मे चन्द्रमा का प्रकाश हो गया।

(उसके) कुटिल कटाक्ष की आवृत्ति होने लगी। (अर्थात्—वह बार-बार कुटिल कटाक्ष से मुझे देखने लगी। सो, ऐसा जान पड़ा, जैसे) आकाश में भौंरों ने आडम्बर दे दिया (अर्थात्—आकाश मे भौरे छा गये।

(वह) किसकी सुन्दरी है? कौन उसे जानता है? (अर्थात्—यह मैं नही जानता हूँ; किन्तु वह) मेरे प्राण को व्याकुल करके चली गई।

लीला-कमल से भौंरों का निवारण करके चौंकती हुई (वह मुझे) देखकर चमकती हुई चली गई।

इसीलिए (उसके) सुन्दर स्तन प्रत्यक्ष हो गये। (सो,) सोने का कमल देखकर किसे लोभ नही होता है?

(उसके) आधे स्तन छिपे थे (अर्थात्—वस्त्र से ढके थे और) आधे वस्त्रहीन थे। (इस प्रकार उसके) कुच-कुम्भ अपनी आशा कह गये (अर्थात्—अपने मिलन की आशा जता गये।)

वे सभी (अर्थात्—मन्द हास्य, कुटिल कटाक्ष और अर्द्धस्फुट स्तन) दुष्प्राप्य खजाने का सन्देशा दे गये। कुछ भी रस का अवशेष नही रखा।

विद्यापति कहते हैं कि दोनों के (मन दोनों के लिए) जग गये (अर्थात्—सजग हो गये। भला हो कि) निर्दय कामदेव किसी को न लगे (अर्थात्—किसी का पीछा नही करे।)

सं० अ०—१ रजनी। ४ तबे। ५ स.न। ६ काहि। ७ नुकाएल। ८ कुचकुम्भें। ९ अपनुकि। ११ कुसुमसर।

[१२]

अम्बर बिघटु अकामिक कामिनि
करे[1] कुच झाँपु सुछन्दा।
कनक सम्भु सम अनुपम सुन्दर
दुइ पङ्कज दश[2] चन्दा॥
कत रूप कहब बुझाईं[3]।
मन मोर चञ्चल लोचन बिकलें[4]
ओओ[5] अनइते जाईं[6]॥
आड़ बदन कए मधुर हास दए
सुन्दरि रहु सिर लाईं[7]।
अओंधा[8] कमल कान्ति नहि पूरए
हेरइत जुग बहि जाईं[9]॥
भनइ विद्यापति सुन वर जौवति[10]
पुहवी नब पचबाने[11]।
राजा सिवसिंह[12] रूपनराएन[13]
लखिमादेवि[14] रमाने॥

न० गु०, प० ५०

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ३९)—२ दस। ३ बुझाइ। ५ ओ ओ। ६ जाइ। ७ लाइ। ८ अओंधा। ९ जाइ। १० जउवति। १२ सिवसिंघ। १३ रूपनरायन। १४ लखिमा देइ।

शब्दार्थ—अम्बर=वस्त्र। बिघटु=विघटित हो गया=अपने स्थान से हट गया। अकामिक=अकस्मात्। करे=हाथ से। कुच=स्तन। सुछन्दा=सुडौल। कनक=सोना। पङ्कज=कमल। कत=कितना। रूप=सौन्दर्य। ओहि=उसे। अनइते=अन्यत्र—स०। आड़=ओट। वदन=मुँह। लाई=नवाकर। अओंघा=उलटकर रखा। कान्ति=शोभा। बहि जाई=बीत जाता है। पुहवी=पृथ्वी। पचबाने=(पञ्चबाण—स०) कामदेव।

सं० अ०—१ करें। २ दस। ४ विकलेओ। ५ ओहि। ७ नाई। ८ अओघा। १० वरजउवति। ११ पँचबाने। १३ रूपनराणेन।

अर्थ—अकस्मात् वस्त्र अपने स्थान से हट गया (तो) कामिनी ने हाथों से (अपने) सुडौल स्तन ढक लिये।

(ढकने पर) दो कमल (हाथ) (और) दस चन्द्रमा (नख) से (ढके) सोने के शिव के समान (वे) अनुपम सुन्दर (दीख पड़े)।

(उसका) सौन्दर्य कितना समझाकर कहूँगा? उसके अन्यत्र जाते ही मेरा मन चचल (और) आँखें भी विकल हो गई।

सुन्दरी मुंह को ओट करके, मीठी हँसी हँसती हुई सिर झुकाकर रह गई।

(इसीलिए मेरा मन भरा नहीं। कारण,) देखते हुए युग बीत जाय (फिर भी) उलटकर रखा कमल पूरी शोभा नहीं बिखेरता है।

विद्यापति कहते हैं—अरी वरयुवती! सुनो। लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह रूपनारायण पृथ्वी के अभिनव कामदेव हैं। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[१३]

सहजहि आनन सुन्दर रे
भँउह सुरेखलि आँखि।
पङ्कज मधु पिबि मधुकर रे
उड़ए पसारए पाँखि॥
ततहि धाओल दुहु लोचन रे
जतहि गेलि वर नारि।
आसा लुबधल न तेजए रे
कृपनक पाछु भिखारि॥
इङ्गित नयन तरङ्गित देखल
बाम भउँह भेल भङ्ग।
तखने न जानल ते सरे (रे)
गुपुत मनोभव रङ्ग॥
चन्दने चरचु पयोधर (रे)
गृम गज मुकुता हार।
भसमे भरल जनि शङ्कर (रे)
सिर सुरसरि जलधार॥

वाम चरण अनुसारल (रे)
दाहिन तेजइते लाज।
तखन मदन सरे पूरल (रे)
गति गञ्जए गजराज॥
आज जाइते पथ देखलि रे
रूपे रहल मन लागि।
तेहि खन सओ गुन गौरव रे
धैरज गेल भागि॥
रूप लागि मन धाओल रे
कुच कञ्चन गिरि साँधि।
तें अपराधे मनोभव रे
ततहि धएल जनि बाँधि॥
विद्यापति कवि गाओल रे
रस बूझ (ए) रसमन्ता।
रूपनरायन नागर रे
लखिमा देविक सुकन्ता॥

न० गु०, प० ५२

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' में भी है। अतः, इसके लिए प्रथम भाग का ७४ संख्यक पद देखिए।

[१४]

दए गेलि सुन्दरि दए गेलि रे
दए गेलि दुइ दिठे मेरा।
पुनु मन कर ततहि याइअ
देखिअ दोसरि बेरा॥

सार चुनि चुनि हार ये गाँथल
केवल तारा जोती।
अवर रूप अनूपम सुन्दर
चान्दे परीहलि मोती॥
भमर मधु पिबि पिबि मातल
शिशिरे भीजल पारखी।
अलपे काजरे नयन आँजल
ननुमि देखिय आँखि॥
कते जतने दूती पठाओल
आनय गुया पान।
सगरे रजनी बइसि गमाओल
हृदय तसु पखान॥
भन विद्यापति सुनह नागर
ओ नहि ओ रस जान।
राजा सिवसिंह रूपनराएन
लखिमा देवि रमान॥

न० गु०, प० ५४

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अतः, इसके लिए प्रथम भाग का २०२ संख्यक पद देखिए।

[१५]

आज कन्हाइ ऍ बाटे आओव[1]
वुझए न पारलि[2] वेला।
विधिक घटनें[3] भेल अकामिक
लोचनें[4] लोचनें[5] मेला॥

सं० अ०—१ आओल।

नव कलेवर निज पराभव[6]
थम्भ भेल बिनु काजे।
दरसन रस रभस लीला
लोभे गरासलि लाजे॥

सुन्दरि रे मन्दिर बांहर भेली।
बिजुअ रेह जलधर नाबी
पुनु कइसे नुकि गेली॥

न० गु०, प० ५८

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ८२७)— २ पारल। ३ घटन। ४ लोचन। ५ लोचन।

शब्दार्थ—एँ वाटे=इस रास्ते। बुझए न पारलि=समझ नही सकी। बेला=समय। विधिक=विधाता के। घटने=योजना से=विधान से। अकामिक=अचानक। लोचने=आँखों से। मेला=मिलन। कलेवर=शरीर। थम्भ=(स्तम्भ—सं०) जड़=सज्ञाहीन। विनु काजे=विना प्रयोजन का। रस रभस लीला लोभे=प्रेममिलन-रूपी केलि के लोभ को। बिजुअ रेह=बिजली की रेखा। जलधर=मेघ। नाबी=समान। नुकि गेली=छिप गई।

अर्थ—आज कृष्ण इस रास्ते आये; (किन्तु मैं उनके आने का) समय नही जान पाई। विधाता के विधान से (दैवयोग से) अचानक आँखो से आँखें मिल गईं (अर्थात्—आँखे लड़ गई।)

(आँखे लड़ जाने से जो) अपना अनादर हुआ, (उससे) निष्प्रयोजन (मेरा) अभिनव शरीर सज्ञाहीन हो गया। लज्जा ने (उनके) दर्शन से (उत्पन्न) प्रेममिलन-रूपी केलि के लोभ को ग्रस लिया (अर्थात्—लाज के मारे मैं उनसे मिल नही सकी।)

(सखी पूछती है—) अरी सुन्दरी! (यदि) घर से बाहर हो गई (तो) फिर मेघ मे बिजली की रेखा के समान कैसे छिप गई? (अर्थात्—कृष्ण को जी-भर देख क्यो नही लिया?) (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[१६]

जमुनक[1] तिरे तिरे साँकड़ि बाटी
उबटि न भेलिहु[2] सङ्ग परिपाटी।

सं० अ०—६ पराभवें।

सं० अं०—१ जमुनाक। २ भेलिहुँ।

तरु तर भेटल तरुन कन्हाइ
नयन तरङ्गे[3] जनि गेलिहु[4] सनाइ ।।
के पतियाएत[5] नगर भरला
देखइते सुनइते मोर हृदय हरला।
पलटि न हेरल गुरुजन लाजे
वचन मोजे चुकिलिहु[6] सखिन्हि समाजे ।।
एत दिन अछलिहु[7] अपने गेयाने[8]
आबे मोरा मरम लागल पचबाने[9]।
निठुर सखी[10] बिसवास न देइ
परक वेदन पर बाटि[11] न लेइ ।।
भनइ विद्यापति एहु रस भाने[12]
राए सिवसिंह लखिमा देइ[13] रमाने ।।

न० गु०, प० ६३

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ३३)—५ पतियाइत। १० सखि।

शब्दार्थ—सांकड़ि=सकीर्ण—स०। बाटी=पगडडी। उबटि=ऊबड़-खाबड़ रास्ता। परिपाटी=रीति=सिलसिला=कायदा। जनि=जैसे। सनाइ=स्नात हो गई=नहा गई। पतिआएत=विश्वास करेगा। मरम=(मर्म—स०) शरीर का वह भाग, जहाँ चोट लगने से अधिक पीडा हो। परक=दूसरे का। वेदन=दुख।

अर्थ—यमुना के किनारे-किनारे सकीर्ण पगडण्डी थी। (इसीलिए मैं) ऊबड़ खाबड़ रास्ते में कायदे से (सखियों के) साथ नही हो सकी। (अर्थात्—सखियों का सग छूट गया। मैं अकेली हो गई।)

पेड़ के नीचे तरुण कृष्ण मिल गये। (फिर क्या था? उनकी) आँखों की लहर से जैसे (मैं) नहा गई।

समूचे नगर में कौन विश्वास करेगा (कि देखते-सुनते ही उन्होने) मेरा हृदय हर लिया।

सं० अ०—३ तरङ्गें। ४ गेलिहुँ। ५ पतिआएत। ६ चुकिलिहुँ। ७ अछलिहुँ। ८ गेआने। ९ पँचबाने। ११ बाँटि। १२ जाने। १३ दे।

मैंने लज्जावश पलटकर गुरुजनों को भी नही देखा। सखियो के समाज मे (भी) मैं (अपना) वचन चूक गई।

इतने दिनों तक (मैं) अपने ज्ञान मे थी; (किन्तु) अब मेरे मर्म (स्थल) मे कामदेव लग गया। (अर्थात्—अब मैं कामदेव के वश मे हो गई।)

निष्ठुर सखियाँ (भी) विश्वास नही देती (कि कृष्ण से मिलन होगा!) दूसरे का दुख दूसरा बाँट (भी) नही लेता है।

विद्यापति कहते है—लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह रूपनारायण इस रस को जानते है। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[१७]

अवनत आनन कए हमे[1] रहलिहु[2]
बारल लोचन चोर।
पिया[3] मुखरुचि पिबए[4] धाओल
जनि से चाँद चकोर॥
ततहु सञो[5] हठें[6] हरि[7] मोञे आनल[8]
धएल चरन राखि।
मधुक मातल उड़ए न पारए
तइअओ पसारए पाँखि॥
माधवे बोललि मधुर बानी
से सुनि मुदु[9] मोञे कान।
ताहि अवसर ठाम वाम भेल
धरि धनु पचबान[10]॥
तनु पसेवें[11] पसाहनि भासलि
तइसन[12] पुलक[13] जागु।
चुनि चुनि भए काँचुअ फाटलि
बाहु बलआ भागु॥

सं० अ०—२ रहलिहुँ। ३ पिआ। ४ पीबए। ६ हठें। ८ आनल। ९ मुंदु। १० पँचबान। ११ पसेवेँ।

भन विद्यापति कम्पित कर हो
बोलल बोल न जाय[14]।
राजा सिवसिंह[15] रूपनरायन[16]
साम सुन्दर काय[17]॥

न० गु०, प० ६४

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ३४)—१ हम। ५ सजे। ७ हटि। १२-१३ पुलक तइसन। १५ सिवसिंघ। १६ रूपनराअन।

शब्दार्थ—आनन=मुख। बारल=निवारण किया। लोचन=आँख। मुखरुचि=मुखच्छवि=मुख की शोभा। चरन=पैर। मुदु=मूँद लिया। ठाम=(स्थाम—सं०) स्थान मे। वाम=विरुद्ध=निर्दय। तनु=सरीर। पसेवे=(प्रस्वेद—सं०) पसीने से। पसाहनि=प्रसाधन—सं०। भासलि=दह गई। पुलक=प्रसन्नता=हर्ष। चुनि चुनि भए=चिथडा-चिथड़ा होकर (मसककर)। काँचुअ=कञ्चुकी—सं०। बलआ=(वलय—स०) कंकण। भागु=टूट गया। कर=हाथ।

अर्थ—(साक्षात्कार होने पर लज्जावश) मै मुख को अवनत करके रह गई। नेत्र-रूपी चोर का निवारण किया।

(फिर भी) वह (नेत्र) स्वामी के मुख की शोभा पीने के लिए दौड़ चला, जैसे चकोर चन्द्रमा (की शोभा पीने के लिए दौड़ता है।)

वहाँ से भी (उसे) मै जबरदस्ती हरकर ले आई (और अपने) पैरों पर रख छोड़ा। (अर्थात्—स्वामी की ओर से आँखे हटाकर मैं अपने पैरो की ओर देखने लगी।)

मधु का मतवाला (मधु पीकर मतवाला भौरा) उड़ तो नही सकता, फिर भी पाँखें (जरूर) फैलाता है। (अर्थात्—स्वामी के प्रेम से उन्मत्त मेरे नेत्र उनकी ओर उन्मुख तो नही होते है; किन्तु उन्मुख होने का यत्न अवश्य करते हैं।)

कृष्ण ने मीठी बात कही (अर्थात्—कृष्ण ने रति की याचना की।) उसे सुनकर मैंने (अपने) कान मूँद लिये।

उस अवसर पर, उस स्थान मे, कामदेव धनुष धारण करके (मेरे लिए) निर्दय हो गया। (अर्थात्—मुझे कामदेव पीडा देने लगा।)

(फिर तो) वैसी प्रसन्नता हुई कि शरीर के पसीने से प्रसाधन दह गया।

सं० अ०—१४ जाए। १५ रूपनराअन। १७ काए।

(रोमाच के कारण) कञ्चुकी चिथड़ा-चिथड़ा होकर (मसककर) फट गई और हाथ का कँगना टूट गया।

विद्यापति कहते है--(नायिका के) हाथ कांपने लगे, (उससे कुछ) कहा नही जाता था।

कृष्ण के समान सुन्दर शरीरवाले राजा शिवसिंह रूपनारायण (इस रस को समझते हैं।)

[१८]

बिके[1] गेलिहुँ माथुर[2]
मधुरिपु भेटल साथे।
तहि खने पञ्चसर लागल
विधिबसे के करु वाधे॥

हार भार भेल तहि खने
चीर चाँदन भेल आगी।
दखिनओं[4] पवन दुसह भेल
मोहि पापिनि वध लागी॥

कतने जतने घर अएलाहु
के कर दधि दुध काजे।
मनहु न मधुरिपु बिसरिअ
तेजल गुरुजन लाजे॥

भनइ विद्यापति सुवदनि
दुइ दिठे होएत समाजे।
मनक मनोरथ पूरत
मधुरिपु आओब आजे॥

न० गु०, प० ६६

सं० अ०—१ विकनए। २ माथुरपुर। ४ दखिनाओ।

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या २४१)—२ माथुर। ३ साथे।

शब्दार्थ—बिकनए=बेचने के लिए। माथुर=मथुरा। मधुरिपु=श्रीकृष्ण। साधे=(साध्य—सं०) अभिलषित। तहि खने=(तत्क्षण—स०) उसी समय। पञ्चसर=कामदेव। विधिबसे=दैवयोग=विधि-विधान। चीर=वस्त्र। दिठे=(दृष्टि—सं०) आँख। समाजे=सम्मिलन।

अर्थ—(दही) बेचने के लिए (मैं) मथुरा गई। (वहाँ) अभिलषित कृष्ण मिल गये। उस समय (मुझे) कामदेव लग गया। (अर्थात्—मुझे कामदेव सताने लगा)। विधाता के विधान को कौन रोक सकता है?

उस समय (गले का) हार (भी) भार हो गया। वस्त्र (और) चन्दन (भी) आग हो गये (आग के समान प्रतीत होने लगे।) मुझ पापिनी के वध के लिए दक्षिण पवन भी दुस्सह हो गया।

कितने यत्न से (मैं) घर आई। (अब) दही-दूध का काम कौन करे? मन से श्रीकृष्ण भुलाते ही नहीं। (मैंने) गुरुजनों की लज्जा (भी) छोड़ दी।

विद्यापति कहते हैं—सुवदने! दोनों की आँखों का सम्मिलन होगा। आज श्रीकृष्ण आयेंगे—मन का मनोरथ पूर्ण होगा।

[१९]

कत न बेदन मोहि देसि मदना।
हर नहि बाला मोहि जुवति जना॥
विभूति भूषन नहि चान्दनक रेनू।
बाघछाल नहि मोरा नेतक बसनू॥
नहि मोरा जटाभार चिकुरक बेनी।
सुरसरि नहि मोरा कुसुमक सेंनी॥
चान्दनक बिन्दु मोरा नहि इन्दु गोटा।
ललाट पावक नहि सिन्दुरक फोटा॥
नहि मोरा कालकूट मृगमद चारु।
फनिपति नहि मोरा मुकुताहारु॥

भनइ विद्यापति सुन देव कामा।
एक पए दूषन अछ ओहि नामक वामा॥

न० गु०, प० ६९

विशेष—यह पद 'रागतरङ्गिणी' में भी है। अतः इसके लिए 'रागतरङ्गिणी' मे प्राप्त १८ संख्यक पद देखिए।

[२०]

एहि बाटे[1] माधव गेल रे।
मोहि किछु पुछिओ न भेल रे॥
माधुर[2] जाइत[3] जमुना तीर रे।
आन्तर भेटल अहीर रे॥
नअनहु[4] नयन[5] जुझाए रे।
हृदय[6] न भेल बुझाए रे॥
मोहि छल होएत रतिरङ्ग रे।
मधुर मधुरपति सङ्गे[7] रे॥
चिकुर न भेल सँभारि रे।
बुझलिहु[8] कान्हें[9] गोआरि रे॥

न० गु०, प० ७२

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ८२८)—२ माथुर। ४ नयनहु। ६ हृदये।

शब्दार्थ—माधुर=मथुरा। आन्तर=(अन्तर—स०) बीच में। अहीर=(आभीर—स०) गोप=कृष्ण। जुझाए=जूझ गई=लड़ गई। बुझाए भेल=समझा सकी। मधुर=प्रिय। चिकुर=केश। गोआरि=ग्वालिन=मूढ।

अर्थ—श्रीकृष्ण इसी मार्ग से गये; (किन्तु) मुझसे कुछ पूछा भी नही जा सका। (अर्थात्—मैं लजाकर रह गई, कुछ पूछ भी नही सकी।)

सं० अ०—१ बाटँ। २ पाठाभाव। ३ जाइते। ४ नअनहुँ। ५ नअन। ६ हृदअ। ७ सङ्ग। ८ बुझन्हिल। ९ कान्ह।

मथुरा जाते हुए, यमुना के तीर पर, बीच मे ही श्रीकृष्ण मिल गये।

आँखों से आँखें लड़ गई ; (किन्तु मैं) हृदय को समझा नही सकी। (अर्थात्—श्रीकृष्ण के दर्शन से (मेरी आँखें तो जुड़ा गईं; किन्तु मेरे हृदय को सन्तोष नही हुआ।)

मुझे (विश्वास) था कि प्रिय श्रीकृष्ण के साथ रतिरग होगा।

(मुझसे) केश (भी) नही सँभाले जा सके। श्रीकृष्ण ने (मुझे) गँवारिन समझ लिया। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[२१]

जखने दुहुक दीठि बिछूड़लि
दुहु मने दुख लागु।
दुहुक आसा दीप मिझाएल
मदन आँकुर भाँगु॥
विरह दहन दुहु सँताबए
दुहु समीहए मेली[1]।
एकक हृदय अओके[2] न पाओल
तें[3] नहि फाउलि केली॥
बाम[4] नयना[5] जओ भेल दूते
ओ दाहिन रहु लजाइ।
चेतन चेतन गुपुति पिरिति
पर कहहु न जाइ॥
जइ नवचन्द पुरन्दर अन्तर
चन्द न तासु समाने।
दसमि दसा पथ[6] अँगिरओ
न करओ तेसर काने॥
मोहन सर मनोभवे[7] साजल
तनु पसाहल आगी।

सं० अ०—४ बामा। ५ नयन। ६ पए। ७ मनोभवें।

बिनु अवसरें की सखि बोलति
पुनु दरसन लागी॥
सीतलि उकुति जेहो जुगुति
समदल छल आने[9]।
अब सआँना[10] जानि कन्हाइ[11]
मानि हल धनि धाने॥
दप्पन मुख प्रतिबिम्ब नाओ
बेकत भेल विकारे।
पुनुक आसा काम पुराबओ
भने कवि कण्ठहारे॥
हरि सरीरे जगत जानिअ
रूपनरायन[12] रन्ता।
राए सिवसिंह[13] सुचिरे जीवओ
लखिमा देवि[14] सुकन्ता॥

न० गु०, प० ७५

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ४१)—१ मेलि। २ अओक। ३ तें। ८ अवसर। १३ सिव-सिंघ। १४ देवी।

शब्दार्थ—जखने=(यत्क्षणे—सं०) जभी। दीठि=दृष्टि। मिझाएल=बुझ गये। विरह दहन=विरहाग्नि। सँतावए=सन्तप्त करने लगी। समीहए=इच्छा करने लगे। मेली=मिलन। हृदय=मन। अओके=दूसरे ने। ते=इसीलिए। फाउलि=फब सकी। चेतन=चेतनायुक्त=विचारवान्। गुपुति=गुप्त। पर=दूसरे को। जइ=यदि—स०। नवचन्द=द्वितीया का चन्द्रमा। पुरन्दर=इन्द्र। तासु=उसके। दसमि दसा=मृत्यु। अँगिरबो=अंगीकार करूँगी। मनोभवे=कामदेव ने। तन=शरीर। पसाहल=फैला दी=लगा दी। आगी=आग। दरसन लागी=दर्शन के लिए। उकुति=उक्ति—सं०। जेहो=जो भी। जुगुति=युक्ति। समदल छल=सवाद दिया था। आने=(अन्य—सं०) दूसरे के द्वारा। सअना=(सज्ञान—सं०) सयानी। मानि=मानकर। हल=थे। धाने=(संनिधाने—सं०) समीप।

सं० अ०—९ आने। १० सआना। ११ कन्हाई। १२ रूपनराअेन।

दप्पन=दर्पण—सं०। नावी=(न्याय—स०) समान। विकारे=वासना। पुनक=फिर दुवारे की। रन्ता=रमण करनेवाला।

अर्थ—जभी दोनों की आँखे बिछड़ गईं, (तभी) दोनों के मन मे दु.ख होने लगा।

दोनों के आशा-दीप बुझ गये,—मदनांकुर टूट गया।

विरहाग्नि दोनों को सताने लगी। (इसीलिए) दोनों मिलन की इच्छा करने लगे।

एक का मन दूसरे ने नही पाया। इसीलिए, केलि नही फब सकी (हो सकी)।

यदि बायाँ नेत्र दूत हुआ, तो दाहिना लजाकर रह गया। (अर्थात्—नायिका लज्जावश दोनों आँखे खोलकर नायक को अच्छी तरह देख भी नही सकी।)

विचारवान् के साथ विचारवान् की प्रीति गुप्त (ही रहती है।) दूसरे से कही भी नही जा सकती है।

यदि द्वितीया का चन्द्रमा (वन्दनीय है, तो भी) इन्द्र से अन्तर है। चन्द्रमा उसके समान नही हो सकता है। (अर्थात्—यद्यपि मैं सुन्दरी हूँ, तथापि श्रीकृष्ण के समान नही हूँ।)

(मैं) मृत्यु अंगीकार करूँगी; पर तीसरे के कानों मे नहीं करूँगी। (अर्थात्—विरहाग्नि में जलकर मैं मर जाऊँगी, पर अपना प्रेम तीसरे को नही जनाऊँगी।)

कामदेव ने सम्मोहन-बाण सजाया। (उसने मेरे) शरीर मे आग लगा दी।

(यदि अभी मैं श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए चल पड़ती हूँ, तो) विना अवसर के दर्शन के लिए सखियाँ क्या कहेगी?

दूसरे के द्वारा युक्ति से (उसने) जो भी शीतल उक्ति कहला भेजी थी,

(उससे) कृष्ण (उसे) सयानी समझकर—अब उसके समीप में थे।

(फिर तो) दर्पण में मुख के प्रतिबिम्ब के समान वासना व्यक्त हो गई।

कविकण्ठहार (विद्यापति) कहते है—फिर दूसरी बार की आशा कामदेव पूरा करे।

संसार जानता है कि रमण करनेवाले रूपनारायण शरीर से श्रीकृष्ण हैं। (अर्थात्—शिवसिंह श्रीकृष्ण के ही अवतार हैं।)

लखिमा देवी के स्वामी राजा शिवसिंह चिरकाल-पर्यन्त जीये। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[२२]

आइलि निकट बाटे छुइलि[1] मदन साटे
दृढ़ बान्धे दरसिल केस।
रमन भवन बेरि पलटि पाछु हेरि
आलि[1] दिठि दए गेलि सन्देस॥

सं० अ०—२ आड़ि।

आओर कि करति सखि परिनत ससिमुखि
कान्ह[3] जदि न बूझ बिसेस।।
आँचर[4] धरइते[5] करे लउलि लाज भरे
नमइते[6] मुखेरि[7] उपाम।
न जानओ कमन[8] जओ कमल नाल सओ
कमल ममोलल[9] काम।।
कवि[10] भने[11] विद्यापति अभिनव रतिपति
सकल कला रस जान।
राजबलभ जिबओ मति सिरि महेसर
रेणुक[12] देवि रमान।।

न० गु०, प० ७६

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या २२०)—१ छुटलि। ३ कान्हु। ५ वरइत। ६ नमइत। ७ मुँहक। १०-११ भन कवि। १२ रेनुक।

शब्दार्थ—वाटे—मार्ग से। साटे—छड़ी से। दृढ़ वान्धे=मजबूती से बाँधकर। रमन-भवन=केलि-भवन। बेरि=समय। आलि=आड़ि=वक्र। दीठि=दृष्टि—स०। परिनत=पूर्ण। लउलि=लब गई=झुक गई। नमइते=(लम्बित—स०) झुके हुए। उपाम=उपमा। जओ=जैसा। सओ=से=साथ। ममोलल=ऐंठ दिया। रतिपति=कामदेव। मति=मन्त्री।

अर्थ—कामदेव की छड़ी से छुई (नायिका) निकट मार्ग से आई (और) मजबूती से केश बाँधती हुई दिखलाई पड़ी।

केलि-भवन (जाने) के समय, लौटकर पीछे देखती हुई (वह) वक्र दृष्टि से सन्देशा दे गई।

(अब भी) यदि कृष्ण विशेष (मन की बात) नही समझते (तो) पूर्णचन्द्रमुखी और क्या करेगी ?

हाथ से आँचल पकड़ते ही (नायिका) लज्जा के भार से झुक गई। (फिर) झुकने पर मुँह की उपमा (कहाँ ?)

कमल जैसा (उसके मुख को मैं) नही जानता हूँ। (कारण,) कामदेव ने कमलनाल के साथ कमल को मरोड़ दिया है। (अर्थात्—नायिका के झुक जाने पर कमल के साथ उसके

सं० अ०—४ आचर। ८ कमल। ९ ममोड़ल। १२ रेणुका।

मुख की उपमा नहीं दी जा सकती है। कारण, कमल ऊर्ध्वमुख रहता है। यहाँ तो कामदेव ने कमलनाल (शरीर) के साथ ही कमल (मुख) को मरोड़ दिया है—झुका दिया है।)

कवि विद्यापति कहते हैं—अभिनव कामदेव (मन्त्री महेश्वर) सब कलाओं का रस जानते हैं।

रेणुका देवी के रमण राजवल्लभ मन्त्री श्रीमहेश्वर जीवें। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[२३]

जुवति चरित बड़ विपरीत[1]
बुझए केदहु पार।
बुझए चेतन गुन निकेतन
भूलल रह गमार॥
साजनि नागरि नागर रङ्ग।
सङ्गहि रहिअ तेसर न बुझ
लोचन लोल तरङ्ग॥
वलित वदन बाङ्क बिकोकन
कपटे[2] गमन मन्दा।
दुइ मन मिलल ठाम अंकुरल[3]
पेम तरुअर कन्दा॥

न० गु०, प० ७७

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ८२९)—३ अङ्कुरल।

शब्दार्थ—केदहु=कौन। बुझए पार=समझ सकता है। चेतन=बुद्धिमान्। गुन-निकेतन=गुणागार=गुणज्ञ। नागरि=चतुरा। नागर=चतुर। रंग=प्रेम। लोल=चचल। तरङ्ग=लहर=इधर-उधर घूमना। वलित=मुड़ा=घुमाया हुआ। वदन=मुख। बाङ्क=(वक्र—स०) टेढी। विलोकन=दृष्टि। ठाम=(स्थाम—सं०) स्थान। कन्दा=जड़।

अर्थ—युवतियों का चरित्र बड़ा विपरीत होता है। (उसे) कौन समझ सकता है? बुद्धिमान् गुणज्ञ ही (उसे) समझते है। गँवार (तो उसमे) भूले हुए रह जाते है।

मं० अ०—१ विपरित। २ कपटें। ३ अङ्कुरल।

हे सखी ! (यह) चतुरा (और) चतुर का प्रेम है। साथ रहने पर भी (उनकी) आँखों की चंचल तरंग (इशारे) को तीसरा नहीं समझ सकता है।

(उनके) मुड़े हुए मुख, वक्र दृष्टि (और) बनावटी मन्द गति !

दोनों के मन मिल गये (तो) स्थान (पाकर) प्रेमरूपी तरुवर की जड़ अंकुरित हो गई।

[२४]

कर किसलय सयन रचित
गगन मंडल पेखी।
जनि सरोरुह अरुन सूतल
बिनु विरोधें उपेखी॥
नव घन जओ निर बरीसए
नयन उज्जल तोरा।
जनि सुधाकर करें कवलित
अमिय बम चकोरा॥
कह कमलबदनी।
कमने पुरुसें हर अराधिअ
जसु कारन तोजे खिनी॥
उत्तुङ्ग पीन पयोधर उपर
लखिअ अधर छाया।
कनक गिरि पबाल उपजल
बापु मनोभव माया॥
तौ पुनु से नारि बिरहें झामरि
पलटि परलि बेनी।
साँस समीरन पिबए धाउलि
जनि से कारि नागिनी॥

सं० अ०—२ विरोधें। ३ नीर। ४ बरिसए। ५ करें। ६ अमिअ। ७ पुरुखें। ९ ऊपर। १० तोज। ११ विरहें।

भन विद्यापति सुनह जउवति
सरूप मोर वचना।
अपना मना थिर पए चाहिअ
परे[12] विवचने[13] कोना॥

न० गु०, प० ७८

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या २४६)—१ सुतल। ५ करे। ८ कारने। १३ विवचन।

शब्दार्थ—कर=हाथ। किसलय=नवपल्लव। सयन=शय्या। गगन मडल=(गगन-मण्डल—सं०) आकाशमण्डल। जनि=जैसे। सरोरुह=कमल। अरुन=सूर्योदय से पूर्व की लालिमा। नवघन=आषाढ का मेघ। निर=पानी। सुधाकर=चन्द्रमा। करे=किरण से। कवलित=ग्रस्त=निगला हुआ। अमिअ=अमृत। बम=वमन कर रहा है। उत्तुग=ऊँचा। पीन=पुष्ट। पयोधर=स्तन। अधर=ओष्ठ। छाया=प्रतिविम्ब। कनक गिरि=सुमेरु। पवाल=(प्रवाल—सं०) मूँगा। बापु=बापुरो=बेचारा। मनोभव=कामदेव। ओ=उसपर। झामरि=झाँवाँ (जली हुई ईंट) के समान मलिन। वेनी=(वेणी—सं०) चोटी। समीरन=वायु। सरूप=सत्य। परेरि=दूसरे के।

अर्थ—नवपल्लव के समान हाथ की सेज पर (मुँह करके) आकाशमण्डल को देखती हुई (तुम ऐसी जान पड़ती है,) जैसे कमल सूर्योदय से पूर्व की लालिमा मे (उषःकाल में) विना विरोध के (सबकी) उपेक्षा करके सोया है।

जिस प्रकार आषाढ का मेघ पानी होकर वरसता है (और वरसने के वाद उजला हो जाता है, उसी प्रकार) तुम्हारी आँखे (बरसकर) उजली हो गई है। (अर्थात्—रोने से आँखों का काजल धुल गया है। सो, जान पड़ता है,) जैसे चन्द्रमा (मुख) की किरण से निगला हुआ चकोर (नेत्र) अमृत वमन कर रहा है।

हे कमलमुखी! कहो। किस भाग्यवान् पुरुष ने शिव की आराधना की है, जिसके लिए तुम खिन्न हो?

(विरहिणी बैठकर आकाश को निहार रही है। इसीलिए, उसके अधर का प्रतिबिम्ब उसके स्तन पर पड़ रहा है, जिसे देखकर सखी कहती है—तुम्हारे) ऊँचे पुष्ट स्तन के ऊपर अधर का प्रतिविम्ब दिखाई देता है। (जान पड़ता है, जैसे) सुमेरु के ऊपर मूँगा फला है। वेचारे कामदेव की माया! (अर्थात्—कामदेव की माया से जो न हो जाय?)

फिर, तुम ऐसी नारी है (कि) विरह से झाँवाँ के समान मलिन हो गई है। (तुम्हारी) चोटी उलट गई है। (जान पड़ता है,) जैसे काली नागिन श्वास-वायु पीने के लिए दौड़ आई है।

सं० अ०—१२-१३ परेरि वचने।

विद्यापति कहते है—अरी युवती! मेरी सच्ची बात सुनो—अपना मन स्थिर होना चाहिए। दूसरे के कहने से क्या? (अर्थात्—प्रेमिका को इसपर ध्यान नही देना चाहिए कि दूसरे क्या कहते है। उसे अपना मन स्थिर रखना चाहिए।) (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[२५]

सपनेहु न पुरल मनक साधे।
नयने देखल हरि एत अपराधे॥

मन्द मनोभव मन जर आगी।
दुलभ पेम भेल पराभव लागी॥

चाँदबदनि धनि चकोर नयनी।
दिवसे दिवसे भेलि चउगुन मलिनी॥

कि करति चाँदने की अरविन्दे।
विरह बिसर जओ सूतिअ निन्दे॥

अबुझ सखी जन न बुझए आधी।
आन औषध कर आन बेयाधी॥

मनसिज मनके मन्दि बेबथा।
छाड़ि कलेवर मानस बेथा॥

चिन्ताए विकल हृदय नहि थीरे।
वदन निहारि नयन बह नीरे॥

न० गु०, प० ७९

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अत, इसके लिए प्रथम भाग का १८७ सख्यक पद देखिए।

[२६]

ए सखि ए सखि न बोलह आन¹।
तुअ गुने¹ लुबुधल निते आब¹ कान॥

सं० अ०—१ आन।

नितें नितें[4] निअर आब बिनु काज।
बेकतेओो[5] हृदय नुकाबए[6] लाज॥
अनतहु जइतें[7] एतहि निहार।
लुबुधल नअन[8] हटए[9] के पार॥
से अति नागर तोजे तसु तूल।
एक नले[10] गाँथ[11] दुइ जनि फूल॥
भनइ[12] विद्यापति कवि कण्ठहार।
एक सर मनमथ दुइ जिव मार॥

न० गु०, प० ८०

पाठभेद—

ग्रियर्सन (पद-संख्या ४)—२ गुण। ३ अब। ४ नित-नित। ५ बेकतय। ६ लुकाबय। ७ जाइते। ९ हटय। १२ भनहि।

मि० म० (पद-संख्या २५९)—७ जाइत।

शब्दार्थ—आन=(अन्य—सं०) दूसरी। निअर=निकट। कान=कृष्ण। बेकतेओ=व्यक्त भी। हृदय=मनोभाव। नुकावए=छिपाते है। अनतहु=दूसरी जगह भी। एतहि=यही। हटए के पार=कौन हटा सकता है=कौन रोक सकता है। तूल=तुल्य—सं०। गाँथ (ल)=गुँथा हुआ। नले=(नाल—सं०) तने मे। जिव=(जीव—सं०) प्राणी।

अर्थ—हे सखी! हे सखी! दूसरी (बात) मत बोलो। (कारण,) कृष्ण तुम्हारे गुणो से लुब्ध होकर नित्य (प्रतिदिन) आते हैं।

विना कार्य ही (वे) नित्य-प्रति (सब दिन) निकट आते है—(अपना) व्यक्त मनोभाव भी लज्जा से छिपाते है। (अर्थात्—लज्जावश उनसे कुछ कहा नही जाता है। विना कहे ही वे लौट जाते है।)

दूसरी जगह जाते हुए भी (वे) यही निहारते है। (कारण,) लुभाई आँख को कौन रोक सकता है?

वे (कृष्ण) अत्यन्त चतुर है (और) तुम भी उनके समान हो। (जान पड़ता है,) जैसे एक तने मे गुँथे दो फूल है।

कविकण्ठहार विद्यापति कहते है—कामदेव एक ही बाण से दो प्राणियों को मार रहा है। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

सं० अ०—७ जाइते। ८ नअन। १० नलें। ११ गाँथल।

[२७]

कण्टक माझ कुसुम परगास।
भमर विकल नहि पाबए पास॥
भमरा भेल घुरए सब ठाम।
तोहि बिनु मालति नहि बिसराम॥
रसमति मालति पुनु पुनु देखि।
पिबए चाह मधु जीव उपेखि॥
ओ मधुजीवी तोञें मधुरासि।
साँचि धरसि मधु मन न लजासि॥
अपनेहु मने गुनि बुझ अवगाहि।
तसु दूषन बध लागत काहि॥
भनइ विद्यापति तौ पय जीव।
अधर सुधारस जौं पय पीब॥

न० गु०, प० ८४

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अतः, इसके लिए प्रथम भाग का ७ संख्यक पद देखिए।

[२८]

अपना[1] काज कओन[2] नहि बन्ध।
के न करए निअ पति अनुबन्ध॥
अपन अपन हित सब केओ चाह।
से सुपुरुष[3] जे कर निरबाह[4]॥

सं० अ०—२ कओन।

साजनि ताक जिवन थिक सार।
जे मन दए कर पर उपकार॥
आरति अरतल आबए पास।
अछइते बथु नहि करिअ उदास॥
से पुनु अनतहु गेले पाब।
अपना मन पए रह पचताब॥
भनइ विद्यापति दैन न भाख।
बड़ अनुरोध बड़े पए राख॥

न० गु०, प० ८५

पाठभेद—

ग्रियर्सन (पद-संख्या ३)—१ आपन। ४ निबाह। ५ अछइत वस्तु न करिअ निरास।

मि० म० (पद-संख्या २६१)—३ सुपुरुस।

शब्दार्थ—बन्ध=बँधा हुआ। निअ=(निज—सं०) अपना। अनुबन्ध=अनुगमन। केओ=कोई। ताक=उसका। सार=श्रेष्ठ। आरति=(आर्त्ति—सं०) दुःख। अरतल=(आर्त्त—सं०) बेचैन। बथु=वस्तु—सं०। अनतहु=अन्यत्र भी। पचताब=(पश्चात्ताप—सं०) पछतावा। दैन=(दैन्य—सं०) दीनता। भाख=बोलो।

अर्थ—अपने काम मे कौन नही बँधा रहता है? अपने स्वामी का अनुगमन कौन नही करती है?

अपना-अपना भला सभी चाहते है; (किन्तु) सुपुरुष वह है, जो (अपने वचन का) निर्वाह करता है।

हे सखी! उसी का जीवन श्रेष्ठ है, जो मन देकर (हृदय से) दूसरे का उपकार करता है।

दुःख से बेचैन होकर (यदि कोई) पास आये, (तो) वस्तु रहते (उसे) उदास नही करना चाहिए।

वह (तो) फिर अन्यत्र जाने पर भी (उसे) पा लेता है; (लेकिन) अपने मन मे पछतावा रह जाता है।

विद्यापति कहते हैं—(अरी युवती!) दैन्य (वचन) मत बोलो। (अर्थात्—'मेरे पास याचित वस्तु नही है', यह कहकर अपना दैन्य मत प्रकट करो। कारण,) बड़े (लोगों) का अनुरोध बड़े (लोग) ही रखते हैं।

सं० अ०— ६ अनतहुँ।

[२९]

प्रथम सिरीफल गरवे गमओलह
जौं गुनगाहक आवे।
गेल जउवन पुनु पलटि न आवए
केवल रह पचतावे॥
सुन्दरि वचने करह समधाने।
तोह सनि नारि दिवस दस अछलिहु
ऐसन उपजु मोहि भाने॥
जउवन रूप तावे धरि छाजत
जावें मदन अधिकारी।
दिन दस गेले सेहओ पड़ाएत
सकल जगत परचारी॥
विद्यापति भन जुवति लाखे लह
पड़ल पयोधर तूले।
दिने दिने आगे सखि ऐसनि होयवह
घोसिनी घोरक मूले॥

न० गु०, प० ९१

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अत, इसके लिए प्रथम भाग का १२० संख्यक पद देखिए।

[३०]

लाखे तरुअर कोटिहि लता
जुवति कत न लेख।
सब फुल मधु मधुर नहीं
फूलहु फूल विसेख॥

जे फूल भमर निन्दहु सुमर
बासि बिसरए न पार।
जाहि मधुकर उड़ि उड़ि पर
सेहे सँसारक सार॥
सुन्दरि अबहु वचन सून।
सबे परीहरि तोहि इछ हरि
आपु सराहहि पून॥
तोरिए चिन्ता तोरिए कथा
सेजहु तोरिए चाओ।
सपनहु हरि पुनु पुनु कए
लए उठ तोरिए नाओ॥
आलिङ्गन दए पाछु निहारए
तोहि बिनु सुन कोर।
अकथ कथा आपु अबथा
नअने तेजए नोर॥
राहि राहि जाहि मुह सुनि
ततहि अपए कान।
सिरि सिवसिंह इ रस जानए
कवि विद्यापति भान॥

न० गु०, प० ९७

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' में भी है। अतः, इसके लिए प्रथम भाग का २१ सख्यक पद देखिए।

[३१]

हेरितहिं[1] दीठि चिन्हसि हरि गोरी।
चाँद किरन जइसे लुबुधि चकोरी॥

---

[1] सं० अ० १—हेरितहिँ।

हरि बड़ चेतन तोरि बड़ि कला।
तेसर न जानए दुइ मन मेला॥
मोञे तञो भाव लागि भल दुजना।
मनसिज सर सन्धान तरुना॥
जीवन माह जउवन दिन चारी।
तथिहिं सकल रस अनुभव नारी॥
भनइ विद्यापति बुझ रसमन्त।
राए अरजुन कमला देवि कन्त॥

न० गु०, प० ९९

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या २०७)—२ जीवन। ५ देइ।

शब्दार्थ—दीठि=(दृष्टि—स०) आँख। चिन्हिसि=पहचान जाती है। गोरी=गौरवर्णा=सुन्दरी। लुबुधि=लुभाई। चेतन=बुद्धिमान्। कला=चाल। तेसर=तीसरा। मेला=मिलन। मोञे=मैं। तञो=तो। भाव=प्रेम। लागि=लिए। भाव लागि=प्रेम के लिए। मनसिज=कामदेव। तरुना=(तरुण—स०) युवक-युवती। माह=(मध्य—स०) में। तथिहि=उसी मे।

अर्थ—जैसे लुभाई चकोरी चन्द्र-किरण को (पहचान जाती है, वैसे ही) सुन्दरी, आँखो से देखते ही, कृष्ण को पहचान जाती है।

कृष्ण बड़े बुद्धिमान् है (और) तुम्हारी चाल (भी) बड़ी है। (इसीलिए) दोनो के मन का मिलन तीसरे नही समझते है।

मैं तो प्रेम के लिए दो व्यक्तियों को ही भला मानती हूँ। अर्थात्—तीसरे का जानना उचित नही समझती हूँ। कारण, कामदेव युवक-युवतियो को (लक्ष्य करके ही) शर-सन्धान करता है।

जीवन मे चार दिनों के लिए (बहुत कम दिनों के लिए) यौवन है। नारी उसी (कम दिनों) में सारे रसों का अनुभव करती है।

विद्यापति कहते हैं—कमला देवी के स्वामी रसज्ञ राय अर्जुन (इसे) समझते है।

सं० अ०—३ तथिहि। ४ रसमन्ता। ६ कन्ता।

[३२]

यदि[1] अवकास कइए नहि तोहि।
काँ लागि ततए पठओलए मोहि॥
तोहरा हृदय वचन नहि थीर।
नलनी[2] पात जइसन बह[3] नीर॥
आबे कि कहब सखि कहइतें[4] अकाज[5]।
अथिरक मधथ भेल सम[6] काज॥
आसा लागि सहत कत साठ।
गरुअ न हो अमड़ाकाँ काठ॥
तोंहें[7] नागरि गुन रूपक गेह।
अनुदिनें[8] बुझल कठिन तुअ नेह॥
तन्हिकाँ[9] सतत तोहर परथाब।
जनि निरधन मन कतए न धाब॥
भनइ विद्यापति इ[10] रस गाब।
मगले कानट के नहि पाब॥

न० गु०, प० १०१

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या २६३)—१ जदि। २ नलिनी। ४ कहइत। ७ तोहे। ८ अनुदिन। ९ तन्हिक।

शब्दार्थ—कइए=(किञ्चिदपि—सं०) थोड़ा भी। काँ लागि=किसलिए। ततए=वहाँ। हृदय=मन। नलनी पात=कमलपत्र। नीर=पानी। मवथ=(मध्यस्थ—सं०) बीच का। साठ=(शाठ्य—सं०) छल-छद्म। गरुअ=(गुरुक—सं०) वजनदार। अमड़ाकाँ=उमड़े का। काठ=लकड़ी। गेह=घर=खान। परथाव=(प्रस्ताव—सं०) प्रसंग। मगले=माँगने से। रस=सार। कानट= (कानिष्ठ्य—स०) लघुता।

अर्थ—यदि तुम्हें (मिलने के लिए) थोड़ा भी अवकाश नहीं था, (तो) किसलिए (तुमने) मुझे वहाँ भेजा ?

सं० अ०—२ नलिनि। ३ रह। ५ लाज। ६ सभ। ७ तोहें। १० ई।

जिस प्रकार कमलपत्र पर पानी (स्थिर नहीं) रहता है, (उसी प्रकार) तुम्हारा मन (और) वचन स्थिर नहीं रहता है।

हे सखी! अब क्या कहूँगी ? कहते लज्जा होती है। (कारण, मेरे) सारे काम चचलो के बीच के हो गये। (अर्थात्—तुम दोनों ही चचल हो। इसलिए तुम दोनों के बीच किये गये सारे काम व्यर्थ हो गये, अत: कहते लज्जा होती है।)

आशा के लिए (अर्थात्—तुम्हारी आशा से वे) कितना छल-छद्म सहेंगे ? (मैं समझ गई—) अमड़े की लकडी वजनदार नहीं होती है। (अर्थात्—अमड़े की लकड़ी के समान ही तुम्हारा वचन हल्का है।)

अरी नागरी! तुम गुण (और) रूप की खान हो। (किन्तु) धीरे-धीरे (मैं) समझ गई (कि) तुम्हारा प्रेम कठिन है।

जैसे निर्धन का मन (धन के लिए) कहाँ नहीं दौड़ता है (अर्थात्—जैसे निर्धन का मन धन के लिए सदा लालायित रहता है, वैसे ही) उनको सदा तुम्हारा प्रस्ताव रहता है।

विद्यापति यह सार (यथार्थ बात) गाते है (अर्थात्—कहते है कि) माँगने पर कौन नहीं लघुता पाता है ? (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[३३]

आसाजे मन्दिर निसि गमाबए
सुखे न सुत सआन।
जखने जतए जाहि निहारए
ताहि ताहि तोहि भान॥
मालति सफल जीवन तोर।
तोरे विरहे भुअन भमए
भेल मधुकर भोर॥
जातकि केतकि कत न अछए
सबहि रस समान।
सपनेहु नहि ताहि निहारए
मधु कि करत पान॥

वन उपवन कुञ्ज कुटीरहि :
सबहि तोहि निरूप।
तोहि बिनु पुनु पुनु मुरछए :
अइसन : पेम सरूप॥
साहर न बह सउरभ न सह
गुजरि गीत न गाव।
चेतन पापु चिन्ताञे आकुल
हरखे सबे सोहाब॥
जकर हृदय जतहि रतल
से धसि ततहि जाए।
जइअओ जतने बाँधि निरोधिअ
निमन नीर थिराए॥
इ रस राए सिवसिंह जानए
कवि विद्यापति भान।
रानि लखिमा देवि वल्लभ
सकल गुन निधान॥

न० गु०, प० १०४

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' में भी है। अतः, इसके लिए प्रथम भाग का १८ संख्यक पद देखिए।

[३४]

आनहु[1] तोरहि[2] नाम[3] बजाब।
तोरि[4] कहिनी दिन गमाब॥
सपनेहु[5] तोर[6] सङ्गम पाए।
कखने की नहि की बिसुनाए॥

सं० अ०—१ मानहुँ। ३ नामे। ४ तोरिए। ५ सपनेहुँ। ६ तोरिए।

कि सखि पुछसि ताहेरि कथा।
ताहि तह भलि तोरि अबथा॥
जाहि जाहि तुअ सङ्ग मेरी।
चकित लोचन चउदिस हेरी॥
उठि आलिङ्गए अपनि छाआ।
एतेहु पापिनि तोहि न दाआ॥

न० गु०, प० १०५

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ८२६)—२.तोहरि। ७ तन्हिक।

शब्दार्थ—आनहु=दूसरे को भी। तोरहि=तुम्हारे ही। गमाब=बिताते हैं। की नहि की=क्या-क्या नही। बिसुनाए=(अर्द्धनिद्रावस्था मे) बे-सिर-पैर की बाते बकते है। ताहेरि=उसकी। कथा=बात। ताहि तह=उससे। अबथा=अवस्था—स०। मेरी=मिलन=प्रीति। एतेहु=इतने पर भी।

अर्थ—(दूती कृष्ण की दशा का वर्णन राधा से करती है—) दूसरे को भी (वे) तुम्हारे नाम से ही बुलाते हैं। (अर्थात्—दूसरे को पुकारते समय भी भ्रमवश तुम्हारा ही नाम उनके मुख से निकलता है।) तुम्हारी ही कहानी (कहकर वे) दिन बिताते हैं।

स्वप्न मे भी (वे) तुम्हारा ही सगम पाते हैं। कब क्या-क्या नही बे-सिर-पैर की बातें बकते हैं।

अरी सखी! उनकी बात क्या पूछती हो? उनसे अच्छी (तो) तुम्हारी अवस्था है।

तुम्हारे साथ जिस-जिसकी प्रीति है, (उन्हें वे) चारों ओर घबराई आँखों से हेरते हैं। (अर्थात्—तुम्हारा समाचार पाने के लिए तुम्हारी सखियों को चारों ओर ढूँढ़ते हैं।)

(वे भ्रमवश) उठकर अपनी छाया का भी आलिङ्गन करते हैं। अरी पापिनी! इतने पर भी तुम्हे दया नहीं आती है?

[३५]

अविरल नयन गरए जलधार।
नव जल विन्दु सहए के पार॥
कि कहब साजनि ताहेरि कहिनी।
कहहि न पारिय देखलि जहिनी॥

कुच युग ऊपर आनन हेरु।
चान्द राहु डरे चढ़ल सुमेरु॥
अनिल अनल बम मलयज बीख।
जेओ छल शीतल सेओ भेल तीख॥
चान्द सताबए सबिताहु जीनि।
नहि जीवन एकमत भेलि तीनि॥
किछु उपचार मान नहि आन।
ताहि बेआधि भेषज पञ्चबान॥
तुअ दरसन बिनु तिलाओ न जीव।
जइअओ कलामति पीउख पीब॥

न० गु०, प० ११३

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अत., इसके लिए प्रथम भाग का ६ संख्यक पद देखिए।

[३६]

सहज प्रसन मुख दरस हृदय सुख
लोचन तरल तरङ्ग।
अकास पाताल बस सेओ कइसे भेल अस
चाँद सरोरुह सङ्ग॥
विधि निरमलि रामा दोसर लाछि समा
भल तुलाएल निरमान।
कुचमण्डल सिरि हेरि कनक गिरि
लाजे[२] दिगन्तर गेल।
केंओ अईसन कह सेओ न जुगुति सह
अचल सचल कइसे भेल।
माझ खीन तनु भरें[४] भाँगि जाए जनु
विधि अनुसए भेल साजि।

सं० अ०—२ लाजें। ४ भरें।

नील पटोर आनि[5] अति से सुदृढ़ जानि
जतने सिरिजु रोमराजि॥
भन कवि विद्यापति कामे[6] रमनि रति
कउतुक बुझ रसमन्त।
सिरि सिवसिंह राउ पुरुब सुकृते[7] पाउ
लखिमा देवि रानि कन्त॥

न० गु०, प० ११५

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या २४)—१ आकास। ३ पह।

शब्दार्थ—सहज=स्वभावतः। लोचन=आँख। तरल=चंचल। अस=ऐसा। सरोरुह=कमल। लछि=लक्ष्मी। तुलाएल=साम्य हुआ। सिरि=(श्री—सं०) शोभा। कनकगिरि=सुमेरु। दिगन्तर=(अन्तर=दूर) दूर दिशा=दिगन्त। जुगुति=युक्ति। माझ=मध्य—स०। खीन=क्षीण—स०। तनु=शरीर। भाँगि जाए=टूट जाय। जनु=नहीं। अनुसए=पश्चात्ताप। साजि=सजाकर। पटोर=(पट्टाम्बर—स०) रेशमी वस्त्र। आनि=लाकर। रोमराजि=रोमावली। कामे रमनि=कामदेव की पत्नी। कउतुक=अचम्भा=आश्चर्य=आनन्द। राउ=राजा। पाउ=पाया। कन्त=स्वामी।

अर्थ—(रूप-वर्णन)—स्वभावतः प्रसन्न मुख, (जिसे) देखने से मन में आनन्द होता है (और) आँखों में चंचल तरगें (उठती है।)

(एक) आकाश मे बसता है (और दूसरा) पाताल मे। सो, चन्द्रमा (मुख और) कमल (आँख) का ऐसा संग कैसे हुआ (अर्थात्—दोनों एक साथ किस प्रकार रहने लगे?)

विधाता ने दूसरी लक्ष्मी के समान (इस) सुन्दरी का निर्माण किया। निर्माण मे (लक्ष्मी के साथ) अच्छा साम्य रहा।

(इसके) स्तनमण्डल की शोभा देखकर सुमेरु लज्जावश दिगन्त चला गया।

—ऐसा कोई कहता है; (किन्तु) सो, सयुक्तिक नही (जान पड़ता है। कारण,) अचल (सुमेरु) सचल कैसे हो गया?

(इसके) शरीर का मध्य भाग क्षीण है। (सो, कहीं) भार से टूट न जाय! (अतः, इसे) सजाकर (अर्थात्—इसकी रचना करके) विधाता को पछतावा होने लगा।

(इसीलिए विधाता ने) नीला रेशमी वस्त्र लाकर (और) उसे अत्यन्त मजबूत जानकर (उससे इसकी) रोमावली की रचना की। (अर्थात्—नीले रेशमी वस्त्र से इसके मध्य भाग को कसकर बाँध दिया कि यह टूटे नहीं।)

सं० अ०— ५ आनि। ६ काम। ७ सुकृत।

कवि विद्यापति कहते हैं—(जान पड़ता है, जैसे यह) कामदेव की पत्नी रति है। रसज्ञ (ही इस) कौतुक को समझते हैं।

रानी लखिमा देवी ने पूर्व पुण्य (के प्रताप) से राजा श्रीशिवसिंह (–सा) स्वामी पाया।

विशेष—चौथी पंक्ति के बाद एक पंक्ति की छूट प्रतीत होती है।

[३७]

रामा अधिक चङ्गिम[1] भेल।
कतने जतने कत अदबुद
बिहि बिहि तोहि देल॥
सुन्दर वदन सिन्दुर बिन्दु
सामर चिकुर भार।
जनि रवि ससि सङ्गहि उगल[2]
पाछु कए अन्धकार॥
चञ्चल लोचन बाँके[3] निहारए
अञ्जन सोभा पाए।
जनि इन्दीवर पवनें[4] पेलल
अलि भरें[5] उलटाए॥
उनत उरज चिरें[6] झपाबए
पुनु पुनु दरसाए।
जइओ जतनें गोअए चाहए
हिमगिरि न नुकाए॥
एहन[7] सुन्दरि गुनक[8] आगरि
पुनें[9] पुनमत पाब।
इ[10] रस बिन्दक रूपनराअन[11]
कवि विद्यापति गाब॥

न० प०, प० ११७

सं० अ०—२ ऊगल। ३ बाँकें। ५ भरें। ६ चीरें। ७ अइसनि। १० ई। ११ रूपनराअेन।

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या २३)—१ चन्दिम। ३ बाङ्के। ४ पवले। ७ एहनि। ८ गुणक। ९ पुजे।

शब्दार्थ—रामा=सुन्दरी। चङ्गिम=सौन्दर्य। अदबुद=अद्‌भुत। बिहि=(विधि—स०) विधाता। बिहि=(विधि—सं०) विधान। वदन=मुख। सामर=(श्यामल—सं०) काला। चिकुरभार=केशकलाप। रवि=सूर्य। ससि=चन्द्रमा। बाँके=(वक्र—स०) टेढ़ी। इन्दीवर=नील कमल। पवने=हवा से। पेलल=प्रेरित=झकझोरा हुआ। अलि=भ्रमर। उनत=(उन्नत—सं०) ऊँचा। उरज=(उरोज—स०) स्तन। चीरें=चीर से=वस्त्र से। जइअओ=यद्यपि। गोअए=गोपए=छिपाना। बिन्दक=जाननेवाला।

अर्थ—हे सुन्दरी! (तुम्हारा) सौन्दर्य बहुत बढ गया है। विधाता ने कितने यत्न से कितना अद्‌भुत विधान तुम्हें सौंप दिया है। (अर्थात्—विधाता ने बड़े यत्न से तुम्हें सँवारा है।)

(तुम्हारा) सुन्दर मुख, सिन्दूर-विन्दु (और) काला केश-कलाप! (तीनों को एक साथ देखकर ऐसा जान पडता है,) जैसे अन्धकार को पीछे ठेलकर सूर्य (और) चन्द्रमा साथ उगे हैं।

(जिसमें) काजल शोभ रहा है, (वैसे) चंचल नेत्र को वक्र करके (तुम) देखती हो (तो ऐसा जान पड़ता है,) जैसे हवा से झकझोरा हुआ नील कमल भ्रमर के भार से उलट गया है।

(तुम) उन्नत स्तन को वस्त्र से ढकती हो; (किन्तु वह) फिर-फिर (बार-बार) दिखलाई पड़ता है। (कारण), यदि (कोई) यत्न से छिपाना चाहे (तो भी) हिमालय नहीं छिप सकता है।

(कोई) पुण्यवान् (ही) पुण्य से (पुण्य के प्रताप से) ऐसी गुण की खान सुन्दरी को पाता है। कवि विद्यापति कहते हैं—इस रस के जाननेवाले (राजा शिवसिंह) रूपनारायण है।

[३८]

सुन्दरि गरुअ तोर विवेक।
बिनु परिचय[1] पेमक आँकुर
पल्लव भेल[2] अनेक॥
कखने होएत सुफल दिवस
वदन देखब तोर।

बहुल दिवस भुखल भमर
पिउत चाँद चकोर॥
भन विद्यापति सुन रमापति
सकल गुन निधान।
चिरे जिवे जिवओ राए दामोदर
दसासए अवधान॥

न० गु०, प० १२०

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या २२४)—१ परीचये। २ मेल।

शब्दार्थ—गरुअ=(गुरुक—सं०) महान्। विवेक=विचार। पेमक=प्रेम के। कखने=कब। सुफल=सफल। वदन=मुख। वहुल=बहुत। दिवस=दिन। दसासए अवधान=दस प्रकार के आशय (अभिप्राय) का जाननेवाला।

अर्थ—हे सुन्दरी! तुम्हारा विवेक महान् है। (इसीलिए) बिना परिचय के (भी) प्रेम के अंकुर में अनेक पल्लव हो गये।

कब (मेरा) दिन सफल होगा, (जबकि मैं) तुम्हारा मुँह देखूँगा? बहुत दिनों से भौंरा भूखा है—चकोर (कब) चन्द्र (किरण) को पीयेगा? (अर्थात्—मेरे नेत्र बहुत दिनों से तुम्हे देखने को लालायित हैं। जिस प्रकार चकोर चन्द्र-किरण का पान करते है, उसी प्रकार वे कब तुम्हारी मुखच्छवि का पान करेंगे?)

विद्यापति कहते हैं—हे सकलगुणनिधान कृष्ण! सुनिए। दस प्रकार के आशय के जाननेवाले राय दामोदर बहुत दिनो तक जीये।

[३९]

तुअ गुनगौरव सील सोभाव।
सेहे लए चढ़िलिहु तोहरी नाव॥
हठ न करिअ कान्ह कर मोहि पार।
सबतह बड़ थिक पर उपकार॥
आइलि सखि सब साथे हमार।
से सबे भेलि निकहि विधि पार॥

हमरा मेल कान्ह तोहरेओ आस।
जे अँगिरिअ ता न होइअ उदास॥
भल मन्द जानि करिअ परिनाम।
जस अपजस दूर रह गए ठाम॥
हमे अबला कत कहब अनेक।
आइति पड़ले बुझिअ विवेक॥
तोहें पर नागर हमे पर नारि।
काँप हृदय तुअ प्रकृति विचारि॥
भनइ विद्यापति गावे।
राजा सिवसिंह रूपनराएन इ सकल से पावे॥

न० गु०, प० १२५

विशेष—यह पद 'रागतरङ्गिणी' में भी है। अतः, इसके लिए 'रागतरङ्गिणी' में प्राप्त संख्यक पद देखिए।

[४०]

कुच नख लागत सखि जन देख।
गिरि कइसे नुकाएत नव ससि रेख॥
आरति अधिक न करिये[1] लोभ।
सबे[2] राखए पहिलहि मुख सोभ॥
न हर न हर हरि हृदयक हार।
दुहु कुल अपजस पहिल पसार॥
खर कए खेब लेहे निअ दान।
रसिक पए राख गोपीजन मान॥
तोहें[2] जदुकुल हमें[2] कुलिन गोआलि।
अनुचित बाट न कर बनमालि॥

सं० अ०—१ करिअए। २ तोहें।

भनइ विद्यापति अरेरे गोआरि।
बड़े पुने सम्भव आदर मुरारि॥
राजा रूपनरायन[५] जान।
राए सिवसिंह[६] सुखमा देइ[७] रमान॥

पाठभेद— न० गु०, प० १२७

मि० म० (पद-संख्या ५१)—१ करिअ। २ सब। ३ तोहें। ४ हम। ६ सिवसिंघ।

शब्दार्थ—कुच=स्तन। गिरि=पर्वत। नुकाएत= छिपेगी। नव ससि= द्वितीया का चन्द्रमा। आरति=(आर्त्ति—स०) पीडा। मुख सोभ=मुख की शोभा=मुँह की लाली। पसार=(प्रसार—सं०) बाजार=दूकानदारी। खर= कड़ा। खेब= खेबा=उतराई। लेहें= लो। बाट=मार्ग। गोआलि=ग्वालिन।

अर्थ—स्तन में नख लग जायेंगे—सखियाँ देख लेंगी। द्वितीया के चन्द्रमा की रेखा पर्वत मे कैसे छिपेगी?

पीडा (कामपीडा) से अधिक लोभ नही करना चाहिए। सभी पहले (अपने) मुँह की लाली रखते है। (अर्थात्—ऐसा काम नही करना चाहिए, जिससे मुँह मे कालिख लग जाय।)

हे कृष्ण! (मेरे) हृदय के हार का हरण मत करो—हरण मत करो। (कारण) पहली दूकानदारी मे ही दोनों कुल मे अयश (हो जायगा।)

कड़ा करके (दो पैसा अधिक करके ही) उतराई—अपना दान ले लो। हे रसिक! परन्तु गोपियों का मान रखो।

तुम यदुवंशी हो (और) मै (भी) कुलीन ग्वालिन हूँ। (इसलिए) हे कृष्ण! मार्ग मे (रास्ता चलते) अनुचित (कार्य) मत करो।

विद्यापति कहते है—अरी ग्वालिन! बड़े पुण्य से ही कृष्ण का आदर सम्भव है। सुखमा देवी के रमण राजा शिवसिंह रूपनारायण (इसे) जानते है।

[४१]

प्रथमहि सुन्दरि कुटिल कटाख।
जिव जोखे[१] नागर दे दस लाख॥
केओ दे हास सुधा सम नीक।
जइसन परहोंक[२] तइसन बीक॥

सं० अ०—५ रूपनराअेन। ७ दे। १ जोखि। २ परहॉक।

सुनु सुन्दरि हे[3] नव मदन पसार।
जनु[4] गोपह आओब बनिजार॥
रोस[5] दरसि[6] रस राखब गोए।
धयले[7] रतनें[8] अधिक मूल होए॥
भलहि न हृदय बुझाओब नाह।
आरति गाहक महग[9] बेसाह॥
भनइ विद्यापति सुनह[10] सयानि[11]।
सुहित वचन राखब हिय[12] आनि[13]॥

न० गु०, प० १२९

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या २६८)—१ जोख। २ परहांक। ३ पाठाभाव। ४ जनि। ६ दरस। ७ धएले। ८ रतन। ९ महँग। १० सुनहु।

शब्दार्थ—कुटिल कटाख=तिरछी नजर। जिव=प्राण। जोखे=जोखकर=तौलकर। सुधा=अमृत। नीक=अच्छा। परहांक=बोहनी। मदन=कामदेव। पसार=(प्रसार—स०) बाजार। जनु=मत। गोपह=छिपाओ। वनिजार=व्यापारी। दरसि=दिखलाकर। रस=प्रेम। गोए=छिपाकर। धएले=जुगाकर रखने से। मूल=मूल्य—स०। भलहि=अच्छी तरह। हृदय=रहस्य=अभिप्राय। नाह=(नाथ—स०) स्वामी। आरति=(आर्त्ति—स०) पीडा। वेसाह=खरीदता है। सुहित=हितकर।

अर्थ—हे सुन्दरी! पहले कुटिल कटाक्ष! (उससे अधिक और कुछ नही। कारण, उतने से ही) दस लाख नागर प्राण तौलकर दे देते हैं। (अर्थात्—कामिनी के कुटिल कटाक्ष-मात्र से एक नही, लाखों नागर प्राण देने को उतारू हो जाते है।)

कोई (नागर) अमृत के समान अच्छा हास्य देता है। (अर्थात्—अभिप्राय समझकर मुस्करा देता है। फिर तो) जैसी बोहनी होती है, वैस विकता है।

हे सुन्दरी! सुनो। कामदेव के नये बाजार को मत छिपाओ—व्यापारी आयगा।

(पहले) रोष दिखलाकर प्रेम को छिपा रखना। (कारण,) रत्न को जुगाकर रखने से ही (उसका) मूल्य अधिक होता है।

स्वामी को अच्छी तरह (अपना) अभिप्राय नही समझाना। (कारण) पीडा (अभाव-जन्य पीडा) मे ही ग्राहक महँगा खरीदता है।

सं० अ०—३ पाठाभाव। ५ रोष। ११ सयानि। १२ हिअ। १३ आनि।

विद्यापति कहते हैं—अरी सयानी! सुनो। (मेरा) हित वचन हृदय में लाकर (अर्थात्—मन में जुगाकर) रखना।

[४२]

प्रथमहि अलक तिलक लेब साजि।
चञ्चल लोचन काजरे आँजि॥
जाएब बसने आङ्ग लेब गोए।
दूरहि रहब तें अरथित होए॥
मोरे बोले सजनी रहब लजाए।
कुटिल नयने देब मदन जगाए॥
झाँपब कुच दरसाओब कन्त।
दृढ़ कए बाँधब निबहुक अन्त॥
मान कइए किछु दरसब भाव।
रस राखब तें पुनु पुनु आब॥
हमे कि सिखउबि हे अओर से रङ्ग।
अपनहि गुरु भए कहत अनङ्ग॥
भनइ विद्यापति इ रस गाब।
नागर कामिनि भाव बुझाब॥

न० गु०, प० १३०

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' में भी है। अतः, इसके लिए प्रथम भाग का ६३ संख्यक पद देखिए।

४३

प्रथम समागम भुखल अनङ्ग।
धनि बल जानि करब रति रङ्ग॥
हठ नहि करबे आइति पाए।
भूखल नहि दुहु कओरे खाए॥

चेतन कान्ह तोंहहि यदि आथि।
के नहि जान महते नब हाथि॥
तुअ गुन गन कहि कत अनुबोधि।
पहिलहि सबहि हललि परबोधि॥
हठ नहि करबे रति परिपाटि।
कोमल कामिनि बिघटति साटि॥
जाबे रभस सह ताबे विलास।
बिपति बुझिअ जओ न जाएब पास॥
धसि परिहरि नहि धरबिए बाहु।
उगिलल चन्द गिलए जनु राहु॥
भनइ विद्यापति कोमल काँति।
कौशल सिरिस कुसुम अलि भाँति॥

न० गु०, प० १४६

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' में भी है। अत., इसके लिए प्रथम भाग का ८१ संख्यक पद देखिए।

[४४]

कतें[1] अनुनये[2] अनुगत अनुबोधि[3]।
पतिगृह सखिन्हि सोआउलि[4] बोधि॥
बिमुखि सुतलि धनि सुमुखि न होए[5]।
भागल[6] दल बहुलावए[7] कोए[8]॥
वालभु[9] बेसनि बिलासिनि छोटि।
मेलि[10] न मिलए देलहु[11] हिम कोटि॥

सं० अ०—२ अनुनयें। ३ अनुरोधि। ६ भाँगल। ७ बहुराबए। ११ देलहुँ।

वसन झपाए[12] बदन धर गोए।
बादर तर ससि बेकत न होए॥

भुज जुग चाप[13] जीव जौं[14] साँच।
कुच कञ्चन कोरी फल काँच॥

लग नहि[15] सरए करए कसि कोर।
करे[16] कर बाँहि[17] करहि कर जोर॥

एत दिन सइसबे[18] लाओल साठ।
अब गए[19] मदने[20] पढ़ाओब[21] पाठ॥

गुरुजन परिजन दुअओ नेबार।
मोहरे[22] मुदल[23] अछ[24] मदन भँडार॥

भनइ विद्यापति एहो रस भान[25]।
राए सिवसिंह लखिमा देवि[26] रमान[27]॥

न० गु०, प० १५०

पाठभेद—

ग्रियर्सन (पद-संख्या ३०)—३ अनुरोधि। ४ सोहाओलि। ५ होइ। ८ कोइ। १२ छपाए। २३ मुनल। २५ जान ग्रियर्सन द्वारा प्रकाशित। 'पदावली' मे ९वीं से १४वीं पंक्ति-पर्यन्त नहीं है।

मि० म० (पद-संख्या ५९)—१ कत। २ अनुनय। ३ सुताओलि। ९ बालमु। १० मेल। १३ चाँप। १५ नहिं। १७ बारि। १८ सैसब। १९ भए। २० मदन। २४ अछि। २६-२७ विरमान।

शब्दार्थ—कते=कितनी। अनुनये=अनुनय से=विनय से। अनुगत=अनुगामी=पीछे चलनेवाला=खुशामद करनेवाला। अनुरोधि=अनुरोध करके। सखिन्हि=सखियों ने। वोधि=समझा-बुझाकर। विमुखि=उदासीन। सुमुखि=प्रसन्न। भाँगल=फूटी हुई। दल=पँखुडी। बहुराबए=लौटा सकता है=फिर मिला सकता है। कोए=कोई। वालमु=(वल्लभ—स०) स्वामी। बेसनि=(व्यसनी—स०) विषयासक्त। मेलि=मेल। हिम=(हेम—

सं० अ०–१३ चाँप। १४ जओ। १६ करें। १७ बान्हि। १८ सइसबें। २१ पढ़ाओल। २२ मोहरें। २३ मुंदल। २५ जान। २६ दे।

स०) सोना। वसन=वस्त्र। वदन=मुख। गोए=छिपाकर। बादर=वादल=मेघ। तर=(तल—सं०) नीचे। ससि=चन्द्रमा। वेकत=(व्यक्त—स०) प्रकट। भुज जुग=वाहुद्वय=दोनों बाँहे। चाप=दबा रखती है=छिपा रखती है। जीव=प्राण। जौं=जैसे कि। साँच=सँजोती है। कुच=स्तन। कञ्चन=सोना। कोरी फल=वदरी फल=वेर। लग=समीप। सरए=आती है। कोर=(क्रोड—स०) गोद। कसि=कसकर=जवरदस्ती खीचकर। करे=हाथ से। कर=हाथ। वान्हि=बाँधकर। सइसबें=(शैशव—स०) वचपन ने। लाओल=लाई। साठ=शाठ्य=वदमाशी=नखरेबाजी। गए=जाकर। मदने=कामदेव। नेबार=निवारण करते हैं। मोहरे=मुहर से। मुँदल अछ=वन्द है। मदन भँडार=कामगृह।

अर्थ—कितनी विनय से, अनुगत होकर, अनुरोध करके, सखियों ने समझा-बुझाकर स्वामी के घर मे ला सुलाया।

(किन्तु) उदासीन होकर सोई नायिका प्रसन्न नही हो रही है। (कारण,) फूटी हुई पँखुड़ियो को फिर कोई मिला सकता है ? (अर्थात्—जिस प्रकार कली के फूटकर खिल जाने के बाद उसकी पँखुड़ियों को फिर कोई मिला नही सकता है, उसी प्रकार उदासीन नायिका को फिर कोई प्रसन्न नही कर सकता है।)

स्वामी विषयासक्त है; (किन्तु) विलासिनी (पत्नी) छोटी है। (इसीलिए) कोटियों स्वर्ण (मुहरे) देने पर भी मेल नही मिलता है (अर्थात्—प्रीति नही होती है।)

(नायिका) वस्त्र से ढककर मुँह छिपा रखती है। (जान पड़ता है, जैसे) मेघ के नीचे (छिपा) चन्द्रमा व्यक्त नही हो रहा है।

(नायिका) कच्चे वेर के समान स्वर्णाभ स्तन को, प्राण की नाईं, दोनों बाँहों से दबाकर सँजोये रहती है। (अर्थात्—प्राण की नाईं स्तन को छिपाये रहती है।)

(नायक) कसकर गोद मे करता है, (करना चाहता है तो वह) समीप (ही) नही आती है। (अपने एक) हाथ से (नायक के) हाथ को बाँधकर (दूसरे) हाथ से जोर करती है। (अर्थात्—नायक गोद मे लेना चाहता है, तो नायिका एक हाथ से उसके हाथ को पकड़कर दूसरे हाथ से उसे झिड़क देती है।)

इतने दिनों तक वचपन ने नखरेवाजी ला दी थी, (किन्तु) अव (तो) कामदेव ने पाठ पढा दिया है। (अर्थात्—इतने दिनों तक नायिका बचपन के चलते वदमाशी करती थी; किन्तु अव तो कामदेव ने ही उसे सिखा-पढाकर वदमाश बना दिया है।)

गुरुजन (और) परिजन—दोनों ही रोकते है। (कारण, अभी) मुहर से (मुहर लगाकर) कामगृह वन्द है। (अर्थात्—रजस्वला होने से पूर्व वालिका का कामगृह वन्द रहता है। उस समय सम्भोग निषिद्ध है। इसलिए, घर की बड़ी-बूढियाँ और ननद-भाभी आदि वालिका को पतिगृह जाने से रोकती है।)

विद्यापति कहते है—लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह इस रस को जानते हैं। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[४५]

वामा बयन[1] नयन[2] बह नोर।
काँप कुरङ्गनि[3] केसरि कोर॥
एकें[4] गह चिकुर दोसरें[5] गह गीम।
तेसरें[6] चिबुक चउठें[7] कुच सीम॥
निविबन्द[8] फोएक नहि अवकास।
पानि पचमके[9] बाढ़लि आस॥
राधा माधव प्रथमक मेलि।
न पुरल काम मनोरथ केलि॥
भनइ विद्यापति प्रथमक रीति।
दिने दिने बाला बुझति पिरीति॥

न० गु०, प० १५७

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या २८४)—३ कुरङ्गिनि। ८ निबिबन्ध।

शब्दार्थ—वामा=सुन्दरी। बयन=(वदन—स०) मुँह। नोर=आँसू। कुरङ्गिनि=हिरनी। केसरि=सिंह। कोर=(क्रोड—स०) गोद। गह=ग्रहण करते है। चिकुर=केश। गीम=(ग्रीवा—स०) गरदन। चिबुक=ठुड्डी। कुच सीम=स्तन का अग्रभाग। निविवन्द=नीवीबन्ध। फोएक=खोलने का। पानि=(पाणि—स०) हाथ। पचमके=पाँचवे का। प्रथमक=पहला। मेलि=मिलन। काम=कामना=इच्छा। पुरल=पूरा हुआ।

अर्थ—सुन्दरी के मुँह (कपोल) पर आँखो से आँसू बह रहे है। (वह इस प्रकार) काँप रही है, (जैसे) हिरनी सिंह की गोद मे काँपती है।

(कृष्ण) एक (हाथ) से (सुन्दरी का) केश, दूसरे (हाथ) से गरदन, तीसरे (हाथ) से ठुड्डी (और) चौथे (हाथ) से कुचाग्र पकडते है।

(चतुर्भुज कृष्ण के चारो हाथ इसी प्रकार उलझ गये।) नीविबन्ध खोलने का (उन्हे) अवकाश (ही) नही मिला। (इसलिए) पाँचवे हाथ की आशा बढ गई (प्रतीक्षा रह गई।)

राधा-कृष्ण के प्रथम मिलन मे न इच्छा पूर्ण हुई, न मनोरथ पूरा हुआ (और) न केलि हो सकी।

सं० अ०—१ बमन। २ नमन। ३ कुरङ्गिनि। ४ एकें। ५ दोसरें। ६ तेसरें। ७ चउठें। ८ निबिबन्ध। ९ पञ्चमके।

विद्यापति प्रथम (मिलन) की (यही) परिपाटी कहते है। (कारण,) अज्ञातयौवना (तो) क्रमशः प्रीति समझती है।

[४६]

एके अबला अओके सहजक छोटि।
कर धरइतें[1] करुणा[2] कर कोटि॥
आँकम नाम[3] रहए हिअ हारि।
जनि करिवर तर खसलि पओनारि॥
नअन[4] नीर भरि नहि नहि बोल।
हरि डरें[5] हरिण[6] जइसे[7] जिव डोल॥
कौशल[8] कुच कोरक करे लेल।
मुख देखि तिरिबध संसअ भेल॥
वारि विलासिनि बेसनी कान्ह।
मदन कउतुकिआ हटल न मान॥
भनइ विद्यापति सुनह मुरारि।
अति रति हठें[9] नहि जीबए नारि॥

न० गु०, प० १५९

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या २८०)—१ धरइत। २ करुना। ३ नामे। ४ नयन। ६ हरिन। ८ कौसले।

शब्दार्थ—अओके=और=दूसरे। सहजक=जन्मजात=अवस्था की। करुणा=आक्रोश। आँकम=आलिङ्गन। हिअ=हृदय। करिवर=गजराज। तर=(तल—स०) नीचे। पओनारि=(पद्मनाल—स०) मृणाल। खसलि=गिरी हुई। नीर=पानी (आँसू)। हरि=सिंह। जिव=प्राण। कौशल=चतुराई। कुच=स्तन। कोरक=कली। करें=हाथ से। तिरिवध=स्त्रीवध। वारि=(वालिका—स०) छोटी। वेसनी=(व्यसनी—स०) विषयासक्त। मदन=कामदेव। कउतुकिआ=(कौतुकी—स०) तमाशा करनेवाला। हटल=मना। रति=सम्भोग।

सं० अ०—३ नामे। ४ नअन। ५ डरें। ६-७ हरिनि जिव। ८ कउसलें। ९ हठें।

अर्थ—एक तो (नायिका) अवला है, दूसरे—अवस्था की छोटी है। (इसीलिए) हाथ पकड़ते ही (वह) करोड़ों आक्रोश करती है।

आलिङ्गन के नाम से ही (वह) हृदय हार देती है। (जान पड़ता है,) जसे गजराज के नीचे मृणाल गिरा है।

आँखों मे आँसू भरकर (वह) 'नही-नही' वोलती है। (जान पड़ता है,) जैसे सिंह के डर से हिरणी के प्राण डोल रहे है।

(कृष्ण ने) चतुराई से स्तन-रूपी कली हाथ में ले ली; (किन्तु उसका) मुख देखकर स्त्रीवध का सशय हो गया।

नायिका छोटी है (और) कृष्ण विषयासक्त है। फिर भी, तमाशा करनेवाला कामदेव मना नही मानता है।

विद्यापति कहते है—हे कृष्ण! सुनो। सम्भोग के दुराग्रह से नायिका नही जी सकती है।

[४७]

जखने[1] लेल हरि कंचुअ[2] अछोड़ि[3]।
कते परजुगुति[4] कएल[5] अङ्ग मोड़ि[6]॥
तखनुकि कहिनी कहहि न जाए।
लाजे[7] सुमुखि धनि रहलि लजाए[8]॥
करे[9] न मिझाए[10] दूर जर[11] दीप।
लाजे[12] न मरए[13] नारि कठजीव॥
आँकम[14] कठिन सहए[15] के पार।
कोमल हृदय उखड़ि गेल हार॥
भनइ विद्यापति तखनुक भान।
कओने[16] कहल[17] सखि होएत बिहान॥

न० गु०, प०१६२

पाठभेद—

प्रियर्सन (पद-सख्या ३१)—१ जखनहिँ। २ कञ्चु। ३ अछोरि। ६ मोरि।

सं० अ०—२ कँचुआ। ७ लाजेँ। ९ करेँ। १२ लाजेँ। १६ केओ ने।

७ लाज। ८ लजाय। ९ करें। ११ बड़। १२ लाज। १३ मरय। १४ आकम्म। १५ सहय।
अन्त मे निम्नलिखित भणिता है—

विद्यापति कवि तखनुक भान।
केओ न कहे सखि होएत बिहान॥

मि० म० (पद-सख्या ४८५)—१ जखन। २ कँचुअ। ४ परजुगति। ५ कयल। ९ कर। १० मिझाय। १४ अङ्कम। १६ कओन। १७ कहलि।

शब्दार्थ—कचुअ=कञ्चुकी—स०। अछोड़ि=अपहरण=उतारना। परजुगति=(प्रयुक्ति—सं०) प्रयत्न। कहिनी=कथा=बात। करे=हाथ से। मिझाए=बुझता है। जर=जलता है। कठजीव=(काष्ठजीव—सं०) काष्ठ के समान कठोर प्राणवाला। आँकम=आलिङ्गन। उखड़ि गेल=उग आया। भान=रहस्य। बिहान=भोर।

अर्थ—कृष्ण ने जिस समय कचुकी उतार ली, (उस समय राधा ने लाज बचाने के लिए) अङ्ग मोड़कर कितने प्रयत्न किये!

उस समय की बात कही नही जाती। प्रसन्नवदना नायिका लाज से लजाकर (सिमट-सिकुड़कर) रह गई।

दीपक दूर मे जल रहा है, (इसलिए) हाथ से बुझता (भी) नही। स्त्रियाँ कठजीव होती हैं, (इसीलिए ऐसी परिस्थिति मे भी) लज्जा से नही मरती है।

(नायक का) कठिन आलिङ्गन कौन (नायिका) सह सकती है? (इसीलिए नायिका के) कोमल हृदय पर हार (हार का दाग) उग आया।

विद्यापति उस समय का रहस्य कहते है (कि) किसी ने भी नही कहा (कि) हे सखी! (अब) भोर होगी। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[४८]

अबला अंसुक बालम्भु लेला।
पानि पलब धनि आँतर देला॥
हठ न करिहु पहु न पूरत कामे।
प्रथमक रभस विचारक ठामे॥
मदन भण्डार सुरत रस आनी।
मोहरे मुन्दल अछ असमय जानी॥
मुकुलित लोचन नहि परगासे।
काँप कलेवर हृदय तरासे॥

आबे नवजीवन समय निहारी।
अपनहिं बेकत होयत परचारी।।
भनइ विद्यापति नव अनुरागी।
सहिय पराभव पिय हित लागी।।

न० गु०, प० १६४

विशेष—यह पद 'रागतरङ्गिणी' मे भी है। अतः, इसके लिए 'रागतरङ्गिणी' मे प्राप्त १२ संख्यक पद देखिए।

[४९]

हमे अबला तोहें[1] बलमत नाह।
जीवक बदले पेम निरबाह।।
पठि मनसिज मत दरसह भाव।
कउतुकें[2] करिवर करिनि खेलाब।।
परिहर कन्त दहे जिव दान।
आज न होएत निसि अवसान।।
दइनि[3] दया नहि दारुन तोहि।
नहि तिरिबध डर हृदअ[4] न मोहि।।
रमन सुखें[5] जओं[6] रमनी जीब।
मधुकर कुसुम राखि मधु पीब।।
भनइ विद्यापति पहु रसमन्त।
रति रस रभस होएत नहि अन्त।।

न० गु०, प० १७०

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या २८३)—१ तोंहे। ३ दइन। ४ हृदय। ६ जयँ।

शब्दार्थ—बलमत=बलवान्। नाह=नाथ। जीवक=प्राण के। पठि=पढकर। मनसिज=कामदेव। मत=सिद्धान्त। भाव=प्रेम। कउतुकें=कौतुक से=विनोद से=प्यार से।

सं० अ०—१ तोहें। २ कउतुकें। ५ सुखें।

करिवर=गजराज। करिनि=(करिणी—स०) हथिनी। परिहर=छोड़ दो। जिव-दान=प्राणदान। निसि=रात। अवसान=अन्त। दइनि=(दीना—सं०) गरीबिन। दारुन=कठोर=निर्दय। तिरिबध=स्त्रीवध। मोहि=मोह=ममता। रमन=केलि। कुसुम=फूल। पहु=प्रभु=स्वामी। रति-रस=रतिजन्य आनन्द। रभस=आवेश=उफान।

अर्थ—हे स्वामी! मैं अबला हूँ (और) तुम बलवान् हो। (इसलिए) प्राण के बदले (प्राण को छोड़कर) प्रेम का निर्वाह करो। (अर्थात्—इस प्रकार प्रेम करो कि मेरे प्राण न जायँ।)

कामदेव का सिद्धान्त (कामशास्त्र) पढ़कर प्रेम दिखलाओ। (कारण,) गजराज (भी) प्यार से हथिनी को खेलाता है।

हे स्वामी! छोड दो—प्राणदान दो। (जान पडता है, जैसे) आज रात का अन्त नही होगा।

अरे निर्दय! न तुम्हे गरीबिन पर दया आती है, न स्त्रीवध का डर होता है (और) न (तुम्हारे) हृदय मे ममता है।

यदि रमणी जीती बचेगी, (तो) सुख से केलि होगी। भौरा (भी) फूल की रक्षा करके मधुपान करता है।

विद्यापति कहते है—स्वामी रसज्ञ है। (इसलिए) रतिजन्य आनन्द के उफान का अन्त नही होगा।

[५०]

ए किआ
अनलहु[१] न आबए पासे।
कोरहु करइते[२] काँप तरासे॥
नहि नहि नहि पए भाखे।
जइअओ जतने[३] करिअ पए लाखे॥
सुमुखि विमुखि[४] रह सोइ[५]।
पअ परलहु नहि परसनि होइ[६]॥
सेज चकित रह जागी।
छटपट कर जनि परसलि आगी॥

न० गु०, प० १७४

सं० अ०—१ अनलहुँ। ५ सोई। ६ होई।

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ८३१)—२ करइत। ३ जतन। ४ विमुखी।

शब्दार्थ—ए=सम्बोधन। किआ=क्यों। अनलहु=लाने पर भी। को हु=(क्रोड—स०) गोद मे। तरासे=त्रास से। भाखे=बोलती है। पअ=(पद—स०) पैर। चकित=डरी हुई। जनि=जैसे। परसलि=स्पृष्ट हो गई=छू गई।

अर्थ—(नायक की उक्ति—) अरी! लाने पर भी (नायिका) पास क्यों नही आती है? गोद में करते (अँकवारते) भी भय से क्यों कांपती है?

यद्यपि (समझाने के लिए) लाखों यत्न करता हूँ, (तथापि) 'नही, नही, नही' बोलती है।

सुन्दरी अप्रसन्न होकर (मुँह फेरकर) सो रहती है। पैर पडने पर भी प्रसन्न नही होती है।

शय्या पर डरी हुई (वह) जगी रहती है (और इस प्रकार) छटपट करती है, जैसे आग छू गई हो! (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[५१]

परसे[1] बुझल तनु सिरिसिक[2] फूल।
वदन सुसौरभ सरसिज तूल॥
मधुर बानि सुरे[3] कोकिल साद।
पिउल अधर मुख अमिय[4] सवाद॥
सुन्दरि बूझ(ल)[5] तोहर विवेक।
चारि जेंओल[6] भरि भूखल एक॥
वासर देखहि न पारिअ सूर।
दुतिक वचने अएलाहुं एत दूर॥
पओलह शीतल[7] पानि बिसेखि।
हरह पियास कि करबह देखि॥
भनइ विद्यापति सुन वर नारि।
नयनक[8] आतुर रहल मुरारि॥

न० गु०, प० १७६

सं० म०—१ परसें। २ सिरिसक। ३ सुरें। ४ अमिन। ५ बूझल। ६ जेंओल। ७ सीतल। ८ नजनक।

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या २७९)—२ सिरिसक। ३ सरे। ६ जें ओल। ७ सीतल।

शब्दार्थ—परसे=स्पर्श से। तनु=शरीर। वदन=मुख। सुसौरभ=सुगन्धि। सरसिज=कमल। तूल=तुल्य—सं०। गुरे=स्वर—सं०। वानि=(वाणी—सं०) वचन। साद=विषाद—सं०। अमिय=अमृत। सवाद=स्वाद। जें ओल=भोजन किया। भरि=पूरा। वासर=दिन। सूर=सूर्य। पानि=पानी। विसेखि=(विशेष—सं०)असाधारण। आतुर=अधीर।

अर्थ—(कृष्ण बैठे थे। राधा ने पीछे से आकर उनकी आँखे बन्द कर दी। इसी पर कृष्ण कहते हैं—) स्पर्श से समझा (कि) शरीर शिरीष का फूल है (अर्थात्—शिरीष के फूल के समान कोमल है और) सौरभ से समझा (कि) मुँह कमल के तुल्य है।

(तुम्हारे) मधुर वचन के कारण स्वर से कोकिल को विषाद हो रहा है (और तुम्हारे) अधर-का पान किया (तो) मुँह में अमृत का स्वाद (पाया)।

हे सुन्दरी! (मैंने) तुम्हारा विवेक समझ लिया। (कारण), चार (स्पर्श करनेवाला हाथ, सौरभ लेनेवाला घ्राण, मधुर वचन सुननेवाला कान और अधरामृत पान करनेवाली जिह्वा) ने पूरा भोजन किया; (किन्तु) एक (नेत्र) भूखा (ही) रहा।

(राधा उत्तर देती है—)दूती के कहने से इतनी दूर आने पर भी (तुम मुझे नहीं देख पाते हो, तो मैं समझती हूँ—)दिन मे (तुम) सूर्य को (भी) नहीं देख सकते हो।

(तुमने) असाधारण शीतल जल पा लिया है। (इसलिए) प्यास बुझा लो। (मुझे) देखकर क्या करोगे?

विद्यापति कहते हैं—अरी वरनारी! सुनो। कृष्ण आँखों के अधीर (ही) रह गये। (अर्थात्—कृष्ण की आँखे तरसती ही रह गईं।)

[५२]

आबे न लहति आइति मोरि।
परे परतख लखबि चोरि॥
बेरा एक जीव राख कन्हाइ।
परक पेअसि[1] देह पठाइ॥
चुम्बने लेंपि (अ)[2] काजर धार।
अधर निरसि जे तोरलह हार॥

सं० अ०—२ लेपिअ।

नखेरि खत कुचजुग लागु।
से कइसे होइति गुरुजन आगु॥
भनें विद्यापति रस सिङ्गार।
सङ्केत आइलि तेजए के पार॥

न० गु०, प० १८१

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या २९५)—१ पेयसि। ३ नखक। ४ नख।

शब्दार्थ—रहति=रहेगा। आइति=(आयत्ति—सं०) उपाय। परे=दूसरे। परतख=प्रत्यक्ष—सं०। लखति=देख लेंगे=पहचान जायँगे। बेरा एक=एक बार। जीव=प्राणी। परक=दूसरे की। पेअसि=(प्रेयसी—सं०) पत्नी। निरसि=नीरस करके। नखेरि=नखों के। खत=क्षत। सकेत=प्रेमी-प्रेमिका के मिलन का निर्दिष्ट स्थान।

अर्थ—अब मेरा उपाय नहीं रहेगा। (कारण,) दूसरे मेरी चोरी को प्रत्यक्ष देख लेंगे।

हे कृष्ण! एक बार (इस) प्राणी की रक्षा करो—दूसरे की पत्नी को वापस भेज दो।

(तुमने) चुम्बन से (इसकी) काजल की धारा फेर दी (और) अधर को नीरस करके हार तोड़ डाला।

(इसके) कुचयुग में नखक्षत लग गये, इसलिए (यह) गुरुजनों के आगे कैसे होगी?

विद्यापति शृंगार-रस कहते हैं (अर्थात्—शृंगार-रस का वर्णन करते हैं। उनका कहना है कि) मिलन-स्थान में आई हुई (नायिका) को कौन त्याग सकता है?

[५३]

हृदय तोहर जानि न भेला।
परक रतन आनि मोञे देला॥
कएल माधव हमे अकाज।
हाथि मेराउलि सिंह समाज॥
राखह माधव मोरि विनती।
देहे परीहरि पर जुवती॥
चुम्बने नयन काजर गेला।
दसने अधर खण्डित भेला॥

पीन पयोधर नखर मन्दा।
जनि महेसर शिखर चन्दा॥
न मुख वचन न चित थीरे।
काँप घनहन सबे सरीरे॥
घर गुरुजन दुरजन सङ्का।
न गुनह माधव मोहि कलङ्का॥
कवि विद्यापति भान।
आनक वेदन नइ वुझ आन॥

न० गु०, प० १८२

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अतः, इसके लिए प्रथम भाग का १ संख्यक पद देखिए।

[५४]

साजनि[1] अकथ कहि न जाए।
अबल अरुण[2] ससिक मण्डल
भीतर रह नुकाए॥
कदलि ऊपर[3] केसरि देखल
केसरि मेरु चढ़ला।
ताहि ऊपर[4] निशाकर देखल
किर ता उपर[5] बइसला॥
कीर ऊपर[6] कुरङ्गिनि देखल
चकित भमए जनी।
कीर कुरङ्गिनि उपर[7] देखल[8]
भमर उपर[9] फनी॥

सं० अ०—१ सजनि। ५ उपर। ८ ऊपर।

एक असम्भव आओ(र) देखल
जल विना अरविन्दा।
बेबि सरोरुह ऊपर[१०] देखल
जैसन[११] दूतिय[१२] चन्दा॥
भन विद्यापति अकथ कथा
इ[१३] रस केओ केओ जान[१४]।
राजा शिवसिंह रूपनरायन[१५]
लखिमा देवि[१६] रमान[१७]॥

न० गु०, प० १८३

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या २६)—२ अरुन । ३ उपर। ४ उपर। ६ उपर। ७ उपर। ९ आओर। १० उपर। ११ जइसन। १२ दूतिअ। १५ रूपनरायण। १६ देइ।

शब्दार्थ—अकथ=अकथनीय=नही कहने योग्य=अचरज की बात। अवल=निर्बल। अरुण=उगता हुआ सूर्य। ससिक=चन्द्रमा का। मण्डल=व्यूह। कदली=केले का पेड़। केसरि=सिंह। निशाकर=चन्द्रमा। किर=सुग्गा। कुरङ्गिनि=हिरनी। भमए=घूम रही है। जनी=जैसे। अरविन्दा=कमल। बेबि=दो। सरोरुह=कमल। दूतिअ=द्वितीया—स।०।

अर्थ—हे सखी! अचरज की (बात) कही नही जाती है! (अर्थात्—आज मैंने जो कुछ देखा, वह ऐसा अकथनीय है कि मुझसे कहा नही जाता है। फिर भी सुनो)—उदयकालीन निर्बल सूर्य (अरुणाभ पदतल) चन्द्रमा (पदनख) के व्यूह के भीतर छिपा था।

कदली (जाँघ) के ऊपर सिंह (कटि) को देखा (और) सिंह (कटि) के ऊपर चढ़े मेरु (स्तन) को देखा।

उसके (मेरु के) ऊपर चन्द्रमा (मुख) को देखा (और) उसके ऊपर बैठे सुग्गे (नासिका) को देखा।

सुग्गे (नासिका) के ऊपर हिरनी (आँख) को देखा। (सो, जान पड़ता था,) जैसे वह चौककर घूम रही है।

सुग्गे (और) हिरनी के ऊपर भ्रमर (भौंह) को देखा (तथा) भ्रमर के ऊपर सर्प (वेणी=चोटी) को देखा।

सं० अ०—९ आओर। ११ जइसन। १२ दूतिअ। १३ ई। १४ जाने। १५ रूपनरावेन। १७ रमाने।

और भी एक असम्भव देखा (कि) विना पानी के कमल (हाथ) खिले थे। दोनों कर-कमलों (हाथो) के ऊपर (ऐसा) देखा, जैसे कि द्वितीया का चन्द्रमा हो। (अर्थात् द्वितीया के चन्द्रमा के समान उसके नख शोभित हो रहे थे।)

विद्यापति अचरज की बात कहते हैं। इस रस को कोई-कोई (ही) जानता है। लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह रूपनारायण (इसे जानते है।) (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[५५]

प्रथम दरस रस रभस न जानए
कि करति पहु सञो[1] केली।
नवि नलिनी जञो[2] कुञ्जरे[3] गञ्जलि
दमने दमन तनु भेली॥
की आरे देखिअ अनूपे।
मधु लोभें[4] मुकुल कुसुम दल कलपए
आरति भूखल[5] मधूपे॥

न० गु०, प० १८४

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ८३०)—१ सयँ। २ जनि। ५ भुखल।

शब्दार्थ—दरस=दर्शन=साक्षात्कार=मिलन। रस-रभस=प्रेम का रहस्य। नलिनी=कमलिनी। जञो=जैसे। कुञ्जरें=हाथी से। गञ्जलि=रौंदी हुई। दमने=दवाने से। दमनतनु=द्रोणलता के समान सुकुमार शरीरवाली कोमलाङ्गी। भली=हो गई। अनूपे=अनुपम=अद्भुत। मुकुल=अधखिली कली। कुसुम=फूल। दल=पँखुड़ी। कलपए=कलपता है=विलाप करता है। आरति=मनोव्यथा। मधूपे=भ्रमर।

अर्थ—(वाला) प्रथम मिलन मे प्रेम का रहस्य (ही) नही जानती है (तो) स्वामी के साथ केलि क्या करेगी?

जैसे हाथी से रौंदी हुई नई कमलिनी (कमल की कली) हो, (वैसी ही) दवाने से कोमलाङ्गी (वाला) हो गई।

अरे, क्या अद्भुत देखती हूँ? भखा भ्रमर आर्त्त होकर, मधु के लोभ से, अधखिले फूल की पँखुड़ी पर विलाप कर रहा है!

सं० अ०—३ कुञ्जरें। ४ लोभें। ५ भुखल।

[५६]

आज[1] देखलिसि कालि देखलिसि
आज कालि कत भेद।
ऐसवे बापुड़े[2] सौमा छाड़ल
जउवन बाँधल फेद॥
सुन्दरि कनककेआ सुति गोरी।
दिने दिने चान्द कला सञो बाढ़लि
जउवने सोभा[3] तोरी॥
बाल पयोधर बदन[4] सहोदर
अनुमापिय[5] अनुरागे।
कओने[6] पुरुष करें[7] परसए पाओल
जे तनु जिनल परागे॥
मन्द हासें[8] बङ्किम कए दरसए
चङ्किम भँउह विभङ्गे।
लाजें[9] बेआकुलि सामु[10] न[11] हेरए
आउल नयन[12] तरङ्गे॥
विद्यापति कविवर एहु गावए
नव जउवन नव कन्ता।
सिवसिंह राजा एहो रस जानए
मधुमति देवि सुकन्ता॥

न० गु०,प० १८६

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या १८)—१ आजि। ३ शोभा। ५ अनुमानिय। ७ करें। १०-११ सामुन।

सं० अ०—२ बापुरे। ४ बदर। ५ अनुमापिअ। ६ कओने। ७ करें। ८ हासें। ९ लाजें। १२ नअन।

शब्दार्थ—बापुड़े=बेचारा। फेद=फाँदकर। कनककेआ=(कनककदली—सं०) चम्पा केला। मुति=(मूर्त्ति—सं०) आकार। गोरी=गौर वर्णवाली। बदर=बेर। अनुमापिअ=अनुमान करती हूँ। अनुरागे=लालिमा से। तनु=शरीर। परागे=(उपराग—सं०) राहु। मन्द हासें=मुसकान के साथ। बकिम=(वक्र—सं०) टेढ़ा। चङ्क्रिम=सुन्दर। भँउह् विभङ्गे=भ्रूभङ्ग का। सामु=सामने। आउल=(आकुल—स०) उद्विग्न। तरङ्गे=उमंग से।

अर्थ—(तुम्हे) आज देखा—कल देखा, (किन्तु) आज (और) कल मे कितना अन्तर (दिखाई पड़ा ?)

बेचारे बचपन ने (अपनी) सीमा छोड़ दी (अपना स्थान छोड़ दिया और) यौवन ने फाँदकर (उसे) बाँध लिया (उसपर अधिकार कर लिया।)

हे सुन्दरी ! (तुम) चम्पा केला की मूर्त्ति (कदली-स्तम्भ) के समान गोरी हो। तुम्हारी यौवनश्री दिन-दिन (क्रमशः) चन्द्रकला के समान बढ़ चली है।

(मैं) लालिमा से (लालिमा देखकर) अनुमान करती हूँ (कि) तुम्हारे छोटे स्तन बेर के सहोदर है। (अर्थात्—तुम्हारे स्तन बेर के समान सुन्दर हैं।)

किस पुरुष ने (उन स्तनों का) स्पर्श पाया (स्पर्श किया), जिसने राहु के समान (तुम्हारे) शरीर को जीत लिया ? (अर्थात्—किसने सम्भोग किया ?)

(तुम) सुन्दर भ्रू-भङ्ग को टेढ़ा करके मन्द मुसकान के साथ देख रही हो।

(तुम) लज्जा से व्याकुल हो, (इसीलिए तुम्हारी) उद्विग्न आँखे उमंग से सामने नही देखती हैं।

कविवर विद्यापति यह गाते है (कहते है कि बाला) नवयौवना है (और) स्वामी नवयुवक है।

मधुमती देवी के स्वामी राजा शिवसिंह इस रस को जानते हैं।

[५७]

सामरि हे झामर तोर देह।
की कह कइसे लावलि नेह॥
नीन्दे भरल अछ लोचन तोर।
अमिय भरमे जनि लुबुध चकोर॥
निरसि धुसर करु अधर पवार।
कोने कुबुधि लुटु मदन भण्डार॥
कोने कुमति कुच नखखत देल।
हाए हाए सम्भु भगन भए गेल॥

दमन लता सम तनु सुकुमार।
फूटल बलय टूटल गृम हार॥
केस कुसुम तोर सिरक सिन्दूर।
अलक तिलक हे सेहओ गेल दूर॥
भनइ विद्यापति रति अवसान।
राजा सिवसिंह ई रस जान॥

न० गु०, प० १९१

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' में भी है। अतः, इसके लिए प्रथम भाग का १९७ संख्यक पद देखिए।

[५८]

प्रथम समागम के नहि जान।
सम कए तौलल पेम परान॥
कसल कसउटा न भेल मलान।
बिनु हुतबह भेल बारह बान॥
बिकलए गेलिहु रतन अमोल।
चिन्हि कहु बनिके घटाओल मोल॥
सुलभ भेल सखि न रहए भार।
काच कनक लए गाँथ गमार॥
भनइ विद्यापति असमय बानि।
लाभ लाइ गेलाहु मुलहु भेल हानि॥

न० गु०, प० १९६

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' में भी है। अतः, इसके लिए प्रथम भाग का २५१ संख्यक पद देखिए।

[५९]

दृढ़ परिरम्भने[1] पिड़लि[2] मदने[3]।
उबरि अयलाहुँ[4] सखि पुरुब[5] पुने[6]॥
टुटि छिड़ियायल[7] मोतिम[8] हारे[9]।
सिन्दुरें[10] लुटायल[11] सुरङ्ग पवारे[12]॥
सुन्दर कुचयुग[13] नखखत भरी।
जनि गजकुम्भ बिदारल हरी॥
अधर दशन[14] देखि जिव[15] मोर[16] काँपे।
चाँदमण्डल जनि राहुक झाँपे॥
समुद्र ऐसनि[17] निशि[18] न पाबिय[19] ऊरे[20]।
कखन उगत मोर हित भए सूरे[21]॥
मोञे[22] नहि[23] जाएब सखि तन्हि[24] पिआ[25] ठामे[26]।
बरु[27] जिव मारि नड़ाबथु[28] कामे[29]॥
भनइ[30] विद्यापति तेज भय लाजे[31]।
आगि जाड़िय[32] पुनु[33] आगिहिक[34] काजे[35]॥

न० गु०, प० २०१

पाठभेद—

प्रियर्सन—(पद-संख्या ३८)—१ परिरम्भनि। ३ मंदान्हे। ४ एलहुँ। ५ पुरुबक। ६ पुण्ये। ८ मोतिक। १० वसन। ११ लोटाएल। १२ पनारे। २० ओरे। २२-२३ अब न। २४ पुनि। २७ जौँ। २८ नड़ावत। ३० भनहि। ३२ जारि। ३३ पुनि। ३४ आगिक।

मि० म० (पद-संख्या ४९१)—१ परिरम्भन। २ पीड़लि। ४ अएलहुँ। ५ पुरब। ७ छिड़िआएल। ९ हार। १० सिन्दुर। ११ लोटाएल। १२ पँवार। १३ कुचजुग। १४ दसन। १५ जिउ। १६ मोरा। १७ ऐसन। १८ निसि। १९ पारिए। २० ऊर। २१ सूर। २२ मोय। २५ पिया। २६ ठाम। २८ नड़ाबथि। २९ काम। ३१ लाज। ३२ जारिये। ३४ आगिक। ३५ काज।

सं० अ०—२ मदान्हे। २१ छिड़िआएल। १० वसन। ११ लोटाएल। १२ पनारे। १४ वसन। १७ अइसनि। १८ निसि। २२-२३ मोन न। २४ पुनि। ३२ जरिअ। ३३ पुनि।

शब्दार्थ—परिरम्भने=आलिङ्गन से। मदान्हे=मदान्ध ने। उवरि अयलाहुँ=बच आई। पुरुब पुने=पूर्व-पुण्य से। छिड़िआएल=बिखर गया। वसन=वस्त्र। लोटाएल=लुढ़क गया। सुरङ्ग=लाल रंग। पनारें=पनाले मे=प्रवाह मे। कुचयुग=स्तनद्वय। नखखत=नखक्षत—स०। जनि=जैसे। गजकुम्भ=हाथी का मस्तक। हरी=सिंह। अधर=ओष्ठ। दसन=दाँत से काटना=दन्तक्षत। झाँपे=(झम्प—स०) झपट। ऊरे=ओरे=अन्त। सूरे=सूर्य। ठामे=(स्थाम—स०) स्थान मे। जिव=प्राण। नड़ावथु=रख दे।

अर्थ—मदान्ध (स्वामी) ने (मुझे) दृढ आलिङ्गन से पीड़ित कर दिया। हे सखी! (मैं) पूर्व-पुण्य से ही बच आई।

(मेरा) मोती का हार टूटकर बिखर गया (और) वस्त्र लाल रंग के प्रवाह में लुढ़क गया (अर्थात्—शराबोर हो गया।)

(मेरे) दोनों सुन्दर स्तन नखक्षत से भर गये। (जान पड़ता था,) जैसे सिंह ने हाथी का मस्तक फाड़ डाला है।

ओष्ठ में दन्तक्षत देखकर मेरे प्राण (इस प्रकार) काँप रहे है, जैसे राहु की झपट से चन्द्रमण्डल काँपता है।

समुद्र-सी रात्रि का अन्त नही पाती थी। (अर्थात्—समुद्र के समान रात्रि का अन्त नही मिल रहा था। मैं यही सोचती थी कि) मेरा हितैषी होकर सूर्य कब उदित होगा?

हे सखी! भले ही कामदेव मेरे प्राण मारकर रख दे; (किन्तु) मैं फिर स्वामी के पास नही जाऊँगी।

विद्यापति कहते है—(अरी सुन्दरी!) भय और लज्जा छोड़ दो। आग जलाती है, फिर (भी) आग का ही काम होता है। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[६०]

कि करति अबला हठ कए नाह।
निरदए भए उपभोगए चाह॥
परम प्रबल पहु कोमल नारि।
हाथि हाथ जनि पड़ल पञोनारि॥
कि कहब हे सखि नाह विवेक।
एकहि बेरि रस मांग[1] अनेक॥

सं० अ०—१ माँग।

करल[1] काकु[2] कत कर जुग लाए।
तइअओ मुगुध रति रचए उपाए॥

बिनु अवसर हठ[4] रस नहि आब।
फुलला फूल[5] मधुकर मधु पाब॥

भनइ विद्यापति गुनक निधान।
जे बुझ ताहि लाग पञ्चबान॥

न० गु०, प० २०४

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ४८७)—२ काकुति। ५ फुल।

शब्दार्थ—कि करति=क्या करेगी। हठ=दुराग्रह। भए=होकर। उपभोगए चाह=सम्भोग करना चाहता है। पहु=(प्रभु—स०) स्वामी। जनि=जैसे। पओनारि=पद्मनाल—स०। करल=कएल=किया। काकु=भयजन्य ध्वनि-घिघियाना। करजुग=दोनों हाथ। लाए=लाकर=जोड़कर। मुगुध=(मुग्ध-स०) मूढ। रति=सम्भोग।

अर्थ—स्वामी हठ करके, निर्दय होकर, सम्भोग करना चाहते है, (तो) अबला (नारी) क्या करेगी?

स्वामी अत्यन्त प्रबल है (और) नारी कोमल (कोमलाङ्गी) है। (जान पड़ता है,) जैसे हाथी के हाथ मे पद्मनाल पडा है।

हे सखी! (मैं) स्वामी का विवेक क्या कहूँगी? (वे तो) एक ही बार मे अनेक रस माँगते है।

(मैं) हाथ जोड़कर कितना घिघियाती हूं, तो भी मूढ सम्भोग का उपाय रचता है (अर्थात्—सम्भोग का यत्न करता है।)

विना अवसर के, हठ करने से, रस नही आता है। भौरा विकसित फूल से (ही) मधु पाता है।

विद्यापति कहते है—जो गुणज्ञ (इसे) समझता है, उसे कामदेव लग जाता है (अर्थात्—कामदेव सताने लगता है।)

सं० अ०—२ कएल। ४ हठें। ५ फुल।

[६१]

रामा तोरि बढ़ाउलि केलि।
कतय[1] देखल[2] नवि नलिनी
मत मतङ्गज मेलि॥
गोर शरीर पयोधर कोरी
परसे[3] अरुण[4] भेल।
कनक बलरि जनि रतोपल[5]
मुकुले[6] उदय देल॥
छैल जन जदि दैनें[7] न पाइअ
ताहेरि हृदय मन्द।
खने खने रतिरभसे आगर
दिने दिने नव चन्द॥
मञें[8] नवीना पिआ सआना[9]
कुपुत कुसुम बान।
केसरि कर करिनी पड़लि
तासु महते छोड़ान॥
से जे अवसर मन न बिसर
नयन चलए नीर।
सिरिस[10] कुसुम खगे[11] खेलौलन्हि
भमर भरे[12] जे भीर॥
भनें[13] विद्यापति सुनह जौवति[14]
पेमक गाहक कन्त।
राजा शिवसिंह[15] रूपनरायन[16]
सुरस बिन्द सुतन्त॥

न० गु०, प० २०५

सं० अ०—१ कतए। २ देखलि। ३ परसें। ६ मुकुलें। ७ दइने। ८ मोञ। ९ सआना। ११ खगें। १२ भरें। १४ जउवति। १५ सिवसिंह। १६ रूपनराञेन।

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ७३)—२ देखलि। ४ अरुन। ५ रतोपले। १० सिरिसि। १३ भन। १५ सिवसिंह।

शब्दार्थ—रामा=रमण करानेवाली दूती। तोरि=तुम्हारी। वढ़ाउलि=वढ़ाई हुई। केलि=खेल। नलिनी=कमलिनी। मत=(मत्त—सं०) मतवाला। मतङ्गज=हाथी। मेलि=मिलन। पयोधर=स्तन। कोरी=(कोली—सं०) वेर। अरुण=लाल। कनक=सोना। वलरि=(वल्लरी—सं०) लता। जनि=जैसे। रतोपल=(रक्तोपल—सं०) लाल कमल। मुकुले=कली ने। छैल जन=छैला आदमी। दइने=(दैन्य—सं०) दुर्गति=विपन्नता=दयनीय दशा। पाइअ=पाता है। ताहेरि=उसका। खने खने=(क्षणे-क्षणे—सं०) क्षण-क्षण मे। रति रभसे=रति-रग मे। आगर=(आकर—सं०) चतुर। सआना=सयाना=समर्थ। कुपुत=क्रुद्ध। कुसुमबान=कामदेव। केसरि=सिंह। कर=हाथ। करिनी=हथिनी। महते=महावत। खगे=पक्षी ने। भरे=भार से। भीर=(भीरु—स०) डर जाता है। सुरस विन्द=रस के अच्छे जानकार। सुतन्त=स्वतन्त्र—स०।

अर्थ—अरी दूती! तुम्हारा (ही) वढ़ाया (यह) खेल है। अधखिली कमलिनी (और) मतवाले हाथी का मिलन (तुमने) कहाँ देखा, (जो इस प्रकार का खेल रचाया?)

गोरे शरीर पर वेर के समान (छोटे) स्तन (स्वामी के कर-) स्पर्श से लाल हो गये। (जान पड़ता है,) जैसे सोने की लता मे लाल कमल की कलियाँ उग आई हैं।

छैला यदि (नायिका की) दयनीय दशा को नही पाता है (दयनीय दशा पर ध्यान नही देता है, तो समझना चाहिए कि) उसका हृदय नीच है। (कारण,) दिन-दिन नवीन चन्द्रमा (के समान नायिका भी) क्षण-क्षण (क्रमश.) रति-रग से चतुर होती है।

मैं नवीना (वाला) हूँ, स्वामी समर्थ हैं (और) कामदेव क्रुद्ध है। सिंह के हाथ मे हथिनी पड़ी है, उसे महावत को ही छुड़ाना है। (अर्थात्—जैसे सिंह के हाथ मे पड़ी हरिणी को महावत छुड़ाता है, वैसे ही तुम भी मुझे नायक के हाथ से छुड़ा लो।)

वह अवसर मन से भूलता नही है। (स्मरण होते ही) आँखो से आँसू चू पड़ते हैं। (हाय!) भ्रमर के भार से जो डरा रहता है, शिरीष के (उस) फूल को पक्षी ने खेलाया।

विद्यापति कहते हैं—(अरी) युवती! सुनो। स्वामी प्रेम के ग्राहक होते है। राजा शिवसिंह रूपनारायण रस के अच्छे जानकार (और) स्वतन्त्र हैं।

[६२]

पहिलुकि परिचय पेमक सञ्चय
रजनी आध समाजे।
सकल कला रस सभरि न भेले
बैरिनि भेलि मोरि लाजे॥
साए साए अनुसए रहलि बहूते।
तन्हिहि सुबन्धु के कहिए पठाइअ
जौ भमरा होअ दूते॥
खनहि चीर धर खनहि चिकुर गह
करय चाह कुच भङ्गे।
एकलि नारि हमे कत अनुरञ्जब
एकहि बेर सबे रङ्गे॥
तखने विनय जत से सब कहब कत
कहए चाहल करे जोली।
नवए रस रङ्ग भइए गेल भङ्ग
ओड़ धरि न भेले बोली॥
भनइ विद्यापति सुन वर जौवति
पहु अभिमत अभिमाने।
राजा सिवसिंह रूपनरायन
लखिमा देइ विरमाने॥

न० गु०, प० २०५

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अतः, इसके लिए प्रथम भाग का १५६ संख्यक पद देखिए।

[६३]

पिअ[1] रस पेसल प्रथम समाजे।
कत खन राखब अखँडित[2] लाजे॥
कह गजगामिनि जत मन जागे।
अपन नागरिपन पिअ[3] अनुरागे॥
आचर चीर धरइ हसि[4] हेरी।
नहि नहि वचन भनब कत बेरी॥
दुहु मन पुरल उभय रतिरङ्गे।
तइअओ से धनुगुन न छाड़ अनङ्गे॥
भनइ विद्यापति एहु रस जाने।
नृप सिवसिंह[5] लखिमा देइ[6] रमाने॥

न० गु०, प० २०७

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ७५)—१ पिय। २ अखण्डित। ३ पिय। ५ सिवसिंघ।

शब्दार्थ—रस-पेसल=रस प्रवीण। समाजे=समागम। कत=कितना। खन=क्षण—स०। जत=जितना। चीर=वस्त्र। भनव=कहोगी। वेरी=वार। उभय=दोनों। तइअओ=तथापि। धनुगुन=(धनुर्गुण—स०) धनुष की डोरी। अनङ्गे=कामदेव।

अर्थ—प्रथम समागम है। (किन्तु) स्वामी रस-प्रवीण है (इसलिए) कबतक लाज को अखण्डित रखोगी? (अर्थात्—कबतक लजाई हुई सिमटी-सिकुड़ी बैठी रहोगी?)

हे गजगामिनी! मन मे जितना जगता है (अर्थात्—जो कुछ करने को जी चाहता है, सो) कहो। (कारण,) अपने मे चतुरपन है (और) स्वामी में अनुराग है। (अर्थात्—तुम स्वयं चतुरा हो और स्वामी अनुरक्त हैं। फिर, लजाने का कोई कारण नही है।)

(स्वामी को) देखकर हँसती हुई (अपना) आँचल पकड़ती हो (सँभालती हो। अरे!) कितनी वार 'नही-नही' कहोगी?

(यद्यपि) दोनों के रति-रंग से दोनों के मन भर गये, तथापि कामदेव (अपने) धनुष

सं० अ०—२ अखण्डित। ४ हँसि। ६ दे।

की डोरी नहीं छोड़ता है। (अर्थात् —कामदेव धनुष की डोरी को ढीला नहीं करता—धनुष ताने खड़ा रहता है।)

विद्यापति कहते हैं—लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह इस रस को जानते है।

[६४]

निधन का[1] जञो[2] धन किछु हो
करए चाह उछाह।
सिआर का[2] जञों[3] सींग जनमए
गिरि उपारए चाह॥
दूती[4] बुझलि तोहरि मती।
छाड़ रे चन्दा भर (म) इते[5] बुलह[6]
कि हरह ताहे बिपती॥
पिपड़ी का[7] जञो पाँखि जनमए
अनल कर[8] झपान।
छोटा पानी चह चह कर
पोठी के नहि जान॥
जइओ[9] जकर मूह[10] पेंच[11] सन
दूसए चाहए आन[12]।
हमतह के विषहु[13] आगर
ढोंढ़हु[14] का[15] थिक भान॥
झरक पानी डोभक कोई
गरब उपजू[16] जाहि।
भने[17] विद्यापति दहक कमल
दूसय[18] चाहए ताहि॥

न० गु०, प० २१५

सं० अ०—१ काँ। २ काँ। ३ जओ। ५ भरमइते। ६ बूलह। ७ काँ। ९ जइअओ। १० मुंह। ११ पेंच। १२ आन। १३ विषहुं। १४ ढोंढहुं। १५ काँ। १६ उपजु। १८ दूसए।

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ३४५)—१ काँ। ३ जओ। ४ दूति। ८ करए। १३ बिसहु। १४ ढोँढ़लु। १६ उपज। १७ मन।

शब्दार्थ—निधन काँ=निर्धन को। उछाह=उत्सव=धूमधाम। गिरि=पर्वत। उपारए चाह=उखाड़ना चाहता है। मति=अभिप्राय। छाड़=छोड़ दो। भरमइते=भ्रम में पड़कर। बुलह=घूमते हो। कि=क्या। ताहे=उससे। पिपडी=(पिपीली—सं०) चीटी। अनल=आग। झपान=(झम्प—सं०) छलाँग। छोटा पानी=थोड़ा पानी। पेँच=उल्लू। दूसए=दूसना। आन=दूसरा। हमतह=हमसे। बिषहुँ आगर=विष की खान। ढोढ़हुँ=एक प्रकार का निर्विष साँप। भान=ज्ञान=प्रतीति। झरक=झरने का। डोमक=गड्ढे का। कोँई=कुमुदिनी। गरब=गर्व। दहक=ह्रद का।

अर्थ—(खण्डिता नायिका दूती से कहती है—)यदि निर्धन को कुछ धन हो जाय, (तो वह) धूमधाम करना चाहता है।

यदि सियार को सींग पैदा हो जाय, (तो वह) पहाड़ उखाड़ना चाहता है। (अर्थात्—जिस प्रकार वे दोनों अपने को भूल जाते है, उसी प्रकार नायक भी अपने को भूल गया है।)

अरी दूती! (मैं) तुम्हारा अभिप्राय समझ गई। (नायिका अन्योक्ति-रूप में चन्द्रमा को लक्ष्य करके कहती है—)रे चन्द्रमा! भ्रम मे पड़कर (जो) घूमते हो, (उसे) छोडो। क्या उससे विपत्ति हर लोगे? (अर्थात्—दूती घूम-फिरकर नायिका के समीप आती है; किन्तु कुछ कहते सकुचाती है। इसीलिए नायिका कहती है कि 'मैं तुम्हारा अभिप्राय समझती हूँ; किन्तु तुम भ्रम मे पडकर आती हो। इससे विपत्ति नहीं दूर हो सकती है।')

यदि चीटी के पाँख पैदा होते है (तो वह) आग मे छलाँग भरती है। पोठी (मछली) थोडे पानी मे ही (थोड़ा पानी पाकर ही) 'चह-चह' करती है (चहकने लगती है।)

जिसका मुँह उल्लू के समान (टेढ़ा) है, (वह भी) दूसरे को (दूसरे के मुँह को) दूसना चाहता है।

बरसात के पानी से (भरे) गड्ढे की कुमदिनी को यदि गर्व पैदा होता है, विद्यापति कहते हैं—(तो वह) ह्रद के कमल को भी दूसना चाहती है।

[६५]

कउड़ि पठओले पाब नहि घोर।
घीव उधार माँग मतिभोर।।

वास न पाबए माग[2] उपाति।
लोभक रासि पुरुष थिक जाति॥
कि कहब आज कि कउतुक भेल।
अपदहि कान्हक गौरव गेल॥
अएले बइसए[3] पाब पोआर।
सेजक कहिनी पुछए बिआर[4]॥
ओछाओन खण्डतरि पलिआ चाह।
आओर कहब कत अहिरिनि नाह॥
भनइ विद्यापति पहु गुनमन्त।
सिरि सिवसिंह[5] लखिमा देवि[6] कन्त॥

न० गु०, प० २१७

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ५६)—२ माँग। ३ बइसल। ४ विचार। ५ सिवसिंघ। ६ देइ।

शब्दार्थ—कउड़ि=कौड़ी=नकद दाम। पठओले=भेजने पर भी। घोर=छाछ। घीव=घृत। मतिभोर=मतिभ्रष्ट=निर्बुद्धि। वास=वासस्थान=रहने के लिए ठौर। उपाति=उपायन=भोज्य-सामग्री। रासि=ढेर। थिक=है। कउतुक=(कौतुक—स०) तमाशा। अपदहि=बुरी जगह मे। बइसए=बैठने के लिए। पोआर=पुआल। विआर=बिथार=विस्तार। ओछाओन=बिछावन। खण्डतरि=खिनहडि=टूटी चटाई। पलिआ=चादर। अहिरिनि=ग्वालिन।

अर्थ—नकद दाम भेजने पर भी छाछ नही पाता है; (किन्तु) बुद्धिहीन उधार मे घी माँगता है।

रहने के लिए ठौर का तो पता नही; (किन्तु भोजन के लिए) उपायन माँगता है। पुरुष की जाति (पुरुषमात्र) लोभ का ढेर होती है। (अर्थात्—पुरुष बड़े लोभी होते है।)

क्या कहूँ (कि) आज क्या तमाशा हुआ? बुरी जगह (आज) कृष्ण का गौरव गया।

आने पर बैठने के लिए (वे) पुआल पाते है; (किन्तु) विस्तार से शय्या की बात पूछते हैं!

सं० अ०—१ पठओने। २ माँग। ४ वियार।

बिछावन में (तो) टूटी चटाई मिली; (किन्तु वे) चादर चाहते हैं! (उनके बारे में) और कितना कहूँगी? (इतना ही कहती हूँ कि वे) ग्वालिन के स्वामी है। (अर्थात्—ग्वालिन के स्वामी को बुद्धि कहाँ?)

विद्यापति कहते हैं—लखिमा देवी के स्वामी शिवसिंह गुणवान् प्रभु हैं।

[६६]

राहु तरासे चाँद हम मानि।
अपर सुधा मनमथि धरु आनि॥

जिव जओ जोगाबए धरब अगोरि।
पिबि जनु हलह लगति हम चोरि॥

सहजहि कामिनि कुटिल सिनेह।
आस पसाह बाँक ससि रेह॥

की कहु निरखह मॅजुक भङ्ग।
धनु हमे सौंपि गेल अपन अनङ्ग॥

कञ्चने कामे गढ़ल कुच कुम्भ।
भङ्गइते मनब देइते परिरम्भ॥

कैतव करथि कलामति नारि।
गुन गाहक पहु बुझथि विचारि॥

भनइ विद्यापति न करहि बाध।
आसा वचने पुरहि धनि साध॥

गरुडनरायन नन्दन जान।
राए सिवसिंह लखिमा देइ रमान॥

न० गु०, प० २१९

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अत., इसके लिए प्रथम भाग का २३२ सख्यक पद देखिए।

[६७]

हठे[1] न हलब मोर[2] भुजजुग जाति[3]।
भाङ्गि जाएब[4] बिस किसलय काँति॥
हठ न करिय[5] हरि न करिय[6] लोभ।
आरति अधिक न रह सुख[7] सोभ॥
हटिए हलिय[8] निअ[9] नयन चकोर।
पीबि हलत घसि[10] ससिमुख मोर॥
परसि न हलबे पयोधर मोर।
भाङ्गि जाएत गिरि कनक कटोर॥
भनइ विद्यापति इ[11] रस भान।
लखिमा पति सिवसिंह[12] नृप जान॥

न० गु०, प० २२०

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ५३)—१२ सिवसिंघ।

शब्दार्थ—भुजजुग=बाहुद्वय=दोनों बाँहों से। जाँति हलब=दवा देना। भाङ्गि जाएब=टूट जायगा। बिस=मृणाल=कमल की डण्ठल। किसलय=नवपल्लव=कोपल। काँति=शरीर की गढन। (मैथिली मे 'शरीर की गढ़न' को 'काँति' कहते है। यथा—'हिनक काँतिए एहेन छैन्ह')। आरति=(आर्त्ति—स०) पीडा। मुख सोभ=मुख की शोभा=मुँह की लाली। हटिए हलिअ=रोक रखिए। घंसि=पैठकर=गोता लगाकर। पयोधर=स्तन। गिरि=गिरकर। कनक=सोना।

अर्थ—जबरदस्ती मुझे दोनों हाथो से मत दबाना। (कारण, दबाने से) बिस-किसलय (पुरइन के नवपत्र) के समान (मेरे) शरीर की गढ़न टूट जायगी (चूर-चूर हो जायगी।)

हे कृष्ण! जबरदस्ती मत कीजिए—लोभ मत कीजिए। (कारण,) अधिक (मानसिक) पीडा से मुँह की लाली नही रहती है। (अर्थात्—आर्त्त होकर जबरदस्ती कर बैठिएगा, तो लोकापवाद से मुँह की लाली नष्ट हो जायगी।)

सं० अ०—१ हठें। २ मोहि। ३ जाँति। ४ जाएत। ५ करिअ। ६ करिअ। ७ मुख। ८ हलिअ। ९ निअ। १० घंसि। ११ ई। अन्त में भणिता—

भनइ विद्यापति ई रस जान।
नृप सिवसिंह लखिमा दे रमान॥

अपने नेत्ररूपी चकोर को रोक रखिए। (कारण, नहीं रोकिएगा, तो वह) गोता लगाकर मेरे चन्द्रमुख को पी लेगा।

मेरे स्तन का स्पर्श मत कीजिए। (कारण,) सोने का कटोरा (स्तन) गिरकर टूट जायगा।

विद्यापति कहते हैं—लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह इस रस को जानते हैं। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[६८]

पहिल पसार संसार सार रस
परहोंक[1] पहिल तोहार हे।
हठे[2] आँचर मोर फेरि न हलबे
रबे[3] रस भए जाएत उघार हे॥
ए हरि ए हरि आरति परिहरि
हठ न करिअ पहु बाट हे।
जेहे बेसाहल से कि बेसाहब
उचित मनोभव हाट हे॥
कञ्चने गढ़ल पयोधर सुन्दर
नागर जीवन अधार हे।
छुअइते[4] रतन तुल न रह अधिक मुल
किनहि न पार गमार हे॥
भनइ विद्यापति सुन हे[5] सुचेतनि
हरि सओं[6] कइसन समान हे।
कपट तेजिकहु भजह जे[7] हरि सओं[8]
अन्त काल होअ ठाम हे॥

न० गु०, प० २२१

सं० अ०—१ परहोंक। २ हठें। ३ पाठाभाव। ५ सुनह। ७ जओ। ८ तओ।

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ३४३)—१ परहोंक। ४ छुअइत। ६ सयं।

शब्दार्थ—पसार=(प्रसार—स०) दूकान। परहोंक=बोहनी। फेरि न हलवे=पलट मत देना। आरति=(आर्त्ति—स०) पीडा। परिहरि=त्याग कर। बाट=मार्ग। जेहे=जो। बेसाहल=विका हुआ। बेसाहव=बेचूँगी। मनोभव=कामदेव। कञ्चने=सोने से। पयोधर=स्तन। तुल=तुल्य। मुल=मूल्य। किनहि न पार=खरीद नही सकता। ठाम=(स्थाम—सं०) स्थान।

अर्थ—संसार के सार (शृङ्गार) रस की (यह मेरी) पहली दूकान है (और) तुम्हारी (तुम्हारे हाथों ही) पहली बोहनी है।

जबरदस्ती मेरा आँचल पलट मत देना। (कारण, आँचल पलट देने से) रस प्रकट हो जायगा।

हे कृष्ण! (मन को) पीडा त्याग दीजिए। हे प्रभो! रास्ते मे जबरदस्ती मत कीजिए।

कामदेव के प्रशस्त हाट में जो (एक बार) बिक चुका है, उसे (फिर) क्या खरीदिएगा?

सोने से गढ़े (मेरे ये) सुन्दर स्तन नागरिकों के जीवनाधार है।

छूते ही रत्न के समान (इनका) मूल्य अधिक नहीं रह जायगा। (अर्थात्—छूने से जिस प्रकार रत्न का मूल्य घट जाता है, उसी प्रकार स्तन का मूल्य भी घट जाता है। फिर तो इन्हें) गँवार (भी) नही खरीदेगा।

विद्यापति कहते है—अरी सयानी! सुनो। कृष्ण के साथ बराबरी कैसी?

कपट त्यागकर यदि कृष्ण को भजोगी, तो अन्त काल मे (उनका) स्थान मिलेगा (गोलोक की प्राप्ति होगी।) (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[६९]

बड़ कौशल[1] तुय[2] राधे।
किनल कन्हाइ[3] लोचन आधे॥
ऋतुपति हटबए नहि परमादी।
मनमथ मधथ उचित मूलवादी[4]॥
द्विज पिक लेखक, मसि मकरन्दा।
काँप भमर पद साखी चन्दा॥
बहि रति रङ्ग लिखापन माने।
श्री सिवसिंह सरस कवि भाने॥

न० गु०, प० २२५

सं० अ०—२ तुअ। ३ कन्हाई। ४ मुलवादी।

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ११२)—१ कौसलि। २ तुअ। ३ कन्हाई। ५ श्रीशिवसिंघ।

शब्दार्थ—कौशल=चतुराई। तुअ=तुम्हारा। किनल=खरीद लिया। ऋतुपति=वसन्त। हटवए=पल्लेदार=अनाज तौलनेवाला। परमादी=(प्रमादी—सं०) भूल करनेवाला=लापरवाह। मनमथ=कामदेव। मघथ=(मध्यस्थ—सं०) बिचुआ। मुलवादी=(मूल्यवादी—स०) मूल्य बोलनेवाला। द्विज=ब्राह्मण और पक्षी। पिक=कोयल। मसि=स्याही। मकरन्दा=मधु। काँप=कलम। पद=पैर। साखी=साक्षी—सं०। बहि=वही=हिसाब-किताब लिखने की पुस्तक। लिखापन=लिखाई=लिखने की मजदूरी।

अर्थ—हे राधे! तुम्हारी बड़ी चतुराई है (कि तुमने) कृष्ण को आधी आँख से (कटाक्ष-मात्र से) खरीद लिया।

(खरीदारी मे जिन वस्तुओं की आवश्यकता होती है, उन्ही का वर्णन आगे की पंक्तियों मे है—) पल्लेदार वसन्त लापरवाह नही है, बिचुआ कामदेव उचित मूल्य बोलनेवाला है।

द्विज कोकिल (रसीद=कैशमेमो) लिखनेवाला, मकरन्द स्याही, भौंरे के पैर कलम (और) चन्द्रमा साक्षी (गवाह) है।

सरस कवि (विद्यापति) श्रीशिवसिंह से कहते है—रति-रंग (काम-क्रीडा) की बही लिखने की मजदूरी मान थी।

विशेष—'तरौनी-पदावली' मे इस पद के नीचे विद्यापति के निम्नलिखित श्लोक हैं, जो गीतार्थ को स्पष्ट करते हैं। किन्तु, अन्त का भाग खण्डित रहने के कारण चौथा श्लोक नही है। वह अन्यत्र पाया गया है।—न० गुप्त।

रत्नाकरसुता भार्या यस्य कृष्णस्य राधिके।
लोचनार्द्धेन स क्रीतस्त्वया ते कौशलम्महत्॥१॥
हट्टाधिपो वसन्तोऽयमप्रमादी विचक्षणः।
योग्यमूल्यार्थवादी च मध्यस्थो मन्मथोऽभवत्॥२॥
भ्रमरस्य पदं कर्पो लेखकः कोकिलो द्विजः।
अभूत् कृष्णक्रये राधे साक्षी पात्रं मसी मधु॥३॥
वहिर्नतिरतिक्रीडा मानो वेदनलेखकः।
कृष्णस्य शिवसिंहेन वाणी विद्यापतेः कवेः॥४॥

[७०]

वदन कामिनि हे बेकत न करबे
चउदिस होएत उजोरे।
चाँदक भरमे अमिय रस लालचे
ऐंठ कए जाएत चकोरे॥

सुन्दरि तोरित चलिय अभिसारे।
अबहि उगत ससि तिमिरे तेजब निसि
उसरत मदन पसारे॥
अमिय वचन भरमहु जनु बाजह
सौरभ बुझत आने।
पङ्कज लोभे भमरे चलि आओब
करत अधर मधुपाने॥
तोहें रसकामिनि मधुके जामिनि
गेल चाहिय पिय सेबे।
राजा सिवसिंह रूपनरायन
कवि अभिनव जयदेवे॥

न० गु०, प० २२७

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' में भी है। अतः, इसके लिए प्रथम भाग का २४२ संख्यक पद देखिए।

[७१]

अम्बरे वदन झपाबह गोर।
राज सुनइछिअ चाँदक चोरि॥
घरे घरे पहरी गेल अछ जोहि।
अबही दूखन लागत तोहि॥
कतए नुकाएब चाँदक चोर।
जतहि नुकाएब ततहि उजोर॥
हास सुधारसे न कर उजोर।
बनिके धनिके धन बोलब मोर॥
अधरक सीम दसन कर जोति।
सिन्दुरक सीम बेसाउलि मोति॥

भनइ विद्यापति होहु निसङ्क।
चाँदहु काँ थीक भेद कलङ्क॥

न० गु० प० २२८

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' में भी है। अत, इसके लिए प्रथम भाग का २१५ सख्यक पद देखिए।

[७२]

कञ्चने[1] गढ़ल हृदअ[2] हथिसार।
ताहि[3] थिर थम्भ पयोघर भार॥
लाज सिकर धर दृढ़ कए गोए।
आनक[4] वचने[5] हलह जनु फोए[6]॥
दुर कर अगे[7] सखि चिन्ता आन[8]।
जउवन हाथि करिअ अवधान॥
मनसिज मदजले[9] जओं[10] उमताए।
धरिहसि पिअतम आँकुस लाए॥
जाब[11] न सुमत ततँनि[12] अगोर।
मुसइते मनिहिसि[13] मानस चोर॥
भनइ[14] विद्यापति सुन मतिमान।
हाथि महते[15] नब के नहि जान॥

न० गु०, प० २३०

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या २५२)—१ कञ्चने। २ हृदय। ३ ते। ५ वचन। ६ कोए। ७ आगे। ९ मदजल। १० जओं। ११ जावे। १२ तावे। १३ मनिहसि। १४ मन। १५ महत।

सं० अ०—४ आनक। ८ आन। ९ मदजलें। १० जओ। १२ तनि ताव। १५ महतें।

शब्दार्थ—कञ्चने=सोने से। हथिसार=(हस्तिशाल—सं०) फीलखाना। ताहि=उसमें। थिर=(स्थिर—स०) दृढ। थम्भ=(स्तम्भ—स०) खूँटा। पयोधर=स्तन। भार=भारी=पीन। सिकर=जजीर। गोए=छिपाकर। हलह् जनु फोए=खोल मत दो। अवधान=समाधान। मनसिज=कामदेव। मद-जले=हाथी की कनपटी से झरनेवाला पानी। जओ=यदि। उमताए=उन्मत्त हो जाय। धरिहसि=धरना=पकड़ना। लाए=लाकर। सुमत=सम्मत। तनि=उसे। मुसइते=चोरी होने पर। मनिहिसि=मानना। महुतें=महावत से। नव=नवता है=झुकता है।

अर्थ—(तुम्हारा) हृदय-रूपी फीलखाना सोने से गढ़ा गया है। उसमें पीन पयोधर-रूपी दृढ (मजबूत) खूँटा है।

लज्जा-रूपी जजीर से (यौवन-रूपी हाथी को) जकड़कर छिपा रखो। दूसरे के कहने से (उसे) खोल मत दो।

अरी सखी! दूसरी चिन्ताएँ दूर करो। (इस समय) यौवन-रूपी हाथी का समाधान करो। (अर्थात्—अन्य सारी बाते भूलकर अपने यौवन पर ध्यान दो। ऐसा न हो कि वह अधिकार से बाहर हो जाय।)

यदि (वह) कामदेव-रूपी मदजल से उन्मत्त हो जाय, (तो) प्रियतम-रूपी अकुश लाकर (उसे) पकड़ रखना।

जबतक (वह) सम्मत नही (हो जाय), तबतक उसे अगोरकर रखना। चोरी हो जाने पर (अपने) मन को चोर मानना। (अर्थात्—यदि यौवन-रूपी हाथी अधिकार से बाहर हो जाय, तो समझना कि अपना ही मन उसे चुराकर किसी दूसरे के समीप ले गया है।)

विद्यापति कहते है—बुद्धिमानो! सुनो। कौन नही जानता कि महावत से हाथी झुकता है (अर्थात्—वश मे होता है।) (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[७२]

उठ उठ माधव कि सुतसि मन्द।
गहन लाग देख' पुनिमक चन्द।।
हार रोमावलि जमुना गङ्ग।
त्रिबलि तरङ्गिनि' विप्र अनङ्ग।।
सिन्दुर' तिलक तरनि सम भास।
धसर मखससि नहि परगास।।

एहन[4] समय पूजह पचबान[5]।
होअओ[6] उगरास देह रतिदान॥
पिक मधुकर पुर कहइते[7] बूल[8]।
अलपेओ[9] अवसर दान अतूल[10]॥
विद्यापति कवि एहो रस भान।
राय[11] सिवसिंह[12] सब रसक निधान॥

न० गु०, प० २३२

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ६५)—१ देखु। २ त्रिबेनी। ३ सिन्दूर। ५ पंचबान। ६ होअ। ७ कहइत। ८ बोल। ९ अलपओ। १० अतोल। १२ सिवसिंघ।

शब्दार्थ—मन्द=सुस्त=आलसी। गहन=ग्रहण—स०। रोमावलि=नाभि से ऊपर की ओर जानेवाली रोमपंक्ति। त्रिबलि=पेट पर की तीन रेखाएँ। तरङ्गिनि=नदी। विप्र=ब्राह्मण। अनङ्ग=कामदेव। तरनि=सूर्य। भास=दिखाई देता है। धूसर=थोड़ा पीलापन लिये हुए (ईषत्पाण्डुस्तु धूसर—अमरकोश)। परगास=प्रकाशित होता है। एहन=ऐसे। पचबान=कामदेव। उगरास=(उद्ग्रास—स०) राहु से मुक्ति। पिक=कोकिल। मधुकर=भ्रमर। पुर=नगर। बूल=घूम रहा है। अलपेओ=(अल्प—स०) थोड़ा। अतूल=(अतुल्य—स०) जिसकी तुलना नही हो।

अर्थ—हे माधव! उठो, उठो। अरे आलसी! क्या सोते हो? देखो, पूर्णिमा के चन्द्रमा को ग्रहण लगा है।

(ग्रहण के समय जो किया जाता है, उसी का वर्णन आगे की पंक्तियो मे है—नायिका का) हार गगा है, रोमावली यमुना है (और) त्रिवली तरङ्गिणी (सरस्वती) है। (अर्थात्—गगा, यमुना और सरस्वती के एक स्थान मे होने से, मानो तीर्थराज प्रयाग की त्रिवेणी ही आ पहुँची है। ब्राह्मण का भी अभाव नही है। कारण, कामदेव (ही) ब्राह्मण है।

(नायिका के माथे का) सिन्दूर-विन्दु सूर्य के समान दिखाई देता है। (इसीलिए) कुछ पीलापन लिये (उसका) मुखचन्द्र प्रकाशित नही हो रहा है।

ऐसे समय मे (तुम) कामदेव की पूजा करो (और) रतिदान दो। (जिससे) चन्द्रमा की मुक्ति हो जाय।

कोकिल (और) भ्रमर नगर मे कहते हुए घूम रहे है (कि) थोड़े समय का भी दान अतुलनीय होगा। (अर्थात्—समय थोड़ा है, फिर भी इस समय के दान की तुलना नही की जा सकती है।)

राजा शिवसिंह सब रस के जाननेवाले है। (अत:) कवि विद्यापति इस रस का वर्णन करते है।

सं० अ०—४ अइसन। ५ पंचबान। ११ राए।

[७४]

बारि विलासिनि आनबि काँहा[1]।
तोंहि[2] कान्ह बरु जासि ताँहा[3]॥
प्रथम नेह अतिभिति[4] राही।
कते जतनें कते मेराउबि ताही॥
जा पति सुरत मने असार।
से कइसे आउति जमुना पार॥
पथहुँ[5] कण्टक जाह[5] बिसूर।
चरन कोमल पथ विदूर॥
अति भआउनि निविलि[6] राति।
कइसे अंगीरति जीवन साति॥
एत गुनि मने ताहि तरास।
मधू[7] न[8] आब[9] मधूकर[10] पास॥
पाइअ ठाम बइसले न[11] नीधि।
जे कर साहस ता हो सीधि॥
भन[12] विद्यापति सुन[13] मुरारि।
बेरस पललि[14] अछ(ए) से नारि[15]॥
नृप सिवसिंह इ[16] रस जान।
रानि लखिमा[17] देवि रमान॥

न० गु०, प० २३४

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ८५)—२ तोँहि। १७ लखीमा।

शब्दार्थ—बारि=बाला। आनबि=लाऊँगी। बरु=(वरम्—सं०) अच्छा। अति-भिति=अत्यन्त डरती है। मेराउबि=मिलन कराऊँगी। जा पति=(याम्प्रति—स०) जिसके लिए। सुरत=सम्भोग। जाहि=जिसे। बिसुर=रुलाता है। पथ=मार्ग। विदूर=बहुत दूर। निबिलि=(निविड—स०) घनी। अँगीरति=अगीकार करेगी। साति=(शास्ति—सं०)

सं० अ०—१ काहाँ। ३ ताहाँ। ४ अतिभीति। ५ जाहि। ६ निविळि। ७-८-९-१० मधु नहि आवए मधुकर। ११ नहि। १२ भनइ। १३ सुनह। १४ पळलि। १५ वरनारि। १६ ई।

दण्ड। गुनि=गुनकर=सोचकर। तरास=(त्रास—सं०) भय। मधुकर=भ्रमर। ठाम=(स्थाम—सं०) स्थान। बेरस=(विरस=सं०) निष्ठुर। पललि=पड़ी हुई।

अर्थ—(मैं) विलासिनी बाला को कहाँ लाऊँगी? (अर्थात्—उसे लाने योग्य यह स्थान नही है।) हे कृष्ण! अच्छा हो कि तुम्ही वहाँ जाओ।

राधा प्रथम प्रेम मे (अर्थात्—पहले-पहल प्रेम करने मे) बड़ी डरती है। (इसलिए) कितने यत्न से उसे कहाँ मिलाऊँगी?

जिसके लिए मन मे भी सम्भोग निरर्थक है, वह कैसे यमुना पार करके आयगी?

राह का काँटा भी किसे रुलाता है, (वह कैसे यहाँ आ सकती है? यदि पैर कठोर रहते, रास्ता छोटा रहता, तो किसी प्रकार रो-धोकर आ भी जाती; किन्तु यहाँ तो उसके) पैर कोमल है (और) रास्ता अत्यन्त दूर है।

अत्यन्त भयावनी घनी (अँधेरी) रात है। (इसलिए) कैसे वह प्राण-दण्ड अंगीकार करेगी, अर्थात्—अपना प्राण सशय मे डालेगी?

यही सोच-विचारकर (उसके) मन मे भय हो रहा है। (इसलिए तुम्ही चलो।) मधु कभी भौरा के पास नही आता।

स्थान पर बैठे (अर्थात्—घर बैठे कोई) निधियाँ नही पा सकता है। जो साहस करता है, उसे (ही) सिद्धि मिलती है।

विद्यापति कहते है—हे कृष्ण! सुनो। वह (बाला) नीरस होकर पड़ी हुई है।

रानी लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह इस रस को जानते हैं।

[७५]

नूपुर रसना परिहर देह।
पीत वसन हे जुवति पिधि लेह।।
सिथिल विलम्बे होएत ह्रास।
नहि गए होएते कान्हक पास।।
गमन करह सखि वल्लभ गेह।
अभिमत होएत इथि न सन्देह।।
कुङ्कुम पङ्के पसाहह देह।
नअन जुगल तव काजर रेह।।
अबहि उगत तम पिबि कहु चन्द।
जानि पिसुन जन बोलब मन्द।।

भनइ विद्यापति सुन वरनारि।
अभिनव नागर रूपे मुरारि॥

न० गु०, प० २४०

विशेष—यह पद 'रामभद्रपुर-पदावली' में भी है। अतः, इसके लिए रामभद्रपुर में प्राप्त ७७ संख्यक पद देखिए।

[७६]

प्रथम पहर निसि जाउ।
निअ निअ मन्दिर सुजन समाउ॥
तम मदिरा पिबि मन्दा।
अवहि माति उगि जाएत चन्दा॥
सुन्दरि चलु अभिसारे।
रस सिंगार सँसारक सारे॥
ओतए अछए पिआ आसे।
एतए वेढ़ल गिम मनमथ पासे॥
साहसे साहिय[1] असाधे।
तिला एक कठिन पहिल अपराधे॥
से सामर तोजें[2] गोरी।
बीजुरि[3] बलाहक लागत[4] चोरी[5]॥
हसि[6] आलिङ्गन देखी[7]।
मन भरि जुवति जनम[8] सुख लेसी॥
सबे[9] सङ्का ! कर दूरे।
कामिनि कन्त मनोरथ पूरे॥
भनइ[10] विद्यापति भाने।
राए सिवसिंह[11] लखिमा देवि[12] रमाने॥

न० गु०, प० २४२

सं० अ०—१ साहिस। २ तोजे। ३ बिजुरि। ५ जोरी। ६ हँसि। ७ देसी। १० सुकवि। १२ दे।

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या १००)—१ साहिअ। २ तोबे। ४ लागति। ७ देसी। ८ जनक। ९ सब। ११ सिवसिंव।

शब्दार्थ—पहर=प्रहर—स०। निसि=रात्रि। मन्दिर=घर। समाउ=पैठ गये। तम=अन्धकार। मन्दा=नीच। माति=उन्मत्त होकर। गिम=(ग्रीवा—सं०) गरदन। मनमथ=कामदेव। पासे=(पाश—स०) फन्दा। साहिअ=(साध्य—स०) साध्य होता है। तिला एक=क्षण भर के लिए। सामर=(श्यामल—स०) काला। बलाहक=मेघ। देसी=देना। लेसी=लेना।

अर्थ—रात का पहला पहर बीत गया। भले आदमी अपने-अपने घर में पैठ गये।

अन्धकार-रूपी मदिरा पीकर नीच चन्द्रमा (भी) उन्मत्त होकर अभी उग जायगा।

हे सुन्दरी! अभिसार को चलो। (कारण,) श्रृङ्गार रस (ही) ससार का सार है।

वहाँ प्रियतम आशा लगाये (बैठे) है (और) यहाँ कामदेव ने फन्दे से (तुम्हारी) गरदन घेर रखा है (जकड़ रखा है।)

साहस से असाध्य भी साध्य होता है। (हाँ,) पहला अपराध (अर्थात्—परपुरुष के साथ प्रथम समागम) क्षण-भर के लिए कठिन (प्रतीत होता है।)

वे (कृष्ण) साँवले हैं (और) तुम गोरी हो। (फिर क्या कहना है?) बिजली और बादल की जोड़ी लग जायगी।

हँसकर आलिंगन देना। युवती होकर जन्म लेने का जी-भर सुख लेना।

सारी शकाएँ दूर करो। हे कामिनी! स्वामी का मनोरथ पूरा करो।

सुकवि विद्यापति कहते हैं—लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह (इस रस को समझते है।) (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[७७]

मृगमद पङ्क अलका।
मुख जनु करह तिलका॥
निपुन पुनिम के चन्दा।
तिलके होएत गए मन्दा॥
सहजहि सुन्दरि बड़ि राही।
कि करबि अधिक पसाही॥
उजर नयन नलिना।
काजरे न कर मलिना॥

दूधक धोएल भमरा।
मसि बुड़ि जाएत सामरा॥
पीन पयोधर गोरा।
उलटल कनक कटोरा॥
चन्दने धवल न करू।
हिमे बुड़ि जाएत सुमेरू॥
भनइ विद्यापति कवी।
कतए तिमिर जहाँ रवी॥

न० गु०, प० २४६

विशेष—यह पद 'रागतरङ्गिणी' में भी है। अतः, इसके लिए 'रागतरङ्गिणी' में प्राप्त ४६ संख्यक पद देखिए।

[७८]

सुरुज सिन्दुर बिन्दु चाँदने लिखए इन्दु
तिथि कहि गेलि तिलके।
विपरित अभिसार अमिय बरिस धार
अङ्कुस कएल अलके॥
माधव, भेटल पसाहनि बेरी।
आदर हरलक पुछिओ न पुछलक
चतुर सखी जन मेरी॥
केतकि दल दए चम्पक फुल लए
कबरिहि थोएलक आनी।
मृगमद कुङ्कुम अङ्गरुचि कएलक
समय निबेद सयानी॥
भनइ विद्यापति सुनह अभयमति
कुहू निकट परमाने

राजा शिवसिंह रूपनरायन
लखिमा देइ विरमाने॥

न० गु०, प० २४८

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' और 'रागतरंगिणी' मे भी है। अतः, इसके लिए प्रथम भाग का २४१ संख्यक पद देखिए।

[७९]

अरुणे[1] किरन किछु अम्बर देल।
दीपक सिखा मलिन भए गेल॥
हठ तेज[2] माधव जएबा देह।
राखए चाहिअ गुपुत सिनेह[3]॥
दुरजनें[4] जाएत परिजन कान।
सगर चतुरपन होएत मलान॥
भमर कुसुम रमि नं रह अगोरि।
केओ नहि बेकत करए निअ[5] चोरि॥
अपनेओ[6] धन हे धनिक घर गोए।
परक रतन परगट[7] कर कोए॥
फाब चोरि जौं[8] चेतन चोर।
जागि जाएत[9] पुर परिजन मोर॥
भनइ विद्यापति सखि कह सार।
से जीवन जे पर उपकार॥

न० गु०, प० २५६

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ३३८)—१ अरुन। २ तज। ३ सनेह। ४ दुरजन। ६ अपनयँ। ७ परकट। ८ जौ। ९ जाए।

शब्दार्थ—अरुणे=उषा ने। अम्बर=आकाश। जएबा देह=जाने दो। गुपुत=गुप्त—सं०। दुरजनें=दुर्जन के द्वारा। अपनेओ=अपना भी। गोए=छिपाकर। चेतन=होशियार। पुर परिजन=गाँव-घर के लोग। सार=यथार्थ।

सं० अ०—५ निअ। ८ जओ।

अर्थ—उषा ने आकाश में कुछ किरणें (बिखेर) दी। (अर्थात्—आकाश मे उषा की लाली छा गई। इसीलिए) दीप की शिखा मलिन हो गई (दीये की लौ मन्द पड़ गई।)

हे कृष्ण! हठ छोड़ो—जाने दो। (कारण,) प्रेम को गुप्त ही रखना चाहिए।

दुर्जन के द्वारा परिजन के कानों मे (यह बात) जायगी, (तो मेरी) सारी चतुराई फीकी पड़ जायगी।

भौंरा फूल के साथ रमण करके (उसे) अगोरकर नही रहता है। कोई भी अपनी चोरी व्यक्त नही करता।

धनिक अपना धन भी छिपाकर रखता है। (फिर दूसरे के धन का क्या कहना?) दूसरे का रत्न कोई प्रकट करता है? (अर्थात्—नही।)

यदि चोर होशियार रहता है, (तो) चोरी फबती है। मेरे गाँव-घर के लोग जग जायेंगे (तो मेरी सारी होशियारी खतम हो जायगी—चोरी नहीं फबेगी।)

विद्यापति कहते है—सखी यथार्थ कहती है। जीवन वही है, जिससे दूसरे का उपकार हो।

[८०]

पुरल पुर पुरजन पिसुने
जामिनि आध अंधार।
बाहु तरि हरि पलटि जाएब
पुनु जमुना पार॥
एँ कुल कुलकलङ्क डराइअ
ओ कुले आरति तोरि।
पिरित लागि पराभव सहब
इथि अनुमति मोरि॥
कान्हा तेज भुज गिम पास।
पहु जानले दुरन्त बाढ़त
होएत रे उपहास॥
जगत कत न जुव जुवती
कत न लाबए पेम।
बापु पुरुष विचखन चाहिअ
जे कर आगिल खेम॥

गोचर एक मोर पए राखब
राखबि दुअओ लाज।
कबहु मुख मलान न करब
होएत्त पुनु समाज॥

नं० गु०, प० २६०

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अतः, इसके लिए प्रथम भाग का १९ संख्यक पद देखिए।

[८१]

परक विलासिनि तुय[1] अनुबन्ध।
आनलि कत[2] न[3] वचन कए धन्ध॥
कोनें[4] परि जाइति[5] निअ[6] मन्दिर रामा।
अतिशय[7] चिन्ता भेलि एहि ठामा॥
निकटहु बाहर उरें[8] न निहार।
जतने आनलि[9] एत दूर[10] अभिसार॥
तिला एक जा सओ[11] महघ समाज।
बहलि विभावरि मने नहि लाज॥
तोहर मनोरथ तन्हिकि परान।
नागर से जे हिताहित जान॥
नखत मलिन बेकताएत बिहान।
पथ सञ्चरइते[12], लखतइ[13] के[14] आन[15]।
पास पिसुन बस कि करत[16] लाथ।
कोने[17] परि सन्तरति गुरुजन हाथ॥
भनइ[18] विद्यापति तखनुक भान।
आदरि आनि[19] न खण्डिय[20] मान॥

नं० गु०, प० २६२

सं० अ०—१ तुअ। २-३ कतन। ४ कओने। ६ निअ। ८ डरें। ९ आनलि। १० दुर। १३-१४ लखतइके। १५ आन। १६ करति। १७ कओने। १८ सुकवि। १९ आनि। २० खण्डिअ।

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ३३७)—१ तुअ। ५ जइति। ७ अतिसय। ८ डरे। १० दुर। ११ सयँ। १२ सञ्चरइत। २० खण्डिअ।

शब्दार्थ—अनुवन्ध=उद्देश्य। धन्ध=(द्वन्द्व—स०) बखेड़ा। कोने परि=किस प्रकार। मन्दिर=घर। तिला एक=क्षण भर। समाज=मिलन। बहलि=बीत गई। विभावरि=रात्रि। तन्हिकि=उसका। हिताहित=हित और अहित। नखत=(नक्षत्र—स०) तारा। वेकताएल=व्यक्त हो गया। विहान=प्रात काल। पथ=मार्ग। सञ्चरइते=चलते हुए। लखतइके=देखेगा ही। पिसुन=चुगलखोर। लाथ=बहाना। सन्तरति=उद्धार पायगी। आदरि=आदर से। आनि=लाकर।

अर्थ—बातों का कितना बखेड़ा करके (अर्थात्—कितनी बाते बनाकर) तुम्हारे उद्देश्य से (अर्थात्—तुम्हारे लिए) दूसरे की सुन्दरी ले आई।

(अब वह लौटकर) किस प्रकार अपने घर जायगी—यहाँ (इस विषय मे) बड़ी चिन्ता हो गई।

(जो घर के) समीप भी डर से बाहर नही झाँकती है, (उसे बड़े) यत्न से इतनी दूर अभिसार के लिए ले आई।

क्षण-भर के लिए जिससे मिलन महँगा है, (उसके साथ) रात बीत गई। (फिर भी तुम्हारे) मन मे लज्जा नही होती है।

तुम्हारा मनोरथ (और) उसके प्राण! (अर्थात्—तुम्हारा मनोरथ पूरा हो रहा है; किन्तु उसके प्राण सकट मे पड़े है।) चतुर वह है, जो हित और अहित को जानता है।

नक्षत्र मलिन हो गये। प्रात.काल व्यक्त होने को है (अर्थात्— भोर हो रहा है।) रास्ता चलते (उसे) दूसरे देख लेगे।

पास मे चुगलखोर बसते है, (उनसे) क्या बहाना करेगी? किस प्रकार गुरुजनो के हाथ से उद्धार पायगी?

सुकवि विद्यापति उस समय की बात कहते है (कि) आदर से लाकर मान का खण्डन नही करना चाहिए। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[८२]

अरुन लोचन घूमि घुमाएल।
जनि रतोपल पवने पाओल॥

आकुल चिकुरे वदन झापल।
जनि तमचाजे चाँद चापल॥

माधव कर्कें जाइति वासा।
देखि सखीजन हो उपहासा॥
फुजलि नीवी आनि मेराउलि।
जनि सुरसरि उतरे धाउलि॥
नखखत देअल कुच सिरीफल।
कमले झाँपि कि हो कनकाचल॥
भने विद्यापति कौतुक गाओल।
इ रस राए सिवसिंहे पाओल॥

न० गु०, प० २६६

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' में भी है। अतः, इसके लिए प्रथम भाग का १६० संख्यक पद देखिए।

[८३]

अलसे पुरल लोचन तोर।
अमिजे मातल चाँद चकोर॥
निचल भउँह जे ले विसराम।
रण जिनि धनु तेजल काम॥
अरे रे सुन्दरि न कर लया।
उकुति वेकत गुपुत कथा॥
कुच सिरिफल सहज सिरी।
केसु विकसित कनअ गिरी॥
वहल तिलक उधसु केस।
हसि परिछंल कामे सन्देस॥

न० गु०, प० २६७

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' में भी है। अतः, इसके लिए प्रथम भाग का १०७ संख्यक पद देखिए।

[८४]

उधसल केसपास लाजे गुपुत हास
रजनि उजागरे मुख न उजला।
नख पद सुन्दर पीन पयोधर
कनक सम्भु जनि केसु पुजला॥
न न न न कर सखि परिनत ससिमुखि
सकल चरित तोर बुझल बिसेखी।
अलस गमन तोर वचन बोलसि भोर
मदन मनोरथ मोहगता॥
जृम्भसि पुनु पुनु जासि अरस तनु
आतपे छुइल मृणाल-लता॥
वास पिन्धु विपरित तिलक तिरोहित
नयन काजर-जले अधर भरु।
एत सबे लच्छन सङ्ग बिचच्छन
कपट रहत कति खन जे धरु।
भने कवि विद्यापति अरे बर जौवति
मधुकरे पाउलि मालति फुलति।
हासिनि देवि पति देवसिंह नरपति
गरुड़नरायन रङ्गे भुललि॥

न० गु०, प० २६१

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' में भी है। अतः, इसके लिए प्रथम भाग का १७६ सख्यक पद देखिए।

[८५]

छल मनोरथ जौवन[1] भेले
कत न करब रङ्ग।

सं० अं०—१ जउवन।

से सबे पेम ओड़[2] धरि न रहल
'भेल हृदय भङ्ग।
तथुहु उपर छल मनोरथ
आबे कि करब साध।
अइसनि भए अपराधिनि भेलाहु[3]
जे छल तथिहु[4] बाध॥
माधव, आबे तओ इ[5] बड़ दोस।
जतए जे किछु बोलिअ चालिअ
तथिहु[6] गुरुजन रोस॥
अबस निकट आएब जाएब
विनअ[7] कर से नारि।
दिने साते पाचें[8] बाटहु[9] घाटहु[10]
दिठिहु[11] हलु निहारि॥

न० गु०, प० २७१

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ८३३)—७ विनय। ८ पाँचे।

शब्दार्थ—रङ्ग=प्रेम=अनुराग। ओड़=ओर=अन्त। हृदय=मन। भङ्ग=टूटना। तथुहु=उसके। साध=उपाय। तथिहु=वहाँ। दोष=अपराध। दिठिहु=आँखों से भी।

अर्थ—मनोरथ था (कि) यौवन होने पर कितना न अनुराग करूँगी? (किन्तु) वह अनुराग अन्ततक नही रहा। (बीच मे ही) मन टूट गया।

उसके बाद भी मनोरथ था (आशा थी, किन्तु) अब क्या उपाय करूँगी? (कारण,) ऐसी होकर अपराधिनी हुई (कि) जो (मनोरथ) था, उसमे भी बाधा हो गई।

हे कृष्ण! अब तो यह बडा अपराध है। (अर्थात्—प्रेम करना अब बड़ा अपराध है। कारण, प्रेम के बारे मे) जहाँ जो कुछ भी बाते करती हूँ, वही गुरुजनो को रोष हो जाता है।

(इतना होने पर भी) नायिका विनती करती है (कि मेरे) समीप अवश्य आइएगा-जाइएगा। (अर्थात्—आना-जाना बन्द मत कीजिएगा।) पाँच-सात दिन पर, बाट-घाट में ही सही, आँखों से देख लीजिएगा।

सं० अ०—२ ओर। ३ भेलाहुँ। ४ तथिहुँ। ५ ई। ६ तथिहुँ। ८ पाँचे। ९-१० बाटहुँ-घाटहुँ। ११ दीठिहुँ।

[८६]

दुर[1] सिनेहा बचने बाढ़ल
मनक पिरिति जानि।
अलपे[2] काजे[3] बड़ी दुर आँतर
करमे पाओल आनि[4]॥
चरन नूपुर घन शबदए[5]
चान्दहु राति उजोरि।
ननन्दि बैरिनि निन्दे न सोअए[6]
आबे अनाइति मोरि।
दूती बोले बुझाबह कान्हू[7]।
आजुक रअनि[8] आए न होएत[9]
हृदये[10] कोपथि जनु॥
चरन नूपुर करे[11] उतारब
सामर बसन तनु।
खेड़हु कउतुके[12] ननन्द[13] बोधबि
विलँब लागए जनु॥
ओ भरे लागल नव सिनेहा
एँ भरे कुलक गारि।
सकल पेम सम्भारि न होएते[14]
हठे विनासति नारि॥
भन विद्यापति उगन्त सेबिअ
मदन चिन्तथु आउ।
पिरिति कारने जिव[15] उपेखब
एँ[16] बेरि होउ कि जाउ॥

न० गु०, प० २७३

सं० अ०—१ दूर। २ अलपें। ३ काजें। ५ सवदए। ७ कान्हु। ८ रजनि। ११ करें। १२ कउतुकें। १३ ननन्दि। १५ जीव।

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ३१४)—२ अलप। ३ काज। ४ चाँदह। ५ सवदए। ६ नोअए। ७ कान्हु। ८ रयनि। ९ होएते। १० हृदय। १४ होएत। १६ए।

शब्दार्थ—दुर सिनेहा=दूर का स्नेह। अलपे काजे=छोटे काम मे भी। आँतर=(अन्तर—सं) व्यवधान=फासला। करमे=भाग्य से। चरन=पैर। नूपुर=घुँघरू। घन=गम्भीर=जोरों से। सवदए=शब्द कर रहा है। उजोरि=(उज्ज्वला—सं०) उजेली। अनाइति=(अनायत्ति—सं०) अधीन नही है। बोले=कहकर। रअनि=रात्रि। कोपथि=कोप करे। जनु=नहीं=, मत। करें=हाथ से। सामर=(श्यामल—स०) काला। वसन=वस्त्र। तनु=देह। खेड़हु कउतुके=खेल-तमाशे से। वोधवि=समझा दूँगी। ओ भरे=उस ओर। एँ भरे=इस ओर। कुलक गारि=कुल का कलंक। हठे=हठ। विनासति=विनाश कर देगा। उगन्त=उदीयमान। चिन्तथु=चिन्ता करे। आउ=आओ। जीव=प्राण। एँ वेरि=इस वार। होउ=होगा। जाउ=जायँ।

अर्थ—(नायिका दूती से कहती है—तुम्हारे) वचन से (उनके) मन की प्रीति जानकर दूर का (दूर-देशवासी का) स्नेह वढ़ गया। (किन्तु) भाग्य से (भाग्य के फेर से) छोटे-से कार्य मे (भी) दूर का व्यवधान आकर उपस्थित हो गया।

पैरों के घुंवरू जोरो से वोल रहे है और चन्द्रमा के कारण रात भी उजियाली है। वैरिन ननद भी नीद से नही सोती है। (अर्थात्—ननद भी अवजगी होकर मेरी टोह ले रही है। इसलिए) अव (अभिसार करना) मेरे अधीन नही है।

अरी दूती! कृष्ण को (मेरी ओर से) कहकर समझाओ। आज की रात (मेरा) आना नही होगा। (इसलिए) मन मे क्रोध मत करे।

(दूती उत्तर देती है—मैं अपने) हाथो से (तुम्हारे) पैरों के घुंघरू उतार दूँगी, (और) काले कपडे से (तुम्हारा) शरीर (ढक दूगी।) खेल-तमाशे से (अर्थात्—खेल-तमाशा करके) ननद को समझा दूँगी, जिससे देर न हो। (अर्थात्—मै सारा उपाय किये देती हूँ। तुम देर मत करो।)

(नायिका कहती है—) उस ओर अभिनव प्रेम है (और) इस ओर कुल-कलक है। (अर्थात्—अभिनव प्रेम अभिसार के लिए और कुल-कलङ्क घर में बैठने के लिए वाध्य कर रहा है।) प्रेम मे सब-कुछ सँभाला नही जा सकता है। (इसलिए, अभी छोड़ दो। समय की प्रतीक्षा करो) हठ करने से नायिका का (अर्थात्—मेरा) विनाश हो जायगा।

विद्यापति कहते है—(जो) उदीयमान है (अर्थात्—प्रत्यक्ष है, उसी की) सेवा करनी चाहिए। (इसलिए) आओ, कामदेव का ध्यान करो। (कवि के कथन से उमंग में भरकर नायिका कहती है—) प्रीति के कारण (मैं अपने) प्राणो की उपेक्षा कर दूँगी। इस वार चाहे (प्रीति) हो, चाहे (मेरे) प्राण जायँ? (मैं जरूर अभिसार करूँगी।)

[८७]

कह कह सुन्दरि न कर बेयाज[1]।
देखिअ आजें[2] अपुरब[3] सबें[4] साज[5]।।
मृगमद पङ्के[6] करसि अङ्गराग।
कोन[7] नागर परिनत होअ भाग।।
पुनु पुनु उठसि पछिम दिस[8] हेरि।
कखन जाएत दिन कत अछ[9] बेरि।।
नेपुर[10] उपर करसि कसि थीर।
दृढ़ कए[11] पहिरसि तम सम चीर।।
उठसि विहुसि[12] हसि[13] तेजिय[14] सार।
मोरे[15] मन भाव सघन अन्धकार[16]।।
भनइ विद्यापति सुन वरनारि।
धैरज कर[17] मने[18] मिलत मुरारि।।

न० गु०, प० २७९

पाठभेद—

ग्रियर्सन (पद-संख्या १२)—२--५ देखिअ तुअ अपरुप सभ साज। ८ दिश। ११ कय। १५ मोर।

मि० म० (पद-सख्या ३१९)—१ वेआज। २ आज। ३ अपुरुब। ४ पाठाभाव। ६ पङ्क। ८ दिसि। ९ अछि। १० नूपुर। १२ विहँसि। १३ हँसि। १४ तेजिए। १५ तोर। १६ अँधिआर। १७ धर। १८ मन।

शब्दार्थ—वेयाज=(व्याज—स०) वहाना। साज=सजावट। मृगमद=कस्तूरी। अङ्गराग=अनुलेपन। वेरि=(वेला—स०) समय। नेपुर=(नूपुर-स०) घुंघरू। तम=अन्धकार। चीर=वस्त्र। सार=होश-हवास।

अर्थ—हे सुन्दरी! कहो, कहो। वहाना मत करो। आज (तुम्हारे) सारे साज अपूर्व दिखाई पड़ते हैं।

(तुम) कस्तूरी के पङ्क से (शरीर का) अनुलेपन कर रही है। (सो कहो) किस नागर का भाग्योदय हुआ है?

सं० अ०—१ वेआज। ३ अपुरुब। ६ पङ्कें। ७ कओन। १२ बिहुँसि। १३ हँसि। १४ तेजिअ।

वार-वार पश्चिम दिशा की ओर देखकर उठ रही हो (कि) कव दिन जायगा (ढलेगा?) कितना समय (वाकी) है?

नूपुर को ऊपर (करके) कसकर स्थिर कर रही हो। अन्धकार के समान (काले) वस्त्र को दृढ करके (मजबूत गाँठ देकर) पहन रही हो।

होश-हवाश खोकर धीरे-धीरे हँस उठती हो। मेरे मन मे (जान पड़ता है कि तुम्हे) घना अँधेरा भाता है।

विद्यापति कहते हैं—अरी वरनारी! सुनो। मन मे धैर्य (धारण) करो, कृष्ण मिलेंगे।

[८८]

घर गुरुजन पुर परिजन जाग।
काहुक लोचन निन्दओ न लाग॥
कोन[1] परिजुगुति गमन होएत मोर।
तम पिबि बाढ़ल चान्द[2] उजोर॥
साहसे[3] साहिअ प्रेम भँडार।
अबहु[4] न आबय[5] करम चन्दार[6]॥
दुहु अनुमान[7] कयल[8] बिहि जोर।
पाँखि न[9] देलक[10] विधाता भोर॥
भनइ विद्यापति जदि मन जाग।
बड़े पुने पाबिअ नव अनुराग॥

न० गु०, प० २८१

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ३१३)—२ चाँद। ५ आवए। ८ कएल। ९ नहि। १० देल।

शब्दार्थ—पुर=नगर। लोचन=आँख। परिजुगुति=(प्रयुक्ति—स०) प्रयत्न। तम=अन्धकार। उजोर=(उद्योत—स०) प्रकाश। साहिअ=साह देना चाहिए=बढ़ाना चाहिए। करमचन्दार=(कर्मचण्डाल—स०) कर्म से चण्डाल=कृतघ्न। अनुमानि=अनुमान करके=समझ-बूझकर। बिहि=विधाता। जोर=जोड़=जोड़ा। भोर=भोरा=मूर्ख।

अर्थ—घर में गुरुजन (और) नगर मे परिजन जग रहे है। किसी की आँख मे नीद भी नही आती है!

सं० अ०—१ कओन। ३ साहसें। ४ अबहुँ। ५ आबए। ६ करमचण्डार। ७ अनुमानि। ८ कएल।

किस प्रयत्न से (प्रियतम के समीप) मेरा गमन होगा ? (कारण,) अन्धकार को पीकर चन्द्रमा का प्रकाश बढ़ गया (फैल गया।)

साहस से प्रेम-भाण्डार को बढ़ाना चाहिए। (अर्थात्—प्रेम-भाण्डार को बढ़ाने के लिए साहस से काम लेना चाहिए। किन्तु वह) कृतघ्न अब भी नहीं आता है।

विधाता ने समझ-बूझकर दोनों का जोड़ा किया; (किन्तु उस) मूर्ख ने (दोनों मे किसी एक को भी) परख नहीं दिया।

विद्यापति कहते हैं—(स्वामी के लिए) यदि मन जग जाय (तो फिर क्या कहना ? कारण,) बड़े पुण्य से अभिनव प्रेम का लाभ होता है। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[८९]

गुरुजन[1] नयन पगार पवन जओ
सुन्दरि सतरि चलली।
जनि अनुरागे[2] पाछु धरि पेललि
करे[3] धरि कामे[4] तिडली[5]॥
कि आरे नवि अभिसारक रीती।
के जान कओने[6] बिधि कामे पढ़ाउलि
कामिनि तिहुयन[7] जीती॥
अम्बर सकल बिभूषन[8] सुन्दर
घनतर तिमिर सामरी।
केहु कतहु पथ लखहि न पारलि
जनि मसि बुडलि[9] भमरी॥
चेतन आगु चतुरपन कइसन
विद्यापति कवि भाने।
राजा सिवसिंह[10] रूपनरायन[11]
लखिमा देवि रमाने॥

न० गु०, प० २८३

सं० अ०—१ नज॑। २ अनुरागें। ५ तिड़ली। ६ कओने। ७ तिहुअन। ९ बुड़लि। ११ रूपनराअेन।

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ९२)—३ कर। ४ काम। ५ तिड़ली। ८ विभूसन। ९ बुड़लि। १० सिवसिंघ।

शब्दार्थ—पगार=(प्राकार—स०) परकोटा। पवन=हवा। सतरि=पार करके। जनि=जैसे। पेलल्लि=फेंक दिया। करे धरि=हाथ पकड़कर। तिड़ली=खींच लिया। कओने विधि=किस प्रकार। तिहुअन=त्रिभुवन। अम्बर=वस्त्र। घनतर=निविड। तिमिर=अन्धकार। सामरी=(श्यामला—स०) काली। केहु=कोई। कतहु=कही। पथ=रास्ता। लखहिं न पारलि=देख नही सका। मसि=स्याही। बुड़लि=डूब गई। चेतन=चेतना-सम्पन्न=जाननेवाला।

अर्थ—सुन्दरी गुरुजनों के नयन-रूपी परकोटे को हवा के समान पार करके चली। (अर्थात्—जिस प्रकार परकोटा हवा को नही रोक पाता, उसी प्रकार गुरुजनों की आँखे सुन्दरी को नही रोक सकी।)

(जान पड़ता है) जैसे अनुराग ने पीछे से पकड़कर उसे ठेल दिया (और) कामदेव ने हाथ पकड़कर (आगे से) खींच लिया।

अरे! अभिसार की (यह) कैसी नई रीति है (कि) कौन जानता है, कामदेव ने किस प्रकार पढ़ाया (जो) कामिनी त्रिभुवन जीत गई।

(उसके) वस्त्र (और) सारे आभूषण निविड अन्धकार से काले (दिखाई पड़ते है।)

(इसलिए) रास्ते मे कोई कही (उसे) नही देख सका। (जान पड़ता है,) जैसे भ्रमरी स्याही मे डूब गई है। (अर्थात्—जिस प्रकार स्याही मे भ्रमरी के डूब जाने से उसका पता नही चलता है, उसी प्रकार निविड अन्धकार मे जाती हुई अभिसारिका का पता नही चलता है।

विद्यापति कहते हैं—जाननेवाले के सामने चतुराई कैसी ?

लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह रूपनारायण इसे जानते है।

[९०]

चन्दा जनु[१] उग आजुक राती[२]।
पिया के लिखिए[३] पठाउबि[४] पाती[५]॥

साओन[६] सओ[७] हमे[८] करब पिरीती[९]।
जत अभिमत अभिसारक रीती[१०]॥

सं० अ०—२ राति। ५ पाँति। ६ साओन। ९ पिरीति। १० रीति।

अथवा एहु[११] बुझाओबे[१२] हसी[१३]।
पिबि जनु[१४] उगिलह सितल[१५] ससी॥
कोटि रतन जलधर तोहे[१६] लेह।
आजुकि[१७] रअनि[१८] घन तम कए देह॥
भनइ विद्यापति शुभ[१९] अभिसार।
भल जन करथि पर(क)[२०] उपकार॥

न० गु०, प० २८६

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ३१६)—१ जनि। ३ लिखिअ। ४ पठाएब। ५ पाँति। ७ सयँ। ८ हम। ९ पिरीत। १० रीत। ११ राहु। १२ बुझाएब। १३ हँसी। १४ जनि। १५ सीतल। १६ तोहेँ। १७ आजुक। १८ रयनि। १९ सुभ। २० परक।

शब्दार्थ—जनु=मत। पाँति=पत्र। जलधर=मेघ। लेह=लो। रअनि=रात्रि। घन तम=निविड अन्धकार। देह=दो। शुभ=सुखद।

अर्थ—हे चन्द्रमा! आज की रात (तुम) मत उगो। (अर्थात्—आज की रात अँधेरा रहने दो, जिससे मैं अभिसार कर सकूँ। आगे मैं) स्वामी को पत्र लिखकर पठाऊँगी (कि—)

श्रावण से मैं प्रीति करूँगी, (और) अभिसार की जितनी मनचाही रीतियाँ है, (सो सब) करूँगी। (अर्थात्—श्रावण से आकाश के मेघाच्छन्न रहने से अँधेरा रहेगा, तो मैं खुशी-खुशी अभिसार सजाऊँगी।)

अथवा (मैं) हँसकर राहु को समझाऊँगी (कि) शीतल चन्द्रमा को पीकर मत उगलो।

(अथवा) हे मेघ! तुम (मुझसे) करोड़ों रत्न लो (और) आज की रात घना अँधेरा कर दो।

विद्यापति सुखद अभिसार कहते है (और कहते है कि) भला आदमी परोपकार करते है। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[९१]

आज मोजे जाएब हरि समागमे
कत मनोरथ भेल।

सं० अ०—११ राहु। १३ हँसी। १६ तोहेँ। १७ आजुक। १८ रजनि। २० परक।

घर गुरुजन निन्द निरुपइते
चन्दाए उदय देल॥
चन्दा भलि नहि तुअ रीति।
एहि मति तोहँ कलङ्क लागल
किछु न गुनह भीति॥
जगत नागरि मुखे जिनला हे
गेला हे गगन हारि।
ताहाँहु राहु गरास पड़ला
देब तोह की गारि॥
एके मास बिहि तोह सिरीजए
दए सकलेओ बल।
दोसर दिना पुर न रहसि
एही पापक फल॥
भन विद्यापति शुन तोञ जुवति
चाँदक न कर साति।
दिना सोड़ह चाँदक आइति
ताहि तर भलि राति॥

न० गु०, प० २८७

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अत', इसके लिए प्रथम भाग का १५० सख्यक पद देखिए।

[९२]

प्रथम जउवन नव गरुअ मनोभव
छोटि मधुमास रजनी[१]।
जाग[२] गुरुजन गेहा[३] राखए चाह नेहा[४]
संसअ पड़लि सजनी[५]॥

नलिनी[6] दल निर रहए चित न थिर
तत घर तत हो बहारे[7]।
बिहि मोर बड़ मन्दा उगि जनु जा(ए)[8] चन्दा
सुति उठि गगन निहारे[9]॥
पथहु पथुक[10] सङ्का पय पय धय[11] पङ्का
कि करति ओ नवि तरुनी।
चलए चाह धसि पुनु पड़ खसि खंसि
जालक छेकलि हरिनी॥
साए साए कमन[12] वेदन तसु जाने।
निकुञ्ज वन[13] जे[14] हरि जाइति कओने[15] परि
अनुखने[16] हन पचवाने[17]॥
विद्यापति भन कि करत[18] गुरुजन
नीद[19] निरूपन लागी।
बअनि[20] नीर[21] भरि धीरे[22] झपाबए[23]
रयनि[24] गमाबए जागी॥

न० गु०, प० २८९

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ३१५)—१ रजनि। २ जागे। ३ गेह। ४ नेह। ५ सजनि। ६ नलिनी। ७ बहार। ८ जाए। ९ निहार। १० पथिक। ११ धए। १२ कओन। १३-१४ वनहि। १५ कओन। १६ अनुखन। १७ पञ्चवाने। १९ नीद। २० नयन। २२ धीर।

शब्दार्थ—गरुअ=(गुरुक—स०) कठिन। मनोभव=कामदेव। मधुमास=चैत्र=वसन्त ऋतु। गेहा=घर। नेहा=स्नेह=प्रेम। नलिनी दल=कमल पत्र=पुरइन का पत्ता। निर=(नीर—स०) पानी। तत=तभी। विहि=(विधि—स०) भाग्य। मन्दा=बुरा। गगन=आकाश। पथहु=मार्ग में। पथुक=(पथिक—स०) बटोही। पय-पय=(पदे-पदे—स०) प्रत्येक डग मे। धय=धरता है=पकड़ता है। धसि=पैठकर। खसि खसि पड़ँ=

सं० अ०—६ नलिनी। ८ जाए। ११ पए पए धए पङ्का। १३ वने। १५ कओने। १७ पंचबाने। १८ करति। १९ निन्द। २० बअन। २१ नीरे। २३ झंपाबए। २४ रअनि।

गिर-गिर पड़ती है। छकलि=घेरी हुई। कमन=कौन। कओने परि=किस प्रकार। हन=मार रहा है। पचवाने=कामदेव। लागी=लिए। बअनि=(वदन—सं०) मुख। नीर=जल=आँसू। रयनि=(रजनी—स०) रात्रि।

अर्थ—प्रथम नवयौवन (अर्थात्—नई जवानी की पहली उफान) है (और) कठिन कामदेव है; (किन्तु) वसन्त ऋतु की रात छोटी होती है।

घर मे गुरुजन (माँ, बाप आदि) जगे हैं, (फिर भी वह) प्रेम निबाहना चाहती है। (क्या किया जाय !) सखी सशय में पड़ी है।

पुरइन के पत्ते पर के पानी के समान (उसका) चित्त स्थिर नही हो रहा है। (वह) तभी घर (और) तभी बाहर होती है।

मेरा भाग्य बड़ा बुरा है, (कहीं) चन्द्रमा न उग जाय! (यही सोचकर वह कभी) सोकर, (कभी) उठकर चन्द्रमा को देखती है। (अर्थात्—सोते-उठते चन्द्रमा को निहारती है।)

रास्ते मे बटोहियों की शंका है, प्रत्येक डग मे कादो पकड़ता है। (हाय!) वह नव-युवती क्या करेगी?

(फिर भी वह कादो मे) पैठकर जाना चाहती है; (किन्तु) बार-बार गिर पड़ती है, (जैसे कि) जाल मे घिरी हिरनी (गिरती है।)

हे सखी! उसका दुख कौन जानता है? चूँकि कुजवन मे कृष्ण हैं, (इसलिए) कामदेव से अनुक्षण पीडित होने पर भी (वह वहाँ) किस प्रकार जायगी?

विद्यापति कहते हैं—(वह) क्या करे? गुरुजनों की नीद को जानने के लिए—
अश्रुपूर्ण मुख को धीरे से ढक लेती है (और) जगकर रात बिता देती है।

[९३]

रयनि काजर बम भीम भुअङ्गम
कुलिस परए दुरबार।
गरज तरज मन रोसे बरिस घन
संसअ पड़ अभिसार॥
सजनी वचन छड़इते मोहि लाज।
जे होएत से होअओ बरु सबे हमे अङ्गिकरु
साहस मन देल आज॥

अपन अहित लेख कहइते पर तेख
हृदयक न पाइअ ओल।
चाँद हरिन बह राहु कवल सह
पेम पराभव थोल॥
चरन बेधिल फनि हित कए मानिल धनि
नेपुर न करए रोल।
सुमुखि पुछओ तोहि सरूप कहसि मोहि
सिनेह कत दुर ओल॥
ठामहि रहिअ घुमि परसे चिन्हिअ भुमि
दिगमग उपजु सन्देह।
हरि हरि शिव शिव तावे जाइह जिव
जावे न उपजु सिनेह॥
भनइ विद्यापति सुनह सुचेतनि
गमन न करह विलम्बे।
राजा सिवसिंह रूपनरायन
सकल कला अवलम्बे॥

न० गु०, प० २९४

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अतः, इसके लिए प्रथम भाग का २४० संख्यक पद देखिए।

[९४]

काजरें साजलि राति।
घन भए बरिसए जलधर पाँति॥
बरिस पयोधर धार।
दूर पथ गमन कठिन अभिसार॥

जमुन भयाउनि नीरें।
आरति घसति पाउति नहि तीरें॥
बिजुरि तरङ्गें डराइ।
तौं भल कर जौं पलटि घर जाइ॥
झाँखथि देव वनमाली।
एहि निसि कोने परि आउति गोयाली॥
भनइ विद्यापति बानी।
तोहहुँ तह कान्हु नारि सयानी॥

न० गु०, प० २९५

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ३३०)—४ नीर। ५ तीर। ६ बिजुरी। ७ तरङ्ग। ८ तौं। ९ जौं। १२ नारी।

शब्दार्थ—घन भए=घनी होकर। जलधर=मेघ। पयोधर=मेघ। नीरे=पानी से। आरति=आर्त्त होकर। घसति=पैठेगी। तीरे=तट=किनारा। तरङ्गे=लहर से। एहि= इस। निसि=रात मे। कोने परि=किस प्रकार। गोयाली=(गोपाली—स०) ग्वालिन= राधा। बानी=(वाणी—स०) वचन। तोहहुँ तह=तुमसे भी।

अर्थ—काजल मे रात सज गई (अर्थात्—काजल के समान रात काली हो आई।) मेघमाला घनी होकर बरस रही है।

मेघ धारा के रूप मे बरस रहे है। दूर के रास्ते पर जाना है। (इसलिए) अभिसार कठिन है।

पानी से (अर्थात्—पानी बढ़ जाने से) यमुना भयावनी हो गई है। आर्त्त होकर (राधा उसमे) पैठेगी; (किन्तु) किनारा नही पायगी।

बिजली की लहर से (वह) डरती होगी। यदि (वह) लौटकर घर चली जायगी, तो अच्छा करेगी।

भगवान् श्रीकृष्ण चिन्ता कर रहे हैं (कि) इस (भयावनी) रात मे राधा किस प्रकार आयगी।

विद्यापति (अपनी) बात कहते हैं (कि) हे कृष्ण! नायिका तुमसे भी चतुर है।

सं० अ०—१ काजरें। २ दुर। ३ भआउनि। ७ तरङ्गें। ८ तओ। ९ जओ। १० कओने। ११ गोआली। १३ सआनी।

[९५]

बाट विकट फनिमाला।
चउदिस बरिसए जलधर जाला॥
हे माधव,
बाहु तरिए नरि भागे।
कतए भीति जौं[1] दृढ़ अनुरागे॥
वन छलि एकलि हरिणी[2]।
व्याध कुसुमसरे[3] पाउलि रजनी॥
विद्यापति कवि भाने।
रूपनरायन[4] नृप रस जाने॥

न० गु०, प० २९७

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या १०५)—१ जौँ। २ हरिनी।

शब्दार्थ—फनिमाला=सर्प-समूह। जलधर-जाला=मेघो का समूह। तरिए=तैरकर। नरि=नली—स०=नदी। भागे=भाग (आई)। कतए=कहाँ। भीति=भय। एकलि=अकेली। कुसुमसरे=कामदेव ने। रजनी=रात्रि।

अर्थ—मार्ग मे भयावने साँपों का समूह है। चारो ओर दल-के-दल बादल बरस रहे है।

हे कृष्ण! (फिर भी वह) बाँहों से नदी तैरकर भाग आई। (कारण,) यदि दृढ अनुराग है (तो) भय कहाँ?

वन मे अकेली हरिणी थी। व्याध-रूपी कामदेव ने (उसे) रात मे पा लिया। (अर्थात्—जिस प्रकार रात्रि मे अकेली हरिणी को व्याध अपना लक्ष्य बनाता है, उसी प्रकार कामदेव ने उसे अपना लक्ष्य बनाया।)

कवि विद्यापति कहते है (कि) राजा रूपनारायण (इस) रस को जानते है।

सं० अ०—१ जओ। २ हरिनी। ३ कुसुमसरेँ। ४ रूपनरालेन।

[९६]

निसि निसिअर भम भीम भुअङ्गम
जलधर बिजुरि उजोर।
तरुन तिमिर निसि तइअओ चललि जासि
बड सखि साहस तोर।।
सुन्दरि,
कओन पुरुष धन जे तोरा हरल मन
जासु लोभे चलु अभिसार।।
आतर दुतर नरि से कइसे जएबह तरि
आरति न करिये झाप।
तोरा अछ पचसर ते तोरा नहि डर
मोर हृदय बरु काँप।।
भनइ विद्यापति अरे बर जउवति
साहस कहहि न जाए।
अछय जुवति गति कमला देवि पति
मन बस अरजुन राए।।

न० गु०, प० ३००

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अतः, इसके लिए प्रथम भाग का १६३ सख्यक पद देखिए।

[९७]

निअ[1] मन्दिर सौं[2] पअ[3] दुइ चारि।
घनहन[4] बरिस मही भर वारि।।
पथ पीछर[5] बड़ गरुअ नितम्ब।
खस[6] कत बेरि[7] नहीं[8] अवलम्ब।।
बिजुरि छटा दरसावए मेघ।।
उठए चाह जलधारक थेघ।।

सं० अ०—१ निज। २ सओ। ५ पीछड़। ६ खसु।

एक गुनें[9] तिमिर लाख गुनें[10] भेल।
उतरहु दखिन भान दुर गेल॥
ए हरि जानि करिअ मोके[11] रोस।
आजुक विलम्ब दइब दिअ दोस॥

न० गु०, प० ३०३

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ८३२)—२ सयँ। ३ पग। ४ घन घन। ६ खसु। ७ बेरी। ८ नहीँ। ९ गुन। १० गुन। ११ मोयँ।

शब्दार्थ—मन्दिर=घर। पअ=(पद—सं०) डग। घनहन=(घनाघन—सं०) बरसनेवाला बादल। मही=पृथ्वी। वारि=पानी। पथ=मार्ग। पीछड़=(पिच्छल—स०) फिसलनेवाला। गरुअ=(गुरुक—स०) भारी। नितम्ब=चूतड़। खस=गिरती थी। कत बेरि=कितनी बार। थेघ=अवलम्ब। तिमिर=अन्धकार। भान=ज्ञान। दइब=(दैव—सं०) भाग्य।

अर्थ—अपने घर से दो-चार डग (ही) है; (पर मैं क्या करती?) मेघ बरस रहा है—धरती पानी से डूब गई है।

फिसलनेवाला मार्ग (और) बड़ा भारी नितम्ब! विना अवलम्ब के (मैं) कई बार गिर पड़ी।

मेघ बिजली की छटा दिखला रहा है। पानी धारा का अवलम्ब लेकर उठना चाहता है। (अर्थात्—इतनी बारिस हुई है कि पानी धारा का रूप ले रहा है।)

एकगुना अन्धकार लाखगुना हो गया। उत्तर-दक्षिण का भी ज्ञान दूर चला गया। (अर्थात्—अन्धकार के कारण मुझे दिग्भ्रम हो गया।)

हे कृष्ण! समझ-बूझकर मुझपर क्रोध कीजिए। आज के विलम्ब के लिए (अपने) भाग्य को दोष दीजिए।

[९८]

जागल जामिक जन चउदिस गरज घन
सासु नहि तेजए गेहा रे।
तइओ[1] से चलले बुधिबले कउसले
एत बड़ तोहर सिनेहा रे॥

सं० अ०—९ गुन। १० गुन। १ तइअओ।

ए हरि,
तोहर थैरज जत से सबें कहब कत
धनि गेलि सून सँकेता[5] रे।
जदि[6] न अएला हे तोहें[7] धनि से कहलि कोहें[8]
थोइआ गेलि मालति माला रे॥
सगरि रअनि[9] जागि तुअ दरसन लागि
तरु तर तितलि[10] बाला रे।
भनइ विद्यापति सुन बर जउवति
नीन्द जगइते[11] सन्देहा रे॥

न० गु०, प० ३०७

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ३६५)—२ चलल। ३ कउसल। ४ सब। ११ जगइत।

शब्दार्थ—जामिक=(यामिक—सं०) प्रहरी। घन=मेघ। गेहा=घर। कउसले=(कौशल—स०)=दक्षता से। थैरज=(स्थैर्य—सं०) स्थिरता=दीर्घसूत्रिता। सून=(शून्य—स०) सूना। सँकेता=मिलन-स्थान। कोहे=क्रोध से। थोइआ=(स्थापयित्वा—स०) रखकर। गेलि=गई। रअनि (रजनी—सं०) रात्रि। लागि=लिए। तरु तर=पेड़ के नीचे। तीतलि=भीगती रही।

अर्थ—प्रहरी जगे हुए थे, चारों ओर मेघ गरज रहा था (और) सास घर नही छोड़ रही थी।

फिर भी वह (अपने) बुद्धि-बल (और) कौशल से (तुम्हारे पास) चली। इतना बड़ा तुम्हारा स्नेह है।

हे कृष्ण! (पर) तुम्हारी जितनी दीर्घसूत्रिता है, सो सब कितना कहूँगी? (तुम्हारी दीर्घसूत्रिता के कारण ही) नायिका सूने मिलन-स्थान को गई।

जब तुम नही आये, (तब) वह क्रोध से बोलने लगी (अर्थात्—तुम नही आये, तो नायिका बोलकर अपना क्रोध प्रकट करने लगी और चिह्नस्वरूप अपनी) मालती-माला रखकर चली गई।

बाला (नायिका) तुम्हारे दर्शन के लिए सारी रात जगकर पेड़ के नीचे भीगती रही।

विद्यापति कहते हैं—अरी वरयुवती! सुनो। (कृष्ण को) नीद से जगने मे सन्देह है। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

विशेष—इस पद की १० और ११वी पंक्तियाँ यत्किञ्चित् पाठभेद के साथ 'रामभद्रपुर-पदावली' मे भी पाई जाती हैं। इसके लिए 'रामभद्रपुर में प्राप्त' ३१ संख्यक पद देखिए।

सं० अ०— ५ सङ्केता। ६ जब। ७ तोहें। ८ कोहें। ९ रअनि। १० तीतलि।

[९९]

राहु मेघ भए गरसल सूर।
पथ परिचए[1] दिवसहि[2] भेल दूर॥
नहि बरिसए अवसर[3] नहि होए।
पुर परिजन सञ्चर नहि कोए॥
चल चल सुन्दरि कर गए साज।
दिवस समागम सपजत आज॥
गुरुजन परिजन डर कर[4] दूर।
बिनु साहसें[5] अभिमत नहि पूर॥
एहि संसार सार बथु एह।
तिला एक सङ्गम[6] जाब जिव नेह॥
भनइ विद्यापति कवि कण्ठहार।
कोटिहु न घट दिवस अभिसार॥

न० गु०, प० ३१२

पाठभेद—

ग्रियर्सन (पद-सख्या १०)—३ अवसन।

मि० म० (पद-सख्या ३०७)—३ अवसन। ४ कर। ५ साहस।

शब्दार्थ—गरसल=ग्रस लिया। सूर=सूर्य। पथ=मार्ग। दिवसहि=दिन में ही। गए=जाकर। साज=सजावट। सपजत= (सम्पत्स्यने—सं०) सपरेगा=हो जायगा। बथु=वस्तु—सं०। एहि=यही। तिला एक=तिलमात्र=क्षण भर।

अर्थ—राहु ने मेघ होकर सूर्य को ग्रस लिया। (अर्थात्—मेघ इस प्रकार घिर आया है कि सूर्य कही दिखाई नही देता है। जान पड़ता है, जैसे—ग्रहण लगा है।) दिन में ही मार्ग का परिचय दूर हो गया (रास्ता भुला गया।)

न बारिश होती है (और) न (जाने-आने का) अवसर होता है। नगर में कोई आदमी नही चलता है।

अरी सुन्दरी! चलो, चलो। जाकर सजावट करो। आज दिन में ही समागम हो जायगा।

सं० अ०—१ परिचअ। २ दिवसहिँ। ५ साहसेँ। ६ सङ्ग।

गुरुजनों (और) परिजनों का भय दूर करो। विना साहस के अभिप्राय पूर्ण नहीं होता है।

इस संसार में यही (अभिसार) सार-वस्तु है। (यद्यपि इसमे) क्षण-भर का सग होता है; (तथापि) जीवन-पर्यन्त स्नेह रहता है।

कविकण्ठहार विद्यापति कहते हैं (कि) कोटियों (खरचने) से (भी) दिन का अभिसार नहीं घटित होता है। (अर्थात्—कोटियों खरचने पर भी दिवाभिसार का मौका हाथ नहीं आता।)

[१००]

गगन मगन होअ तारा।
तइअओ न कान्ह तेजय[1] अभिसारा॥
अपना[2] सरबस लाथे[3]।
आनक[4] बोलि[5] नुड़िय[6] दुहु हाथे[7]॥
टूटल गूम मोती हारा[8]।
बेकत भेल अछ नखखत धारा॥
नहि नहि नहि पए भाखे।
तइअओ कोटि जतन कर लाखे॥
भनहि[9] विद्यापति बानी।
एहि तीनुहु[10] मह दूति[11] सआनी[12]॥

न० गु०, प० ३२०

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ३३६)—२ आपना। ८ मोतिहारा। ९ भनइ। ११ दूती। १२ सयानी।

शब्दार्थ—गगन=आकाश। मगन होअ=मग्न हो रहा है=डूब रहा है। सरबस=(सर्वस्व—सं०) सम्पत्ति। लाथे=बहाना से। बोनि=कमाई। नुड़िअ=नुड़ियाता है=समेटता है। बेकत=व्यक्त—सं०। नखखत=नखक्षत—सं०। धारा=परम्परा=श्रेणी। सआनी=(सज्ञाना—सं०) चतुर।

सं० अ०—१ तेजए। ३ लाथे। ४-५-६-७ आनक बोनि नुड़िअ दुहु हाथे। ८ मोतिहारा। ९ भनइ। १० तीनुहुँ। १२ सआनी।

अर्थ—आकाश में तारे डूब रहे है, फिर भी कृष्ण अभिसार नहीं तजते हैं।

अपनी सम्पत्ति के बहाने दोनों हाथों से दूसरे की कमाई बटोर रहे हैं।

गले का मोतीहार टूट गया। नखक्षत की परम्परा व्यक्त हो गई।

(यद्यपि नायिका) 'नही, नही, नहीं', कह रही है, तथापि (कृष्ण छोड़ते नही है। वे) लाखों—कोटियों यत्न कर रहे है।

विद्यापति (अपनी) बात कहते है (कि) इन तीनों (नायक, नायिका और दूती) में दूती चतुरा है। (कारण, वह पहले चली गई।) (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[१०१]

खरि नरि बेगे[1] भासलि नाइ।
धरए न पारथि बाल कन्हाइ॥
तें[2] धँसि[3] जमुना भेलाहु[4] पार।
फूटल बलया[5] टूटल हार॥
ए सखि ए सखि न बोल मन्द।
बिरह[6] बचने बाढ़ल[7] दन्द॥
कुन्तल[8] खसल जमुन[9] माझ।
ताहि जोहइते पड़लि साँझ॥
अलक तिलक तें[10] बहि गेल।
सुध[11] सुधाकर बदन भेल॥
तटिनि[12] तट न[13] पाइअ बाट।
तें[14] कुच गाड़ल कठिन काँट॥
भने[15] विद्यापति निअ[16] अवसाद।
वचन[17] कउसले[18] जिनिअ[19] वाद॥

न० गु, प० ३२६

सं० अ०—१ वेगेँ। २ तञे। ४ भेलाहुँ। ५ बलआ। ६ बीरह। ८ कुण्डल। ९ जमुना। १० तञे। ११ सूध। १२ तटिनी। १३ नहि। १४ तञे। १६ निज। १७ बचनक। १८ कउसलेँ। १९ जीनिअ।

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ३५१)—१ वेग। २ तें। ३ बसि। ४ भेलहु। ५ वलआ। ७ बाढ़ए। ९ कुण्डल। १० तें। १४ तें। १५ मन।

शब्दार्थ—खरि=तेज। नरि=नदी। भासलि=बह चली। नाइ=नाव। बँसि=पैठकर। बलआ=(वलय—सं०)कँगना। मन्द=बुरा। वीरुह=विरुद्ध—सं०=प्रतिकूल। दन्द=(द्वन्द्व—सं०) झगड़ा। जोहइते=ढूँढ़ते हुए। अलक-तिलक=(अलिक-तिलक—सं०)-प्रसाधन। सध=शुद्ध=निष्कलंक। सुधाकर=चन्द्रमा। वदन=मुख। तटिनि=नदी। कुच=स्तन। अवसाद=पराजय। कउसलें=कौशल से। जीनिब=जीतना चाहिए। वाद=विवाद।

अर्थ—(नायिका रति-रग का अपलाप करती हुई सखी से कहती है—) तेज नदी के वेग से नाव बह चली (तो) बालक कृष्ण (उसे) पकड़ नही सके।

इसीलिए पैठकर यमुना पार हुई,(जिससे मेरा)कँगना फूट गया(और)हार टूट गया।

हे सखी! हे सखी!! मेरा अस्त-व्यस्त शरीर देखकर बुरा मत बोलो। (नायिका अपने शरीर के अस्त-व्यस्त होने का कारण कहती है—कृष्ण के) प्रतिकूल वचन से झगड़ा बढ गया।

(झगड़ा मे) कुण्डल यमुना के बीच गिर गया। उसे ढूँढ़ते हुए शाम हो गई।

(यमुना मे पैठकर कुण्डल ढूँढ़ने के कारण ही) प्रसाधन धुल गया (और) मुख निष्कलङ्क चन्द्रमा-सा हो गया।

नदी (यमुना) के तट पर रास्ता नही मिल रहा था। इसलिए स्तन में कठोर काँटे गड़ गये।

विद्यापति कहते है—अपनी पराजय मे वचन के कौशल से विवाद जीतना चाहिए। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[१०२]

कुसुम तोरए गेलाहु जाहाँ।
भमरें[1] अधर खण्डल ताहाँ॥
तें[2] चलि अयलाहुँ[3] जमुना तीर।
पवने हरल हृदअ[4] चीर॥
ए सखि सरुप कहल तोहि।
आन[5] किछु जनु[6] बोलसि मोहि॥

सं० अ०—१ भमरें। २ तओं। ३ अएलाहुँ। ५ आन।

हार मनोहर बेकत भेल।
उजर उरग संसअ गेल॥
तेँ घसि मजुरें जोड़ल झाँप।
नखर गाड़ल हृदअ काँप॥
भने विद्यापति उचित भाग।
वचन(क) पाटवें कपट लाग॥

न० गु० प० ३२७

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ३५०)—१ भमर। २ तें। ४ हृदय। ५ आनु। ६ जनि। ७ तें।

शब्दार्थ—कुसुम=फूल। अधर=ओष्ठ। पवने=हवा ने। हृदअ-चीर=आँचल। सरुप=सत्य। बेकत=व्यक्त—स०। उजर=उजला। उरग=साँप। घसि=पैठकर =घुसकर। झाँप=(झम्प—स०) छलाँग। नखर=नख। उचित=ठीक। भाग=भाग्य=तकदीर। पाटवें=कौशल से। लाग=ठीक बैठ जाता है।

अर्थ—फूल तोड़ने के लिए (मैं) जहाँ गई, वहीं भ्रमर ने (मेरा) अधर काट खाया।

इसीलिए (मैं) यमुना के तट पर चली आई; (किन्तु वहाँ भी) हवा ने (मेरा) आँचल हर लिया।

हे सखी! मैंने तुमसे सत्य कहा (अर्थात्—जो कुछ हुआ, सचमुच वही बतला दिया। इसलिए) मुझे और कुछ मत कहो (अर्थात्—मुझे कलङ्क मत लगाओ।)

(आँचल हर लिये जाने से मेरा) सुन्दर हार व्यक्त हो गया (दिखाई पड़ने लगा और मयूर को) उजले साँप का सशय (भ्रम) हो गया।

इसलिए, मोर ने घुसकर छलांग भरा (और) नख गड़ा दिये, (जिससे मेरा) हृदय काँप रहा है (अर्थात्—मेरी छाती धड़क रही है।)

विद्यापति कहते है—भाग्य ठीक रहने पर वचन के कौशल से कपट (भी) ठीक बैठ जाता है (अर्थात्—सत्य-सा प्रतीत होने लगता है।)

[१०३]

ननदी सरुप निरुपह दोसे।
बिनु विचारे बेभिचार बुझओबह
सासु करओबह रोसे॥

सं० अ० ७ तजे। ८ बेंसि। ९ मजुरें। १० वचनक पाटवें।

कउतुके कमलनाल सओो तोरल
करए चाहल अवतंसे।
रोखे कोख सओो मधुकर धाओल
तेंहि अधर करु दंसे॥
सरोवर घाट वाट कंटक तरु
देखिहि न पारल आगू।
साँकरि वाट उवटि कहु चललाहु
तें कुच कण्टक लागू॥
गरुअ कुस्म सिर थिर नहि थाकए
तें उधसल केशपाशें।
सखि सओो हमे पाछु पड़लिहुँ
तें भेल दीघ निसासे॥
पथ अपवाद पिसुनें परचारल
तथिहु उतर हमे देला।
अमरख चाहि धैरज नहि रहले
तें गदगद सर भेला॥
भनइ विद्यापति सुन बरजउवति
इ सबे राखइ गोइ।
ननदी सओो रस-रीति वढाओोव
गुपुत वेकत नहि होइ॥

न० गु० प० ३२८

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' में भी है। अतः, इसके लिए प्रथम भाग का १३७ संख्यक पद देखिए।

[१०४]

जाहि लागि गेलि[1] हे ताहि कहाँ लइलि[2] हे
ता पति वइरि पितु काँहा[4]:

सं० अ०—१ गेली। २ लइली। ४ काहाँ।

अछलि हे दुख-सुखे कहह अपने मुखे
भूषन[5] गमओलह जाँहा[6]॥
सुन्दरि कि कए बुझाओब कन्ते।
जन्हिका जनम होइतेँ[7] तोँहेँ[8] गेलिहे
अइ लिहे तन्हिका अन्ते।
जाहि लागि गेलाहुँ से चलि आएल
तेँ[9] मो[10] धएलाहु[11] नुकाइ[12]।
से चलि गेल ताहि लए चललाहुँ
तेँ[13] पथे[14] भेल अनेआइ[15]॥
सङ्कर वाहन खेड़ि खेलाइते
मेदिनि वाहन आगे।
जे सबे[16] अछलि सङ्गे से सबे[17] चललि भङ्गे[18]
उबरि अएलाहुँ अछ भागे॥
जाहि दुइ खोज करइ छह[19] सासुन्हि
से मिलु अपना सङ्गे।
भनइ विद्यापति सुनु[20] बर जउवति
गुपुत नेह रतिरङ्गे॥

न० गु०, प० ३२९

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ३४९)—३ वैरि। ४ काहाँ। ५ भूसन। ६ जाहाँ। ७ होइत। ८ तोँहे। ९ तेँ। १० मोहि। ११ धएलाई। १२ नुकाई। १३ तेँ। १४ पथ। १५ अनेआई। १६ सव। १७ सव। १८ भङ्ग। १९ करइ छहि। २० सुन।

शब्दार्थ—ता पति वइरि पितु=ता पति=(यहाँ प्रसङ्गवश 'ता' से 'जल' अभीप्सित है।) समुद्र; —वइरि=अगस्त्य; —पितु=घट (अगस्त्य 'घटज' है।) तेँ=उसी ने। मो=मुझे। पथे=मार्ग मे। अनेआइ=(अन्याय—सं०) जुल्म। सङ्कर वाहन=बैल। खेड़ि=केलि—सं०। मेदिनि वाहन=साँप। भङ्गे चललि=भमर चली।

सं० अ०—६ जाहाँ। ८ तोहेँ। १२ लुकाई। १३ तञे। १५ अनेआई।

अर्थ—(सखी नायिका से पूछती है—) जिसके लिए (तुम) गई थी, उसे (तुम) कहाँ लाई? (अर्थात्—पानी के लिए तुम गई थी, सो, पानी कहाँ लाई? तुम्हारा) घडा कहाँ है?

जहाँ (तुमने) आभूषण गँवाया, (वहाँ जिस) दुःख-सुख मे थी, (सो,) अपने मुख से कहो।

हे सुन्दरी! (तुम) जिसके जन्म होते गई, उसके अन्त होने पर आई (अर्थात्—सूर्योदय होते ही तुम गई, सो, सूर्यास्त होने पर आई। इसलिए कहो,) क्या करके (अर्थात्—किस प्रकार) स्वामी को समझाओगी?

(नायिका उत्तर देती है—) जिसके लिए (मैं) गई, वह (स्वय) चला आया। (अर्थात्—पानी के लिए मैं गई थी, सो, पानी स्वय चला आया, यानी बारिश होने लगी। उसी ने मुझे छिपा रखा (अर्थात्—छिपने को बाध्य किया।)

जब वह चला गया (तब मैं) उसे लेकर चली (अर्थात्—जब बारिश बन्द हुई, तब मैं पानी लेकर चली) तो मार्ग मे जुल्म हो गया।

(क्या जुल्म हुआ—वही नायिका कहती है—) बैल खेल रहा था (अर्थात्—चौकड़ी भर रहा था और) आगे साँप था।

(इसलिए) जो सब साथ थी, वे सभी भभर चली। (मैं तो किसी प्रकार) भाग्य से बचकर आ गई हूँ।

सास जिन दो की (अर्थात्—घडा और पानी की) खोज करती है, वे अपने साथ मिल गईं। (अर्थात्—मिट्टी का घड़ा टूटकर मिट्टी मे और पानी पानी मे जा मिला।)

विद्यापति कहते है—अरी वरयुवती! सुनो। रति-रग का स्नेह गुप्त (ही रखना) चाहिए।

[१०५]

खनरि खन महघि भइ किछु अरुन नयन कइ
कपटे[१] धरि मान सम्मान लेही।
कनक जओं पेम कसि पुनु पलटि बाङ्क हसि[२]
आधि सओं अधर-मधुपान देही॥
अरे रे,
इन्दुमुखि अढ न कर-पिअहृदय खेद हर
कुसुमसर-रङ्ग संसार-सारा॥

सं० अ०—१ कपटे। ३ हँसि।

वचने बस होसि जनु ससरि भिन होइह तनु
सहजे[5] बरु छाड़ि देब सअन[6] सीमा।
प्रथम[7] रस भङ्ग भेले लोभ[8] मुख सोभ गेले
बाँधि भुजपासे[9] पिअ[10] धरब गीमा॥
जदि नयन कमलवर मुकुल केरक(ा)न्ति[11] धर
खर नखर घात कइ सेहे बेला।
परमपद लाभ सम मोदे चिरे[12] हृदय रम
नागरी सुरत सुख अमिय[13] मेला॥
सरस कवि सुरस भने चारुतर चतुरपने
नारि आराहियइ[14] पञ्चबाना।
सकल जन सुजन गति रानि लखिमाक पति
रूपनरायन[15] सिवसिह[16] जाना॥

न० गु०, प० ३३०

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या १११)—२ जयँ। ४ सयँ। ६ सयन। ७ प्रथमे। ९ भुजपास। १० पिय। ११ कान्ति। १२ चिर। १४ आराहिअइ। १६ सिवसिंघ।

शब्दार्थ—खनरि खन=क्षण-क्षण=प्रतिक्षण। महघि=(महार्घ—सं०) महँगी। अरुन=लाल। बाङ्क=(वङ्क—स०) टेढ़ा। आधि=मनोव्यथा। इन्दुमुखि=चन्द्रमुखी। अढ=ओट। कुसुमसर=कामदेव। रङ्ग=क्रीडा। ससरि=खिसककर। भिन=(भिन्न—स०) अलग। तनु=शरीर। मुख-सोभ=मुंह की लाली। भुजपासें=बाहुपाश से। गीमा=(ग्रीवा—स०) गरदन। मुकुल=कली। खर=तीक्ष्ण। नखर-घात=नखक्षत। वेला=समय। मोदें=आह्लाद से। मेला=मिलन=लाभ। आराहिअइ=आराधना करनी चाहिए। सुरस=(स्वरस—स०) अपना अभिमत। पञ्चवाना=कामदेव। गति=अवलम्ब।

अर्थ—(सखी की सीख—) प्रतिक्षण महँगी होकर, आँखे कुछ लाल करके, छल से मान धारण कर सम्मान लो।

सोने के समान प्रेम को कसकर (परखकर), फिर वक्र हो, मुड़कर (अर्थात्—गरदन घुमाकर), हंसकर, मनोव्यथा से (अर्थात्—मन मारकर) अधरामृत का पान दो।

सं० अ०—५ सहजें। ६ सबन। ८ लोभें। ९ भुजपासें। ११ कान्ति। १२ मोदें चिरें। १३ अमिब। १४ आराहिअइ। १५ रूपनाराअेन।

अरी चन्द्रमुखी! ओट मत करो (अर्थात्—दूर जाकर मत छिपो।) स्वामी के हृदय का दु:ख हरो। (कारण,) काम-क्रीडा ससार का सार है।

(स्वामी के मधुर) वचन से (उनके) वश में मत हो जाओ। खिसककर (उनके) शरीर से अलग हो जाओ। विना कारण शय्या की सीमा छोड़ दो (अर्थात्—शय्या से उतर वैठो।)

प्रथम रसभङ्ग हो जाने पर (जब स्वामी के) मुख की लाली चली जाय (अर्थात्—स्वामी का मुख उदास हो जाय, तब अपने) बाहुपाश से स्वामी की गरदन बाँध लो (अर्थात्—स्वामी के गले से लिपट जाओ।)

यदि (स्वामी के) नयनरूपी कमल (आनन्दातिरेक से) मुकुल की शोभा धारण कर लें (अर्थात्—मुकुलित हो जायँ, तो) उसी समय तीक्ष्ण नखाघात करके—

परमपद के लाभ के समान आह्लाद से देर तक मन से रमण करो। (कारण,) नागरिकाओ के लिए सुरत-सुख अमृत का लाभ है। (अर्थात्—जिस प्रकार अमृत आनन्द-दायक है, उसी प्रकार नागरिकाओ के लिए सुरत-सुख भी आनन्ददायक है।)

सरस कवि (विद्यापति) अपना अभिमत कहते हैं (कि) नारियों को बड़ी चतुराई से कामदेव की आराधना करनी चाहिए।

सभी सज्जनों के अवलम्ब, रानी लखिमा के स्वामी राजा शिवसिंह रूपनारायण (इसे) जानते हैं।

[१०६]

कोप करए चाह नयने निहारि रह
धरिबा[1] न पारय[2] हासे[3]।
न बोल परुस वाक न मुख अरुन थाक
चाँद कि जलइ हुतासे[4]॥
ए सखि, मान करिवा[5] न जाने।
कत खन सिखाउबि आने[6]॥
न न न न न न भन पिअरें[7] नखरे हन
जेओ जान तथिहु[8] लजाइ[9]।
न कर भौंह[10] भङ्ग न धरि मोलइ[11] अङ्ग
खनहि सुलभ भए जाइ[12]॥

---

[1] सं० अ०—२ पारए। ३ हासें। ४ हुतासें। ५ करीवा। ६ आने। ८ तथिहुँ। ९ लजाई। १० भउह। ११ मोड़ि। १२ जाई।

अपने अथिक सुखि[13] न धर परेरे[14] बुधि
बिसम कुसुमसर माया।
बिरह सोस भेले भल हो अधर देले
रौद सोहाउनि[15] छाया।।
भनइ विद्यापति होइह दून रति
पूजब ते पञ्चबाने।
रूपिनि देवि पति मति सिरि रतिघर
सकल कला रस जाने।।

न० गु०, प० ३३३

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या २२३)—१ धरिअ। ७ पियके। १३ सुखि। १४ परक।

शब्दार्थ—धरिवा न पारए=धारण नही कर पाती। परुस=(परुष—सं०) कठोर। बाक=वचन। अरुन=लाल। थाक=होता है। जलइ=जलता है। हुतासें=आग। पिअ=स्वामी को। खरे=निठुराई से। तथिहुँ=उसमे भी। मोलइ=मोड़ती है। सुखि=सूखी। परेर=दूसरे की। विसम=(विषम—स०) कठिन। कुसुमसर=कामदेव। सोस=(शोष—स०) शुष्क=पीला पड़ जाना। रौद (रौद्र—स०) धूप। सोहाबुनि=सुहावनी। दून=(द्विगुण—सं०) दूना। रति=प्रेम। पूजब=पूरा कर देगा। ते=उसे। पञ्चबाने=कामदेव। मति=मन्त्री।

अर्थ—(नायिका) क्रोध करना चाहती है; (किन्तु) आँखो से देखकर रह जाती है। हँसी के कारण (क्रोध को) धारण नही कर पाती है। (अर्थात्—नायक को देखते ही उसके मुँह पर हँसी की रेखा खिंच जाती है।)

(इसीलिए वह) न कठोर वचन बोलती है (और) न (उसका) मुँह लाल होता है। (सचमुच) चन्द्रमा आग की तरह नही जलता है।

हे सखी! (वह तो) मान करना (भी) नही जानती है। दूसरी (अर्थात्—मैं) कबतक (उसे) सिखाऊँगी?

(वह) 'न न न न न न' भी नही कहती है (और) न निठुराई से स्वामी को मारती ही है (झिड़कती ही है।) जो जानती है, उसमे भी लजाती है।

(वह) न (क्रोध से) भौंह टेढ़ी करती है (और) न (अपना) शरीर पकड़कर मोड़ती है। क्षण-भर मे (स्वामी के लिए) सुलभ हो जाती है।

सं० अ०—१३ सुखि। १४ परेर। १५ सोहाबुनि।

(वह) स्वयं तो सूधी है (ही), दूसरी की बुद्धि (सीख) भी नही धारण करती। कामदेव की माया कठिन है।

विरह से शुष्क हो जाने पर (पीला पड़ जाने पर ही) अधर (अधरामृत) देना अच्छा होता है। (कारण,) धूप मे ही छाया सुहावनी लगती है।

विद्यापति कहते है—(मान करने से) प्रेम दूना होगा (और) कामदेव उसे पूरा कर देगा।

रूपिणी देवी के स्वामी मन्त्री, श्रीरतिधर सभी कलाओं का रस जानते है।

[१०७]

सहस रमनि सञो भरल तोहर हिय
करु तनि परसि न त्यागे।
सकल गोकुल जनि से पुनमति धनि
कि कहब ताहेरि भागे।।
पद जावक (रस) हृदय भिन अछ
अओर करज खत ताहे।
जाहि जुवति सङ्गे रअनि गमओलह
ततहि पलटि बरु जाहे।।
नयनक काजर अधरें चोराओले
नयन अधर कहु रागे।
बदलल बसन नुकाओब कति खन
तिला एक कैतव लागे।।
बड़ अपराध, उतर नहि सम्भव
विद्यापति कवि भाने।
राजा शिवसिह रूपनरायन
सकल कला रस जाने।।

न० गु०, प० ३४०

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अत', इसके लिए प्रथम भाग का १७८ संख्यक पद देखिए।

[१०८]

मनसिज बाने मोर हरल गेंआने[1]।
बोललह तोहें[2] मोरि दोसरि पराने॥
वचनहु चुकलासि आबे की छड़ा।
समुह निहारसि साहस बड़ा॥
कि तोहि बोलिबों[3] कान्ह,
कि बोलिबओं[4] तोही।
बेरि बेरि कत परपञ्चसि[5] मोही॥
भाँगिले भासा तोलिले[6] आसा।
आबे कके[7] करसि तोजें[8] मुख परगासा॥
लाजक अपगमे चीन्हलि जाती।
पेम करह अनतए गेलि राती॥
खण्डित जुवति कवि विद्यापति भाने।
पेअसि[9] वचने लजाएल कान्हे॥
रूपनरायन[10] एहु रस जाने।
राए सिवसिंह[11] लखिमा देइ[12] रमाने॥

न० गु०, प० ३४२

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ११४)—१ गेआने। ३ वलिवों। ४ वोलिवओं। ५ परिपञ्च-सि। ७ कके। ८ तोयें। ९ पेयसि। १० रूपनरावेन। ११ सिवसिंघ।

शब्दार्थ—मनसिज=कामदेव। चुकलासि=चूक गये। की=क्या। छड़ा=छल। समुह=सम्मुख। वोलिवो=बोलूँगी। वेरि-वेरि=वार-वार। परपञ्चसि=प्रपंच करते हो=धोखा देते हो। भाँगिले=भग किया। भासा=वचन। तोळिले=तोड़ दिया। कके=क्यों। परगासा=प्रकाश—स०। अपगमे=हट जाने से। अनतए=अन्यत्र—सं०। पेअसि=(प्रेयसी—स०) प्रेमिका।

सं० अ०—१ गेजाने। २ तोहें। ३ वोलिवों। ४ वोलिओं। ६ तोळिले। कके। १० रूपनराञन। १२ दे।

अर्थ—(नायिका कृष्ण से कहती है—तुमने जब) कहा (कि) तुम मेरे दूसरे प्राण हो (अर्थात्—प्राण के समान प्यारी हो) तभी कामदेव के बाण ने मेरा ज्ञान हर लिया।

(यदि अपने) वचन से भी चूक गये (तो) अब छल क्या (करते हो?) सम्मुख (आमने-सामने) देखते हो —(यही तुम्हारा) बडा साहस है।

तुम्हे क्या कहूँ? हे कृष्ण! तुम्हे क्या कहूँ? तुम मुझे बार-बार कितना धोखा देते हो?

(यदि तुमने अपना) वचन भग किया—(मेरी) आशा तोड़ दी (तो) क्यो अब तुम (अपना) मुँह दिखलाते हो?

लज्जा हट जाने से (मैंने तुम्हारी) जाति पहचान ली। (अर्थात्—तुम्हारी निर्लज्जता देखकर मैंने जान लिया कि तुम्हारी जाति ओछी है। और, ओछी जातिवाले से मैं प्रेम नही करती हूँ। इसलिए) दूसरी जगह (जाकर) प्रेम करो,—रात बीत गई।

कवि विद्यापति कहते है—युवती खण्डिता[1] है। (इसीलिए) प्रेयसी के वचन से कृष्ण लजा गये।

लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह रूपनारायण इस रस को जानते है।

[१०९]

परिजन पुरजन वचनक रीति।
पेम लुबुध मन भेलि परतीति॥
निअ[1] अपराध बोलत की आने[2]।
कुमुदहि भेल कमल के भाने॥
एहि अनुभवि (मोज)[3] बुझल सरूपे।
नअन[4] अछइते[5] निमजलिहु कूपे॥
जदि तोहें[6] माधव सहज विरागी।
लोचन गीम कएल कथि लागी॥

---

१. पार्श्वमेति प्रियो यस्या अन्यसंयोगचिह्नितः।
सा खण्डितेति कथिता धीरैरीर्ष्याकषायिता॥
—साहित्यदर्पण, परिच्छेद ३, श्लोक ७५।

सं० अ०—१ निज। २ आने। ३ अनुभवि मोज। ४ नअन। ६ तोहें।

पुनु जनु बोलह अइसनि भासा।
काहुक कउतुके काहु निरासा॥
नहि नहि बोलह दरसह कोपे।
जतने जनाए करइ छह गोपे॥
परतख गोपब के पतिआउ।
बरु मनमथ सरे जीवन आउ॥
भनइ विद्यापति एहु रस भाने।
पुहुबिहि अवतरु नव पँचवाने॥
रूपनरायन[11] एहु[12] रसमन्ता।
गुननिवास लखिमा देवि[13] कन्ता॥

न० गु०, प० ३४३

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या १२७)—५ अछइत। ८ काहुक। ९ जाउ। ११ रूपनराअन। १३ देइ।

शब्दार्थ—रीति=व्यवहार। पेम-लुबुध=प्रेम-लुब्ध। परतीति=(प्रतीति—स०) विश्वास। भाने=ज्ञान। अनुभवि=अनुभव करके। सरूपे=(स्वरूपे—स०) वास्तव मे। अछइते=रहते। निमजलिहु=निमज्जित हुई=डूब गई। सहज=जन्मजात=जन्म से ही। विरागी=उदासीन। लोचन=आँख। गीम=(ग्रीवा—सं०) गरदन। कथि लागी=किसलिए। भासा=बात। कउतुके=खेल से। जनाए=जनाकर=समझाकर। गोपे=गोपन=छिपाव। परतख=प्रत्यक्ष—स०। गोपब=छिपाओगे। के=कौन। पतिआउ=विश्वास करेगा। बरु=(वरम्—सं०) भले ही। मनमथ-सरे=कामदेव के वाण से। जीवन=प्राण। पुहुविहि=पृथ्वी पर। नव पँचबाने=अभिनव कामदेव। पहु=(प्रभु—स०) राजा।

अर्थ—परिजन (और) पुरजन के वचन-व्यवहार से (अर्थात्—कहसे से मेरे) प्रेमलुब्ध मन मे विश्वास हो गया।

अपना अपराध है। (इसलिए) दूसरे क्या कहेगे? (अर्थात्—दूसरे को कहने की आवश्यकता नही। मैं स्वय समझती हूँ कि यह मेरा अपराव है।) कुमुद मे (मुझे) कमल का भान हो गया!

यह अनुभव करके (महसूस करके, मैंने) वास्तव मे समझा (कि) आँख रहते हुए (भी मैं) कूप मे डूब गई।

सं० अ०—७ कउतुकें। ९ जाउ। १० जाने। ११ रूपनराजेन। १२ पहु।

हे कृष्ण! यदि तुम जन्मजात विरागी हो (तो मेरी) आँखो के (आगे अपनी) गरदन किसलिए की? (अर्थात्—अपना मुँह क्यो दिखलाया?)

फिर ऐसी (प्रेम की) बात मत बोलो। (कारण,) किसी के खेल से किसी को निराशा होती है। (अर्थात्—तुम तो खेल करते हो, किन्तु मुझे निराशा होती है।)

(अब तुम) 'नही-नही' बोलते हो, (अर्थात्—'दूसरी स्त्री के समीप मैं नही गया था'—यह कहते हो। पूछने पर) क्रोध दिखलाते हो। (पहले) यत्न से (सब-कुछ) जताकर (अब) छिपाते हो।

(किन्तु) प्रत्यक्ष को छिपाओगे (तो) कौन विश्वास करेगा? (अर्थात्—तुम कितना भी कुछ करो,—मैं विश्वास नही कर सकती हूँ।) भले ही काम-बाण से (मेरे) प्राण चले जायँ।

विद्यापति कहते हैं—पृथ्वी पर (जिन्होने) अभिनव कामदेव के रूप मे अवतार लिया है, (वे) इस रस को जानते है।

(कवि अपनी उक्ति का स्पष्टीकरण करता है—) लखिमा देवी के स्वामी गुणागार राजा रूपनारायण (शिवसिंह) रस के जाननेवाले है। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[११०]

आदरे अधिक काज नहि बन्ध।
माधव बुझल तोहर अनुबन्ध॥
आसा राखह नएन पठाए।
कत खन कौसले कपट नुकाए॥
चल चल माधव तोह जे सआन।
ताके बोलिय जे उचित न जान॥
कसिअ कसौटी चिन्हिअ हेम।
प्रकृति परेखिअ सुपुरुख पेम॥
परिमले जानिअ कमल पराग।
नयने निवेदिअ नव अनुराग॥
भनइ विद्यापति नयनक लाज।
आदरे जानिअ आगिल काज॥

न० गु०, प० ३४४

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अत, इसके लिए प्रथम भाग का २२ संख्यक पद देखिए।

[१११]

प्रथमहि गिरि सम गौरव भेल।
हृदयहु हार आँतर नहि देल॥
सुपुरुष वचन कएल अवधान।
भल मन्द दुअओ बुझब अवसान॥
चल चल माधव भलि तुअ रीति।
पिसुन वचने परिहरलि पिरीति॥
परक वचने (पहु) आपल कान।
तहि खने जानल समय समान॥
आबे अपदहु हरि तेज अनुरोध।
काहु का जनु हो बिहिक विरोध॥
न भेले रङ्ग रभस दुर गेल।
इथि हम खेद एकओ नहि भेल॥
एके पए खेद जे मन्दा समाज।
भलेहु तेजल आबे आँखिक लाज॥
भनइ विद्यापति हरि मने लाज।
काहु का जनु हो मन्दा समाज॥

न० गु०, प० ३४६

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' में भी है। अतः, इसके लिए प्रथम भाग का २३४ सख्यक पद देखिए।

[११२]

सरदक ससधर सम मुखमण्डल
काँइ झपावसि वासे।
अलपेओ हास सुधारस बरिसओ
छाड़ओ नयन पिआसे॥

मानिनि अपनेहु मने अनुमान।
रसइते आनहु बोल(ब) अगेआन॥
हाटक घटन सिरीफल सुन्दर
कुच जुग कुटि करु आधे।
पानि परस रस अनुभव सुन्दरि
न करु मनोरथ बाधे॥
भनइ विद्यापति सुन बर जौवति
विभव दया कि सारा।
माह छाह ककरो नहि भावय
ग्रीषम प्रान-पियारा॥

न गु०, प० ३५४

विशेष—यह पद 'रागतरंगिणी' मे भी है। अतः, इसके लिए रागतरंगिणी मे प्राप्त ३२ संख्यक पद देखिए।

[११३]

बदन चाँद तोर नयन चकोर मोर
रूप अमिय रस पीबे।
अधर मधुरि फुल पिया मधुकर तुल
बिनु मधु कत खन जीबे।
मानिनि मन तोर गढ़ल पसाने।
कके न रभसे हसि किछु न उतर देसि।
सुखे जाओ निसि अवसाने।
पर मुखे न सुनसि निअ मने न गुनसि
न बुझसि छइलेरि बानी।
अपन अपन काज कहइते अधिक लाज
अरथित आदर हानी॥

कवि भने विद्यापति अरेरे सुन जुवति
नेह नुतन भेल माने।
लखिमा देवि पति सिव सिंह नरपति
रूपनरायन जांने॥

न० गु०, प० ३५५

विशेष—यह पद 'रागतरंगिणी' मे भी है। अतः, इसके लिए रागतरंगिणी में प्राप्त ३३ सख्यक पद देखिए।

[११४]

वदन सरोरुह हासे[1] नुकओलह
तें[2] आकुल मन मोरा।
उदितेओ चन्दा अँमिय[3] न मुञ्चए
की पिबि जिउत चकोरा॥
मानिनि देह पलटि दिठि मेला।
सगरि रअनि[4] जदि कोपहिं[5] गमओबह
केलि रभस कोन[6] बेला॥
तोर नअन[7] एँ[8] पथहु[9] न सञ्चर
अजुगुत कह(ल)[10] न जाइ[11]।
अरुन कमलके क(ा)न्ति[12] चोरओलह
तें[13] मने रहलि लजाइ[14]॥
कामिनि कोपें[15] मनोरथ जागल
विद्यापति कवि गावे।
जएमति देवि[16] बरसन गहि[17] सङ्कर
बुझए सकल रस भावे॥

सं० अ०—१ ह्रासें। २ तजे। ३ अमिअ। ४ रअनि। ५ कोपहिं। ६ कओन। ७ नअन। ८ अे। ९ पथहुँ। १० कहल। ११ जाई। १२ कान्ति। १३ तअे। १४ लजाई। १५ कोपें। १७ मन गहि।

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ३८२)—२ तें। ३ अँमिअ। ४ रयनि। ७ नयन। १३ तें। १५ कोपे। १६ देइ।

शब्दार्थ—वदन-सरोरुह=मुख-रूपी कमल। उदितेओ=उगकर भी। अमिअ=अमृत। मुञ्चए=छोड़ता है। दिठि=(दृष्टि—सं०) आँख। मेला=मिलन। सगरि=सारी। रअनि=(रजनी—सं०) रात्रि। गमओबह=बिताओगी। केलि-रभस=रंग-रभस। वेला=समय। ने पथहुँ=इस रास्ते से भी। सञ्चर=गुजरता है। अजुगुत=आश्चर्य। अरुन=लाल।=कान्ति=शोभा। वर=स्वामी। मन गहि=मन मे ग्रहण करके=हृदय में विचार करके।

अर्थ—(नायक कहता है—) हँसकर (तुमने अपना) मुख-रूपी कमल छिपा लिया। इसीलिए मेरा मन परेशान है।

(यदि) चन्द्रमा उगकर भी अमृत नही छोड़ता है (देता है, तो) चकोर क्या पीकर जीयेगा?

अरी कामिनी! पलटकर आँखों का मिलन दो। (अर्थात्—सामने होकर देखो।) यदि क्रोध में ही सारी रात बिता दोगी (तो) रंग-रभस किस समय होगा?

तुम्हारी आँखें इस रास्ते भी नही गुजरती हैं! ऐसा आश्चर्य कहा (भी) नही जाता है। (जान पड़ता है, जैसे तुम्हारी आँखों ने) लाल कमल की शोभा चुरा ली है। इसीलिए (वे अपने) मन में लजाकर रह गईं (चुप लगाकर बैठ गईं।)

कवि विद्यापति कहते हैं (कि) कामिनी के क्रोध से (नायक का) मनोरथ जग गया। (अर्थात्—कामिनी ज्यों-ज्यों क्रोध करती गई, त्यों-त्यो नायक का मनोरथ बढ़ता गया।)

जयमती देवी के स्वामी शंकर (अपने) मन मे विचारकर सभी रसों के भाव को समझते हैं। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[११५]

चउदिस जलदें[1] जामिनि भरि गेलि।
धाराञें[2] धरनि बेआपिति भेलि॥
गगन गरजें[3] जागल पञ्चबान।
एहना[4] सुमुखि उचित नहि मान॥

सं० अ०—१ जलदें। २ धाराञे। ३ गरजें। ४ अइसना।

नागरि पिसुन वचने करु रोष[5]।
पय[6] परलहु[7] नहि कर परितोस[8]॥
बिहि समुचित धरु वामा नाम।
हमे अनुमापि हलल फल ठाम॥
नागरि वचन अमिय[9] परतीति।
हृदय गढ़ल हे पखानहु[10] जीति॥

न० गु०, प० ३५८

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ८३९)—१ जलदें। २ धाराबें। ३ गरजें। ५ रोस।

शब्दार्थ—जलदें=मेघ से। जामिनि=रात्रि। धाराबें=वारिस से। धरनि=(धरणी—स०) धरती। बेआपिति=(व्याप्त—स०) भरी हुई। गगन-गरजें=आकाश मे होनेवाली गड़गडाहट से। पञ्चवान=कामदेव। अइसना=ऐसे (समय) मे। पिसुन=चुगलखोर। पअ=(पद--स०) पैर। परितोष=सन्तोष। बिहि=(विधि—स०) विधाता। अनुमापि हलल=अनुमान किया। फल-ठाम=फल के अवसर पर। अमिअ=अमृत। परतीति=(प्रतीति—स०) बोध। पखानहुँ=(पाषाण—स०) पत्थर को भी।

अर्थ—चारो ओर मेघ से रात भर गई (अर्थात्—रात मे चारो ओर से मेघ घिर आये।) बारिश से धरती भर गई।

आकाश मे होनेवाली गड़गडाहट से कामदेव जग गया। हे सुमुखी! ऐसे (समय) में (तुम्हारा) मान उचित नही है।

चुगलखोरो के कहने से (चुगलखोरों के कहने मे आकर) नागरिकाएँ क्रोध कर बैठती है। पैर पड़ने पर भी (वे) सन्तोष नही करती है (अर्थात्—प्रसन्न नही होती है।)

विधाता ने ठीक ही (उनका) 'वामा' (विरुद्ध आचरण करनेवाली) नाम रखा। मैंने भी फल के अवसर पर (यही) अनुमान किया।

नागरिकाओ के वचन में (तो) अमृत का बोध होता है; (किन्तु उनका) हृदय पत्थर को भी जीतकर बना होता है (अर्थात्—पत्थर से भी कठोर होता है।)

सं० अ०—६ पअ। ७ पळलहुँ। ८ परितोष। ९ अमिअ। १० पखानहुँ।

[११६]

मानिनि मान आबहू' कर ओड़।
रअनि' बहलि हे रहलि अछ थोड़॥
गुनमति भए गुन न धरिअ गोए।
सुपुरुस' दाने अधिक फल होए॥
बेरा एक हेरह (हरह) मन-ताप'।
पेम-लता तोड़ले बड़ पाप॥
लोचन भमरे हमर कह' आस।
तुअ मुख-पङ्कज करओ' विलास॥
भनइ' विद्यापति मने गुनि भान।
सिवसिंह' राए रसिक रस जान॥

न० गु०, प० ३६४

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या १२२)—१ आवहु। २ रयनि। ५ करु। ८ सिवसिंघ।

शब्दार्थ—अबहुँ=अब भी। ओड़=ओर=अन्त। रअनि=रात्रि। बहलि=बीत गई। गोए=छिपाकर। बेरा एक =एक बार भी। भमर कहँ=भ्रमर को। पंकज=कमल।

अर्थ—हे मानिनी! रात बीत गई—थोड़ी बच रही है। (इसलिए) अब भी मान का अन्त करो।

गुणवती होकर गुण को छिपाकर नही रखना चाहिए। सुपुरुष को दान करने से अधिक फल मिलता है।

एक बार भी (मेरी ओर) देखो। (मेरा) मनोदुःख दूर करो। प्रेम-रूपी लता के तोड़ने से बड़ा पाप होता है।

मेरे नयन-रूपी भ्रमर को आशा है (कि) तुम्हारे मुख-रूपी कमल मे विलास करूँगा।

सुकवि विद्यापति (अपने) मन में विचारकर कहते है (कि) रसिक राजा शिवसिंह (इस) रस को जानते है? (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

सं० अ०—१ अबहुँ। २ रअनि। ३ सुपुरुख। ४ बेरा एक हेरह हरह मन-ताप। ५ कहँ। ६ करओ। ७ सुकवि।

[११७]

मानिनि,
कुसुमे रचलि सेजा[1] मान महघ तेज
जीवन जउवन धने।
आजुकि रअनि[2] जदि विफले जाइति पुनु
कालि भेले के जान जिवने॥
मानिनि,
मन्द पवन बह न दीप थिर रह
नखतर मलिन गगन भरे।
तोर वदन देखि भान उपजु मोहि
केसु फुल उपर भमरे॥

न० गु०, प० ३६५

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ८३८)—२ रयनि।

शब्दार्थ—कुसुमे=फूलों से। महघ=(महार्घ—सं०) महँगा। रअनि=रात्रि। जिवने=जीवन मे। पवन=वायु। थिर=स्थिर—स०। नखतर=(नक्षत्र—सं०) तारे। गगन भरे=सम्पूर्ण आकाश मे। भान=ज्ञान। केसु=(किंशुक—स०) पलाश।

अर्थ—हे मानिनी! फूलों से रची शय्या है। (अब भी तो) महँगा मान तजो। (कारण,) जीवन मे यौवन ही धन है।

यदि आज की रात निष्फल (बीत) जायगी (तो) फिर कौन जानता है (कि) कल होकर जीवन मे (क्या होगा?)

हे मानिनी! मन्द पवन वह रहा है, दीपक (भी) स्थिर नही है (और) समूचे आकाश मे नक्षत्र मलिन हो गये है। (अर्थात्—भोर होने को है। अब भी तो मान तजो।)

(हे मानिनी!) तुम्हारा मुख देखकर मुझे (ऐसा) भान हो रहा है, (जैसे) पलाश के ऊपर भौरा बैठा है। (अर्थात्—निर्गन्ध पलाश-पुष्प को जैसे भौरा व्यर्थ अगोरे रहता है, वैसे ही मैं भी तुम्हें व्यर्थ अगोरे बैठा हूँ।)

सं० अ०—१ सेज। २ रजनि।

[११८]

अरे अरे भमरा तोबे हित हमरा
बँउसि[1] आनह[2] गजगामिनि रे।
आजुकि रसलि कालि जओ बँउसबि[3]
तीति होइति मधुजामिनि रे॥
तीति रजनिआँ[4] तिनि जुगे जनिआँ[5]
दिठिहुक ओत देसाँतर रे।
सरोबर सोसें[6] कमल असिलाएल
नगर उजलि[7] भेल पाँतर रे॥
एकसर मनमथ दुइ जिव मारए
अपन अपन भिन वेदन रे।
दुइ मन मेलि कमने बेकताओब
दारुन प्रथम निवेदन रे॥
मानक भञ्जन जसु गुन रञ्जन
विद्यापति कवि गाओल रे।
लखिमा देवि[8] पति सिवसिंह[9] नरपति
पुरुब जनम तपे[10] पाओल रे॥

न० गु०, प० ३७१

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या १३०)—८ लखिमा देइ। ९ सिवसिंघ।

शब्दार्थ—बंउसि=रूठी हुई को समझाकर। मधुजामिनि=वसन्त ऋतु की रात। तीति=तिक्त—स०। रजनिआ=(रजनी—स०) रात। जनिआ=जैसी=समान। दिठिहुक=आँखो को। ओत=ओट। सोसे=(शोष—स०) सूखने से। असिलाएल=अलसा गया=मुरझा गया। उजलि=उजड़कर। पाँतर=(प्रान्तर—स०) निर्जन स्थान। एकसर=अकेला। मनमथ=कामदेव। जिव=प्राणी। वेदन=दुःख। मेलि=मिलन=प्रीति। कमने=कौन।

सं० अ०—१ बऊसि। २ आनह। ३ बऊसबि। ४ रजनिआ। ५ जनिआ। ६ सोसें। ७ उजळि। १० तपें।

बेकताओब=व्यक्त करेगा=खोलेगा। दारुन=कठिन। मानक=मान का। जसु=जिसका। भञ्जन=भग करनेवाला। रञ्जन=प्रसन्न करनेवाला।

अर्थ—अरे भौंरा! तुम मेरा हितू हो। (इसलिए) रूठी हुई गजगामिनी (प्रिया) को समझाकर ले आओ।

यदि आज की रूठी हुई को कल समझाऊँगा (तो) मधु ऋतु की रात तिक्त हो जायगी।

(और,) तिक्त रात्रि तीन युग के समान होती है। (अर्थात्—आदि और अन्त के यामार्द्ध साय तथा प्रातः—सन्ध्या मे परिगणित हो जाने से रात तीन पहर की ही होती है। इसीलिए उसका एक नाम 'त्रियामा' भी है। सो, विरही के लिए रात का एक-एक प्रहर एक-एक युग के समान प्रतीत होता है। और,) आँखों की ओट होते ही (अर्थात्—आँखों के सामने से प्रियतमा के हटते ही, जान पड़ता है, जैसे) देशान्तर हो गया।

सरोवर के सूख जाने से कमल मुरझा गया,—नगर उजड़कर निर्जन (सूना) हो गया। (अर्थात्—जिस प्रकार सरोवर के सूख जाने से कमल मुरझा जाता है, नगर उजड़कर सूना हो जाता है, उसी प्रकार प्रेयसी के विना विरही मुरझा गया—उसका हृदय सूना हो गया।)

अकेला कामदेव दो प्राणियों (प्रेमी और प्रेमिका) को मार रहा है; (किन्तु दोनों का) अपना-अपना अलग दुःख है।

दो (प्राणियों) के मन की प्रीति (प्रेमी और प्रेमिका मे) कौन प्रकट करेगा? (यही तो मुश्किल है। कारण,) प्रथम निवेदन कठिन होता है।

कवि विद्यापति ने गाया (कहा कि) जिसका गुण मान का भग करनेवाला (और) प्रसन्न करनेवाला है,

लखिमा देवी के स्वामी (उस) महाराज शिवसिंह को पूर्वजन्म के तप से (तूने) पा लिया।

[११९]

कतए अरुन उदयाचल उगल[1]
कतए पछिम गेल चन्दा।
कतय[2] भमर कोलाहलें[3] जागल
सुखें[4] सुतयु[5] अरविन्दा॥

सं० अ०—१ ऊगल। २ कतए। ३ कोलाहलें। ४ सुखें। ५ सूतल।

कामिनि जामिनि काँहा गेली।
चिर समय आगत हरि भेल पाहुन
आवेउ केलि न भेली॥
पञुक पात अतापे न पओले
झामर न भेले देहा।
कृपन सँचित धन रहल अखण्डित
काजर सिन्दुर रेहा॥
अरुनक जोत अधरे नहि छड़ले
पलटि न गँथले हारा।
आनहु बोलब सखि तोंबे अचेतनि
की तोर नाह गमारा॥
विद्यापति भन मन नहि परसन
हिय चिन्ता विस्तारा।
पलटि रचब केलि पिय सङ्ग हिल मेलि
दम्पति उचित बिहारा॥

न० गु०, प० ३७३

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ३८६)—३ कोलाहले। ९ पञूक। १४ तोंबे।

शब्दार्थ—कतए=कहाँ। अरुन=उषा की लाली, सूर्य। सूतल=सोया हुआ। अरविन्दा=कमल। जामिनि=रात। चिर समय=बहुत दिनों पर। पञुक=पद्म का=पुड़इन का। पात=पत्ता। अतापे=(आतप—सं०) धूप के। पओले=पाने से। झामर=कुम्हलाया=स्याह। अधरे=ओष्ठ ने। आनहु=दूसरे भी। अचेतनि=ज्ञानहीन। गमारा=गँवार। हिल मेलि=हिल-मिलकर।

अर्थ—(दूती कहती है—) उदयाचल पर अरुणोदय कहाँ हुआ है? चन्द्रमा पश्चिम (दिशा) में कहाँ गया है? सुख से सोया कमल भौंरो की गुंजार से कहाँ जगा है? (अर्थात्—अभी भोर नहीं हुआ है।)

सं० अ०—६ काहाँ। ७-८ समयागत। १० अतापें। ११ संञ्चित। १२ अधरे। १३ आनहुँ। १५ हिअ। १६ पिअ।

हे कामिनी! (अभी) रात कहाँ गई है? (अर्थात्—रात कहाँ बीती है?) बहुत दिनों पर कृष्ण मेहमान होकर आये हैं। (अभी तो) आधी केलि भी नहीं हुई है।

पुरइन का पत्ता बिना धूप पाये (जिस प्रकार स्याह नहीं होता है, उसी प्रकार तुम्हारा) शरीर भी स्याह नहीं हुआ है। कृपण के सचित धन के समान (तुम्हारा) काजल (और) सिन्दूर की रेखा (भी) अखण्डित है!

(तुम्हारे) ओष्ठ ने अरुण की ज्योति (लाली) नहीं छोड़ी है! (तुमने) पलटकर हार भी नहीं गूँथा है। दूसरी सखियाँ भी कहेंगी (कि) क्या तुम्हीं बुद्धिहीन हो (या) तुम्हारे स्वामी ही गँवार हैं?

विद्यापति कहते है—(अरी दूती! सुनो। अभी नायिका का) मन प्रसन्न नहीं है। (उसके) हृदय में चिन्ताओं का विस्तार है। (अर्थात्—नाना प्रकार की चिन्ताएँ व्याप्त हैं। वह) पलटकर (दुबारा आकर जब) स्वामी के साथ हिल-मिलकर केलि रचेगी (अर्थात्—क्रीडा करेगी तब) दम्पति का (पति-पत्नी का) यथार्थ विहार होगा। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[१२०]

आरति आपु पवार[1] न चिन्हह
धरह कत कुबानि।
अपनि रमनि रागे[2] सन्तावह
परक पेयसि[3] आनि[4]॥
कान्हा[5] तोंजे[6] बड़ लोक निसङ्क।
हसि हसि[7] सेहे करम करसि
जें[8] हो कुल कलङ्क॥
जाहि जाहि तोहि गुरु निबारए
ताहि तोरा निरबन्ध।
आँखि[9] देखि जे काज न करए
ताहि पारे[10] कें अन्ध॥

सं० अ०—१ आपु परार। २ रागें। ३ पेअसि। ४ आनि। ६ तोने। ७ हँसि-हँसि। ८ जें। ९ आखि। १० परे।

तथहु[11] चीर[12] समागम मागह[13]
एत बड़ तोर लोभ।
परक भूषने परक वैभवे[14]
कत खन दहु सोभ॥
दुतिक वचने कान्ह लजाएल
कवि विद्यापति भाने।
जे भेल से भेल जेहि तेहि गेल
आबे करु अवधाने॥

न० गु०, प० ३७६

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ३८७)—५ कन्हा। ६ तोँबे। ८ जेँ। ११ तथुहु।

शब्दार्थ—आरति=(आर्त्त—स०) वेचैन। आपु परार=अपना-पराया। कुवानि=बुरी आदत। रागेँ=द्वेष से=ईर्ष्या से। सन्तावह=सन्ताप देते हो। पेयसि=(प्रेयसी—स०) पत्नी। आनि=लाकर। लोक=व्यक्ति=आदमी। जेँ=जिससे। निरवन्ध=(निर्वन्ध—स०) आग्रह=हठ। ताहि परे=उससे दूसरा। तथिहुँ=उसपर भी। चिर-समागम=चिर-सम्भोग।

अर्थ—(काम-पीडा से) वेचैन होकर (तुम) अपने (और) पराये को (भी) नही पहचानते हो? कितनी बुरी आदते धरते हो?

दूसरे की पत्नी को लाकर, ईर्ष्या से अपनी पत्नी को सन्ताप दे रहे हो?

हे कृष्ण! तुम वडे नि.शङ्क आदमी हो। हँस-हँसकर (तुम) वही काम करते हो, जिससे कुल मे कलङ्क होता है।

गुरुजन जिस-जिस (कार्य) के लिए तुम्हे मना करते है, उसी (कार्य) के लिए तुम्हारा हठ होता है।

जो (आदमी) आँख देखकर (समझ-बूझकर) काम नही करता है, उससे दूसरा कौन अन्धा है?

उसपर भी (दूसरे की पत्नी को लाने के वाद भी तुम) चिर-सभोग माँगते हो? इतना वड़ा तुम्हारा लोभ है?

(अरे,) दूसरे के आभूषण (और) दूसरे के वैभव से कवतक शोभा होती है?

कवि विद्यापति कहते है (कि) दूती की वात से कृष्ण लजा गये।

(इसलिए) जो हुआ, सो हुआ—जो गया, सो गया। अव (तो) समाधान कर दो। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

सं० अ०—११ तथिहुँ। १२ चिर। १३ माँगह। १४ वैभवेँ।

[१२१]

गगन मडल उग कलानिधि
कते नेबारबि[1] दीठि।
जखने जे रह तेंहि[2] गमाइअ
जे बह त(ा)[3] दीअ पीठि॥
साजनि बड़ बथु उपकार।
जाहेरि[4] वचने परहित हो
ताहेरि[5] जिवन[6] सार॥
साधु[7] जन[8] काँ परहित लागि
न गुन धन परान।
राहु पियासल[9] चान्द[10] गरासए
न हो खीन मलान॥
न थिर जिवन[11] न थिर जउवन
न थिर एहे सँसार।
गेल अवसर पुनु न पाइअ
किरिति अमर सार॥
कतए राघव राए घरिनी
कतए लङ्कापुर वास।
कतए[12] हनुमते[13] साअर लाँघल
किछु न गुनु तरास॥
जखने जकर बाङ्क विधाता
सब कला अनुमान।
अधिक आपद धैरज करब
कवि विद्यापति भान॥

न० गु०, प० ३८७

सं० अ०—२ तेंहि। ३ बह ता। ६ जीवन। ९ पिआसल। ११ जीवन। १३ हनुमतें।

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ३९०)—१ निबारबि। २ तेँहि ४ जन्हिक। ५ तन्हिक। ७–८ सा जन। १० चाँद। १२ कत।

शब्दार्थ—गगनमडल=आकाशमण्डल। कलानिधि=चन्द्रमा। कत=कितना। नेबारबि=बरजूँगी। दीठि=दृष्टि—स०। जखने=जब। तेँहि=उसी से। गमाइअ= बिताना पड़ता है। बह=बहती है। वथु=वस्तु—स०। जाहे=जिसके। ताहेरि=उसके। सार=धन्य। साधुजन=सज्जन। पिआसल=प्यासा। गरासए=ग्रस लेता है। खीन=क्षीण—सं०। किरिति=कीर्त्ति। कतए=कहाँ। राघव राए=राजा रामचन्द्र। घरिनी=(गृहिणी—स०) पत्नी। साअर=(सागर—स०) समुद्र। गुनु=गुना=विचार किया। तरास=(त्रास—सं०) भय। बाङ्क=(वङ्क—स०) क्रूर। कला= गुण। आपद=विपत्ति।

अर्थ—आकाश में चन्द्रमा उगता है (तो) आँखें कितना बरजूँगी? जब जो रहता है, उसी से (अर्थात्—उसी के सहारे जीवन) बिताना पड़ता है। (कारण, जो हवा) बहती है, उसी को (अर्थात्—उसी ओर) पीठ देना पड़ता है।

हे सखी! (सबसे) बड़ी वस्तु उपकार है। जिसके वचन से दूसरे की भलाई हो, उसी का जीवन धन्य है।

सज्जन को दूसरे की भलाई के लिए (अपने) धन (और) प्राण का विचार नही रहता है। (जैसे—) प्यासा राहु चन्द्रमा को ग्रस लेता है; (परन्तु उससे चन्द्रमा) न क्षीण होता है (और) न म्लान होता है।

जीवन स्थिर नही है, यौवन स्थिर नही है (और) न यह संसार ही स्थिर है। बीता हुआ अवसर फिर नही पाया जाता है (अर्थात्—हाथ लगता है। एक) कीर्त्ति (ही) अमर है—सार है।

कहाँ राजा रामचन्द्र की पत्नी (सीता और) कहाँ उनका लंका-निवास? कहाँ (बन्दर होकर भी) हनुमान् ने समुद्र लाँघ डाला—भय का कुछ (भी) विचार नही किया।

जिस समय जिसका विधाता क्रूर होता है (अर्थात्—भाग्य विपरीत होता है, उसी समय उसके) सारे गुणो का (सारी चतुराइयो का) अनुमान किया जाता है। कवि विद्यापति कहते है—अधिक विपत्ति मे (अर्थात्—विपत्ति से घिर जाने पर) धैर्य धारण करना चाहिए।

[१२२]

चाँद सुधा सम वचन विलास।
भल जन ततहि जाएत बिसवास॥

मन्दा मन्द बोलए सबे कोय[1]।
पिबइतें[2] नीम बाँक मुह[3] होय[4]॥
ए सखि सुमुखि वचन सुन सार।
से कि होइति भलि जे मुह[5] खार॥
जे जन जैसन[6] हृदय धर गोए।
तकर तैसन[7] तत गौरव होए॥
गौरव ए सखि धैरज साध।
पहु नहि धरए सतओ अपराध॥
जौं[8] अछ हृदया मिलत[9] समाज।
अवसओ रहब आँउधि[10] भइ[11] लाज॥
काच घटी अनुगत जन[12] जेम।
नागर लखत हृदयगत पेम॥
मधुर वचन हे सबहुतह सार।
विद्यापति भन कविकण्ठहार॥

न० गु०, प० ३८८

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ४०२)—२ पिबइत। ८ जौं।

शब्दार्थ—सुधा=अमृत। विलास=अभिव्यक्ति। मन्दा=नीच=बुरा। बाँक=(वङ्क—सं०) टेढ़ा। सार=यथार्थ। खार=(क्षार—सं०) खारा=नमकीन। गोए=छिपाकर। धैरज साध=धैर्य-साध्य—सं०। सतओ=सैकड़ो। हृदआ=हृदय में=मन में। अवुधि=औंधी=अवनत। घटी=घड़ा। अनुगत=अनुगामी। जेम=जैसा।

अर्थ—चन्द्रमा से अमृत के समान (जहाँ) वचन की अभिव्यक्ति होती है (अर्थात्—जिस प्रकार चन्द्रमा से अमृत क्षरता है, उसी प्रकार जहाँ मुख से अमृत-तुल्य वचन क्षरता है), वही भला आदमी विश्वास करता है।

सं० अ०—१ कोए। ३ मुंह। ४ होए। ५ मुंह। ६ जइसन। ७ तइसन। ८ जओ। ९ हृदआ मिलव। १० अवुधि। ११ भए। १२ जल।

नीच को सभी नीच कहते हैं। (कारण,) नीम को (पीसकर) पीते ही (सबका) मुँह टेढ़ा हो जाता है। (अर्थात्—जिस प्रकार नीम किसी का प्रिय नही होता है, उसी प्रकार नीच भी किसी का प्रिय नही होता है।)

हे सखी ? हे सुमुखी ! ! (मेरा) यथार्थ वचन सुनो। जिसका मुँह खारा है (अर्थात्—जो मधुर वचन नही बोलती है), वह क्या भली होगी ?

जो जिस प्रकार जितनी (बाते) हृदय मे छिपाकर रखती है, उसका उसी प्रकार उतना गौरव होता है।

हे सखी ! गौरव धैर्य-साध्य है (अर्थात्—धैर्य धारण करने से ही गौरव मिलता है। और गौरव मिलने पर) स्वामी सैकड़ों अपराध नही धरते हैं (अर्थात्—सैकड़ों अपराध माफ कर देते है।)

यदि मन मे है (कि स्वामी के) सग मिलूँगी (तो) अवश्य लज्जा से अवनत होकर रहो।

नागर काच के घड़े मे भरे हुए पानी के समान हृदयगत प्रेम देखता है।

कविकण्ठहार विद्यापति कहते है (कि) मीठा वचन सबसे सार है। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

विशेष—इस पद की चार पक्तियाँ—'जौ अछ हृदया' से 'हृदयगत पेम' तक 'नेपाल-पदावली' और 'रामभद्रपुर-पदावली' के एक पद मे भी पाई जाती हैं। इसके लिए प्रथम भाग का १२६ सख्यक पद देखिए।

[१२३]

दुरजन दुरनए परिनति मन्द।
ता लागि अबस करिअ नहि दन्द॥
हठें[1] जओं करबह सिनेहक ओल[2]।
फूटल फटिक बलअ के जोल[3]॥
साजनि अपनें[4] मन अवधार।
नख छेदन के लाब कुठार॥
जतनें रतन पए राखब गोए।
ते परि[5] जें[6] परबस नहि होए॥

सं० अ०—१ हठें। २ ओळ। ३ जोळ। ४ अपने। ५ तें परि। ६ जें।

परगट करब न सुपहुक दोस।
राखब अनुनअ अपन भरोस।।
भनइ विद्यापति परिहर धन्ध।
अनुखन नहि रह सुपहु अनुबन्ध।।

न० गु०, प० ३८९

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ३९१)—२ ओर। ३ जोर। ४ अपनें। ५ तें परि। ६ जें।

शब्दार्थ—दुरनए=(दुर्नय—स०) दुर्नीति। परिनति=परिणाम। मन्द=बुरा। ता लागि=उसके लिए। दन्द=(द्वन्द्व—सं०) कलह। ओळ=अन्त। फटिक=स्फटिक—सं०। बलअ=(वलय—स०) कगन। जोळ=जोड़ सकता है। अवधार=सोचो। छेदन=काटना। कुठार=कुल्हाड़ी। गोए=छिपाकर। तें परि=उस प्रकार। जें=जिससे। परवस=पराधीन=दूसरे का। अनुनअ=विनय। परिहर=त्याग करो। धन्ध=झझट। अनुखन=(अनुक्षण—स०) सदा। अनुबन्ध=प्रयोजन।

अर्थ—(सखी नायिका को समझाती है—) दुर्जन की दुर्नीति का परिणाम बुरा होता है। उसके लिए (अर्थात्—दुर्जन की दुर्नीति के कारण) निश्चय ही कलह नही करना चाहिए।

यदि (अपने) हठ से स्नेह का अन्त करोगी (तो फिर स्नेह नही होगा। कारण,) फूटा हुआ स्फटिक का कगन कौन जोड़ सकता है?

हे सखी? अपने (ही) मन मे सोचो (कि) नाखून काटने के लिए कौन कुल्हाड़ी लाता है?

(अपने) रत्न (स्वामी) को उस तरह यत्न से छिपाकर रखना चाहिए, जिससे (वह) दूसरे का नही हो जाय।

स्वामी का दोष प्रकट नही करना चाहिए। (उसको) अनुनय-विनय से अपने भरोसे रखना चाहिए।

विद्यापति कहते है—(अरी सुन्दरी! झंझट छोड़ो। (कारण,) स्वामी का सदा प्रयोजन नही रहता है। (अर्थात्—युवावस्था मे ही स्वामी का प्रयोजन रहता है। इसलिए झझट छोड़कर स्वामी का अनुगमन करो।)

[१२४]

अति नागर बोलि सिनेह बढ़ाओल
अवसर बुझल बड़ाइ।
तेलि बड़द थान भल देखिअ
पालव नहि उजिआइ॥
दूती बुझल तोहर बेबहार।
नगर सगर भमि जोहल नागर
भेटल निछ्छ गमार॥
गुञ्ज आनि मुकुता तोहे गाँथल
कएलह मन्दि परिपाटी।
कञ्चन चाहि अधिक कए कएलह
काँचहु तह भेल घाटी॥
सब गुन आगर सबतहु सूनल
तें हमे लाओल नेहे।
फल कारने तरु(अर) अवलम्बल
छाहरि भेल सन्देहे॥

न० गु०, प० ३९०

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अतः, इसके लिए प्रथम भाग का २२३ सख्यक पद देखिए।

[१२५]

सखि हे बूझल कान्ह गोआरे[1]।
पितड़क[2] टार[3] काज दहु कओन[4] लह
ऊपर चकमक सारे[5]॥

सं० अ०—४ कओने।

हम तौं[6] कएल मन गेलहिं होयत[7] भल
हम छल[8] सुपुरुख भाने।
तोहरें[9] वचन[10] सखि कएल आँखि[11] देखि
अमिय[12] भरमे[13] विष[14] पाने॥
पसुक सङ्गे[15] हुनि[16] जनम गमाओल
से कि बुझथि रतिरङ्गे[17]।
मधुयामिनी[18] मोरि[19] आजे[20] निफले[21] गेलि
गोप गमारक सङ्गे[22]॥
तोहरे[23] वचने[24] कूप धस जोरल[25]
तें[26] हमे गेलिहु अबाटे।
चन्दन भरमे[27] सिमर आलिङ्गल
सालि रहल हिय[28] काँटे[29]॥
भनइ विद्यापति हरि बहुवल्लभ
कएल बहुत अपमाने[30]।
राजा शिवसिंह[31] रूपनरायन[32]
लखिमापति रस जाने[33]॥

न० गु०, प० ३९३

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ११७)—१ गोआर। २ पितरक। ३ ठाँड़। ५ सार। ६ तो। ७ होएत। ८ छलि। ९ तोहर। १२-१३-१४ अमिअ-भरम विस। १५-१६ सङ्ग हुन। १७ रतिरङ्ग। १८-१९-२०-२१ मधुजामिनि मोर आजु विफल। २२ सङ्ग। २३-२४ तोहर वचन। २६ तें। २७ भरम। २९ काट। ३० अपमान। ३१ सिवसिंघ। ३३ जान।

सं० अ०—६ तनौ। ७ होएत। १० वचने। ११ आखि। १२ अमिअ। १८ मधुजामिनि। २५ जोड़ल। २६ तवे। २८ हिअ। ३२ रूपनरावेन।

शब्दार्थ—गोआरे=गोप=गँवार। पितड़क=पीतल का। टार =एक आभूषण, जो बाँह पर पहना जाता है। सारे=यथार्थ मे=वास्तव मे। माने=विश्वास। हुनि=उन्होने। मधुजामिनि=वसन्त ऋतु की रात्रि। घस=ध्वस्त=टूटा हुआ। जोडल=जोड़ा। अबाटे=कुमार्ग मे। सिमर=सीमल। सालि रहल=साल रहे हैं=चुभ रहे है। बहुवल्लभ=बहुतो के स्वामी।

अर्थ—(खण्डिता नायिका कहती है—) हे सखी! (मैं) समझ गई (कि) कृष्ण गँवार है। पीतल के टार (आभूषण-विशेष) से कौन काम होता है? (अर्थात्—कोई काम नही होता।) वास्तव मे (वह) ऊपर (ही) चकमक (करता है।)

मैंने तो मन में (विचार) किया (कि) जाने से ही भला होगा। (कारण,) मुझे विश्वास था (कि वे) सुपुरुष है।

हे सखी! तुम्हारे कहने से (मैंने) आँखों से देखकर (भी) अमृत के भ्रम मे विषपान कर लिया।

पशुओं (गौओं) के साथ उन्होने जन्म बिताया। वे कामक्रीडा क्या समझ सकते हैं?

गोप-गँवार के साथ आज मेरी मधुऋतु की रात बेकार चली गई।

तुम्हारे कहने से (मैंने) टूटे हुए कुँए को जोड़ा। (अर्थात्—जो प्रेमरूपी जलाशय ढह चुका था, उसे जोड़ा।) इसीलिए मैं कुमार्ग होकर चली गई (अर्थात्—पुनः प्रेम जोड़ने के कारण ही मैंने कुमार्ग पर पैर बढ़ाया।)

चन्दन के भ्रम से मैंने सेमल का आलिङ्गन किया। (इसीलिए) हृदय मे काँटे चुभ रहे है।

विद्यापति कहते हैं (कि) कृष्ण बहुतों के स्वामी हैं। (इसीलिए उन्होने) बहुत अपमान किया।

लखिमा देवी के स्वामी राजा शिवसिंह रूपनारायण (इस) रस को जानते है।

[१२६]

मधु सम वचन कुलिस सम मानस
प्रथमहि जानि न भेला।
अपन चतुरपन पिसुन हाथ देल
गरुअ गरब दुर गेला॥

सखि हे मन्द पेम परिनामा।
बड़ कए जीवन कएल पराधिन
नहि उपचर एक ठामा॥
झापल[1] कूप देखहि नहि पारल
आरति चललहु[2] धाइ[3]।
तखनुक[4] लघु गुरु किछु नहि गुनले[5]
आबे[6] पचताबके जाइ[7]॥
एत दिन अछलाहु[8] आन[9] भाने[10] हमे[11]
आबे[12] बूझल अवगाहि[13]।
अपन मुर[14] अपने हमे[15] चाँछल
दोख देब[16] गए काहि[17]॥
भनइ विद्यापति सुन[18] बर जउबति[19]
चिते नहि[20] गनब[21] आने[22]।
पेमक कारन जिउ[23] उपेखिय[24]
जग जन के नहि जाने॥

न० गु०, प० ३९५

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ३९४)—१ झाँपल। ३ धाई। ४ तखन। ५ गूनल। ६ अब। ७ जाई। ८ अछलहु। १० भान। ११ हम। १२ अब। १५ हम। १६ दिब। १८-१९ सुनु बरजौवति। २०-२१ गनव नहि। २३ जीउ। २४ उपेखिए।

शब्दार्थ—कुलिस=वज्र। मानस=हृदय। पिसुन=चुगलखोर। गरुअ=(गुरुक—सं०) वड़ा। मन्द=बुरा। बड कए=वड़ा समझकर। उपचर=स्मरण होता है। ठामा=(स्थाम—स०)

सं० अ०—१ झाँपल। २ चललहुँ। ३ धाई। ७ जाई। ८ अछलाहुँ। ९ आन। १३ अवगाही। १४ मूर। १७ काही। २१ गूनब। २२ आने। २३ जीउ। २४ उपेखिअ।

स्थान मे। झाँपल=ढका हुआ। आरति=(आर्त्ति—स०) दुःख से। धाई=दौडकर। लघु-गुरु=लाघव-गौरव। गुनले=विचार किया। पचतावके=केवल पछतावा। भाने=समझ। अवगाहि=पैठकर=विचारकर। मूर=(मूल—स०) जड। चाँछल=काट दी। गूनव=विचार कीजिएगा।

अर्थ—(कृष्ण का) वचन मधु के समान है, (किन्तु उनका) हृदय वज्र के समान है—(यह मैं) पहले जान नही पाई।

(मैंने) अपनी चतुराई चुगलखोरों के हाथ मे दे दी—(इसीलिए मेरा) घमण्ड दूर चला गया।

हे सखी! प्रेम का परिणाम बुरा होता है। (कारण, कृष्ण को) बड़ा समझकर (मैंने अपना) जीवन पराधीन (उनके अधीन) किया, (किन्तु उन्हे) एक स्थान मे भी [अर्थात्—एक बार भी (मेरा) स्मरण नही होता है।]

ढके हुए कुएँ को (मै) देख नही सकी,—दुःख से (मै) दौड चली।

उस समय (मैंने) लाघव-गौरव का भी कुछ विचार नही किया। अब तो केवल पछतावा हो रहा है।

इतने दिनो तक मै और कुछ समझ रही थी। अब विचारकर (सब-कुछ) समझ लिया (अर्थात्—अब यथार्थ बात समझ मे आ गई।)

अपनी जड़ मैंने स्वय काट डाली (तो फिर) किसे दोष दूंगी?

विद्यापति कहते है—अरी वरयुवती! सुनो। मन मे दूसरा विचार मत करो (अन्यथा मत मानो।)

(कारण,) ससार मे कौन (ऐसा) आदमी है, जो नही जानता (कि) प्रेम के कारण प्राणो की भी उपेक्षा होती है। (अर्थात्—प्रेम के कारण प्राण भी गँवाने पडते हैं।)

[१२७]

विमल कमलमुखि न करिय[1] माने।
पाओत वदन तुय[2] चाँद समाने॥
कामे कपट कनकाचल आनी[3]।
हृदय बइसाओल दुइ करे जानी[4]॥

सं० अ०—१ करिअ। २ तुअ। ३ आनी। ४ करें आनी।

तें[५] पातकें[६] तोहि माझहि खीनी।
लघु गति हंसहु तह अति हीनी॥
एँ[७] धनें सुखित होयत[८] युवराजे।
वसने झपाबह की तोर काजे॥
हसि[९] परिरम्भि अधर मधु दाने।
कखनें फुजलि निबि केओ नहि जाने॥
भनइ विद्यापति रसिक सुजाने।
रुकमिनि देविपति सुन्दर कान्हे॥

न० गु०, प० ४१३

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ३९५)—१ करिअ। २ तुअ। ५ तें। ७ एँ।

शब्दार्थ—वदन=मुख। कपट=छल। कनकाचल=सुमेरु पर्वत। आनी=लाकर। हृदय=वक्ष स्थल। करें=हाथ से। पातकें=पाप से। माझहि=मध्य मे। खीनी=क्षीण। लघु गति=मन्द गमन। वसने=वस्त्र से। झपावह=ढकती हो। परिरम्भि=आलिङ्गन करके। अधर-मधु=अधरामृत। कखने=कब। फुजलि=खुल गई।

अर्थ—हे विमल कमलमुखी! मान मत करो। (मान करने से) तुम्हारा मुख चन्द्रमा की समता पा जायगा (अर्थात्—तुम्हारा शुभ्र-स्वच्छ मुखमण्डल मान करने से रागातिशय के कारण सकलक चन्द्रमा के समान म्लान हो जायगा।)

(मैं) समझता हूँ—कामदेव ने जान-बूझकर (अपने) दोनो हाथो से सुमेरु पर्वत लाकर (तुम्हारे) वक्षःस्थल पर छल से बैठा दिया है।

इसी (कनकाचल हरणरूपी) पाप से तुम मध्य मे क्षीण हो गई (अर्थात्—तुम्हारा कटि-प्रदेश क्षीण हो गया और) हंस से भी बढकर अत्यन्त हीन मन्द गमन हो गया।

इस धन (स्तन) से युवराज (प्राय—शिवसिंह) सुखी होगे। वस्त्र से (इस धन को) ढकती हो—तुम्हारा (यह) कैसा काम है?

हँसकर, आलिङ्गन करके, अधरामृत का दान करो। (कारण,) कब (तुम्हारी) नीवी खुल गई,—(इसे) कोई नही जानता है।

सं० अ०—५ तें। ६ पातकें। ७ एँ। ८ होएत। ९ हँसि।

विद्यापति कहते है—रुक्मिणी देवी के स्वामी सुन्दर कृष्ण रसिक है—सुजान है (अर्थात्—सब-कुछ) जाननेवाले है।

[१२८]

की कुच अञ्चले राखह गोए[१]।
उपचित कतए तिरोहित होए॥
उपजलि प्रीति हठहिं[२] दुर गेलि।
नयनक काजरे[३] मुख मसि भेलि॥
तें[४] अवसादें[५] अबस[६] भेल देह।
खत खरिआ सन भेल सिनेह॥
जओ बाजलि तओ संसअ गेलि।
आनि[७] नवओ निधि(तजे)जनि[८] देलि॥
भनइ विद्यापति एहु रस जान।
राजा[९] सिवसिंह[१०] रूपनरायन[११]
लखिमा देवि[१२] रमान॥

न० गु०, प० ४१४

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ७१)—१ गोये। ४ तें। १० सिवसिंघ। १२ देइ।

शब्दार्थ—कुच=स्तन। गोए=छिपाकर। उपचित=समृद्ध=बढ़ा हुआ। तिरोहित=गुप्त=ओझल=छिपा हुआ। उपजलि=उत्पन्न हुई। अवसादे=दु.ख से। अबस(न)=(अवसन्न—स०) खिन्न। खत खरिआ=(खत=क्षत, खरिआ=खड्गी—स०) खाँड़े का घाव। ससअ=(सशय—स०) सकट।

अर्थ—(दूती कलहान्तरिता से कहती है—अरी सुन्दरी!) स्तन को आँचल से छिपाकर क्या रखती है? (कारण, जो) समृद्ध है, (वह) कही छिप सकता है?

पैदा हुई प्रीति दुराग्रह से दूर चली गई (और रोते-रोते) आँखों के काजल से (तुम्हारा) मुँह काला हो गया।

सं० अ०—२ हठहिं। ३ काजरें। ४ तें। ५ अवसादें। ६ अवसन। ७ आनि। ८ तजे जनि। ९-१०-११-१२ सिवसिंह लखिमा देवि रमान।

उसी दुःख से (तुम्हारा) शरीर खिन्न हो गया—खाँड़े के घाव के समान प्रेम (दुःख-दायी) हो गया।

यदि (तुमने कुछ) कहा (अर्थात्—कहकर कुछ भरोसा दिया) तो (मेरा) सकट दूर हुआ। (मैं समझूंगी कि) जैसे (तुमने) नवो निधियाँ लाकर दे दी।

विद्यापति कहते हैं—लखिमा देवी के रमण शिवसिंह इस रस को जानते है। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

विशेष—इस पद की चार पक्तियाँ (तीन से छह तक) यत्किंचित् पाठभेद के साथ 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अत, इसके लिए प्रथम भाग का १८२ सख्यक पद देखिए।

[१२९]

सिनेह बढाओब इ छल भान।
तोहर सोयाधिन करब परान॥
भल भेल मालति भेलि हे उदास।
पुनु न आओब मधुकरे तुअ पास॥
एतबा हम अनुतापक भेल।
गिरि सम गौरव अपदहि गेल॥
अलपे बुझओलह निअ बेबहार।
देखितहि निअ परिनाम असार॥
भनहि विद्यापति मन दए सेब।
हासिनि देवि पति गज सिह देव॥

न० गु०, प० ४१८

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अत., इसके लिए प्रथम भाग का ८४ सख्यक पद देखिए।

[१३०]

प्रथमक आदरें[1] पुलक भेल जत
न गुनल दाहिन वामे।

सं० अ०—१ आदरें।

मधुर वचन मधु भरमहि पीउल
विष[2] सम भेल परिनामे॥
कतने मनोरथे[3] अछलहु[4] सुन्दरि
नागर भमर हमारे।
जावे पाव रस तावे रहए बस
बिनु दोसे[5] कर परिहारे॥
रभसक अवसर की नहि अङ्गिरए
कत न करए परबन्धे।
अवसर बेरि हेरि नहि हेरए
फल जानिअ सब धन्धे॥

न० गु०, प० ४२४

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ८४०)—१ आदरे। २ विस।

शब्दार्थ—पुलक=रोमाच। परिनामे=(परिणाम—स०) फल। परिहारे=त्याग। रभसक=मिलन के। अङ्गिरए=अङ्गीकार करते हैं। परबन्धे=(प्रबन्ध—सं०) व्यवस्था=शर्त्त। अवसर=मौका। बेरि=(वेला—स०) समय। धन्धे=बखेड़ा=झझट।

अर्थ—प्रारम्भिक आदर से जितना रोमाच हुआ (कि मैंने) दाँये-बायें का (भी) विचार नही किया (अर्थात्—हर्षातिरेक से भले-बुरे का भी विचार नही किया।)

मधु के धोखे से (मैंने, उनका) मधुर वचन पी लिया (अर्थात्—उनकी बातें स्वीकार कर ली, किन्तु) विष के समान (उसका) फल हुआ।

हे सुन्दरी! (मैं) कितने मनोरथो के साथ थी (अर्थात्—मेरे कितने मनोरथ थे, पर) मेरे नागर (प्रियतम) भ्रमर (भ्रमर-तुल्य) है।

(कारण, भ्रमर) जबतक रस पाता है, तभी तक वश मे रहता है। रस नही मिलने पर (वह) त्याग देता है।

मिलन के समय (प्रेमी) क्या नही अङ्गीकार करते हैं—कितनी शर्त्ते नही करते हैं?

(किन्तु) मौका पर (मौका आने पर) देखकर भी नही देखते है। परिणाम मे सब-कुछ झझट ही जान पड़ता है। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

सं० अ०—३ मनोरथें। ४ अछलहुँ। ५ रसे।

[१३१]

बुझहि न पारल कपटक दीस।
अमिय[1] भरमे खाएल हम बीस॥
अबे परतीति करत[2] दहु कोए।
सामर नहि सरलासए[3] होए॥
ए सखि की परसंसह कान्ह।
वचन सुधा सम हृदय पखान॥
मोहन जाल मदन सरे भोलि।
आरति की न पठओलन्हि बोलि॥
बोलहिक भल सखि माधव नाम।
बड़[4] बोलछड़ परजन्तक ठाम॥
अनुभवि दूर कएल अनुबन्ध।
भुगुतल कुसुम भमर अनुसन्ध॥
भनइ विद्यापति तोहें[5] सखि भोरि।
चेतन हाथ कहाँ रह चोरि॥

न० गु०, प० ४२५

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ३९६)—२ करतें। ५ तोहें।

शब्दार्थ—दीस=(दृश्य—स०) तमाशा=नजारा। अमिअ=अमृत। बीस=विष—स०। परतीति=(प्रतीति—स०) विश्वास। दहु कोए=कोए दहु=कौन। सामर=(श्यामल—स०) काला (आदमी)। सरलासए=जिसका अभिप्राय सीधा है। परससह=प्रशंसा करती है। सुधा=अमृत। पखान=(पाषाण—स०) पत्थर। मोहनजाल=मोहने का फन्दा। मदनसरे=कामबाण से। भोलि=भुलाकर। आरति=दुख से। बोलहिक=बोलने के लिए ही। भल=भला। बोलछड=वचन चूकनेवाला। परजन्तक ठाम=अन्त समय मे=परिणाम मे। अनुभवि=अनुभव करके। अनुबन्ध=सम्बन्ध। भुगुतल=भोग किया। कुसुम=फूल। अनुसन्ध=(अनुसन्धि—स०) मैत्री। भोरि=भोली=सूधी। चेतन=समझदार।

सं० अ०—१ अमिअ। ३ सरलासअ। ४ बड़। ५ तोहें।

अर्थ—(मैं) कपट का नजारा समझ नही सकी। (इसीलिए) अमृत के भ्रम में मैंने विष खा लिया।

अब कौन (उनका) विश्वास करेगा? (मैं समझ गई,) काला आदमी सरलाशय (सीधा) नही होता है।

हे सखी! कृष्ण की प्रशंसा क्या करती है? (कारण, उनका) वचन (तो) अमृत के समान है; (किन्तु) हृदय पत्थर है।

काम-वाण से भुलाकर (मैं उनके) मोहन-जाल मे (जा पड़ी। कारण, उन्होंने) आर्त्त होकर क्या नही कहला भेजा था? (अर्थात्—कौन-सी प्रतिज्ञा नही की थी?)

हे सखी! बोलने के लिए ही 'माधव' नाम भला है, (काम के लिए नही। कारण,) परिणाम मे वे बड़े वचन चूकनेवाले है।

अनुभव करके (मैंने उनसे अपना) सम्बन्ध दूर कर लिया। (कारण, उनके साथ) फूल (और) भौंरे की मैत्री (ही) बीती। (अर्थात्—जिस प्रकार भौंरा स्वार्थवश फूल से मैत्री करता है, उसी प्रकार कृष्ण भी स्वार्थवश मैत्री करते है। इसीलिए, मैंने उनसे अपना सम्बन्ध दूर कर लिया।)

विद्यापति कहते हैं—अरी सखी! तुम सुधी हो! (कारण,) समझदार के हाथ मे कही चोरी रहती है (निवहती है?) (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[१३२]

सजनी अपद न मोहि परबोध।
तोड़ि जोड़िअ जाँहा[१] गेंठे पए पड़ ताँहा[२]
तेज तम परम विरोध॥
सलिल सिनेह[३] सहज थिक सीतल
इ जानए सबे[४] कोइ।
से जदि तपत कए जतनें[५] जु ड़ाइअ
तइओ[६] विरतरस होइ॥
गेल सहज हे कि रिति उपजाइअ
कुलससि[७] नीली रङ्ग।

सं० अ०—१ जहाँ। २ तहाँ। ४ सब।

अनुभवि पुनु अनुभवए अचेतन
पड़ए हुतास पतङ्ग ॥

न० गु०, प० ४२८

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ८३४)—१ जहाँ। २ गाँठ पडए तहाँ। ३ सनेह। ५ जुतने। ६ तइओ। ७ कूलससि। ८ पूनू।

शब्दार्थ—अपद=अनवसर। परबोध=समझाओ। गेठे=गाँठ ही। तेज=प्रकाश। तम=अन्धकार। सलिल=जल। सिनेह=स्नेह। सहज=सहजात=जन्मजात। सीतल=ठण्डक। तपत कए=तप्त करके। जुड़ाइअ=ठण्डा करे। तइअओ=तो। विरतरस=जिसका स्वाद खत्म हो गया है। रिति=रीति=परिपाटी। कुलससि=कुलरूपी चन्द्रमा। नीली रङ्ग=काला दाग=कलक। अचेतन=मूर्ख। हुतास=आग।

अर्थ—(मानिनी की उक्ति—) हे सखी! विना अवसर के मुझे मत समझाओ। (अर्थात्—अभी अवसर नहीं है, अत. उनके समीप चलने के लिए मुझसे आग्रह मत करो। कारण,) जहाँ तोड़कर (फिर) जोड़ा जाता है, वहाँ गाँठ पड़ ही जाती है। (इतना ही नहीं,) प्रकाश और अन्धकार मे बड़ा विरोध होता है।

पानी के साथ ठण्डक का जन्मजात स्नेह होता है—यह सभी जानते है; (किन्तु) यदि उसे गरम करके यत्नपूर्वक ठण्डा किया जाय, तो उसका स्वाद विगड़ जाता है (अर्थात्—उसमे पहले की-सी शीतलता नही रहती है।)

जन्मजात (स्नेह) के चले जाने पर कौन परिपाटी अपनाई जायगी? (जो परिपाटी अपनाई जायगी, उसी से) कुल-रूपी चन्द्रमा मे कलक लग जायगा। (एक बार अच्छे-बुरे का) अनुभव करके मूर्ख (ही दुवारा) अनुभव करता है (अर्थात्—मूर्ख ही फिर उसमे जा फँसता है।) पतग (ही) आग मे (वार-वार) गिरता है।

[१३३]

पहिलहि कयलह हृदयक हार।
बोलितह तोहे मोरि जिवन अधार॥
अइसनेओ हठे विघटओलह पेम।
जइसन चतरिआ हायक हेम॥
ए सखि हरि सञो सिनेह बढ़ाए।
जत अनुसए तत कहहि न जाए॥

दुरजनि दूती तह इ भेल।
अपदहि गिरि सम गौरव गेल॥
अबे कि कहब मति दूषन मोर।
चिन्हल चटाइल बोलि परोर॥

न० गु०, प० ४२९

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अत., इसके लिए प्रथम भाग का २४३ सख्यक पद देखिए।

[१३४]

दहो दिस सुन सन अधिक पिआसल
भरमैते[1] बुल सभ ठामे।
भागबिहिन जन आदर नहि लह
अनुभव धनि जन ठामे॥
हे साजनि जनु लेहे भमिकरि नामे।
बिधिहिक दोख सन्तोख उचित थिक
जगत विदित परिनामे॥
आतपें[2] तापित सीतल[3] जानि कहु
सेओल मलयगिरि छाहे।
ऐसन[4] करम मोर सेहओ दूर गेल
कएल दवानले[5] दाहे॥
कते दुखे[6] आज समुद्र तिर पाओल
सगरेओ जले भेल छारे।
एहना[7] अवसर धैरज पए हित
सुकवि भनथि कण्ठहारे॥

न० गु०, प० ४३४

सं० अ०—१ भरमइते। २ आतपेँ। ३ सितल। ४ अइसन। ५ दवानलेँ। ६ दुखेँ। ७ अइसना।

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ३९७)—२ आतपें।

शब्दार्थ—दहो दिस=दसो दिशाएँ। सुन सन=सूनी-सी। पिआसल=प्यासा। भरमइते=भटकता हुआ। बुल=घूमता है। ठामे=(स्थाम—स०) स्थान में। लह=लहता है=पाता है। जनु=मत। लेहे=लो। भमिक=(भ्रमिक—स०) घूमनेवाला। भमिकरि=घूमनेवाले का। विधिहिक=भाग्य के। परिनामे=(परिणाम—स०) फल। आतपें=धूप से। तापित=पीडित। दवानलें=दावानल ने। दाहे=जलाना। सगरेओ=सारा। छारे=(क्षार—स०) खारा।

अर्थ—अत्यन्त प्यासा (आदमी) भटकता हुआ सब जगह घूमता है; (किन्तु उसके लिए) दसो दिशाएँ सूनी-सी है (अर्थात्—कही उसे ठौर नही मिलता है।)

भाग्यहीन आदमी (कही) आदर नही पाता है। धनी आदमी के यहाँ (इसका) (प्रत्यक्ष) अनुभव कर लो।

हे सखी! (जहाँ-तहाँ) घूमनेवाले का नाम मत लो। भाग्य के दोष मे (अर्थात्—भाग्य बुरा हो जाने पर) सन्तोष ही उचित है। (कारण, सन्तोष का) फल ससार मे प्रसिद्ध है।

धूप से पीडित होने पर, शीतल जानकर, (मैंने) मलयाचल की छाया का सेवन किया। (किन्तु) मेरा ऐसा भाग्य है (कि) वह भी (छाया भी) दूर चली गई (और) दावानल ने (मुझे) जला डाला।

कितने दुखों से (अर्थात्—कितना दुःख झेलकर मैंने) आज समुद्र का तट पाया (अर्थात्—मै समुद्र-तट पर आ पहुँची; किन्तु उसका भी) सारा जल खारा हो गया।

सुकवि-कण्ठहार (विद्यापति) कहते है—ऐसे मौके पर धैर्य (धारण करना) ही उपयुक्त है।

[१३५]

अपथ सपथ कए कह कत फूसि।
खन मोहिं[1] तखने[2] रहत[3] रूसि॥
मोञे न जएबे माइ दु(र)जन[4] सङ्ग।
नहि सरलासय साम (र) रङ्ग[5]॥
अवलोकब नहि तनिक(र)[6] रूप।
आँखि[7] अछइतें कइसे खसब कूप॥

सं० अ०—१ मोहे। २ ओखने। ३ रह ओ। ४ दुरजन। ५ सामर रंग। ६ तनिकर। ७ आखि।

विद्यापति कवि रभसें गाव।
मलिक बहारदिन बुझ इ॑ भाव।।

न० गु०, प०४३८

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या २२५)—१ मोहें। ८ अछइत।

शब्दार्थ—अपथ=कुमार्ग। फूसि=मिथ्या=झूठ। खन=क्षण—स०। मोहे=मोह लेते है। रूसि=रूठना। दुरजन=दुर्जन—स०। सङ्ग=मिलन। सरलासय=सीधा। सामर=(श्यामल—सं०) काला। अछइते=रहते। रभसे=प्रेम से।

अर्थ—कुमार्ग (पर चलने) के लिए शपथ करके (शपथ खाकर वे) कितना झूठ बोलते है? क्षण मे वे मोहते है और क्षण मे रूठते है।

अरी मैया! मैं दुर्जन से मिलने के लिए नही जाऊँगी। (कारण,) काला (आदमी कभी) सीधा नही होता है।

(मैं) उनका रूप (भी) नही देखूंगी। (कारण,) आँख रहते कैसे कुँए मे जा गिरूँगी?

कवि विद्यापति प्रेम से गाते है (और) मल्लिक बहरुद्दीन इस भाव को समझते है। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[१३६]

तिन तुल अरु ता तह भए लहु
मानिअ गरुबि आहि।
अछइते जे बोल नही अछए
से लहु सबहु चाहि।।
साजनि कइसन तोर गेंयान।
जउवन रतन तोर सोआधिन
कके न करसि दान।।
जाबे से जउवन तोर सोआधिन
ताबे पर बस होए।
जउबन गेले बिपद भेले
पुछि न पुछत कोए।।

सं० अ०—८ रभसें। १० ई।

एहि महीं आध अथिर जीवन
जौवन अलप काल।
इथी जत जत न बिलसिअ
से रह हृदय साल॥
तोर धन धनि तोराहि रहत
निधन होएत आन।
दानक धरम तोराहि होएत
कवि विद्यापति भान॥

न० गु०, प० ४४३

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अत., इसके लिए प्रथम भाग का १९५ सख्यक पद देखिए।

[१३७]

कमल भमर जग अछए अनेक।
सबतह[१] से[२] बड़ जाहि विवेक॥
मानिनि तोरित कर(ह)[३] अभिसार।
अवसर थोड़ेहु बहुत उपकार॥
मधु नहिं देलह रहल[४] की[५] खागि॥
से सम्पति जे परहित लागि॥
अपुजित[६] लए तुलना[७] तुअ देल।
जाब जीव अनुतापक भेल॥
तोॅ नहिं मन्द मन्द तुअ काज।
भलेओ मन्द हो मन्दा समाज॥
भनइ विद्यापति दुति कह गोए।
निअ[१०] क्षति[११] बिनु परहित नहि होए[१२]॥

न० गु०, प० ४४८

सं० अ०—३ करह। १० निज। ११ छति।

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ३९८)—१-२ सब तँहसं। ३ करिअ। ४ नहिँ। ५ रहलि। ६ कि। ७-८ अति अतिशय ओलना देल। ९ नहिँ। १२ नहिँ।

शब्दार्थ—अछए=हैं। सबतह=(सर्वत.—स०) सबसे। तोरित=(त्वरित—स०) शीघ्र। खागि=कमी। लागि=लिए। अपुजित=(अपूजित—स०) जिसकी पूजा किसी ने नही की=क्वाँरा। तुलना=बराबरी। जाव=यावत्—स०। जीव= जीवन। अनुतापक= पश्चात्ताप के लिए। मन्द=बुरा। गोए=(गोप्य—स०) छिपाकर।

अर्थ—संसार मे अनेक कमल (और) भ्रमर है; (किन्तु) सबसे बड़ा वह है, जिसे विवेक है।

हे मानिनी! शीघ्र अभिसार करो। (कारण,) थोड़े समय मे भी (उनका) बहुत उपकार होगा।

क्या कमी रही (जो तुमने) मधु नही दिया? वही सम्पत्ति सम्पत्ति है, जो दूसरे की भलाई के लिए है।

(मैने) क्वाँरे को लेकर तुम्हारी बराबरी कर दी (अर्थात्—क्वाँरे को लाकर तुम्हे मिला दिया; (किन्तु, वह मिलन) जीवन-भर के लिए पश्चत्ताप देनेवाला हुआ।

तुम बुरी नही हो—तुम्हारा काम बुरा है। भला (आदमी) भी बुरे समाज मे (रहकर) बुरा हो जाता है।

विद्यापति कहते हैं—दूती छिपाकर (अर्थात्—एकान्त मे) कहती है (कि) बिना अपनी क्षति के दूसरे की भलाई नही होती है।

विशेष—न० गु० के 'बगीय साहित्य-परिषत्सस्करण' मे छठी पक्ति के स्थान मे 'अति अतिशय ओलना देल' पाठ है। उपर्युक्त पाठ 'प्रयाग-सस्करण' का है। ग्रियर्सन की पदावली में भी यही पाठ है।

[१३८]

थिर नहि जउबन थिर नहि देह।
थिर नहि रहए बालभु सओ नेह॥
थिर जनु जानह इ[1] संसार।
एक पए थिर रह पर उपकार॥
सुन सुन सुन्दरि कएलह मान।
की परसंसह[2] तोहर गेआन[2]॥

सं० अ०—१ ई। २ परसंसब।

कउलति कए हरि आनल[4] गेह।
मुर[5] भाँगल सन कएलह सिनेह॥
आरति आनल[6] विघटित रङ्ग।
सुतरिक राब सरिस भेल सङ्ग॥
विमुखि चलल हरि बुझि बेबहार।
आबे कि गाओत कवि कण्ठहार॥

न० गु०, प० ४४९

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ३९९)—३ गेआन। ५ मूर।

शब्दार्थ—थिर=(स्थिर—सं०) स्थायी। बालमु=(वल्लभ—स०) स्वामी। कउलति=निहोरा। गेह=घर। मुर=(मूल—स०) मूली। भाँगल=टूटी। सन=(सम—स०) समान। आरति=आर्त होकर=दुखी होकर। रङ्ग=प्रेम। सुतरिक=सुतली का। राव=गुड। सरिस=(सदृश—स०) समान। सङ्ग=मिलन। विमुखि=विमुख होकर।

अर्थ—(एक तो) यौवन स्थायी नही है, (दूसरा,) शरीर स्थायी नही है। स्वामी के साथ स्नेह (भी) स्थायी नही होता है।

(इतना ही नही), इस ससार को (भी) स्थायी मत समझो। (केवल) एक परोपकार ही स्थायी है।

अरी सुन्दरी! सुनो, सुनो। (तुमने) मान किया। तुम्हारे ज्ञान की क्या प्रशसा करूँगी? (यह व्यग्य-वचन है। अत, अर्थ हुआ—तुम्हारी कितनी निन्दा करूँगी?)

निहोरा करके कृष्ण को (तुम्हारे) घर ले आई; (किन्तु तुमने) प्रेम को मूली के समान तोड डाला (अर्थात्—जिस प्रकार मूली अनायास दो-टूक होकर टूट जाती है, उसी प्रकार तुमने प्रेम को दो-टूक कर डाला।)

आर्त्त होकर (उन्हे) ले आई, (किन्तु तुमने) प्रेम को तोड दिया। सुतली और गुड़ के समान (तुम्हारा) मिलन हो गया। (अर्थात्—जिस प्रकार गुड़ जमाने के समय बरतन मे सुतली डाल दी जाती है और जम जाने पर उसी सुतली के सहारे बरतन से गुड़ का चक्का निकाल लिया जाता है। फिर, गुड़ को फोड़कर काम मे ले आते है और सुतली को किनारे कर देते है। सुतली और गुड का संग खत्म हो जाता है। उसी प्रकार काम निकल जाने पर तुमने कृष्ण को किनारे कर दिया।)

(तुम्हारा) व्यवहार जानकर कृष्ण विमुख होकर विदा हो गये। अब कवि-कण्ठहार (विद्यापति) क्या गायेंगे? (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

सं० म०—४ आनल। ६ आनल।

[१३९]

चाहइते अधर निअल[1] नहि लिसि[2]
धरइते मोललए[3] बाँही।
सुपहु सिनेहें[4] न केलि रति भङ्गलए
तोहि सनि पापिनि नाही॥
मानिनि,
अवहु[5] पलटि चल पिआका[6] पअ पल
मेटओ सबे अपराध॥
कइतवें[7] हास गोप तोजे कएलए ककें[8]
ककें[9] तोरि भँउह चड़ली[10]।
पिआ सजो पउरुस ककें[11] तोजे बोललए
जिह तोरि टुटि न पड़ली॥
सउरस लागि पिअ[12] हिअ अ(ा) राहिअ[13]
बइरस वास न करिआ।
अछिकहु[14] विष-तरु पल्लव मेलब
आँकुर भाँगि हलिआ॥
भनइ विद्यापति सुन सुन गुनमति
ओल[15] धरि के कर माने।
राजा सिवसिह[16] रूपनराएन[17]
लखिमा देवि[18] रमाने॥

न० गु०, प० ४५०

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या १३२)—६ पियाका। ८-९-११ ककें। १२ पिय। १५ ओर। १६ सिवसिंघ। १८ देइ।

सं० अ०—१ निअर। २ लेसि। ३ मोळलए। ४ सिनेहें। ५ अबहुं। ६ पिआकां। ७ कइतवें। ८-९-११ ककें। १० चढ़ली। १३ आराहिअ। १४ अचकहुं। १५ ओळ। १७ रूपनराअेन।

शब्दार्थ—चाहइते=चाहने पर=माँगने पर। अधर=ओष्ठ। निअर=(निकट—सं०) समीप। लेसि=लिया। धरइते=पकड़ने पर। मोळलए=ममोड़ दी। सनि=समान। पलटि चल=लौट चलो। पअ=(पद—स०) पैर। कइतबेँ=(कैतव—स०) छल से। हास-गोप=हास्य का गोपन। ककेँ=क्यों। चढली=चढ गई। पउरुस=(परुष—सं०) कठोर। जिह=(जिह्वा—सं०) जीभ। सउरस=(स्वारस्य—सं०) प्रेम। हिअ=हृदय=मन। आराहिअ=आराधना। करनी चाहिए। वइरस=(वैरस्य—स०) उदासी। वास=निवास। अचकहु=औचक में भी। विष तरु=विष का वृक्ष। मेलव= उड़ेल देगा। भाँगि हलिआ=तोड़ देना चाहिए। ओल=ओळ=अन्त।

अर्थ—अधर (अधरामृत) माँगने पर (तुमने) सामीप्य नही लिया (अर्थात्—पास नही आई और) पकड़ने पर बाँह ममोड़ दी।

स्वामी ने प्रेम से हँसी-मजाक (भी) नही (किया कि तुमने) प्रीति तोड़ दी! तुम्हारे समान (दूसरी) पापिनी नही।

अरी मानिनी! अब भी लौट चलो (और) स्वामी के पैर पड़ो, (जिससे वे तुम्हारे) सारे अपराध मेट दे (क्षमा कर दें।)

तुमने छल से क्यों हास्य का गोपन किया (अर्थात्—क्यों मुंह फुला लिया?) तुम्हारी भवे क्यों चढ़ गईं (तन गई?)

स्वामी से तुमने कठोर वचन क्यों कहा? तुम्हारी जीभ (क्यों) नही टूट पड़ी?

प्रेम के साथ हृदय से स्वामी की आराधना करनी चाहिए। उदासी को स्थान नही देना चाहिए।

औचक में भी विष का पेड़ पल्लव उड़ेल देगा (अर्थात्—पल्लवित हो जायगा,—इसलिए उसका) अंकुर (ही) तोड़ देना चाहिए।

विद्यापति कहते हैं—अरी गुणवती! सुनो, सुनो—अन्त तक कौन मान करती है? (अर्थात्—कोई भी अन्त तक मान नही करती है।)

लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह रूपनारायण (इसे समझते हैं।) (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[१४०]

कण्टक दोसेँ[1] केतकि सञो रूसल
हठेँ[2] आएल तुअ पासे।

सं० अ०—१ दोषेँ। २ हठेँ।

भल न कएल तोहें अपद अधिक कोहें
भमर के बोलल उदासे॥
जातकि अनुचित एक बड़ भेला।
निअ मधुसार साँचि तोहें राखल
भमर पिआसल गेला॥
ओहओ भमर मधुसार-विवेचक
गुरु अभिमानक गेहा।
गुरु पद छाड़ि पुनु नहि आओत
देखबाहु भेल सन्देहा॥
सेहओ सुचेतन गुनक निकेतन
सबहि कुसुम रस लेइ।
जेहे नागरि बुझ तकर चतुरपन
सेहे न परिहरि देइ॥

न० गु०, प० ४५२

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ८३७)—१ दोसें। ५ तोहें। ६ पूनु।

शब्दार्थ—कण्टक=काँटा। केतकि=केवड़ा। रूसल=रूठा हुआ। भल=भला=अच्छा। अपद=विना अवसर के। कोहें=क्रोध से। उदासे=उदासीन होकर। जातकि=चमेली। मधुसार=मधुशाला—स०। साँचि=सँजोकर। पिआसल=प्यासा। ओहओ=वह भी। गुरु=बड़ा। गेहा=घर=आगार। गुरु पद=श्रेष्ठ पद=ऊँचा ओहदा। सुचेतन=सचेत=सावधान। गुनक निकेतन=गुणागार। कुसुम=फूल। परिहरि=त्याग।

अर्थ—काँटे के दोष से (अर्थात्—काँटा चुभ जाने के कारण) केवड़ा से रूठा हुआ (भौंरा) हठ करके तुम्हारे पास आया था।

(सो), तुमने अच्छा नही किया (कि) अधिक क्रोध से (अर्थात्—क्रोधाधिक्य के कारण) उदासीन होकर भौरे को बोल दिया (अर्थात्—फटकार दिया।)

हे जातकी! (यह) एक बडा अनुचित (कार्य) हुआ (कि) तुमने अपनी मधुशाला सँजोकर रख ली (और) भौंरा प्यासा (वापस) चला गया।

सं० अ०—३ तोहें। ४ कोहें। ५ तोहें। ६ पूनु। ७ लेई। ८ देई।

वह भौरा भी मधुशाला की विवेचना करनेवाला (अर्थात्—उसकी अच्छाई-बुराई का जानकार है और) बड़ा अभिमानी है।

(सो, अपना) श्रेष्ठ पद छोड़कर (वह) फिर (कभी) नही आयगा। (इसलिए उसके) दर्शन मे भी (अब) सन्देह हो गया।

वह गुणागार (भौरा) भी सावधान होकर सब फूलों का रस लेता है।

(सो), जो नागरी उसकी चतुराई समझती है, वही (उसका) त्याग नही करती है।

[१४१]

भमइते भमर भरमे जञो भुललाहे[1]
आन[2] लता नहि[3] पासे।
एतबा रोस दोसबस भए रहु
दुर कर हृदअ[4] उदासे॥
जइअओ सरोवर हिमकर निअ[5] करे[6]
परसए सबहु समाने।
कुमुदिनकाँ ससि[7] ससिकाँ कुमिदिनि[8]
जीवन के नहि जाने॥
जेहन[9] तोहर मन तन्हिको तइसन
कत पतिअ(ा) उबि[10] हे[11] माखी।
जगत विदित थिक सबकाँ सबतहु
मनकाँ मन थिक साखी॥

न० गु०, प० ४५३

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ८३६) —४ हृदय। ७ पाठाभाव। ८ कुमुदिनी।

शब्दार्थ—भमइते=घूमता-फिरता। भरमे=भ्रम से। भुलला=भूल गया। लहि=पाकर। एतबा=इतना। जइअओ=यद्यपि। हिमकर=चन्द्रमा। करें=किरण से। ससि=चन्द्रमा। जइसन=जैसा। तन्हिको=उनका भी। पतिआउबि=विश्वास दिलाऊँगी। माखी=कहकर। सबतहु=(सर्वतः—स०) सबसे बढ़कर।

सं० अ०—१ भुलला हे। २ आन। ३ लहि। ५ निज। ६ करें। ८ कुमुदिनि। ९ जइसन। १०-११ पतिआउबि।

अर्थ—भौरा यदि घूमता हुआ पास मे दूसरी लता को पाकर भ्रम से (तुम्हे) भूल गया, (तो) दोषवश (अर्थात्—भौरे के दोष से) इतना क्रोध हो गया ? (अरे !) हृदय की उदासी दूर करो।

यद्यपि चन्द्रमा अपनी किरण से तालाब मे सबका समान स्पर्श करता है।

(तथापि) कौन नही जानता है कि कुमुदिनी का जीवन चन्द्रमा है (और) चन्द्रमा का जीवन कुमुदिनी है ?

जैसा तुम्हारा मन है, उनका भी वैसा ही मन है। कह ।र कितना विश्वास दिलाऊँगी ?

ससार मे सबको विदित है (कि) सबसे बढकर मन ही मन का साक्षी है। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[१४२]

पुनु चलि आबसि पुनु चलि जासि।
बोलओ चाहसि किछु बोलइते लजासि॥
आस दइए हरिकहु किए लेसि।
अधराओ वचने उतरो न देसि॥
सुन दूती तोञे सरूप[1] कह मोहि।
सङ्ग सञो कपट हमर भेल तोहि॥
तन्हिकरि कथा कहसि काँ लागि।
जूड़िहू[2] हृदय पजारसि आगि[3]॥
तन्हिकर कउसल मोरा पअ[4] दोस।
कहलेओ कहिनी बाढ़य[5] रोस॥
भनइ विद्यापति एहु रस भान[6]।
राए सिवसिह[7] लखिमा देइ[8] रमान॥

न० गु०, प० ४५५

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ११८)—१ सरुप। २ जूडिहु। ३ आसि। ७ सिवसिंघ।

शब्दार्थ—आबसि=आती है। जासि=जाती है। हरिकहु=हरण कर। अधराओ=अधर के=ओठ के। सरुप=सत्य। सङ्ग=साथ। तन्हिकरि=उनकी। काँ लागि=किसलिए।

सं० अ०—१ सरुप। २ जूड़िहु। ४ पए। ५ बाढ़ए। ६ जान। ८ दे।

जूड़िहु=शीतल। पजारसि=(प्रज्वालयसि—सं०) जलाती है। कउसल=(कौशल—सं०) चतुराई। कहिनी=वृत्तान्त।

अर्थ—फिर चली आती है, फिर चली जाती है (अर्थात्—वार-वार आती-जाती है; किन्तु) कुछ कहते लजाती है।

कहो, आशा देकर क्यों हरण कर लेती है? ओठ के वचन से भी उत्तर (क्यों) नहीं देती? (अर्थात्—हृदय से यदि उत्तर देना नहीं चाहती है, तो ओठ से ही बोलकर कुछ उत्तर दो।)

अरी दूती! सुनो। मुझे तुम सच कहो (अर्थात—झूठी वात कहकर मुझे मत फुसलाओ।) क्या मेरे साथ तुम्हारा कपट हो गया है?

(दूती नायक की ओर से कुछ कहना चाहती है, तो नायिका तमक उठती है। कहती है—)उनकी वात किसलिए कहती है? (मेरे) शीतल हृदय में आग (क्यो) जलाती है?

उनकी चतुराई (और) मेरा दोष? (अर्थात्—धोखा उन्होने दिया और दोष मेरा हुआ। इससे अधिक और क्या कहूँ? कारण,) वृत्तान्त (आख्यान) कहने से भी क्रोध बढ़ता है।

विद्यापति कहते हैं—लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह इस रस को जानते हैं। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[१४३]

कि कहब अगे[1] सखि मोर अगेयाने[2]।
सगरिओ[3] रयनि[4] गमाओल[5] माने॥
जखने मोर मन परसन भेला।
दारुन अरुन तखने[6] उगि गेला॥
गुरुजन जागल कि करब केली।
तनु झँपइतें[7] हमे आकुल भेली॥
अधिक चतुरपने[8] भेलाहूँ[9] अयानी[9]।
लाभके[10] लोभे[11] मूलहु भेल हानी॥
भनइ[12] विद्यापति निआमति दोसे।
अवसर काल उचित नहि रोसे॥ न० गु० ४५८

पाठभेद—

ग्रियर्सन (पद-सख्या ५४)—१ आहे। ३ सगरी। ५ गमाओलि। ८ भेलहुँ। ९ अज्ञानी। १० लाभक। ११ लोभ। १२ मनहिं।

सं० अ०—२ अगेआने। ४ रजनि। ५ गमाअोलि। ८ भेलाहुँ। ९ अजानी। ११ लोभें।

मि० म० (पद-संख्या ३८३)—६ झपइते। ७ चतुरपन। १३ निअ मति।

शब्दार्थ—आगे अरी। सगरिओ=सारी। रअनि=(रजनी—स०) रात। गमाओल=बिता दी। दारुन=निर्दय। अरुन=उषा की लाली। केली=क्रीडा। तनु=शरीर। झँपइते=ढकने में रही। अजानी=अज्ञानी। निआमति=(नेय।मत=फा०) ईश्वर की देन=तकदीर का लेख।

अर्थ—अरी सखी! (मैं) अपना अज्ञ न क्या कहूँगी? (अर्थात्)—मेरी अज्ञानता कहने योग्य नही है।) मैंने मान से (अर्थात्—मान करके) सारी रात बिता दी।

जब मेरा मन प्रसन्न हुआ (तभी) अरुणोदय हो गया (अर्थात्—भोर हो गया।)

गुरुजन जग गये (तो फिर) केलि क्या करूँगी? शरीर ढकने मे ही मैं परेशान हो गई।

अधिक चतुराई से (मैं) अज्ञानी हो गई। लाभ के लोभ से मूल (धन) मे भी हानि हो गई।

विद्यापति कहते है—(यह) भाग्य के लेख का दोष है। मौके पर क्रोध करना उचित नही है।

[१४४]

एत दिन छल पिआ[1] तोहे हम जेहे हिआ
सीतल सील कलापे।
तोहे[2] न कान धरु विनति दूर करु।
दुरजन दुरित अलापे॥
मोहि पति भल भेल ओतहि ओहओ गेल
कि फल विकल कए देहे।
करिअ जतन पए जओ पुनि जोलि हो[3]।
टूटल सरस सिनेहे॥
सुनु[4] कान्हु हे जतने[5] दहु परिहर के॥
दिन दस जौवन[5] तेहि[6] अनाएत
मन तहु पुछु परकारे।
तुअ परसाद बिखाद नयन जल॥
काजरे[7] मोर उपकारे॥

सं० अ०—२ तोहें। ३ जोंळि हो। ४ जतने रतन। ५ जउवन। ६ ओहओ। ७ काजरें।

तें[8] तओ करबि मसि मअन[9] पास बैसि[10]
लिखि लिखि देखबासि तोही।
तार हार घनसार सार रे
सेओ लव[11] सन्ताओत मोही॥
कामिनि केलिभान थिक माधव
आओ कुमुदिनि सओ चाँदे।
दुरहु दुरहु तोहें[12] पहु तओ बुझह दहु
दरसने[1] कत आनन्दे॥
भनइ विद्यापति अरे वर जौवति[13]
मेदिनि मदन समाने।
लखिमा देवि पति रूपनराएन[14]
सुखमा देवि[15] रमाने[4]॥

न० गु०, प० ४६७

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या १४८)—१ पिया। ४ जतने रतन। ८ तें। १२ तोंहे। १४ रूप-नराएण। १५ देह।

शब्दार्थ—छल=था। तोह=तुम्हारे। जेहे=जो। हिआ=हृदय। सीतल सील कलापे=सौम्य स्वभाव से। दुरित=बुरा=खतरनाक। अलापे=कथन से। मोहि पति=मेरे लिए। भेल=हुआ। ओहओ=वह भी। ओतहि=वही। जोलि हो=जोड़ा जा सके। केदहु=कौन। परिहर=दूर कर सकता है। तेहि=वह भी। अनाएत=(अनायत्त—स०) अधीन मे नही है। मनतहु=मन से=हृदय से। परकारे=(प्रकार—स०) भेद। परसाद=(प्रसाद—सं०) कृपा। विखाद=(विषाद—स०) शोक। नयन-जल=आँसू। तें=उससे। तओ=तो। मअन=(मदन—स०) कामदेव। देखबासि=देखूंगी। तार=आबदार मोती। घनसार=कपूर। सार=सर्वोत्तम। से ओ= वे भी। लव=थोडा। सन्ताओत=सन्तप्त करेगे। भान=कहा गया है। आओ=और। पहु=प्रभु=स्वामी। मेदिनि=पृथ्वी। मदन=कामदेव।

अर्थ—हे प्रिय! (तुम्हारे) सौम्य स्वभाव से इतने दिनों तक (विश्वास) था (कि) मै तुम्हारे हृदय मे हूँ (अर्थात्—तुम्हारे हृदय मे मेरे लिए स्थान है।)

सं० अ०—८ तें। ९ समन। १० बसि। ११ सेओ लव। १२ तोहें। १३ वरजउवति। १४ रूपनराजेन।

(किन्तु) दुर्जनों के बुरे कथन से तुम (मेरी बात) कान नही की (अर्थात्—नही सुनी और मेरी) विनती दूर कर दी।

मेरे लिए अच्छा हुआ (कि) वह भी (मेरा हृदय भी) वही (तुम्हारे पास) चला गया। (अब मेरे) शरीर को व्याकुल करके क्या फल (मिलेगा ?)

टूटा हुआ सरस प्रेम यदि फिर जोड़ा जा सके (तो) यत्न भी करना चाहिए।

हे कृष्ण ! सुनो। यत्न से (प्राप्त) रत्न को कौन छोड़ता है ?

यौवन (ही) दस दिनों (थोड़े दिनों) के लिए है (और) वह भी अपने अधीन नही है। (इसलिए अपने) मन से (ही उसका) भेद पूछो।

तुम्हारी कृपा (व्यंग्यार्थ—अकृपा) से (प्राप्त) विषाद-जन्य आँसू (और) काजल से मेरा उपकार (ही होगा।)

(क्या उपकार होगा,—इसी का वर्णन नायिका करती है—) उनसे (आँसू और काजल से) स्याही बनाऊँगी (और) शय्या के पास बैठकर, तुम्हे लिख-लिखकर देखूँगी।

(इससे) आबदार मोतियों का हार (और) उत्तम कपूर—मुझे थोड़ा सन्ताप देंगे। (अर्थात्—तुम्हारे दर्शन से वे कामोत्तेजक वस्तुएँ भी अधिक सन्ताप नही देंगी।)

कामिनी से कृष्ण की और कुमुदिनी से चन्द्रमा की केलि कही गई है।

हे स्वामी ! तुम दूर-दूर (रहते) हो, तो क्या समझोगे कि दर्शन मे कितना आनन्द है ? (अर्थात्—दूर रहने के कारण तुम नही समझ सकते हो कि दर्शन मे कितना आनन्द है ?)

विद्यापति कहते हैं—अरी वरयुवती ! सुषमा देवी के रमण (एव) लखिमा देवी के स्वामी (राजा शिवसिंह) रूपनारायण पृथ्वी पर कामदेव के समान है। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

विशेष—९वी पक्ति खण्डित है। अतः, पूर्वापर-क्रम टूट जाने से सम्पूर्ण पद का भाव अस्पष्ट रह जाता है।

[१४५]

सुनि सिरिखण्ड तरु से सुनि गमन करु
छाड़त मदन तनु तापे।
आरति अइलिहु तें कुम्भिलइलिहु
के जान पुरुब केर पापे।।
माधव तुअ मुख दरसन लागी।
बेरि बेरि आबओं उतर न पाबओं
भेलाहु विरह रस भागी।।

जखने तेजल गेह सुमरि तोहर नेह
गुरुजन जानल तावे।
तोहें सुपुरुस पहु हमे तओ भेलिहु लहु
कतहु आदर नहि आवे॥

न० गु०, प० ४७१

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अतः, इसके लिए प्रथम भाग का २२२ संख्यक पद देखिए।

[१४६]

जतहि पेम[1] रस ततहि दुरन्त।
पुन[2] कर पलटि पिरित गुनमन्त॥
सबतहु सुनिअ[3] अइसन बेबहार।
पुनु टूटए पुनु गाँथए[4] हार॥
ए कन्हु ए कन्हु तोहँहि[5] सआन[6]।
बिसरिअ[7] कोप करिअ[8] समधान॥
पेमक[9] आँकुर[10] तोहे[11] जल देल।
दिने[12] दिने[13] बाढ़ि महातरु भेल॥
तुअ गुने[14] न गुनल सउतिनि[15] आछ।
रोपि न काटिअ[16] विषहुक[17] गाछ॥
जे नेह उपजल प्रानक ओल[18]।
से न करिअ दुर दुरजन बोल॥
जगत विदित भेल तोह हम नेह।
एक परान कएल दुइ देह॥
भनइ विद्यापति करब[19] उदास।
बड़ाक[20] वचने[21] करिअ[22] बिसवास॥

न० गु०, प० ४७६

सं० अ०—२ पुनुकर पलटि पिरिति। ६ सआन। ११ तोहें। १९ न कर।

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ४६५)—१ प्रेम। २ पुनु। ३ सुनिये। ४ गाँथिए। ५ तोहहि। ७ बिसरिए। ८ करिए। ९ प्रेमक। १० अङ्कुर। ११ तोहे। १२-१३ दिन दिन। १४ गुन। १५ सउतिन। १६ काटिए। १७ बिसहुक। १८ ओर। १९ कर। २० बडक। २१ वचन। २२ करिए।

शब्दार्थ—जतहि=जही। रस=आनन्द। दुरन्त=दुराव=जिसका परिणाम बुरा हो। सबतहु=सर्वत—स०। सभान=(सज्ञान—स०) समझदार। बिसरिअ=बिसारिए। समधान=समाधान—स०। अगीकार। आँकुर=अङ्कुर—स०। सउतिनि=(सपत्नी—स०) सौत। आछ=है। गाछ=वृक्ष। ओल=ओर=अन्त=पर्यन्त।

अर्थ—जहाँ प्रेम-रस होता है, वही दुराव (भी) होता है। (किन्तु) गुणवान् फिर पलटकर प्रीति कर लेते है।

सर्वत्र ऐसा व्यवहार सुना जाता है (कि) हार बार-बार टूटता है (और) बार-बार गूँथा जाता है।

हे कृष्ण! हे कृष्ण!! तुम समझदार हो। (इसलिए) क्रोध को भूल जाओ (और (इस दुराव का) समाधान कर दो।

तुमने प्रेम के अकुर मे पानी दिया (अर्थात्—प्रेम के अकुर को अपने सौजन्य से सीचा। इसीलिए वह) दिन-दिन (क्रमश.) बढ़कर (अब) विशाल वृक्ष हो गया।

तुम्हारे गुणों से (आकृष्ट होकर मैंने) 'सौतें है'—(इसका भी) विचार नही किया। (अरे, प्रेम-रूपी महातरु का क्या कहना ?) विष-वृक्ष को भी रोपकर नही काटना चाहिए।

जो प्रेम जीवन-भर के लिए पैदा हुआ है, उसे दुर्जन के कहने से दूर नही करना चाहिए।

तुम्हारा (और) मेरा प्रेम ससार मे प्रसिद्ध हो गया है। (जान पड़ता है, जैसे विधाता ने) एक प्राण (और) दो शरीर किये है।

विद्यापति कहते है—(अपने मन को) उदास मत करो। (कारण,) बड़ो के वचन मे विश्वास करना चाहिए। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[१४७]

सबे परिहरि अएलाहु[1] तुय[2] पास।
बिसरि न हलबे दए बिसवास॥
अपने सुचेतन कि कहब गोए।
तइसन करब उपहास न होए॥

सं० अ०—१ अएलाहुँ। २ तुअ।

ए कन्हाइ तोहर वचन अमोल।
जाब जीव प्रतिपालब बोल॥
भल जन वचन दुअओ समतूल।
बहुल न जानए रतनक मूल॥
हमे अबला तुअ हृदय अगाध।
बड़ भए खेमिअ सकल अपराध॥
भनइ विद्यापति गोचर गोए।
सुपुरुष[3] सिनेह अन्त नहि होए॥

न० गु०, प० ४७८

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या४६६)—१ अएलाहु। २ तुअ। ३ सुपुरुस।

शब्दार्थ—परिहरि= त्यागकर। विसरि न हलवे=भुला मत देना। सुचेतन= बुद्धिमान्। गोए=छिपाकर=एकान्त मे। अमोल=(अमूल्य—स०)अनमोल। बोल=वचन। समतूल=(समतुल्य—सं०) बराबर। बहुल=बहुतेरे। मूल=मूल्य। अगाध=अथाह=दुर्बोध। खेमिअ=क्षमा करनी चाहिए। गोचर=मन मे विचरनेवाली बात, अर्थात्—मन की बात। गोए= (गोप्य—स०) गोपनीय।

अर्थ—(हे कृष्ण !) सब-कुछ त्यागकर मै तुम्हारे पास आई। (अब) विश्वास देकर (मुझे) भुला मत देना।

(तुम) स्वय बुद्धिमान् हो। (इसलिए मैं) छिपाकर क्या कहूँगी ? (अर्थात्—एकान्त मे क्या समझाऊँगी ? केवल) वैसा करना, (जिससे) उपहास नही हो।

हे कृष्ण ! तुम्हारा वचन अनमोल है। (इसलिए तुम्हे) जीवन-पर्यन्त (अपने) वचन का प्रतिपालन करना चाहिए।

भला आदमी (और उसका) वचन—दोनो ही बराबर होते है। (इसलिए और अधिक क्या कहूँ ? इतना ही कहती हूँ कि) बहुतेरे (व्यक्ति) रत्न का मूल्य नही समझते है।

मै अबला हूँ, अर्थात्—सब तरह से दीना हूँ (और) तुम्हारा हृदय अथाह है (अर्थात्—अबला होकर मैं तुम्हारे हृदय की थाह नही पा सकती हूँ। इसलिए एक ही प्रार्थना है कि) बड़ा होकर (अर्थात्—बड़े को) सारा अपराध क्षमा कर देना चाहिए।

विद्यापति (अपने) मन की बात कहते है (कि) सुपुरुष के प्रेम का अन्त नही होता है।

[१४८]

बारिस निसा मञे चलि अईलिहु
सुन्दर मन्दिर तोर।
कत महि अहि देहे दमसल
चरणे तिमिर घोर॥
निज सखि मुख सुनि सुनि
कहबसि पेम तोहार।
हमे अबला सहए न पारल
पचसर परहार॥
नागर मोहि मने[1] अनुताप।
कएलाहु साहस सिधि न पाबिअ
अइसन हमर पाप॥
तोह सन पहु गुन निकेतन
कएलह मोर निकार।
हमहु नागरि सबे सिखाउबि
जनु[1] कर अभिसार॥
कत न नागर गुनक सागर
सबे न गुनक गेह।
तोह सन जग दोसर नाहि
तें हमे लाओल नेह॥
केलि कुतूहल दुरहि रहओ
दरशनहु सन्देह।
जामिनि चारिम पहर पाओल
आबे जाओं निज गेह॥
मोरिओ सब सहचरि जानति
होइति इ बड़ि साटि।

विहि निकारुन परम दारुन
मरओ हृदय फाटि ॥
भने विद्यापति सुनह जुवति
आसा न अवसान।
सुचिरे जीवओ राए सिवसिंह
लखिमा देवि रमान ॥

न० गु०, प० ४८२

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' में भी है। अतः, इसके लिए प्रथम भाग का १३५ संख्यक पद देखिए।

[१४९]

हे माधव भल भेल कएलह कूले।
काच कञ्चन दुहु सम कए लेखलह
न जानह रतनक मूले ॥
तोंहं[1] हम पेम जते दुरे उपजल
सुमरह से आबे ठामे।
आवे पररमनि रंगे तोंहे[2] भुललाहे
विहुसिहु[3] हसि[4] हेर बामे ॥
ऐसन[5] करम मोर तें[6] तोंहे[7] जदि भोर
हमे अबला कुलनारी।
पिसुनक वचन कान जदि धएलह
साति न कएलह बिचारी ॥
भनइ विद्यापति सुनह सुन्दरि
चिते जनु मानह सङ्का।
दिवस वाम सखि सवे खन न रहए
चांदहु[8] लागु कलङ्का ॥

न० गु०, प० ४८३

सं० अ०—१ तोह। २ तोहें। ३ विहुँसिहुँ। ४ हँसि। ५ अइसन। ६ तने। ७ तोहें। ८ चान्दहुँ।

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ३७४)—१ तोंह। २ तोंहे। ६ तें। ७ तोहे।

शब्दार्थ—कूले=किनारा। कञ्चन=सोना। लेखलह्=लेखा किया। मूले=मूल्य। ठामे (स्याम—सं०) ठहरकर=स्थिर होकर। रगे=प्रेम मे। हंसि हेर=हँसकर देखते हो। वामे=विरुद्ध। करम=(कर्म—सं०) भाग्य। भोर=भुला जाना। पिसुनक=चुगलखोरो के। साति= (शास्ति—सं०) दण्ड। वाम=बुरा। खन=(क्षण—स०) समय।

अर्थ—हे कृष्ण! अच्छा हुआ (कि तुमने मुझे) किनारे कर दिया (अर्थात्—अपने से दूर हटा दिया।)

(तुमने) काँच (और) सोना—दोनो को वरावर करके लेखा किया। (तुम) रत्न का मूल्य नही जानते हो।

तुम्हारा (और) मेरा प्रेम जितनी दूर तक वढ़ा, स्थिर होकर अब उसका स्मरण करो।

अब तुम पराई स्त्री के प्रेम मे भुला गये हो—(इसलिए मेरे) बिहँसने पर भी विरुद्ध हँसी हँसकर (मेरी ओर) देखते हो।

मेरा ऐसा (बुरा) भाग्य है। इसीलिए यदि तुम मुझ अवला कुलनारी को भूल गये—

(और) चुगलखोरो का वचन यदि कान धरा (तो) विचार करके दण्ड नही किया।

विद्यापति कहते है—(अरी) सुन्दरी! सुनो। मन में (किसी तरह की) शका मत मानो (करो।)

हे सखी! बुरे दिन सब समय नही रहते हैं। (बुरे दिन आने पर) चन्द्रमा को भी कलक लग जाता है।

[१५०]

कुन्तल कुसुम निमाल न भेल।
नयनक काजर अधर न गेल॥
कनक धराधर नहि ससिरेह।
कोने[1] परि कामे प्रकाशल[2] नेह॥
ए सखि ए सखि पुरुष[5] अजान।
भुजंग[6] भनावथि रङ्ग न जान॥
दुर सौं[5] सुनिय समय[6] पचवान।
परतख चाहि नहि के अनुमान॥

सं० अ०—१ कओने। २ प्रकासल। ५ सओ। ६ सुनिअ सुभअ।

उपगति भेलिहु[7] इ[8] भेलि साति।
अनुसय छितहि पोहाइलि राति।।
भनइ विद्यापति एहु रस भाने[9]।
राए सिवसिह[10] लखिमा देइ[11] रमाने।।

न० गु०, प० ४८५

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ७९)—२ प्रकासल। ३ पुरुस। ४ भुजँग। ५ सौँ। ६ सुनिअ समय। १० सिवसिंघ।

शब्दार्थ—कुन्तल=सिर के केश। कुसुम=फूल। निमाल=निर्माल्य—स०। अधर=नीचे का ओठ। कनक-धराधर=सोने का पहाड़ (स्तन)। ससिरेह=चन्द्रमा की रेखा (नखक्षत)। कोने परि=किस प्रकार। अबान=(अज्ञान—स०) बुद्धिहीन। भुजग=जार=प्रेमी। भनावथि=कहलाते है। रङ्ग=केलि। समअ=(समद—स०) मतवाला। पचवान=(पञ्चवाण—सं०) कामदेव। परतख=प्रत्यक्ष—स०। चाहि=अपेक्षा। उपगति=समीप मे जा पहुँचना। साति=(शास्ति—स०) दण्ड। अनुसय—पश्चात्ताप। छितहि=रहते ही। पोहाइलि=बीत गई।

अर्थ—(सखी नायिका से पूछती है—हे सखी! तुम्हारे) केश के फूल निर्माल्य नही हुए (और) आँखों का काजल ओठ मे नही लगा (अर्थात्—नायक के द्वारा आँख चूमने के कारण उसके मुख मे लगा काजल पुनः तुम्हारे ओठ चूमने के समय उसमे नही लगा?)

(तुम्हारे) स्तनो मे नखक्षत (भी) नही है? (तो फिर) किस प्रकार कामदेव ने प्रेम का प्रकाश किया?

(नायिका उत्तर देती है—) हे सखी! हे सखी!! पुरुष बुद्धिहीन होते है। (कारण, वे) प्रेमी (तो) कहलाते है; (किन्तु) केलि (करना) नही जानते।

दूर से सुनती थी (कि) कामदेव मतवाला होता है; (किन्तु) प्रत्यक्ष होने पर 'नही' का ही अनुमान हुआ (अर्थात्—'कामदेव मतवाला नही है'—इसी का ज्ञान हुआ।)

समीप मे जा पहुँची—(इसीलिए) यह दण्ड हुआ। पछताते ही रात बीत गई।

विद्यापति कहते है—लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिह इस रस को जानते है। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

सं० अ०—७ भेलिहुँ। ८ ई। ९ जाने। ११ दे।

[१५१]

आदरि अनलह् धएलह् बारि।
आंचर[1] न छड़लह्[2] वदन निहारि॥
सुदृढ़ेओ केस न बंधलह्[3] फोए।
सबे रस सुन्दरि धएलह गोए॥
आबे कि पुछसि राहि भल नहि भेल।
जतने आनल[4] कान्ह तोरे दोसें[5] गेल॥
गुनि[6] गन पथ सह लगलउ हे भोर।
आंचर[7] हीर हराएल मोर॥
सखि जन सोंपइतें[8] भेलउ हे राग।
गेल पाइअ जौं[9] हो बड़ भाग॥

न० गु०, प० ४८६

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ८३५)—१ आँचर। २ छाड़लह्। ३ बँधलह्। ७ आँचर। ८ सोँपइत। १० जौ।

शब्दार्थ—आदरि=आदर करके। वारि=निवारण करके=अलग करके। फोए=खोलकर। गोए=छिपाकर। पथ=मार्ग। सह=साथ। भोर=भुलाकर। राग=ईर्ष्या।

अर्थ—(सखी कहती है—तुम कृष्ण को) आदर करके ले आई; (किन्तु लाकर उन्हे) अलग करके धर दिया। (उनका) मुँह देखकर (भी अपना) आँचल नही छोड़ा (अर्थात्—उन्हें कुच-स्पर्श नही करने दिया।)

(अपना) केश खोलकर (फिर उसे) कसकर नही बाँधा! हे सुन्दरी! (तुमने) सारा रस छिपाकर रख लिया।

हे राधे! अब क्या पूछती है? (यह) अच्छा नही हुआ (अर्थात्—तुमने यह अच्छा नही किया। कारण, मैं) यत्न से कृष्ण को ले आई। (किन्तु वे) तुम्हारे दोष से चले गये।

(तुम्हारे) गुणों का विचार करके भुलाकर (कृष्ण) मार्ग मे साथ लग गये थे; (किन्तु तुमने ऐसा किया कि) मेरे आँचल का हीरा खो गया (अर्थात्—कृष्ण मेरे हाथ से निकल गये।)

सं० अ०—१ आँचर। ३ बँधलह्। ४ आनल। ५ दोषें। ६ गुन। ७ आचर। ८ सोंपइते। ९ जओ।

सखियो के सौंपने से (अर्थात्—सखियों ने ला सौंपा, इसीलिए तुम्हे) ईर्ष्या हो गई। (वे चले गये। अब) यदि (तुम्हारा) बड़ा भाग्य होगा, तो गये को पाओगी। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[१५२]

करओं[1] विनअ[2] जत जत मन लाइ।
पिआ[3] परिठब[4] पचताबके जाइ॥
धन धइरज[5] परिहरि पथ साचे।
करम[6] दोसे[7] कनकेओ भेल काचे॥
निठुर बालम्भु[8] सओं[9] लाओल सिनेहे।
न पुर[10] मनोरथ न छाड़ु सन्देहे॥
सुपुरुस[11] भाने मान धन गेल।
हृदय[12] मलिन मनोरथ भेल॥
जदि दूषन[13] गुन पहु न विचार।
बढ[14] भए पसरओ पिसुन पसार॥
परिजन चित नहि हित परथाब।
धरसने[15] जीव कतए नहि धाब॥
हम[16] अवधारि हलल परकार।
विरह सिन्धु जिव दए बरु[17] पार॥
भनइ विद्यापति सुन वरनारि।
धैरज कए रह[18] भेटत[19] मुरारि॥

न० गु०, प० ४९२

पाठभेद—

न० गु० (पद-संख्या ६४१)—१ करओ। २ विनती। ४ परिचब। ५ धइरजे। ७ दोसे। ९ सो। १० न पुरल। १२ दिन-दिन। १४ बड। १५ धरषने। १७ करु। १८ रहु। १९ मिलत।

सं० अ०—६ करमक। ७ दोषें। ८ बालभु। ११ सुपुरुष। १२ दिन-दिन। १४ बड़। १५ धरखने। १६ हमे। १७ करु। १९ मिलत।

मि० म० (पद-संख्या ४६७)—२ विनय। ३ पिया। ११ सुपुरुस। १३ दूसन। १४ वड़।

शब्दार्थ—मन लाइ=मन लगाकर। परिठव=प्रस्ताव। पचतावके=पश्चात्ताप के लिए। पथ=मार्ग। साचे=जुगाया। कनकेओ=सोना भी। भाने=ज्ञान से। पहु=स्वामी। वड़ भए=वड़ा होकर=वढकर। पसरओ=फैलता है। पिसुन=चुगलखोर। पसार=(प्रसार—सं०) प्रपञ्च। परिजन=साथ के आदमी। परथाव=प्रस्ताव—सं०। हित=लाभदायक। वरखने=उत्कट लाभ से। जीव=प्राण। धाव=दौड़ता है। अवधारि हलल=निश्चित कर लिया। परकार=उपाय। सिन्धु=समुद्र।

अर्थ—जितना अधिक मन लगाकर (मैं) विनती करती हूँ, (उतना ही अधिक) स्वामी का प्रस्ताव पश्चात्ताप के लिए होता है।

(मैंने) धैर्य-रूपी धन का त्यागकर प्रियतम के मार्ग को जुगाया (अर्थात्—प्रियतम के मार्ग का अनुसरण किया। किन्तु मेरे) भाग्य के दोष से सोना भी काँच हो गया।

निष्ठुर स्वामी से (मैंने) प्रेम किया। (इसीलिए) न (मेरा) मनोरथ पूर्ण होता है (और) न सन्देह (ही) दूर होता है!

सुपुरुष के ज्ञान से (अर्थात्—उन्हें सुपुरुष समझने के कारण मेरा) मान-रूपी धन चला गया (और) दिन-दिन (अर्थात्—धीरे-धीरे) मनोरथ (भी) मलिन हो गया।

यदि स्वामी दोष-गुण का विचार नहीं करेंगे (तो) चुगलखोरों का प्रपंच वढकर फैलेगा ही।

(मेरा) प्रस्ताव परिजनों के मन में लाभदायक नहीं है (अर्थात्—मेरा प्रस्ताव परिजनों को नहीं सुहाता है। फिर भी) उत्कट लाभ के लिए मेरे प्राण कहाँ नहीं दौड़ते हैं? (अर्थात्—किस-किसके पास नहीं जाते हैं?)

मैंने उपाय निश्चित कर लिया (अर्थात्—तय कर लिया कि) प्राण देकर विरह-रूपी समुद्र पार हो जाऊँगी।

विद्यापति कहते हैं—(अरी) वरनारी! सुनो। धैर्य (धारण) करके रहो—कृष्ण (अवश्य) मिलेंगे। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

विशेष—यह पद 'तरौनी-पदावली' में यत्किंचित् पाठभेद के साथ आगे भी है। अत, दूसरे का पाठभेद ऊपर दे दिया गया है।

[१५३]

दुरजन वचन न लह सव ठाम।
बुझए न रहए जावे परिनाम॥

ततहि दूर जा जतहि विचार।
दीप देले घर न रह अँधार॥
हमरि विनति सखि कहवि मुरारि।
सुपहु रोस कर दोस विचारि॥
से नागरि तोहे गुनक निधान।
अलपहि माने बहुत अभिमान॥
कके विसरलि हे पुरुव परिपाटि।
लाड़लि लतिका की फल काटि॥
भनइ विद्यापति एहु रस जान।
राए सिवसिंह लखिमा देवि रमान॥

न० गु०, प० ४९५

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' में भी है। अत., इसके लिए प्रथम भाग का ७० संख्यक पद देखिए।

[१५४]

पहुक वचन छल पाथर रेख।
हृदय धएल नहि होएत विशेख[1]॥
नागर भमर दुहु[2] एक रीति।
रस लए निरसि करए फिरि तीति॥
ओ पहिलहि बोल तोहेहि[3] परान।
पथ परिचय नहि राख निदान॥
यौवन[4] अवधि राख अनुबन्ध।
आगिला[5] विषय[6] अधिक परबन्ध॥
ओ बैसइतें[7] कत कर अवधान।
अति सानन्द भए कर मधुपान॥

सं० अ०—२ दुहु। ३ तोहेंहि। ५ अगिला।

उड़इतें[8] भर दे न कर सम्भाष[9]।
आगिला[10] कुसुम अधिक अभिलाष[11]॥
कि कहब माइ हे बुझत[12] अनेक।
नागर भमर दुअओ अविवेक॥
भनइ विद्यापति सुन वरनारि।
पेंमक रसे[13] बस होअ मुरारि॥

न० गु०, प० ४९९

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ४६८)—१ बिसेख। २ दुहु। ४ जौवन। ६ विसय। ७ बैसइत। ८ उडइत। ९ सम्भास। ११ अभिलास।

शब्दार्थ—विशेष=अन्तर। निरसि=निराश करके। फिरि=पुन.। तीति=(तिक्त—स०) तीता। ओ=वह। तोहंहि=तुम्ही। निदान=अन्त मे। अनुबन्ध=सम्बन्ध=लगाव। अगिला=आगे के=आगे होनेवाले। विषय=इन्द्रिय-सुख। बैसइते=बैठता हुआ। अवधान=ध्यान। उडइते=उडता हुआ। भर दे=भार देता है। अनेक=बहुत-कुछ।

अर्थ—(इतने दिनो तक) स्वामी का वचन पत्थर पर की रेख था (अर्थात्—पत्थर पर की रेख के समान अमिट था। इसीलिए) मन मे धर रखा था (निश्चय कर लिया था कि कोई) अन्तर नही होगा।

(किन्तु) नागर (और) भ्रमर—दोनों की एक रीति होती है। (दोनो ही) रस लेकर, निराश करके, फिर (सम्बन्ध को) तीता कर देते है।

वह (नागर) पहले कहता है (कि) तुम्हीं (मेरे) प्राण हो; (किन्तु) अन्त मे पथ-परिचय (भी) नही रखता है (अर्थात्—राह चलते भी नही टोकता है।)

यौवनावधि (यौवन-पर्यन्त ही वह) सम्बन्ध रखता है। आगे के विषय का (ही वह) अधिक प्रबन्ध (करता है।)

वह (भ्रमर) बैठता हुआ (कमलिनी का) कितना ध्यान करता है—अत्यन्त सानन्द होकर मधुपान करता है।

(किन्तु) उडंता हुआ (वह) भार दे जाता है (और) बात (भी) नही करता है। आगे के (अर्थात्—आगे मिलनेवाले) फूल की (ही) अधिक अभिलाषा करता है।

सं० अ०—१० अगिला। १२ बुझब। १३ रसें।

अरी मैया! (इससे अधिक) क्या कहूँगी? (इतने से ही) बहुत कुछ समझ जाओगी। (फिर भी इतना कहती हूँ कि) नागर (और) भ्रमर—दोनो विवेकशून्य होते है।

विद्यापति कहते है—(अरी) वरनारी! सुनो। कृष्ण प्रेम के रस से वश होते है। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[१५५]

की हमे साँझक एकसरि तारा
भादब चौठिक शशी[1]।
इथि दुहु माझ कओन[2] मोर आनन
जे पहु हसि[3] न हेरसी[4]॥
साए साए,
कहह कहह कन्हु, कपट करह जनु
कि मोर परल अपराधे॥
न मोञे[5] कबहु तुअ अनुगति चुकलिहु[6]
वचन न बोलल मन्दा।
सामि समाज पेमे अनुरञ्जिय[7]
कुमुदिनि सन्निधि चन्दा॥
भनइ विद्यापति सुनु वरजौवति
मेदिनि मदन समाने।
राजा सिवसिंह[8] रूपनरायन[9]
लखिमा देवि रमाने॥

न० गु०, प० ५००

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या १५१)–१ ससी। ३-४ जे पहु हेरसि न हँसी। ५ मोयँ। ८ शिवसिंह।

शब्दार्थ—एकसरि=अकेली। चौठिक=चौथ का। शशी=चन्द्रमा। इथि दुहु माझ=इन दोनों मे। आनन=मुख। हेरसी=देखते है। साए=सखी। अनुगति=अनुगमन=सेवा।

सं० अ०—२ कओन। ३ हँसि। ६ चुकलिहुँ। ७ अनुरञ्जिअ। ९ रूपनराअेन।

मन्दा=बुरा। सामि=स्वामी—स०। समाज=एकत्र होकर। अनुरञ्जिअ=सन्तुष्ट किया सन्निधि=समीप। मेदिनि=पृथ्वी। मदन=कामदेव।

अर्थ—क्या मैं शाम की अकेली तारिका हूँ, (क्या) भादो की चौथ का चन्द्रमा हूँ? इन दोनो मे मेरा मुख कौन है, जो स्वामी हँसकर (भी मेरी ओर) नही देखते है?

हे सखी! हे सखी!! कहो—कृष्ण से कहो। (अर्थात्—कृष्ण से पूछो।) कपट मत करो (अर्थात्—मुझे धोखा मत दो। उनसे पूछो कि) मुझसे कौन अपराध हुआ?

मैंने न कभी तुम्हारी (अर्थात्—कृष्ण की) सेवा मे भूल की, (न कभी) बुरा वचन कहा। चन्द्रमा के समीप कुमुदिनी के समान प्रेम से स्वामी को एकत्र होकर (अर्थात्—साथ रहकर) सन्तुष्ट किया।

विद्यापति कहते है—(अरी) वरयुवती! सुनो। लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह रूपनारायण पृथ्वी में कामदेव के समान है।

[१५६]

जइअओ जलद रुचि धएल कलानिधि
तइअओ कुमुद मुद देइ।
सुपुरुष[१] वचन कबहु[२] नहि बिचलए
जओं[३] बिहि बामेओ होइ॥
मालति ककें[४] तोञे होसि मलानी।
आन[५] कुसुम मधुपान विरत कए
भमर देब मोञे आनी[६]॥
दिन दुइ चारि आने[७] अनुरञ्जब
सुमरत सउरभ तोरा।
आनक[८] वचन[९] अनाइति पड़ला हे
से नहि सहजक भोरा॥

न० गु०, प० ५०२

सं० अ०—२ कवहुँ। ३ जओ। ४ ककें। ५ आन। ६ आनी। ७ आने। ८ आनक। ९ वचने।

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ८४२)—१ सुपुरुस। ३ जओं। ४ ककें। ६ आनि।

शब्दार्थ—जइअओ=यद्यपि। जलद=मेघ। रुचि=कान्ति=किरण। धएल=पकड रखना=ढक रखना। कलानिधि=चन्द्रमा। मुद=हर्ष। बिचलए= विचलित होना= टस-से-मस होना। विहि=(विधि—स०) विधाता। ककं=क्यों। होसि=होती है। आन=(अन्य—स०) दूसरे। कुसुम=फूल। विरत=विरक्त। आनी देव=ला दूंगी। अनुरञ्जब=सन्तुष्ट करेंगे। अनाइति=(अनायत्ति—सं०) पराधीनता। सहजक=स्वभाव के। भोरा=भोला=बुद्धू।

अर्थ—यद्यपि मेघ ने चन्द्रमा की किरणे ढक रखी है, तथापि (वह) कुमुद को हर्ष देता है (प्रसन्न करता है।)

यदि विधाता वाम भी हो जाय, (तो भी) सुपुरुष का वचन कभी टस-से-मस नही होता है।

हे मालती! तुम म्लान क्यो हो रही है? मै दूसरे फूलो के मधुपान से विरक्त करके भ्रमर को ला दूंगी।

(भ्रमर को) दो-चार दिन (ही) दूसरे (फूल) सन्तुष्ट करेंगे। (अन्त में वह) तुम्हारे सौरभ का ही स्मरण करेगा।

दूसरे के कहने से (वह) पराधीन हो गया है। (वास्तव मे) वह स्वभाव का बुद्धू नही है।

[१५७]

से भल जे बरु बसए विदेसे।
पुछिअ पथुक जन ताक उदेसे॥
पिआ[1] निकटहि बस पुछिओ न पुछइ[2]।
एहन[3] विरह दुख केदहु सहइ[4]॥
धनि धैरज[5] कर पिआ[6] तोर रसिया।
अबसउ दिन एक देत बिहुसिया॥
मधुरिओ वचन सून नहि काने।
आब अबसेओ हमे तेजब पराने॥
भनइ विद्यापति एहु रस भाने[7]।
राए सिवसिंह[8] लखिमा देइ[9] रमाने॥

न० गु०, प० ५०५

सं० अ०—२ पुछई। ३ अइसन। ४ सहई। ५ धइरज। ७ जाने ९ दे।

कवि विद्यापति गाते हैं (कहते है कि) स्वामी कहे हुए वचन का (अर्थात्—अपनी बात का) निर्वाह करते हैं।

लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह रूपनारायण (इसे) जानते हैं।

[१५९]

तुअ बिसवासे[1] कुसुमे भरु सेज।
वसन्तक रजनी चाँदक तेज॥
मन उतकण्ठित[2] कतए न धाब।
दह दिस सुन[3] नयन भमि आब॥
हरि हरि हरि तुय[4] दरसन लागि।
नागरि रयनि[5] गमाउलि जागि॥
सुपुरुस[6] भए नहि करिअए रोस[7]।
बड़ भए कपटी इ[8] बड़ दोष[9]॥
भनइ विद्यापति गरुबि बोल।
जे कुल राखए सेहे अमोल॥

न० गु०, प० ५११

पाठभेद—

मि० म० (पद-स० ३५७)—२ उतकठित। ३ सून। ९ दोस।

शब्दार्थ—रजनी=रात्रि। तेज= दिव्य ज्योती धाब=दौड़ता है। सून=शून्य। भमि= घूमकर। लागि=लिए। गमाउलि= बिता दी। गरुबि=(गुर्वी—स०) बड़ी।

अर्थ—वसन्त की रात्रि और चन्द्रमा की दिव्य ज्योति। (समय अनुकूल देखकर नायिका ने) तुम्हारे विश्वास से (अर्थात्—तुम्हारा विश्वास करके) फूलो से सेज भर दी।

(उसका) उत्कण्ठित मन (तुम्हारे लिए) कहाँ नही दौडता है? (किन्तु, तुम्हारे विना) दसो दिशाएँ सूनी हैं। (इसीलिए उसकी) आँखे घूमकर लौट आती हैं।

हरे! हरे!! हरे!!! तुम्हारे दर्शन के लिए नायिका ने जगकर रात बिता दी।

सुपुरुष होकर रोष नही करना चाहिए। बड़ा होकर कपटी होना—यह (तो और) बडा दोष है।

सं० अ०—१ बिसबासें। ३ सून। ४ तुअ। ५ रजनि। ६ सुपुरुष। ७ रोष। ८ ई।

विद्यापति (यह) बड़ी बात कहते है (कि) जो कुल (अर्थात्—कुलधर्म) को रखता है, वही अनमोल है।

[१६०]

रसिकक सरबस नागरि बानि।
भल परिहर न आदरे आनि॥
हृदयक कपटी वचन पियार।
अपने रसें उकठ कुसियार॥
आबे कि बोलब सखि बिसरल सेओ।
तुअ रूपे लुबुध मही नहि केओ॥
पएर पखाल रोषे नहि खाए।
अन्धरा हाथ भेटल हरजाए॥
तञे जे कलामति ओ अविवेक।
न पिब सरोज अमिय रस भेक॥
अकुलिन सञो जदि कए सदभाव।
तत कए कतए चतुरपन फाब॥
तोहरा हृदय न रहले खागि।
कतए सुनल अछ जुड़ हो आगि॥
भनइ विद्यापति सह कत साति।
से नहि विचल जकरि जे जाति॥

न० गु०, प० ५१२

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अतः, इसके लिए प्रथम भाग का १६९ सख्यक पद देखिए।

[१६१]

जसु मुख सेवक पुनिमक चन्दा।
नअनक[1] नेओछन नव अरविन्दा॥

सं० अ०—१ नअनक।

अधर निमाल मधुरि फुल थाका।
तोंहे[2] कके[3] पाउलि अमिअ सलाका।।
आइलि कलावति तुय[4] रति साधे।
तोहें[5] परिहरलि कओन[6] अपराधे।।
भउहक अनुचर मनमथ चापे।
पिक पञ्चम परिपन्थि अलापें[7]।।
जा सओं[8] बिहुसि[9] दरस अनुरागे।
अनल झाँप ते कएल पआगे।।
अनुभवि भङ्गुर भाव तोहारे।
संसअ न तेजए हृदय हमारे।।
की से अनागरि कि तोहें[10] अकामी।
सहज तोहर वा परजन्तगामी।।
भनइ विद्यापति न वोल सन्देहा।
सुपुरुस[11] वचन पसानक[12] रेहा।।
नृप सिवसिंह[13] देव एहु रस जाने।
सौभागे आगरि लखिमा देइ[14] रमाने।।

न० गु०, प० ५१३

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या १५४)—१ नयनक। २ तोँहु। ३ ककेँ। ४ तुअ। ६ कओने। ७ अलापे ८ सयँ। १० तोहेँ। १३ सिवसिंघ।

शब्दार्थ—पुनिमक=पूर्णिमा का। नेओछन=पोछन। अरविन्दा=कमल। अधर=ओष्ठ। निमाल=निर्माल्य—स०। थाका=है। अमिअ सलाका-(अमिअ=अमृत, सलाका=शलाका—स० =अमृत मे सनी चित्रकार की तूलिका। कलावती=चौसठ कलाओं की जानने-वाली। रति=प्रेम। साधे=अभिलाषा। परिहरलि=परिहार किया=त्याग किया। भउहक=भौंह का। मनमथ-चापे=कामदेव का धनुष। परिपन्थि=शत्रु। अलापे=(आलाप—स०) स्वर। जा सओ=जिससे। दरस=दिखलाती है। अनल झाँप=(अनलझम्प—स०) आग मे कूदकर

सं० अ०—२ तोहेँ। ३ ककेँ। ४ तुअ। ५ तोहेँ। ७ अलापे। ९ बिहुँसि। १० तोहेँ। ११ सुपुरुष। १२ पषानक। १४ दे।

प्राण तजना। ते=उसने। पआगे=प्रयाग मे। अनुभवि=अनुभव करके। भङ्गुर=कुटिल। अनागरि=जो चतुर नही है (स्त्री०)। अकामी=कामना-हीन। सहज=स्वभाव। परजन्त-गामी=(पर्यन्तगामी—स०) अन्त मे गमन (सम्भोग) करनेवाला है। पषानक=पत्थर (पर) की। रेहा=रेखा—स०। सौभागे आगरि=सौभाग्य की खान=सौभाग्यवती।

अर्थ—पूर्णिमा का चन्द्रमा जिसके मुँह का सेवक है, अभिनव कमल (अधखिला कमल) जिसकी आँख का पोछन है,

(और,) माधुरी फूल जिसके ओष्ठ का निर्माल्य है, (ऐसा चित्र बनानेवाली) अमृत की कूची तुमने क्यो पा ली? (अर्थात्—तुम्हे ऐसी सुन्दरी क्यो मिल गई?)

कलावती तुम्हारे प्रेम की अभिलाषा से आई थी। तुमने किस अपराध से (उसका) त्याग कर दिया?

(कलावती का सौन्दर्य ऐसा है कि) कामदेव का धनुष (उसकी) भौह का अनुचर है (और) उसका स्वर कोयल के पञ्चम (स्वर) का शत्रु है (अर्थात्—पचम स्वर को भी पराजित करनेवाला है।)

(वह) जिससे हँसकर अनुराग दरसाती है, (मानो) उसने आग मे कूदकर प्रयाग मे प्राण-त्याग किया है। (प्रयाग मे जो जिस कामना से प्राण-त्याग करता है, अगले जन्म मे उसे उसकी प्राप्ति होती है—ऐसी मान्यता है)

तुम्हारे कुटिल भाव का अनुभव करके मेरा हृदय संशय का त्याग नही करता है (अर्थात्—तुम्हारी कुटिलता देखकर मेरे मन मे सशय हो रहा है।)

क्या वही (नायिका) चतुरा नही है, क्या तुम्ही कामनाहीन हो? अथवा तुम्हारा स्वभाव (ही) अन्त मे सम्भोग करनेवाला है?

विद्यापति कहते है—सन्देह मत बोलो (अर्थात्—सन्देह की बात मत कहो। कारण,) सुपुरुष की बात पत्थर पर की लीक होती है।

सौभाग्यवती लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिहदेव इस रस को जानते है।

[१६२]

वचन रचन दए आनलि राही।
अवसर जानि बिसरलह[२] ताही॥
तोंहे[२] बड़ नागर ओ बड़ि भोरी।
अमिय[३] पियओलह विष सों[४] घोरी॥
चल चल माधव भल तुअ काजे।
जत बोललह तत सकल बेआजे॥

सं० अ०—२ तोहें। ३ अमिअ। ४ सओ।

सुपुरुख[५] जानि कएल बिसवासे।
के पतिआएत फुलल अकासे॥
पुरुख[६] निठुर हिअ[७] परिचय भेल[८]।
परधन लागि निजओ दुर गेल[९]॥
निअ[१०] मने न गुनल न पुछल केओ।
अपन चरन अपने देल छेओ॥
भनइ विद्यापति एहु रस जान[११]।
राए सिवसिह लखिमा देइ[१२] रमान[१३]॥

न० गु०, प० ५१७

पाठभेद—

सि० म० (पद-संख्या १५५)—१ बिसरलहु। २ तोहे। ७ हिय।

शब्दार्थ—आनलि=ले आई। राही=राधा। नागर=चतुर। भोरी=भोली। घोरी=घोलकर। भल=भला=अच्छा। बेआजे=(व्याज—स०) छल=बहाना। पतिआएत=प्रत्यय करेगा= विश्वास करेगा। छेओ=(छेद—स०) घाव।

अर्थ—वचन की रचना देकर (अर्थात्—बातें बनाकर मैं) राधा को ले आई; (किन्तु तुमने) अवसर जानकर (मौका पाकर) उसे भुला दिया।

तुम बड़े चतुर हो (और) वह बड़ी भोली है। (इसीलिए तुमने उसे) विष के साथ अमृत घोलकर पिला दिया।

हे कृष्ण! जाओ, जाओ। तुम्हारा काम अच्छा हुआ। (यह वक्रोक्ति है। अत, अर्थ हुआ—'तुम्हारा काम अच्छा नही हुआ।' कारण, तुमने) जितना कहा था, सो सब बहाना (मात्र) था।

सुपुरुष समझकर (मैंने तुम्हारा) विश्वास किया; (किन्तु अब) कौन विश्वास करेगा (कि) आकाश खिला है? अर्थात्—आकाश-कुसुम के समान तुम भी अविश्वसनीय हो।)

पुरुष निष्ठुर-हृदय होता है (अर्थात्—पुरुष का हृदय कठोर होता है,—इसका) परिचय हो गया। दूसरे के धन के लिए (उसका) अपना भी धन चला गया (अर्थात्—अपना स्वामी भी छूट गया।)

सं० अ०—५ सुपुरुष। ६ पुरुष। ८ भेला। ९ गेला। १० निज। ११ जाने। १२ दे। १३ रमाने।

(तुमने) न अपने मन में विचार किया (और) न किसी (दूसरे) को पूछा। अपने पैरों मे स्वय ही घाव दे दिया।

विद्यापति कहते है—लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिह इस रस को समझते हैं।

[१६३]

ओतए (अ) छलि धनि निअ पिअ पास।
एतए आइलि धनि तुअ बिसवास॥
एतए न ओतए एकओ नहि भेलि।
मदने आनि[1] आहुति कए देलि॥
सुन सुन माधव वचन हमार।
पाउलि निधि परिहरए गमार॥
तुअ गुन गन कहि कत अनुरोधि।
निअ पिअ[2] लग सौं[3] आनल[4] बोधि॥
एहन[5] सिथिल बुझल तुअ नेह।
आबे अनितहु[6] मोहि होइति[7] सन्देह॥
एँ बेरि[8] जदि परिहरबह आनि[9]।
आनहु[10] तेजबि अभिसारक बानि॥
भनइ विद्यापति सुनह मुरारि।
धनि परितेजिअ दोस[11] विचारि॥

न० गु०, प० ५१९

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ४६९)—२ पिय। ३ सौं। ५ एहना। ६ अनितुहु। १० अनहु। ११ दोष।

शब्दार्थ—ओतए=वहाँ। एतए=यहाँ। एकओ=एक भी। मदने=कामदेव। निधि=वह गड़ा हुआ धन, जिसके स्वामी का पता नही है। गमार=गँवार। लग=समीप।

सं० अ०—१ आनि। ३ सओ। ४ आनलि। ५ अइसन। ६ अनितहुँ। ७ होइत। ८ मे बेरि। ९ आनि। १० आनहुँ। ११ दोष।

बोधि=समझा-बुझाकर। अनितहुँ=लाने मे भी। होइत==हो रहा है। जे वेरि=इस वार। आनि=लाकर। आनहु=दूसरी भी। बानि=आदत।

अर्थ—धन्या (नायिका) वहाँ अपने स्वामी के पास थी। तुम्हारे विश्वास से (अर्थात्–तुम्हारा विश्वास करके) वह यहाँ आई।

न यहाँ (और) न वहाँ—एक भी नही हुआ। (अर्थात्—उसे न यहाँ तुम्हारा प्रेम मिला और न वहाँ स्वामी का। दोनो मे एक भी नही हुआ।) कामदेव ने लाकर (उसकी) आहुति दे दी।

हे कृष्ण! सुनो, मेरा वचन सुनो। गँवार (ही) पाई हुई निधि तजता है।

(मै) तुम्हारे गुणो का बखान कर, कितना अनुरोध करके, समझा-बुझाकर, अपने स्वामी के समीप से (उसे) ले आई।

तुम्हारा प्रेम ऐसा ढीला है—(सो मैने) समझ लिया। अब (उसे फिर) लाने मे भी मुझे सन्देह हो रहा है।

इस वार यदि (उसे) लाकर तज दोगे (तो) दूसरी (नायिकाएँ) भी अभिसार की आदत छोड़ देंगी।

विद्यापति कहते है—हे कृष्ण! सुनो। दोष का विचार करके प्रेयसी का त्याग करना चाहिए।

[१६४]

माधव सुमुखि मनोरथ पूर।
तुअ गुने लुबुधि आइलि एति[1] दूर॥
जे घर बाहर होइतें[2] फेदाए।
साहस तकर कहए नहि जाए॥
पथ पीछर[3] एक रयनि[4] अन्धार।
कुचजुग कलसें[5] जमुना भेलि पार॥
वारिद बरिस सकल महि पूल।
सह सह चउदिस बिसधर[6] बूल॥
न गुनलि एहनि[7] भयाउनि[8] राति।
जीवहु चाहि अधिक की साति॥

सं० अ०—२ होइतें। ३ पीछड़। ४ रजनि। ५ कलसें।। ६ विषधर। ७ अइसनि। ८ भआउनि।

भनइ विद्यापति दुहु मन बोध।
कमल न बिकस भमर अनुरोध॥

.न० गु०, प० ५२०

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ४४४)—१ एत। २ होइतें।

शब्दार्थ—पूर=पूरा करो। लुबुधि=लुब्ध होकर। फेदाए=थक जाती है। पथ=मार्ग। पीछर=(पिच्छल—सं०) फिसलनेवाला। रजनि=(रजनी—स०) रात्रि। वारिद=मेघ। महि=पृथ्वी। पूल=(पूर्ण—स०)=भर गया है। सह-सह=झुण्ड-के-झुण्ड। बिषधर=साँप। बूल=घूम रहे है। जीवहु चाहि=प्राण से बढकर। साति=(शास्ति—स०) दण्ड। बोध=ज्ञान=समझ। विकस=खिलता है।

अर्थ—(दूती की उक्ति—) हे कृष्ण! सुन्दरी का मनोरथ पूर्ण करो। (वह) तुम्हारे गुणो से लुभाकर इतनी दूर आई है।

जो घर से बाहर होते भी थक जाती है (वह यहाँ तक आ गई है। इसलिए) उसका साहस कहा नही जाता है। (अर्थात्—उसके साहस का बखान नही किया जाता है।)

एक (तो) रास्ता पिच्छल है, (दूसरा,) अँधेरी रात है, (तीसरा,) स्तन-रूपी कलश से (अर्थात्—स्तन-रूपी कलश के सहारे वह) यमुना पार हुई है। (अर्थात्—इससे अधिक उसके साहस का क्या बखान किया जाय?)

मेघ बरस रहा है। सारी पृथ्वी (पानी से) भर गया है। झुण्ड-के-झुण्ड साँप चारो ओर घूम रहे है।

(उसने) ऐसी भयावनी रात का (भी) विचार नही किया। प्राणो से बढ़कर अधिक दण्ड क्या हो सकता है? (अर्थात्—नायिका ने तुम्हारे लिए अपने प्राणो की भी बाजी लगा दी। इससे अधिक उसे कौन दण्ड मिल सकता है?)

विद्यापति कहते है—दोनो (नायिका और नायक) के मन मे ज्ञान है—समझ है; (किन्तु) भ्रमर के अनुरोध से कमल नही खिलता है।

[१६५]

माधव करिअ सुमुखि समधाने।
तुअ अभिसार कएल जत सुन्दरि
कामिनि करए के आने[1]॥

सं० अ०—१ आने।

बरिस पयोधर धरनि वारि भर
रयनि॰ महाभय - भीमा।
तइअओ चललि धनि तुअ गुन मने गुनि
तसु साहस नहि सीमा॥
देखि भवन-भिति लिखल भुजगपति
जसु मने परम तरासे।
से सुवदनि करे॰ झपइतें॰ फनि मनि
बिहुसि॰ आइलि तुअ पासे॥
निअ पहु परिहरि सँतरि बिखम नरि
अँगिरि महाकुल गारो।
तुअ अनुराग मधुर मदे॰ मातलि
किछु न गुनल॰ वरनारी॥
इ॰ रस रसिक विनोदक विन्दक
सुकवि विद्यापति गावे।
काम पेम दुहु एकमत भए रहु
कखने॰ की न करावे॥

न० गु०, प० ५२१

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ३३२)—४ झपइत।

शब्दार्थ—समधाने=(समाधान-स०) अंगीकार। पयोधर=मेघ। धरनि=धरती। वारि=पानी। रअनि=(रजनी—स०) रात्रि। महाभय-भीमा=बड़ी डरावनी। तसु=उसके। भवन-भिति=घर की दीवार। भुजगपति=शेषनाग। तरासे=(त्रास—सं०) भय। झपइते=ढकती हुई। फनि मनि=सर्पमणि। सँतरि=तैरकर। बिखम=दुर्गम। नरि=नदी। अँगिरि=अङ्गीकार करके। मातलि=माती हुई। रसिक=रसमर्मज्ञ। विनोदक=(काम-) क्रीडा का। विन्दक=जानकार। कखने (कस्मिन्नपि क्षणे—स०) किसी भी क्षण में=कभी।

अर्थ—हे कृष्ण! सुन्दरी को अंगीकार करो। इसने तुम्हारे अभिसार के लिए जितना किया, दूसरी कौन कामिनी (उतना) कर सकती है।

सं० अ०— २ रअनि। ३ करें॰। ५ बिहँसि। ६ मदें॰। ७ गुनलि। ८ ई॰।

मेघ बरस रहे है, धरती पानी से भर गई है, रात बड़ी डरावनी है, फिर भी मन में तुम्हारे गुणों का विचार कर सुन्दरी विदा हो गई। उसके साहस की सीमा नही है।

घर की दीवार पर लिखे (शेषशायी विष्णु के) शेषनाग को (भी) देखकर जिसके मन मे भय हो जाता है, वही हाथ से सर्पमणि को ढकती हुई, हँसकर, तुम्हारे पास आ गई।

अपने स्वामी का त्याग कर, दुर्गम नदी तैरकर (और अपने) महान् कुल की गालियाँ अङ्गीकार करके तुम्हारे प्रेमरूपी मधुर मदिरा से माती हुई सुन्दरी ने कुछ भी विचार नही किया (अर्थात्—किसी की भी परवाह नही की।)

(काम-)क्रीडा के जानकार रसमर्मज्ञ सुकवि विद्यापति यह रस गाते हैं (और कहते है कि) काम और प्रेम—दोनो एकमत होकर रहे (तो) कब क्या न करा दे? (अर्थात्—जब जैसा चाहे, वैसा करा दे।)

[१६६]

माधव जगत के नहि जान।
आरति आकुल जओ केओ आबए
बड़ कर समधान॥
हमें जे भाविनि भादब जामिनि
अएलाहु जानि सुठाम।
तोहें सुनागर गुनक आगर
पूरत सकल काम॥
कत न मन मनोरथ अछल
सबे निवेदब तोहि।
पूरुब पुने परीनति पओलाहे
पुछि न पुछह मोहि॥
हमे हेरि मुख विमुख कएलह
मन बेआकुल भेल।
तोहें जओ परे हीत उदासिन
जूग पलटि न गेल॥

स० अ०—३ अएलाहुं। ४ तोहें। ५ कतन। ६ पूछि। ७ पूछह। ८ तोहें।

एत सुनि हरि हँसि[9] हेरु धनि
कयलन्हि[10] सोर[11] सदान[12]।
तखने सुन्दरि पुलके[13] पुरलि[14]
कवि विद्यापति भान॥

न० गु०, प० ५२७

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ४७१)—१ हमे। २ ये। ११-१२ सो रस दान।

शब्दार्थ—आरति = (आर्त्ति—सं०) दुःख। समधान = (समाधान—सं०) ध्यान। भाविनि = (भाविनी—स०) स्वैरिणी = स्वच्छन्द घूमनेवाली। जामिनि = (यामिनी—स) रात्रि। सुठाम = (सुस्थाम—स०) अच्छी जगह। सुनागर = सुचतुर = बड़े—चतुर। आगर (आकर—सं०) खान। काम = इच्छा। अछल = थे। परीनति = (परिणति—सं०) परिणाम = फल। हेरि = देखकर। सोरस = (स्वरस-सं०) रुचि के अनुकूल। पुलकें = रोमांच से। पूरलि = भर गई।

अर्थ—हे कृष्ण! संसार में (ऐसा) कौन है, जो नही जानता है (कि) दुःख से व्याकुल होकर यदि कोई आता है (तो) बड़े (लोग उसका) ध्यान करते है (अर्थात्—उसकी खोज-खबर लेते हैं।)

मैं स्वैरिणी हूँ, (इसीलिए) भादो की रात मे अच्छी जगह जानकर (यहाँ) आई। (मन मे था कि) तुम बड़े चतुर हो—गुणों की खान हो, (इसलिए मेरी) सारी कामनाएँ पूरी होंगी।

मन में (और भी) कितने मनोरथ थे—(सो) सब तुम्हें निवेदन करूँगी; (किन्तु) पूर्वपुण्य से (यह व्यंग्य है, इसीलिए अर्थ हुआ—'पूर्वकृत पाप से' यह) फल मिला (कि तुम) पूछकर (भी) मुझे नही पूछते हो (अर्थात्—शिष्टाचारवश भी नही पूछते हो।)

मुझे देखकर (तुमने अपना) मुख विमुख कर लिया (अर्थात्—मुँह फेर लिया। इसलिए मेरा) मन व्याकुल हो गया। यदि तुम्ही दूसरे की भलाई (करने) मे उदासीन हो। (तो मैं समझती हूँ कि) युग (ही) न वदल गया!

इतना सुनकर कृष्ण ने हँसकर नायिका को देखा (और उसकी रुचि के अनुकूल दान किया।) कवि विद्यापति कहते हैं—उस समय सुन्दरी (हर्षातिरेकजन्य) रोमाच से भर गई। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

सं० अ०—९ हँसि। १० कएलन्हि। ११-१२ सोरस दान। १३ पुलकें। १४ पूरलि।

[१६७]

कुसुमबान विलास कानन
केस सुन्दर रेह।
निविल नीरद रुचिर दरसए
अरुण जनि निज देह॥
आज देखु गजराजगति
वरजुवति त्रिभुवन सार।
जनि,
कामदेवक विजयवल्ली
बिहलि बिहि संसार॥
सरद ससधर सरिस सुन्दर
वदन लोचन लोल।
विमल कञ्चन कमल चढ़ि जनि
खेलु खञ्जन जोल॥
अधर पल्लव नव मनोहर
दसन दालिम जोति।
जनि,
विमल विद्रुमदल सुधारसें
सीचि धरु गजमोति॥
मत्त कोकिल बेनु बीना
नाद त्रिभुवन भास।
मधुर हासें पसाहि आनलि
करए वचन विलास॥
अमर भूधर सम पयोधर
महघ मोतिम हार।

जनि,

हेम निम्मित सम्भुसेखर
गङ्ग निम्मल धार॥
करभ कोमल कर सुशोभित
जङ्घ जुअ आरम्भ।
मदन मल्ल बेआम कारनें
गढ़ल हाटक थम्भ॥
सुकवि एहो कण्ठहारे गाओल
रूप सकल सरूप।
देवि लखिमा कन्त जानए
राज सिवसिह भूप॥

न० गु०, प० ५४१

विशेष—यह पद 'रागतरगिणी' मे भी है। अत', इसके लिए 'रागतरगिणी' मे प्राप्त ७ सख्यक पद देखिए।

[१६८]

अलखिते गोप आएल चलि गेल।
ससरि खसल चिर समरि न गेल[1]॥
आध वदन तन्हि देखल मोर।
चान अँएठ[2] कय चलल[3] चकोर॥
कान्हु मोहि देखलिहु[4] गेलाँहु[5] लजाए।
तखनुक लाज अबहु नहि जाए॥
आधहु अधिक सकोचित अङ्ग।
मोलल[6] मृनाल[7] दोगुन भेल भङ्ग॥
चान्दने लेपित तनु रह सोए।
विरहक कसमसि निन्द नहि होय[8]॥

सं० अ०—१ भेल। २ अजिठ। ३ कए। ५ गेलाहुँ। ६ मोळल। ७ मृणाल। ८ होए।

रस के तन्त बुझए जदि केओ।
भाव भनए अभिनव जअदेओ[१]॥

न० गु०, प० ५५४

पाठभेद—

सि० म० (पद-सख्या ५५८)—३ करि। ४ देखलहु। ९ जयदेओ।

शब्दार्थ—अलखिते=(अलक्षित-सं०) अनजाने मे। गोप=श्रीकृष्ण। ससरि=खिसककर। खसल=गिरा हुआ। चिर=(चीर-स०) कपडा। समरि न भेल=सँभाल नही हुआ वदन=मुख। अठिय कए=जूठा करके। सकोचित=(सङ्कुचित—स०)सिकुडा। मोलल=मुड़ा हुआ। मृणाल=कमलनाल। भङ्ग=झुकना। तनु=शरीर। सोए रह=सो गई। कसमसि=कसमसाहट से=बेचैनी से। तन्त=(तन्त्र—स०)सिद्धान्त। केओ=(कोऽपि—स०)कोई भी।

अर्थ—अनजाने मे श्रीकृष्ण आये (और) चले गये। खिसककर गिरा हुआ कपड़ा (भी मुझे) सँभाल नही हुआ।

उन्होंने मेरा आधा मुँह देख लिया। (सो, ऐसा जान पडा, जैसे) चकोर चन्द्रमा को जूठा करके चला है।

कृष्ण ने मुझे देखा (तो मै) लजा गई। उस समय की लाज अब भी नही जा रही है।

(मेरा) शरीर आधे से भी अधिक सिकुड़ गया—मुडे हुए कमलनाल से (भी) द्विगुण होकर झुक गया।

(फिर) चन्दन से शरीर को अनुलेपित करके (मैं) सो गई; (किन्तु) विरह की बेचैनी से नीद नही हो रही है।

यदि कोई (एक आदमी) भी रस का सिद्धान्त समझे,(तो) अभिनव जयदेव (विद्यापति) रस का भाव कहें। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[१६९]

कि कहब ए सखि केलि-विलासे।
विपरित सुरत नाह अभिलासे॥
कुचजुग चारु धराधर जानी।
हृदय परत तें[१] पहु देल पानी॥
मातलि मनमथें[२] दुर गेल लाजे।
अविरल किङ्किनि कङ्कन बाजे॥

सं० अ०—९ जअदेओ १ तनें। २ मनमथें।

घाम-बिन्दु मुख सुन्दर जोती।
कनक-कमल जनि फरि गेलि मोती॥
कहहि न पारिअ[4] पिय[5] मुख भासा।
समुहु[5] निहारि दुहु[6] मने हासा॥
भनइ विद्यापति रसमय बानी[7]।
नागरि रम पिय[8] अभिमत जानी॥

न० गु०, प० ५८३

पाठभेद—

ग्रियर्सन (पद-सख्या ३३)—१ रस।

मि० म० (पद-सख्या ४९३)—१ तें। २ मनमयें। ३ परिअ परिअ। ६ दुहू। ७ वाणी।

शब्दार्थ—सुरत=रति। नाह=(नाथ—स०) स्वामी। कुचजुग=दोनों स्तन। चारु=सुन्दर। धराधर=पर्वत। परत=पड़ेगा=गिरेगा। तवे=इसीलिए। पानी=(पाणि—सं०) हाथ। मातलि=उन्मत्त हो गई। मनमथें=कामदेव से। अविरल=लगातार। घाम-बिन्दु=(घर्मबिन्दु—स०)पसीने की बूँदे। जोती=(ज्योति—स०)प्रकाश=चमक। जनि=जैसे। फरि गेलि=फले है। भासा=दीप्ति=कान्ति=छटा। समुह=सम्मुख—स०। जानी=जानकर।

अर्थ—हे सखी! (मैं अपना) केलि-विलास क्या कहूँ? (कारण,) स्वामी विपरीत रति की अभिलाषा करते है।

स्वामी (मेरे) दोनो स्तन को सुन्दर पर्वत समझकर, (वे) हृदय पर गिर पड़ेगे,—इसलिए (उनपर अपना) हाथ दिया। (अर्थात्—मेरे स्तन-रूपी दोनों पर्वत कही उनके हृदय पर न टूट गिरे,—यही समझकर स्वामी ने उन्हे अपने हाथ से पकड़ लिया)।

(मैं) कामदेव से उन्मत्त थी। (इसीलिए मेरी) लाज दूर चली गई। (फिर तो) लगातार किङ्किणी (और) कङ्कण बजने लगे।

(मेरे) मुँह पर पसीने की बूँदे चमकने लगी। (सो, ऐसा जान पड़ता था,) जैसे सोने के कमल मे मोती फले हैं।

स्वामी के मुँह की शोभा (तो) कही नही जाती है। (कारण,) सम्मुख देखते ही दोनो के मन मे हँसी आ जाती थी।

विद्यापति (यह) सरस बात कहते है (कि) चतुरा (नायिका) स्वामी का अभिमत जानकर रमण करती है।

विशेष—'तरौनी-पदावली' मे भणिता नही है। केवल 'विद्यापतेः' लिखा है। उपर्युक्त भणिता मिथिला मे प्रचलित पद से लिया गया है।—न० गुप्त।

सं० अ०—४ पिअ। ५ समुह। ६ दुहू। ८ पिअ।

[१७०]

आकुल चिकुरे बेढल मुख सोभ।
राहु करल ससिमण्डल लोभ॥
बड़ अपुरुब दुइ चेतन मेलि।
विपरित रति कामिनि कर केलि॥
कुच विपरीत विलम्बित हार।
कनक कलस बम दूधक धार॥
पिअ मुख सुमुखि चुम्ब तेजि ओज।
चान्द अधोमुख पिबए सरोज॥
किङ्किनि रटित नितम्बिनि छाज।
मदन महारथ बाजन बाज॥
फूजल चिकुर माल धर रङ्ग।
जनि जमुना मिलु गङ्ग तरङ्ग॥
वदन सोहाओन स्रम-जल-बिन्दु।
मदने मोति लए पूजल इन्दु॥
भनइ विद्यापति रसमय बानी।
नागरी रम पिय अभिमत जानी॥

न० गु०-५८४

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अत:, इसके लिए प्रथम भाग का ९३ संख्यक पद देखिए।

[१७१]

केस कुसुम छिरिआएल फूजि।
ताराएँ तिमिर छाड़ि हलु पूजि॥
हेरि पयोधर मनसिज आधि।
सम्भु अधोगति धए(ल) समाधि॥

विपरित रमन रमए वर नारि।
रति रस लालसे लुबुध मुरारि॥
चुम्बने करए कलामति केलि।
लोचन नाह निमीलित हेरि॥
ता दुहु रूप ताहि परथाव।
उदय वान दुहु जैसन सभाव॥

न० गु०, प० ५८८

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अत, इसके लिए प्रथम भाग का १४० सख्यक पद देखिए।

[१७२]

दुहुक संजुत चिकुर फूजल।
दुहुक दुहु वलावल बूझल॥
दुहुक अधर दशन[1] लागल।
दुहुक मदन चौगुन[2] जागल॥
दुअओ अधर करए पान।
दुहुक कण्ठ आलिङ्गन दान॥
दुअओ केलि समे समे फेली[3]।
सुरत सुखे विभावरि गेली[4]॥
दुअओ सअन[5] चेत न चीर।
दुअओ पिआसल[6] पीवए नीर॥
भनै[7] विद्यापति संसअ[8] गेल।
दुहुके[9] मदने[10] लिखन देल॥

न० गु०, प० ५९६

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ४७९)—१ दसन। ४ गेलि। ६ पियासल। ७ भन। ८ ससय। ९ दुहुक। १० मदन॥

सं० अ०—२ चउगुन। ३ फेलि। ४ गेलि। ५ सअन।

शब्दार्थ—सजुत=(सयुत–स०) बँधे हुए। चिकुर=केश। फूजल=खुल गये। बलाबल=(दोनो पक्षो की) तुलनात्मक शक्ति और निर्बलता=महत्त्व और महत्त्वहीनता। अधर=ओष्ठ। दशन=दन्त। मदन=प्रेम। समे-समे=एक-सी=बराबर। फेलि=फैलाया। विभावरि=रात्रि। गेलि=बीत गई। सबन=(शयन–स०) सहवास। चीर=वस्त्र। नीर=पानी। लिखन=(जय)-पत्र।

अर्थ—(यह सुरत-वर्णन है।) दोनों के बँधे हुए बाल खुल गये। दोनों ने दोनो का बलाबल समझ लिया।

दोनो के ओष्ठ मे दाँत लग गये (अर्थात्—दन्तक्षत हो गये।) दोनो का प्रेम चतुर्गुण होकर जग उठा।

दोनो (दोनो का) अधरपान करते है। (दोनो) दोनो के गले मे आलिंगनदान (करते है।)

दोनों की केलि एक-सी फैल गई। (इस तरह) सुरत-सुख में रात बीत गई।

दोनो सहवास मे वस्त्र (भी) नही चेतते (अर्थात्—कपडा भी सँभाल नही पाते।) दोनों पिपासार्त्त होकर पानी पीते है।

विद्यापति कहते हैं—(दोनों का) सशय चला गया (अर्थात्—दोनो मे कौन विजयी हुआ—यह सशय दूर हो गया। कारण,) कामदेव ने दोनो को जयपत्र दे दिया।

[१७३]

सामर पुरुसा[1] मझु घर पाहुन
रङ्गे विभावरि गेली।
काचा सिरिफल नखमुति लओलन्हि
केसु पखुरिया[2] भेली॥
से पिआ[3] दए गेल केसु पखुरिआ[4]
धरय[5] न पारल मोञे रे॥
ससि नव छन्दे[6] अनुरागक आँकुर[7]
धएल मोञे आँचरे गोइ[8]।
काजरें[9] कार सखीजन लोचन
दीठिहु मलिन जनु होइ[10]॥

सं० अ०—१ पुरुषा। २ पखुरिआ। ५ धरए। ६ छन्दें। ७ आकुर। ८ गोई। ९ काजरें। १० होई।

नूतन नेह ससारक[11] सीमा
उपचित कइसनि चोरी।
व्याध कुसुमसर सञो बिघटाउलि
रङ्ग कुरङ्गिनि मोरी॥
चारि भावे हमे भरमलि अछलाह[12]
समदि न भेले मोहि सेवा।
कान्हुरूप सिरि सिवसिह आएल
कवि अभिनव जअदेवा[13]॥

न० गु०, प० ६००

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ७७)—३ पिया। ४ पखुरिया। १३ जयदेवा।

शब्दार्थ—सामर=(श्यामल—स०) साँवला। मझु=मेरे। पाहुन=(प्राघुण—सं०) अतिथि। रङ्गे=आनन्द मे। विभावरि=रात्रि। काचा=कच्चा। सिरिफल=(श्रीफल—सं०) बेल। मुति=(मूर्त्ति—स०) आकार। लओलन्हि=ला दिया। केसु=(किंशुक—सं०) पलाश। पखुरिआ=पँखुडी। भेली=हुई। मोवे=मै। नव ससि=द्वितीया का चन्द्रमा। छन्दें=रूप मे। आकुर=अङ्कुर—स०। गोई=छिपाकर। कार=काली। दीठिहु=दृष्टि से। जनु=मत। नूतन=नया। संसारक=ससार की। सीमा=हद। उपचित=समृद्ध होने पर। कुसुमसर=कामदेव। बिघटाउलि=विघटित की गई। कुरङ्गिनि=हरिणी। मोरी=मेरी। भरमलि=भटकी हुई। समदि न भेले=सौंप नही हुई। सेवा=आराधना।

अर्थ—साँवले पुरुष (कृष्ण) मेरे घर मे अतिथि (होकर आये। इसलिए) आनन्द मे रात बीत गई।

(उन्होने) कच्चे बेल (स्तन) मे नख का आकार ला दिया (नखक्षत कर दिया। सो, ऐसा जान पड़ता है, जैसे) पलाश की पँखुड़ी हो गई (अर्थात्—स्तन-रूपी बेल पर नखक्षत-रूपी पलाश की पँखुड़ी उग आई।)

वे प्रियतम पलाश की पँखुड़ी दे गये, (किन्तु) मै (उसे) रख नही सकी।

द्वितीया के चन्द्रमा के रूप मे (उस) अनुराग के अकुर (नखक्षत) को मैंने आँचल में छिपा रखा।

(कारण,) सखियो की आँखे काजल से काली है। (इसलिए कही उनकी) दृष्टि से (वह) मलिन न हो जाय!

सं० अ०—११ संसारक। १२ अछलाहुँ। १३ जयदेवा।

अभिनव प्रेम संसार की (सांसारिक सुख की) हद है (अर्थात्—अभिनव प्रेम से बढ़कर संसार में कोई दूसरा सुख नहीं है। सो, उसके) समृद्ध होने पर (फिर) चोरी कैसी? (अर्थात्—इसे छिपाने का प्रयास कैसा?)

कामदेव ने व्याध के समान मुझ हरिणी के आनन्द को विघटित कर दिया। (अर्थात्—जिस प्रकार व्याध हरिणी को फाँसकर उसके आनन्द को विघटित कर देता है, उसी प्रकार कामदेव ने मुझे प्रेमसूत्र में फाँसकर मेरे आनन्द को—स्वच्छन्द विहार को—विघटित कर दिया।)

मैं चारों भाव में (विभाव, अनुभाव, संचारी भाव और स्थायी भाव में)[1] भटकी हुई थी। (इसलिए) मुझे सेवा (भी) नहीं सौंप हुई। (अर्थात्—भाव-विभोर रहने के कारण मैं उनकी आराधना भी नहीं कर सकी।)

कवि अभिनव जयदेव (विद्यापति कहते हैं कि) कृष्ण-स्वरूप श्रीशिवसिंह आये थे।

विशेष—'वरय न पारल मोजे रे' के बाद दो पंक्तियाँ छूट प्रतीत होती हैं।

[१७४]

मलयानिलें[1] साहर डार डोल।
कल कोकिल रव[2] मअन[3] बोल॥
हेमन्त हरन्ता दुहुक मान।
भमि भमर करए मकरन्द पान॥
रङ्ग[4] लागए (जनि) रितु वसन्त।
आनन्दित तरुणी[5] अवरु कन्त॥
आगङ्गनि कउतुकें[6] काम केलि।
माधव नागरि जन मेलि मेलि॥

न० गु०, प० ६०३

पाठभेद—

नि० न० (पद-संख्या ८४:)—२ रवे। ५ तरुनी।

शब्दार्थ—मलयानिलें=मलय पवन से। साहर=(सहकार—सं०) आम्रवृक्ष। कल=श्रुतिमधुर=कान को प्रिय लगनेवाला। कोकिल रव=कोयल का शब्द। भमि=घूम-घूमकर।

---

१. यहाँ विभाव—कृष्ण; अनुभाव—रोमाञ्च, स्वेद आदि; संचारी भाव—हर्ष, आवेग आदि और स्थायी भाव—रति है।

सं० अ०—१ मलयानिलें। ३ मअन। ४ रंग। ६ कउतुकें।

मकरन्द=मधु। रङ्ग=शोभा। अवरु=और। सारङ्गिनि=हिरन। कउतुके= आनन्द से। काम केलि=कामक्रीडा। मेलि मेलि=हिल-मिलकर।

अर्थ—(वन-विहार का वर्णन—) मलय-पवन से आम्र-वृक्ष की डाले डोल रही हैं। कोयल मीठी बोली बोल रही है, (जान पड़ता है, जैसे) कामदेव बोल रहा है।

हेमन्त ऋतु दोनों का (नायक और नायिका का) मान हर रही है। भौरे घूम-घूमकर मधुपान कर रहे हैं।

(ऐसी) शोभा छा रही है, (जैसे) वसन्त ऋतु हो। तरुणियाँ (और उनके) पति सानन्द हैं।

हिरणियाँ आनन्द से कामक्रीडा कर रही है (और) कृष्ण नागरिकाओ से हिल-मिलकर (कामक्रीडा कर रहे हैं।)

[१७५]

चल देखने जाउ रितु वसन्त।
जहाँ कुन्द कुसुम केतकि हसन्त॥
जहाँ चन्दा निरमल भमर कार।
रयनि उजागरि दिन अन्धार॥
मुगुधलि भामिनि करए मान।
परिपन्थिहि पेखए पञ्चबान॥
भनइ सरस कवि - कण्ठहार।
मधुसूदन - राधा - वन - विहार॥

न० गु०, प० ६०४

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अतः, इसके लिए प्रथम भाग का २६१ सख्यक पद देखिए।

[१७६]

आएल वसन्त सकल रसमण्डल
कुसुम भेल सानन्द।
फुलल मल्ली भुषल भ्रमरा
पीबि गेल मकरन्द॥
भाविनि आबे कि करह समधाने।

नहि नहि कए परिजन परिबोधह
लखन देखिय आबे आने॥
नख पद केसु पयोधर पूजल
परतख भए गेल लोते।
सुमेरु शिखर चढ़ि ऊगल ससधर
दह दिस भेल उजोते॥
बिनु कारने कुण्डल कैसे आकुल
एहओ जुगति नहि ओछी।
कुमकुम केरि चोरि भलि फाउलि
काँध न मेलिए पोछी॥
भनइ विद्यापति अरे वर जउवति
एहु परतख पँचबाने।
राजा सिवसिंह रूपनरायन
लखिमा देवि रमाने॥

न० गु०, प० ६०८

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अतः, इसके लिए प्रथम भाग का २३८ संख्यक पद देखिए।

[१७७]

अभिनव कोमल सुन्दर पात।
सबारे वने जनि परिहल[1] रात॥
मलय पवन डोलय[2] बहु भांति[3]।
अपने कुसुम रसें[4] अपने माति॥
देखि देखि माधव मने[5] उलसन्त।
बिरिदाबन भेल बेकत वसन्त॥

सं० अ०—२ डोलए। ३ भाँति। ४ रसेँ।

कोकिल बोलए साहर भार[१]।
मदने पाओल जग नव अधिकार॥
पाइक मधुकर कर मधु पान।
भमि भमि जोहए मानिनि जन[२] मान॥
दिसि दिसि से भमि विपिन निहारि।
रास बुझा(व)य[८] मुदित मुरारि॥
भनइ[९] विद्यापति इ[१०] रस गाव।
राधा माधव अभिनव भाव॥

न० गु०, प० ६०९

पाठभेद—

मि० म० (पद-सङ्ख्या ४७५)—१ पहिरल। २ डोलए। ३ माति। ४ रस। ५ मन। ७ पाठाभाव। ८ बुझावए।

शब्दार्थ—सवारे=सम्पूर्ण। परिहल=पहन लिया। रात=रक्त—सं०)लाल। कुसुम-रसे मधु से। माति=मतवाला होकर। उलसन्त=उल्लसित होते हैं। वेकत=(व्यक्त—सं०) प्रकट। साहर=(सहकार—सं०) आम्रवृक्ष। पाइक=(पायक—सं०) पीनेवाला=पियक्कड़।

अर्थ—(वन-विहार का वर्णन—) अभिनव, कोमल, सुन्दर पत्र! (जान पड़ता है,) जैसे पूरे जंगल ने लाल (वस्त्र) पहन लिया है।

फूल अपने मधु से स्वयं मतवाले होकर मलय पवन में नाना प्रकार में डोल रहे हैं।

वृन्दावन में वसन्त प्रकट हो गया। है (उसे) देख-देखकर कृष्ण मन-ही-मन प्रसन्न हो रहे हैं।

आम की डाल पर कोयल बोल रही है। (जान पड़ता है, जैसे) कामदेव ने संसार पर नया अधिकार पा लिया है।

पियक्कड़ भौंरा मधुपान कर रहा है (और) घूम-घूमकर मानिनियों का मान ढूँढ़ रहा है।

इसलिए, कृष्ण चारों ओर घूम-घूमकर, जंगल को देख-भालकर, खुश होकर रास समझा रहे हैं। (अर्थात्—रास रच रहे हैं)।

सुकवि विद्यापति इस रस को गाते हैं। (कारण, यह) राधा-कृष्ण का अभिनव भाव है। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

अ० स०—६ डार। ८ बुझावए। ९ सुकवि। १० ई।

[१७८]

लता तरुअर मण्डप जीति।
निरमल शशघर धवलिय भीति॥
पँउम नाल अइपन भल भेल।
रात परीहन पल्लव देल॥
देखह् माइ हे मन-चित लाय।
वसन्त विवाह् कानने थलि आय॥
मधुकर रमणी मङ्गल गाब।
दुजवर कोकिल मन्त्र पढ़ाब॥
करु मकरन्द हथोदक नीर।
विधु बरियाती धीर समीर॥
कनय केसुया मुति तोरण तूल।
लाबा बिथरल बेलिक फूल॥
केशु कुसुम करु सिन्दुर दान।
जउतुक पाओल मानिनि मान॥
अभिनव नागर बुझय वसन्त।
मति महेश रेनुक देवि कन्त॥

न० गु० प०, ६१०

विशेष—यह पद 'रागतरंगिणी' मे भी है। अतः, इसके लिए 'रागतरंगिणी' में प्राप्त ५ संख्यक पद देखिए।

[१७९]

मलय पवन बह्। वसन्त विजय कह्॥
भमर करइ रोल। परिमल नहि ओल[१]॥
ऋतुपति रङ्ग देला। हृदय रभस[२] भेला॥
अनङ्ग मङ्गल मेलि। कामिनि[३] करथु केलि॥

तरुन तरुनि सङ्गे। रइनि[4] खेपबि रङ्गे॥
विरहि विपद लागि। केसु उपजल आगि॥
कवि विद्यापति भान। मानिनी जिवन जान॥
नृप रुद्र सिंह[5] बरु। मेदिनी[6] कलपतरु॥

न० गु०, प० ६१३

पाठभेद—

मि०म० (पद-संख्या २१८)—१ ओर। २ रभसँ। ३ कामिनी। ५ रुद्रसिंघ। ६ मेदिनि।

शब्दार्थ—रोल=रोर—स० कोलाहल। परिमल=सुगन्धि=सुवास। ओल=अन्त। ऋतुपति=वसन्त। रङ्ग=ठाट-बाट। रभस=उत्सुकता। अनङ्ग=कामदेव। मङ्गल=कल्याण-कारी। मेलि=मिलकर। रअनि=(रजनी—स०) रात्रि। रङ्गे=आनन्द मे। लागि=लिए। केसु=(किंशुक—स०) पलाश। वरु=(वर—स०) श्रेष्ठ।

अर्थ—दक्षिण पवन वह रहा है। (सो, ऐसा जान पड़ता है, जैसे वह) वसन्त की विजय कह रहा है (अर्थात्—वसन्त की विजय की घोषणा कर रहा है।) भौंरे कोलाहल कर रहे है। सुवास का (कही) अन्त नही।

वसन्त ने ठाट-बाट दिया। हृदय मे उत्सुकता जगी। मंगलमय कामदेव से मिलकर (अब) कामिनियाँ केलि करे।

तरुण (और) तरुणियाँ साथ मिलकर आनन्द से रात वितायें। विरहियो की विपत्ति के लिए पलाश मे आग पैदा हो गई (अर्थात्—आग के समान पलाश (के फूल) विरहियों को सन्तप्त करने लगे।)

कवि विद्यापति कहते हैं—पृथ्वी पर कल्पतरु के समान (उदार) श्रेष्ठ राजा रुद्रसिंह मानिनी का जीवन जानते है।

[१८०]

अभिनव पल्लव बइसक देल।
धवल कमल फुल पुरहर भेल॥
करु मकरन्द मन्दाकिनि पानि।
अरुण[1] अशोग[2] दीप दिहु आनि[3]॥
माइ हे आज दिवस पुनमन्त।
करिअ[4] चुमाओन[5] राए[6] वसन्त॥

सं० अ०—४ रअनि। २ अशोक। ३ दिहु आनि। ५ चुमाओन।

सपुन सुधानिधि दधि भल भेल।
भमि भमि भमरइ[7] हकारइ[8] देल॥
केसु कुसुम सीदुर[9] सम भास।
केतकि धूलि[10] बिथुरलहु[11] परवास॥
भनइ विद्यापति कवि कण्ठहार।
रस बुझ शिवसिंह[12] शिव अवतार[13]॥

न० गु०, प० ६१४

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या १४०)—१ अरुन। ३ दहु आनि। ४ करिए। ६ राय। ७ भमरिह। ८ हँकारइ। ९ सिंदुर। १० धूल। १२ सिवसिंघ। १३ सिव।

शब्दार्थ—बइसक=बैठने का आसन। धवल=उजला। पुरहर=(पुरोघट—स०) मांगलिक कार्य मे यजमान के आगे रखा जानेवाला घड़ा। मकरन्द=पुष्परस=मधु। मन्दाकिनि=गंगा। अरुण=लाल। आनि=लाकर। पुनमन्त=शुभ। चुमाओन=एक मांगलिक क्रियाविशेष। राए=राजा । सपुन=सम्पूर्ण=पूरा। सुधानिधि=चन्द्रमा। भल=अच्छा। हकारइ=हँकार भी। केसु=(किंशुक—स०) पलाश। केतकि=केवड़ा। बिथरल=बिखर रही है=फैल रही है। परवास =आच्छादन =दुपट्टा।

अर्थ—(वसन्त को) बैठने के लिए अभिनव पल्लव का आसन दिया (और) उजला कमल का फूल मांगलिक कार्य मे यजमान के आगे रखा जानेवाला घड़ा हुआ।

मधु को गंगाजल किया (और) लाल अशोक को लाकर दीप दिया।

अरी मैया! आज शुभ दिन है। (इसलिए) राजा वसन्त का 'चुमाओन' करो।

पूरा चन्द्रमा अच्छा दही हुआ। (मिथिला मे दही जमाने का बरतन, जिसे 'छाँछ' और 'मटकुड़' कहते है, वर्त्तुलाकर होता है। इसलिए उसमे जमाया हुआ दही पूर्ण चन्द्रमण्डल के समान दिखलाई पड़ता है।) भौरे घूम-घूमकर हँकार (आमन्त्रण) भी दे आये।

पलाश के फूल सिन्दूर के समान प्रतीत होते है (और) केवड़े की धूल दुपट्टे के समान फैल रही है।

कविकण्ठहार विद्यापति कहते है (कि) शिव के अवतार शिवसिंह (इस) रस को समझते है। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

सं० अ०—७-८ भमर इहकारइ देल। ९ सीन्दुर। ११ बिथुरल।

[१८१]

परदेस गमन जनु करहुं कन्त।
पुनमत पावए ऋतु वसन्त॥
कोकिल कलरवें पुरल चूत।
जनि मदन पठाओल अपन दूत॥
के मानिनि आबे करति मान।
विरहें विषम भेल पञ्चबान॥
बह मलयानिल पुरुब जानि।
मारए पचसरं सुमरि कानि॥
विरहें बिखिनि धनि किछु न भाव।
चानने कुङ्कुमे सखि लगाव॥
विद्यापति भन (कवि) कण्ठहार।
कृष्ण-राधा - वन - विहारं॥

न० गु०, प० ६२०

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ४७४)—पाठभेद नहीं है।

शब्दार्थ—पुनमत=पुण्यवान्। कलरवें=मधुर ध्वनि से। पुरल=भर गया। चूत=आम्र। जनि=जैसे। मदन=कामदेव। विषम=खतरनाक। पञ्चबान=कामदेव। पुरुब=पहले की। जानि=जानकर। पँचसर=कामदेव। कानि=बैर। बिखिनि=(विखिन्न—स०) उदास। कुङ्कुमे=रोली।

अर्थ—हे स्वामी! पुण्यवान् (ही) वसन्त ऋतु पाते है। (इसलिए, इस वसन्त ऋतु में) विदेश मत जाइए।

कोकिल के कलरव से आम्र (—कुज) भर गया। (जान पड़ता है,) जैसे कामदेव ने अपना दूत भेजा है।

अब कौन मानिनी मान करेगी? (अर्थात्—अब मैं मान नही करूंगी। कारण,) विरह से (विरह की सम्भावना से ही) कामदेव खतरनाक हो गया है।

सं० अ०—१ कलरवें। २ विरहें। ३ पँचसर। ४ विरहें। ५ विद्यापति भन कवि-कण्ठहार। मधुसूदन-राधा-वन-विहार॥

मलयानिल पहले का (वैर) जानकर बह रहा है। (और) कामदेव पहले का वैर का स्मरण कर मार रहा है।

नायिका विरह से (विरह की सम्भावना से ही) उदास है। (उसे) कुछ (भी) भाता नही है। सखियाँ चन्दन (और) रोली लगा रही है।

(कवि-) कण्ठहार विद्यापति राधा-कृष्ण का वन-विहार कहते हैं।

[१८२]

न जानल कोन[1] दोसें[2] गेलाह विदेस।
अनुखने झखइते[3] तनु भेल सेस॥
बुझहि न पारल निअ[4] अपराध।
प्रथमक प्रेम दइबें[5] करु बाध॥
बेरि एक दइब दहिन जञो होए।
निरधन धन जके धरब मोञे गोए॥
भनइ विद्यापति सुन वरनारि।
धइरज कए रह मिलत मुरारि॥

न० गु०, प० ६३२

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ५११)—३ झखइत। ५ दइब।

शब्दार्थ—अनुखने=(अनुक्षण—स०) लगातार। तनु=शरीर। सेस=(शेष—स०) समाप्त।। दइबे=विधाता ने। दहिन=(दक्षिण—स०) अनुकूल। जके=समान। गोए=छिपाकर।

अर्थ—जान नही पाई (कि स्वामी मेरे) किस दोष से विदेश गये? लगातार झखते हुए (मेरा) शरीर समाप्त हो गया।

(मैं) अपना अपराध समझ नही सकी। विधाता ने प्रथम प्रेम मे (ही) बाधा डाल दी।

यदि एक बार भी विधाता अनुकूल हो जाय (तो) निर्धन के धन के समान मैं (प्रियतम को) छिपाकर रखूंगी।

विद्यापति कहते है—अरी वरनारी! सुनो। धैर्य (धारण) करके रहो। कृष्ण (अवश्य) मिलेगे।

सं० अ०—१ कओन। २ दोषें। ४ निज। ५ दइबें।

[१८३]

मने छलि पुरुब पेम भरे भोरी।
भान अछल पिआ आइति मोरी
ए सखि सामि अकामिक गेला।
जिवहु अराधन अपन न भेला॥
जाइते पुछलन्हि भलेओ न मन्दा।
मन बसि मनहि बढ़ाओल दन्दा॥
सुपुरुस जानि कएल तुअ सेरी।
पाओल पराभव अनुभव बेरी॥
तिला एक लागि रहल अछ जीबे।
बिन्दु सिनेह बरइ जनि दीबे॥
चाँद वदनि धनि न झाँखह आने।
तुअ गुन सुमरि आओब पुनु कान्हे॥
भनइ विद्यापति एहु रस जाने।
राए सिवसिंह लखिमा देवि रमाने॥

न० गु०, प० ६३९

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अतः, इसके लिए प्रथम भाग का ८ सख्यक पद देखिए।

[१८४]

पहिलि पिरीति परान आँतर[1]
तखने अइसन[2] रीति।
से आबे कबहु[3] हेरि न हेरथि
भेलि निम सनि तीति॥

सं० अ०—१ आतर। २ अइसनि। ३ कबहुँ।

साजनि जिबथु[४] सए पचास।
सहसे रयनि रमनि[५] खेपथु
मोराहु तन्हिकि[६] आस।
कतने जतने गउरि अराधिअ
मागिअ[७] स्वामि सोहाग।
तथुहु अपन करम भुज्जिअ[८]
जइसन जकर भाग।।
समय गेले मेघे बरीसब
कीदहु[९] तें[१०] जलधार।
सित समापले वसन पाइअ
ते दहु[११] की उपकार।।
रयनि[१२] गेले दीपे[१३] निबोधिअ
भोजन दिवस अन्त।
जउवन गेले जुवति पिरिति
की फल पाओत कन्त।।
धन अछइते[१४] जे नहि भोगए
ता मने हो पचताब।
जउवन जीवन बड़ मिरापन
गेले पलटि न आब।।
भन विद्यापति सुनह ज उवति
समय बुझ[१५] सयान[१६]।
राजा सिवसिंह[१७] रूपनरायन[१८]
लखिमा देवि[१९] रमान।।

न० गु०, प० ६४५

सं० अ०—४ जीबयु। ५ रअनि। ७ माँगिअ। ८ भुञ्जिअ। १० ते। १२ रअनि। १३ दीप। १५ बूझ। १६ सआन। १८ रूपनराअेन।

पाठभेद—

सि० म० (पद-संख्या १६१)—३ कवहु। ६ तन्हिक। ८ भुञ्जिअ। ९ कादहु। १० तें। ११ तें दहु। १४ अछइत। १७ सिवसिंव। १९ देइ।

शब्दार्थ—परान आतर=(प्राणान्तर—सं०) प्राण के समान। निम सनि=नीम के समान। तीति=तिक्त—स०। सए पचास= (१००+५०=१५०) डेढ़ सौ। रअनि= (रजनी—सं०) रात्रि। खेपथु=वितावे। तन्हिकि=उन्ही की। तथुहु=तो भी। कीदहु=क्या। जलधार=पानी का प्रवाह=वर्षा। सित=(शीत—स०) जाड़ा। वसन=वस्त्र। तेदहु=उससे। निबोधिअ=समझाइए। दिवस=दिन। अछइते=रहते हुए भी। पचताव=पछतावा। निरापन= (निरापन्न—स०) पराधीन। सआन=(सज्ञान—स०) बुद्धिमान्।

अर्थ—पहला प्रेम प्राण के समान (प्रिय) होता है। (सो,) उस समय (अर्थात्—प्रथम प्रेम के समय) ऐसी (ही) रीति थी। (किन्तु) वे ही अब देखकर भी कभी नही देखते हैं (अर्थात्—देखकर भी आँखे फेर लेते है। उनके लिए अब मैं) नीम के समान तिक्त हो गई हूँ।

हे सखी! (वे) डेढ सौ (वर्ष) जीये। (अर्थात्—'शतायुर्वै पुरुष.'—इस वेद-वाक्य के अनुसार पुरुष शतायु होता है, किन्तु वे उससे भी बढ़कर डेढ़ सौ वर्ष जीये।) हजारो रमणियो के साथ रात बिताये। मुझे भी उन्ही की आशा है।

कितने ही यत्न से गौरी की आराधना करो—स्वामी का सुहाग माँगो, फिर भी जिसका जैसा भाग्य है, (वह वैसा ही) अपना कर्म-(फल) भोगती है।

समय बीत जाने पर (यदि) मेघ बरसेगा, (तो) उस बारिश से क्या होगा? जाड़ा बीत जाने पर (यदि) वस्त्र पाऊँगी, (तो) उससे क्या उपकार होगा?

रात बीत जाने पर दीप समझाने से (दीया जलाने से और) दिन के अन्त मे (शाम मे) भोजन (करने) से क्या (उपकार) होगा? इसी प्रकार यौवन बीत जाने पर युवती की प्रीति से स्वामी क्या फल पायेंगे?

धन रहते हुए भी जो भोगता नही है, उसके मन मे पछतावा रह जाता है। यौवन (और) जीवन बड़े पराधीन हैं। बीत जाने पर (वे) लौटकर नही आते।

विद्यापति कहते हैं—(अरी) युवती! सुनो। बुद्धिमान् अवसर समझता है। लखिमा-देवी के रमण राजा शिवसिंह रूपनारायण (इसे समझते है।)

[१८५]

लोचन धाए फेधाएल
हरि नहि आएल रे।
शिव शिव जिवओ न जाए
आसे[१] अरुझाएल रे॥

मन करि[१] तँह[२] उड़ि जाइअ
जाँहा[४] हरि पाइअ रे।
पेम परसमनि जानि
आनि[५] उर लाइअ रे॥
सपनहु सङ्गम पाओल
रङ्ग बढ़ाओल रे।
से मोर बिहि बिघटाओल
निन्दओ हराएल रे॥
भनइ[६] विद्यापति गाओल
धनि धइरज कर[७] रे।
अचिरे मिलत तोहि बालम्भु[८]
पुरत मनोरथ रे॥

न० गु०, प० ६४६

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ५२१)—१ आस। २ करे। ४ जहाँ। ७ धर। ८ बालमु।

शब्दार्थ—लोचन=आँखे। फेधाएल=थक गईं। जिवओ=प्राण भी। करि=करती हूँ। उर=हृदय। लाइअ=लगा लूँ। सङ्गम=मिलन। रङ्ग=अनुराग। बिहि=विधाता। हेराएल=खो गई। अचिरे=शीघ्र। बालभु=(वल्लभ—स०) स्वामी।

अर्थ—आँखे दौड़कर थक गई, (अर्थात्—रास्ता देखते-देखते थक गई; किन्तु) कृष्ण नही आये। शिव! शिव!! (मेरे) प्राण भी नही जाते है। (उन्ही की) आशा में उलझे हुए है।

मन मे करती हूँ (कि) जहाँ कृष्ण को पाऊँ, वहाँ उड़ जाऊँ (और उन्हें) प्रेमरूपी स्पर्श-मणि समझकर, लाकर हृदय से लगा लूँ।

स्वप्न मे (कृष्ण से) मिलन हुआ (और) अनुराग बढ़ाया; (किन्तु) विधाता ने मेरे उस (अनुराग) को भी नष्ट कर दिया। (कारण, मेरी) नीद खो गई।

सुकवि विद्यापति ने गाया (कहा कि) हे धन्ये! धैर्य धारण करो। शीघ्र ही तुम्हे स्वामी मिलेंगे। (और तुम्हारा) मनोरथ पूरा होगा। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

सं० अ०—२ तहँ। ४ जाहाँ। ५ आनि। ६ सुकवि। ७ धर। ८ बालमु।

[१८६]

अविरल परए मदन सरधारा ।
एकल देह कत सहत हमारा ॥
सपनेहु तिला एक तहिं[1] सञो रङ्गे ।
निन्द बिदेसल ताहि पिया[2] सङ्गे ॥
कान्ह कान लागि कहिहि भमरा ।
तोजे[3] जानसि दुख अहनिसि हमरा ॥
एतबा बोलि कहब मोरि सेवा ।
तिरथ जानि जल अञ्जुलि देवा ॥
भनइ विद्यापति एहु रस जाने ।
राए सिवसिंह[4] लखिमा देइ[5] रमाने ॥

न० गु०, प० ६४९

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या १६२)—१ तन्हि। ३ तोँने। ४ सिवसिंघ।

शब्दार्थ—अविरल=लगातार। मदन=कामदेव। सरधारा=वाण-वृष्टि। एकल=अकेला। तिला एक=क्षणभर के लिए। रङ्गे=प्रेम=अनुराग। विदेसल=विदेश चली गई। लागि=लगकर=सटकर। कहिहि=कहो। तोजे=तुम। अहनिसि=(अहर्निश—सं०) दिन-रात। हमारा=मेरा। तिरथ=(तीर्थ—स०)। जल अञ्जुलि=जलाञ्जलि।

अर्थ—लगातार कामदेव के वाणों की वृष्टि हो रही है। (अर्थात्—कामदेव लगातार वाण वरसा रहा है। सो,) अकेला मेरा शरीर कितना सहेगा (कितना बरदाश्त करेगा?)

स्वप्न में भी क्षण-भर के लिए उनके साथ अनुराग होता; (किन्तु सो भी नहीं हो रहा है। कारण,) प्रियतम के साथ (मेरी) नीद (भी) विदेश चली गई।

हे भ्रमर! कृष्ण के कान से सटकर, (जिससे कोई दूसरा नहीं सुन सके—मेरा उपर्युक्त सन्देशा) कहना। (कारण,) तुम मेरे दिन-रात का दुःख जानते हो।

इतना कहकर (पीछे) मेरी सेवा कहना, (अर्थात्—मेरी इतनी सेवा कर देने को कहना कि किसी तीर्थ मे पहुँचने पर) तीर्थ जानकर (मुझे) जलाजलि दे दें।

विद्यापति कहते हैं—लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह इस रस को जानते हैं।

सं० अ०—१ तन्हि। २ पिआ। ३ तोजें। ५ दे।

[१८७]

नउमि दसा[1] देखि गेलाहे नड़ाए ।
दसमि दसा[2] उपगति भेलि आए ॥
हुन्हि अरजल अपजस अपकार ।
हमे जिवे[3] अङ्गिरल जम बनिजार ॥
आबे सुखें[4] कन्हाइ करथु विदेस ।
सुमरि जल(ा)ञ्जलि[5] दिहुथि[6] सन्देस ॥
बह मलयानिल झर मकरन्द ।
ऊगओ[7] सहस दस दारुन चन्द ॥
करओ कमल-वन केलि भमरा ।
आबे की भल मन्द होएत हमरा ॥
भनइ विद्यापति निरदय कन्त ।
एहि सों[8] भल बरु जीवक अन्त ॥

न० गु०, प० ६५०

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ५२२)—१ दशा। २ दशा। ५ जलाञ्जलि। ७ उगओ। ८ सों।

शब्दार्थ—नउमि दशा[1]=जडता। नड़ाए=छोड़कर। दसमि दसा[2]=मृत्यु। उपगति भेलि=प्राप्त हुई=उपस्थित हुई। हुन्हि=उन्होने। अरजल=उपार्जन किया। अपजस=बदनामी। जिवें=प्राणों से। अङ्गिरल=अगीकार किया। बनिजार=वह बनिया, जो घूम-फिर-कर सौदा खरीदता-बेचता है। दिहथि=दे। उगओ=उगे। दारुन=निर्दय। भल मन्द=भला-बुरा। एहि सओ=इससे।

अर्थ—(स्वामी मेरी) जडता देख, छोड़कर चले गये, (किन्तु अब तो) मौत आकर उपस्थित हो गई। (विरह की सम्भावना-मात्र से नायिका मे जडता आ जाती है और विरह होने पर मृत्यु आ पहुँचती है।)

सं० अ०—३ जिवें। ४ सुखें। ५ जलाञ्जलि। ६ दिहथि। ७ उगओ। ८ सओ।

१-२. अभिलाषश्चिन्तास्मृतिगुणकथनोद्वेगसम्प्रलापाश्च ।
उन्मादोऽथ व्याधिर्जडता मृतिरिति दशात्र कामदशाः॥
—साहित्यदर्पण, परिच्छेद ३, कारिका १९०।

उन्होंने (मेरा) अपकार (करके अपने) अपयश का उपार्जन किया। (कारण,) मैंने प्राणो से यमरूपी वणिक् को अङ्गीकार कर लिया।

अब कृष्ण सुख से विदेश करे (अर्थात्—विदेश मे जा बसे और मेरा) स्मरण करके जलांजलि का सन्देश दें।

(अब) मलय-पवन बहे, मकरन्द झरे, दस हजार निर्दय चन्द्रमा उगे,

(अथवा) कमल-वन मे भौंरे केलि करे! अब मेरा क्या भला-बुरा होगा? (अर्थात्— मैं प्राण तज रही हूँ। इसलिए अब जो कुछ होना हो—हो जाय। मेरा क्या बिगड़ेगा?)

विद्यापति कहते हैं—स्वामी निर्दय हैं। (इसलिए) इस (जीवन) से मर जाना ही अच्छा है।

[१८८]

कुसुमे रचल सेज मलयज पङ्कज
पेयसि सुमुखि समाजे।
कत मधुमास विलासे गमाओल
अब पर कहइते लाजे॥
सखि हे दिन जनु काहु अवगाहे।
सुरतरु तर सुखे जनम गमाओल
धुथुरा तर निरबाहे॥
दखिन पवन सउरभ उपभोगल
पिउल अमिय रस सारे।
कोकिल कलरव उपवन पूरल
तन्हि कत कयल विकारे॥
पातहि सओ फुल भमर अगोरल
तरु तर लेलन्हि वासे।
से फुल काटि कीटे उपभोगल
भमरा भेल उदासे॥
भनइ विद्यापति कलिजुग परिनति
चिन्ता जनु कर कोइ।

अपन करम अपने पए भुञ्जिय
जओ जनमान्तर होइ॥

न० गु०, प० ६५२

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अतः, इसके लिए प्रथम भाग का १६७ संख्यक पद देखिए।

[१८९]

कुन्द कुसुम भरि सेज सोहाओन[1]
चान्द इजोरिय[2] राति।
तिला एक सुपहु समागम पाओल
मास बरख भेल साति॥
हरि हरि,
पुनु कइसे पलटि मधुरपुर जाएब
पुनु कइसे भेटत मुरारि।
चिन्ता- जाल पड़लि हरिनी सनि
कि करब बिरहिनि नारी[3]।
एक(ल)[4] भमर भमि[5] बहुल कुसुम रमि[6]
कतहु न केओ कर बाध।
बहुवल्लभ सओ सिनेह बढ़ाओल
पड़ल हमर[7] अपराध॥
दिवसे दिवसे बेआधक[8] अधिकाएल
दारुण भेल पचबान[9]।
आओर बरख कत आसे गमाओब
संसअ परल परान॥
भनइ विद्यापति सुनु बर जौवति[10]
मन चिन्ता करु त्याग।

सं० अ०—१ सोहाओन। २ इजोरिअ। ३ नारि। ४ एकल। ५ भम। ६ रम। ८ बेआधहु। ९ पँचबान। १० वरजउवति।

अचिर मिलत हरि रहु धैरज धरि
सुदिने पलटत[११] भाग ॥
न० गु०, प० ६५४

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ५१७ ख)—२ इजोरिए। ७ हमार। ११ पलटए।

शब्दार्थ—कुन्द=पुष्पविशेष। कुसुम=फूल। सोहाओने=सुहावनी। इजोरिअ=उजेली। तिला एक=क्षण भर। सातिं=(शास्ति—सं०) दण्ड। सनि=समान। एकल=अकेला। भम=घूमता है। वहुल=वहुतेरे। रम=रमण करता है। वहुवल्लभ=वहुतों का स्वामी=वहुपत्नीक। वेआधहु=व्याध से भी। अधिकाएल=अधिक होकर=वढ़कर। दारुण=निर्दय। पँचवान=कामदेव। अचिर=शीघ्र।

अर्थ—कुन्द फूल से भरी सुहावनी सेज (और) चन्द्रमा से उजेली सुहावनी रात!

(ऐसे समय मे) क्षण-भर के लिए स्वामी का समागम पाया; (किन्तु उसके वाद) महीनों—वरसो के लिए (विरह का) दण्ड मिल गया।

हरे! हरे!! फिर मैं लौटकर कैसे मथुरा जाऊँगी? फिर कैसे कृष्ण मिलेंगे?

हरिणी के समान चिन्ता-रूपी जाल मे पड़ी (मैं) विरहिणी नारी क्या करूँगी?

अकेला भौरा (सर्वत्र) घूमता है, वहुतेरे फूलों मे रमण करता है—कही कोई वाधा नही देता है!

(किन्तु, वाधा नही रहने पर भी अपने यहाँ कृष्ण के नही आने का कारण नायिका कहती है—) वहुपत्नीक से मैंने प्रेम वढाया—(यही) मेरा अपराध हुआ।

दिन-दिन (क्रमश.) व्याध से भी वढ़कर कामदेव निर्दय हो गया।

और, कितने वर्ष आशा मे (मैं) विताऊँगी? प्राण संशय मे हुए हैं।

विद्यापति कहते हैं—(अरी) वरयुवती! सुनो। मन की चिन्ता का त्याग करो।

कृष्ण शीघ्र मिलेंगे—(इसलिए) धैर्य धारण करके रहो। सुख के दिनों मे भाग्य (स्वतः) लौट आयगा।

[१९०]

साहर मजर भमर गुजर
कोकिल पञ्चम गाव।
दखिन पवन विरह वेदन
निठुर कन्त न आव॥

साजनि रचह सेहे उपाए।
मधुमास जओ माधव आबए
विरह वेदन जाए॥
अछल अङ्गज भेल अनङ्गज
धनु रिबाड़ल हाथ।
नाह निरदय तेजि पड़ाएल
ओड़ल हमर माथ॥
एक बेरि हरे भसम कएलाहे
दुसह लोचन आगी।
पुनु अहिर कुल जनम लेलह
विरहि बधए लागि[1]॥
जओ तोहि पाबओं[2] अरे विधाता
बाँधि मेलओं[3] अन्ध कूप।
जाहेरि[4] नाह बिचखन[5] न(ा)ही[6]
ताके[7] काँ[8] दिय[9] रूप॥
आनक इ[10] रूप हित पए करए
हमर इ[11] भेल काल।
दिने दिने दुख सहए न[11] पारओ
पड़ए अधिक भार॥

न० गु०, प० ६५६

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या १८८)—४ जाहेरि। ११ पाठाभाव।

शब्दार्थ—साहर=(सहकार-स०) आम्रवृक्ष। मजर=मजरित हो रहे है=खिल रहे है। गुजर=गुजार कर रहे है। वेदन=अनुभूति करानेवाला। सेहे=वही। जओ=जिससे। वेदन=विरह का दुःख। अङ्गज=कामदेव=शरीर से उत्पन्न=अपना। अनङ्गज=जो शरीर से उत्पन्न नही है=पराया। रिबाड़ल=खदेड़ा। ओड़ल=डाल दिया। लोचन=आँख। अहिर-

सं० अ०—१ लागी। २ पाबओ। ३ मेलओ। ५ बिचक्खन ६ नाही। ७ कके। ८ दिअ। ९ ई। १० ई।

कुल=गोपवश। लागि=लिए। रूप=सौन्दर्य। मेलओो=डाल दूँ। विचक्खन=(विचक्षण—सं०) दूरदर्शी। आनक=दूसरे का।

अर्थ—आम्रवृक्ष खिल रहे है, भ्रमर गुंजार कर रहे हैं (और) कोकिल पंचम (स्वर) मे गा रहे हैं। मलय-पवन विरह की अनुभूति करा रहा है; (फिर भी) स्वामी नही आते है।

हे सखी! वही उपाय रचो, जिससे (इस) मधुमास मे कृष्ण आवे (और) विरहजन्य दु.ख चला जाय।

(जो) कामदेव अपना था, (वही) पराया (शत्रु) हो गया। हाथ मे धनुष लेकर (वह) खदेड़ने लगा। निर्दय स्वामी छोड़कर भाग गये। (उन्होने कामदेव को) मेरे माथे पर डाल दिया।

(अरे कामदेव!) एक बार शिवजी ने (तुझे) दुस्सह नयनाग्नि से भस्म कर दिया; किन्तु विरही (विरहिणी) के वध के लिए (तूने) फिर गोपवश मे जन्म ले लिया?

अरे विधाता! (अभी) यदि तुझे पाऊँ (तो) बाँधकर अन्धकूप मे डाल दूँ। (कारण,) जिसका स्वामी दूरदर्शी नही है, उसे (तू) सौन्दर्य क्यो देता है?

भले ही यह सौन्दर्य दूसरे की भलाई करता है; (किन्तु) मेरा (तो) यह काल हो गया। (कारण, इस सौन्दर्य के चलते मैं) हर रोज दु.ख नही सह सकती—बड़ा भार पड़ता है।

विशेष—इस पद की अन्तिम ८ पक्तियाँ 'नेपाल-पदावली' मे भी यत्किंचित् पाठभेद के साथ पृथक् पद के रूप मे है। इसके प्रथम भाग का ३५ सख्यक पद देखिए।

[१९१]

प्रथमहि उपजल नव अनुरागे।
मन कर प्रान धरिअ तसु आगे॥
आब दिने दिने भेल पेम[1] पुराने।
भुगुतल कुसुम सुरभि कर आने[2]॥
हरि कें[3] कहब सखि हमरि[4] विनती[5]।
विसरि न हलबिए पुरुब[6] पिरिती॥
रभस समअ पिआ जत कहि गेला।
अधराहु[7] आध सेहओ दुर भेला[8]॥

सं० अ०—२ आने। ७ अधराहुँ।

भनइ विद्यापति एहो[9] रस भाने[10] ।
राय[11] सिवसिंह[12] लखिमा देइ[13] रमाने[14] ।

न० गु०, प० ६५७

पाठभेद—

ग्रियर्सन (पद-संख्या ७३)—३ हरिसें। ४ हमरी। ५ विनिती। ६ परुब। ७–८ अधरहुँ आध सेहओ दुरि गेला। ९ इहो। १० जाने। १३–१४ बिरमाने।

मि० म० (पद-संख्या १६५)—२ प्रेम।

शब्दार्थ—उपजल=उत्पन्न=हुआ=पैदा हुआ। भुगुतल=भुक्त=आघ्रात। सुरभि=सुगन्धि। आने=दूसरी। विनती=प्रार्थना। बिसरि न हलबिए=भूल मत जायँ। रभस=मिलन। अधराहुँ=आधे से भी। सेहओ=सो भी।

अर्थ—पहले-पहल नया अनुराग पैदा हुआ (तो) मन करता था (कि) उनके आगे प्राण (निकालकर) धर दूँ।

अब क्रमशः (वह) प्रेम पुराना हो गया। (कारण,)आघ्रात फूल दूसरी (ही) सुगन्धि करता है (अर्थात्—जिस प्रकार आघ्रात फूल की सुगन्धि दूसरी तरह की हो जाती है, उसी प्रकार प्रेम भी दूसरी तरह का हो गया।)

हे सखी! कृष्ण से मेरी प्रार्थना कहना (कि) पहले की प्रीति भूल मत जायँ।

(प्रथम) मिलन के समय स्वामी जितना कह गये, (उसके) आधे का आधा भी दूर चला गया।

विद्यापति कहते है—लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह इस रस को जानते है। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[१९२]

केओ सुखे[1] सूतए[2] केओ दुखे[3] जाग।
अपन अपन थिक भिन भिन भाग॥
कि करति अबला न चेतए हार।
एकहि नगर रे बहुत बेबहार॥
माजरि तोरि भमर मधु पीब।
से देखि पथिक कण्ठागत जीव॥

सं० अ०—१० जाने। ११–१२ राए सिवसिंह। १३ दे। १ सुखें। ३ दुखें।

कन्ता कन्त मनोरथ पूर।
बिरहिनि विरहे बेआकुलि झूर॥
विद्यापति भन एहु रस जान।
राए सिवसिंह रूपिनि देइ रमान॥

न० गु०, प० ६७९

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या १६६)—२ सुतए। ४ सिवसिंघ।

शब्दार्थ—थिक=है। अवला=आश्रयहीना=विरहिणी। चेतए=चेतती है=सँभाल पाती है। माजरि=मजरी—स०। कण्ठागत=कण्ठ मे आया हुआ। जीव=प्राण। कन्ता=कान्ता=प्रियतमा। झूर=सूख रही है।

अर्थ—कोई सुख से सो रही है, तो कोई दुःख से जाग रही है। अपना-अपना अलग-अलग भाग्य है।

विरहिणी क्या करेगी? (वह तो गले का) हार (भी) नही सँभाल पाती है। एक ही नगर में वहुतेरे व्यवहार है।

(अरी) मजरी! भौंरा तुम्हारा मधु पी रहा है (और) उसे देखकर पथिक के प्राण कण्ठगत हो रहे हैं। (अर्थात्—भौंरे को मजरी का मधु पान करते देखकर पथिक को अपनी प्रियतमा का स्मरण हो रहा है और उसके प्राण वाहर निकलने को तड़प रहे हैं।)

(कही) प्रियतमा (अपने) प्रियतम का मनोरथ पूरा कर रही है (और कहीं) विरहिणी विरह से सूख रही है।

विद्यापति कहते हैं—रूपिणी देवी के रमण राजा शिवसिंह इस रस को जानते हैं।

[१९३]

जेहे लता लघु लाए कन्हाइ।
जल दए दए किछु गेलाहे बढाइ॥
से आबे भरें कुसुमित भेल आइ।
परिमल पसरल दह दिस जाइ॥
पिआ के कहब पिक सुललित वानी।
रमसक अवसर दुरजन जानि॥

सं० अ०—५ दे। १ भरें। २ बानि।

हठें[1] अवधारि विलम्ब नहि सहइ ।
फुलला फुल मधु बसि नहि रहइ ॥

न० गु०, प० ६८१

पाठभेद—

मि० म० (पद-सं० ८४५)—पाठभेद नही है।

शब्दार्थ—जेहे=जो। लघु=छोटी। भरे=अतिरेक से=भरपूर। आइ=आकर। परिमल=सौरभ। पसरल=फैल गया। दह दिस=दसो दिशाओं मे। जाइ=जाकर। बानी=(वाणी—सं०)वचन। रभसक=एकान्त के। हठें=दुराग्रह से। अवधारि=सीमा करके=इयत्ता करके। फुलला=फूले हुए। बसि=बैठकर।

अर्थ—कृष्ण जो छोटी लता लाकर (और) पानी दे-देकर (उसे) कुछ बढ़ा गये, (समय पाकर) वही भरपूर कुसुमित हो गई। (उसका) सौरभ दसों दिशाओं में जाकर फैल गया। (अर्थात्—कृष्ण मुझे बचपन में लाकर, लाड़-प्यार करके चले गये, किन्तु अब मै सयानी हो गई। मेरे सौन्दर्य की चर्चा चारो ओर होने लगी।)

हे कोकिल! एकान्त समय पाकर, (और) दुर्जनों को पहचानकर (अर्थात्—दुर्जनो से बचकर) स्वामी को सुन्दर वचन कहना (अर्थात्—मीठे वचनों से समझाना।)

इयत्ता करके—अवधि करके—दुराग्रह से (किया हुआ) विलम्ब सहा नही जाता है। (कारण,) फूले हुए फूल का मधु बैठा नही रहता है। (अर्थात्—कृष्ण अवधि करके वहाँ बैठे रहेंगे, तो उनके लिए यहाँ मेरा यौवन बैठा नही रहेगा। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[१९४]

पिआ सञो कहब भमर वर
पलटि आओब सेहे देस ।
आए देखबि निज भाविनि
तञो बरु जाएब बिदेस ॥
सैसव समय बहिए गेल
जउवने तनु लेल वास ।
तन्हुहु तोरित चलि जाएब
पुरए रहति मोरि आस ॥

सं० अ०—१ हठें।

दिने दिने झखइते खिन तनु
सुतओँ[1] नलिनि दल लागि।
चाँद ऐसन[4] छल सीतल
सेहओ वहए[5] तनु आगि॥
मनमथ मन मथ सबतहु
से सुनि हिअ मोर साल।
वालभु हमर विदेश बस
तेँ[6] जउवन भेल काल॥

न० गु०, प० ६८५

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ८४)—१ सयँ। २ तयँ। ३ नुतयँ। ५ वरए। तेँ।

शब्दार्थ—भाविनि=भाव-विभोर पत्नी। वरु=(वर से) भला। सैसव=बचपन। वहिए गेल=बीत गया। तनु=शरीर। तन्हुहु=वह भी। तोरित=(त्वरित—सं०) शीघ्र। पुरए रहति=पूरी होने को रह जायगी। खिन=खिन्न। नलिनिदल=कमलपत्र। लागि=लगकर=सटकर। वरए=जला रहा है। मनमथ=कामदेव। मन मथ=मन को मथता है। साल=पीड़ा।

अर्थ—हे भ्रमरवर! स्वामी से कहिएगा (कि) लौटकर उस स्थान में आवे (और) आकर अपनी भाव-विभोर पत्नी को देख लें, तो भला विदेश चले जायँ।

बचपन का समय बीत गया (और) यौवन ने शरीर में वास लिया। (सो,) वह भी शीघ्र (ही) चला जायगा (और) मेरी आशा पूरी होने को रह जायगी।

प्रतिदिन झँखते हुए शरीर खिन्न हो गया। कमलपत्र से लगकर (सटकर) सोती हूँ। चन्द्रमा ऐसा शीतल था, (सो,) वह भी शरीर में आग जला रहा है।

सबसे (बढ़कर) कामदेव मन को मथता है—सो सुनकर मेरे हृदय में पीड़ा हो रही है। मेरे स्वामी विदेश में बसते हैं। इसीलिए यौवनकाल हो गया है। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[१९५]

आनह केतकि केर पात।
मृगमद मसि नख काप॥

सं० अ०—४ अइसन ५। वरए ६ तखे।

सबहि लिखबि मोरि नाम ।
विनति देबि सब ठाम ।।
सखि हे,
गइअ जनाबह नाथ ।
करक लिखन दए हाथ ।।
नाम लइते[1] पिअ तोर ।
सर गदगद करु मोर ।।
आँतर[2] जनु हो तोहार ।
तँ[3] दुर कर उर हार ।।
आबे[4] भेल नव[5] गिरि सिन्धु ।
अबहु न सुमझ[6] सुबन्धु ।।
विधिगति नहि परकार ।
सालय[7] सर कनियार ।।
सुकवि भनथि कण्ठहार ।
के सह काम परहार[8] ।।

न० गु०, प० ६८८

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ५२९)—१ लइत। ३ तें। ४ अब।

शब्दार्थ—आनह=लाओ। पात=(पत्र—स०) पत्ता। मृगमद=कस्तूरी। मसि=स्याही। काप=कलम। सबहि=सब-कुछ। ठाम=(स्थाम—सं०) स्थान। गइए=जाकर। करक=हाथ का। लिखन=पत्र। सर=स्वर—सं०। आतर=अन्तर। उर=हृदय। नरि=नदी—स०। गिरि=पर्वत। सिन्धु=समुद्र। सुबन्धु=प्रियतम। विधिगति=विधि का विधान। परकार=उपाय। सालए=सालता है=पीडा देता है। कनियार=तीक्ष्ण।

अर्थ—केवड़े का पत्ता, कस्तूरी की स्याही (और) नख की कलम लाओ।
मेरे नाम से सब-कुछ लिखो—सब जगह मेरी प्रार्थना (लिख) दो।
हे सखी ! जाकर (मेरे) हाथ का पत्र (उनके) हाथ में देकर जताओ—

सं० अ०—२ आतर। ३ तओ। ५ नरि। ६ समुझ। ७ सालए। ८ प्रहार।

(कि) हे प्रियतम ! तुम्हारा नाम लेते ही मेरा स्वर गद्गद हो जाता है (अर्थात्—मेरा गला भर आता है।)

तुम्हारा अन्तर मत हो (अर्थात्—व्यवधान मत हो), इसलिए (मैं अपने) हृदय का (हार भी उतारकर) दूर कर देती थी।

(किन्तु) अब (हम दोनो के बीच) नदियाँ, पर्वत (और) समुद्र है। (फिर भी) प्रियतम (मेरा दु:ख) नही समझते है।

विधाता के विधान मे (कोई) उपाय नही है। (क्या करूँ ? कामदेव का) चोखा वाण (मुझे) साल रहा है।

सुकवि-कण्ठहार (विद्यापति) कहते है (कि) कामदेव का प्रहार कौन सह सकता है ?

[१९६]

सखि हे मोरे बोले[1] पुछब कन्हाइ ।
हमर सपथ थिक बिसरि न हलबे
गए तेजि अवसर पाइ ॥
हुन्हि सओं पेम हठहि हमे लाओल
हित उपदेस न लेला ।
तृण तरुअर छाया तर बैसलाहु
जइसन उचित से भेला ॥
एके हमे नारि गमारि सबहुतह
दोसरे सहज मतिहीनी ।
अपनुक दोस[2] दैव के कि कहब
ओ नहि भेलाहे चिन्ही ॥
अकुलिन बोल नहि ओड़ धरि निरबह[4]
धरए अपन बेबहारे ।
आगिल दुर कर पाहिल[5] चित धर
जइसन बड़ि कुसियारे ॥

सं० अ०—१ बोलें। २ दोष। ४ अकुलिन बोल ओड़ नहि निरबह। ५ पछिल।

भनइ विद्यापति सुन वर जउवति[6]
चिते जनु मानह आने[7]।
राजा सिवसिंह[8] रूपनराएन[9]
सकल-कला-रस जाने ॥

न० गु०, प० ६९०

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या १६७)—२ सयँ। ६ जौवति। ८ सिवसिघ।

शब्दार्थ—मोरे बोलें=मेरे वचन से। विसरि न हलबे=भूल मत जाना। गए तेजि=तजकर गये। लेला=लिया। हित=हितू। तृण तरुअर=तालवृक्ष। तर=(तल—स०) नीचे। गमारि=गँवारिन। दैव=विधाता। चिन्ही भेलाहे=पहचाने गये। बोल=वचन। ओड़ धरि=अन्त तक। व्यवहारे=आचरण। आगिल=अगला=आगे का=बीते हुए का। पाछिल=पीछे का=बाद का।

अर्थ—हे सखी! मेरे वचन से (अर्थात्—मेरी ओर से) कृष्ण को पूछना। मेरी शपथ है, भूल मत जाना। (पूछना कि) अवसर पाकर (वे क्यो) चले गये?

मैंने जबरदस्ती उनसे प्रेम किया। हितू का उपदेश नही लिया (अर्थात्—हितू का वचन स्वीकार नही किया) मै तालवृक्ष की छाया के नीचे (जा) बैठी। (फिर तो) जैसा उचित था, सो हुआ।

एक (तो) मै सबसे गँवारिन औरत हूँ; दूसरा, जन्मजात बुद्धिहीन हूँ। (इसीलिए यदि) वे (कृष्ण) पहचाने नही जा सके (तो इसमे मेरा) अपना दोष है! विधाता को क्या कहूँगी?

अकुलीन का वचन अन्ततक नहीं निवहता है। (वह) अपना आचरण करने (ही) लगता है। (वह) आगे हुए को (बीते हुए को) दूर कर देता है (और) बाद में हुए को मन में धारण कर लेता है। (अर्थात्—अकुलीन बीते हुए प्रेम को भुला बैठता है और बाद मे हुए प्रेम को मन मे धारण किये रहता है।) जैसे बड़ी ऊख, (जोकि आगे की रहती है, किसान उसे काटकर दूर कर देते है और जो पीछे की होती है, उसे जुगाये रहते है।)

विद्यापति कहते है—(अरी) वरयुवती! सुनो। मन मे अन्यथा मत मानो। (कारण,) राजा शिवसिह रूपनारायण सारा कला-रस जानते है। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[१९७]

करतल लीन शोभय मुख-चन्द।
किसलय मिलु अभिनव अरविन्द ॥

सं० अ०—७ माने। ९ रूपनराजेन।

सब परदेसिआ एके सोभाव ।
गए परदेस पलटि नहि आब ॥
मार मनोज मरम सर आहि ।
बरसा[१] बरिअ वसन्तहु चाहि ॥

न० गु०, प० ७१३

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ८४१)—२ गेआन। ४ मोहि। ६ वरखा।

शब्दार्थ—पहु=(प्रभु—सं०) स्वामी। पिसुन=चुगलखोर। सन्देह=खतरा। मोने लागि=मेरे लिए। तुरअ=(तुरग—सं०) घोड़ा। लेसलि=जला दी। आगि=आग। दिगन्त=दूर देश। रजनि=(रजनी—सं०) रात। घने=निरन्तर। वारिस=वरसात। गमार=गँवार। सोभाव=स्वभाव। गए=जाकर। मनोज=कामदेव। मरम=(मर्म—सं०) मर्मस्थल। आहि=निशाना साधकर। वरसा=वर्षा ऋतु। वरिअ=(वरीय—सं०) वलवान्।

अर्थ—क्या स्वामी ने चुगलखोरों की वात पर कान दिया (अर्थात्—चुगलखोरो की वात सुनी?) क्या पराई कामिनी ने (उनका) ज्ञान हर लिया?

क्या स्वामी पूर्व-प्रेम को भूल गये? क्या (उनके) जीवन पर खतरा आ पड़ा?

(हे सखी!) मेरे लिए (तुमने) झूठी वाते सजाई (अर्थात्—झूठी वातो का जाल बिछाया!) घोड़े को वाँधकर घर में आग लगा दी? (अर्थात्—जिस प्रकार बँधा घोड़ा घर में आग लगने पर भी भाग नहीं सकता, उसी मे छटपटाकर जल मरता है, उसी प्रकार मैं भी प्रेम-पाश में बँधी हुई विरहाग्नि मे जलकर मर रही हूँ।)

(मैं समझ नही पाती कि) स्वामी किस लिए दूर देश गये? (उनके जाने का परिणाम यही हुआ कि) ठण्डी रात (भी) निरन्तर आग वरसा रही है।

(अरी) कलावती! मेरे स्वामी से कहना (कि) वरसात मे गँवार (ही) परदेश में रहते हैं।

हाय! सभी परदेशी एक ही स्वभाव के होते है। (वे) परदेश जाकर (फिर) लौटकर नही आते हैं।

कामदेव निशाना साधकर मर्मस्थल में वाण मार रहा है। (हे सखी!) वरसात वसन्त से भी वलवती होती है। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

विशेष—इस पद की पाँचवी और छठी पंक्तियाँ यत्किंचित् पाठभेद के साथ 'नेपाल-पदावली' में भी है। इसके लिए प्रथम भाग का ९७ संख्यक पद देखिए।

[१९९]

खेदब मोञे कोकिल अलिकुल बारब
करकङ्कन झमकाइ[1]।
जखने जलदे[2] धवलागिरि[3] बरिसब
तखनुक कओन[4] उपाइ[5]॥
गगन गरज घन[6] सुनि मन शङ्कित[7]
बारिश[8] हरि करु रावे।
दखिन पवन सउरभे[9] जदि सतरब
दुहु मन दुहु बिछुराबे॥
से सुनि जुवति जीव जदि राखति
सुन विद्यापति बानी।
राजा शिवसिंह[10] इ[11] रस विन्दक
मदने बोधि देब आनी[12]॥

न० गु०, प० ७१६

पाठभेद—

सि० म० (पद-संख्या १७१)—१ झमकाई। ४ कओन। ५ उपाई। ६ न। ७ सङ्कित। ८ बारिस। ९ सौरभे। १० सिवसिंघ।

शब्दार्थ—खेदब=पीछा करूँगी=खदेड़ूँगी। अलिकुल=भौरो का झुण्ड। बारब=निवारण करूँगी। कर-कङ्कन=हाथ के कंगन को। झमकाई=झनकार कर। जलदे=मेघ। गगन=आकाश। घन=मेघ। बारिस=बरसात। हरि=मेढक। रावे=शब्द। सउरभे=सौरभ से। सतरब=सन्तरण करेंगे=पार पायेंगे। बिछुराबे=जुदा कर देगा। बानी=(वाणी—सं०) कथन। बोधि=समझाकर। आनी=लाना।

अर्थ—मैं हाथ के कंगन को झनकार कर कोकिल का पीछा करूँगी (और) भौरो के झुण्ड का निवारण करूँगी;

(किन्तु) जिस समय मेघ धौलागिरि पर बरसेंगे, उस समय का कौन उपाय होगा?

आकाश मे मेघ गरज रहे हैं—सुनकर मन डर रहा है। बरसाती मेढक शब्द (टरँ-टो) कर रहे हैं।

सं० अ०—१ झमकाई। २ जलदें। ३ धओलागिरि। ५ उपाई। ८ बारिस। ९ सउरभें। ११ ई। १२ आनी।

यदि (किसी प्रकार इनसे) पार पायेंगे (तो भी) दक्षिण पवन का सौरभ दोनों के मन को दोनो से जुदा कर देगा (अर्थात्—दक्षिण पवन के सौरभ से विरही और विरहिणी—दोनों के मन कही दूर भटकते रहेंगे।)

उन्हें (अर्थात्—मेघ के गर्जन और मेढक के 'टर्र-टों' को) सुनकर (भी) यदि युवती प्राण रखेगी (अर्थात्—जीवित रहेगी तो) विद्यापति का कथन सुनो—

इस रस के जाननेवाले राजा शिवसिंह को कामदेव समझा-बुझाकर ला देगा।

[२००]

वसन्त रयनि रङ्गे पलटि खेपलि सङ्गे
परम रभसे पिआ गेल कहि।
कोकिल पचम गाब तइअओ न सुबन्धु आब
उतिम वचन बेभिचर नहि।
(साए) साए उगलि बेरथा।।
अबहु न अएले कन्ता नहि भल परजन्ता
मो पति पछिम सुर उगि गेला।।
साहर सौरभे दिसा चाँद उजोरि निसा
तरु तर मधुकर पसरला।।
इ रस हृदय धरि तइअओ न आब हरि
से जदि पुरुब पेम बिसरला।।
कवि भने विद्यापति सुन वर जउवति
मानिनि मनोरथ सुरतरु।
सिरि सिवसिंह देवा चरन-कमल-सेवा
महादेवि लखिमा देवि बरु।।

न० गु०, प० ७१९

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अतः, इसके लिए प्रथम भाग का ४६ संख्यक पद देखिए।

[२०१]

साहर सउरभ गगन भरे।
भमरि भमर दुहु वाद करे।।
लोभक सम्भ्रम सङ्गक दन्द।
बहुल पिआसल[1] थोर मकरन्द।।
से देखि ऋतुपति[2] आएल चली।
जाकर मो मन शङ्का[3] छली।।
कोमल माजरि कोकिल खाए।
मानिनि मान पिबि[4] ओ[5] न अघाए।।
जाबे न ओ (अ) ङ्ग[6] तरुनत भेल।
ताबे से कन्त दिगन्तर गेल।।
परहित अहित सदा बिहि वाम।
दुइ अभिमत न रहए एक ठाम।।
धन कुलधरम मनोभव चोर।
केओ न बुझाब मुगुध पिआ मोर।।
विद्यापति कवि एहो रस भान।
राजा सिवसिंह[7] लखिमा देवि[8] रमान।।

न० गु०, प० ७२०

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या १७३)—१ पियासल। २ रितुपति। ३ सङ्का। ७ सिवसिंघ। ८ देइ।

शब्दार्थ—साहर=(सहकार—सं०)=कुसुमित आम्रवृक्ष। सउरभ=(सौरभ—स०) सुवास। गगन=आकाश। वाद=बहस। सम्भ्रम=हड़बड़ी। सङ्गक=मैत्री का। दन्द=(द्वन्द्व—सं०) झगडा। बहुल=बहुत। पिआसल=प्यासा। मकरन्द=मधु। ऋतुपति=वसन्त। जाकर=जिसकी। मो=मेरे। छली=थी। माजरि=मजरी। पिबिओ=पीकर भी। तरुनत=पूर्ण विकसित। दिगन्तर=दूर देश। परहित=दूसरे की भलाई। अहित=विरोधी। बिहि=

सं० अ०— ४-५ पिबिओ। ६ अङ्ग। ८ पाठाभाव।

(विधि—सं०) विधाता। वाम=कठोर=निर्दय। ठाम=(स्थाम—सं०) स्थान। मनोभव=कामदेव। मुगुध (मुग्ध—स०) मूढ।

अर्थ—खिले हुए आम्रवृक्ष की सुवास से आकाश भरा है। भ्रमरी (और) भ्रमर—दोनो बहस कर रहे है।

लोभ के कारण हड़बड़ी थी। (इसीलिए) मैत्री का झगड़ा हुआ (अर्थात्—दोस्ती मे कुश्ती हुई। कारण, दोनो ही) बहुत प्यासे थे (और) मधु थोड़ा था।

उसे (अर्थात्—द्वन्द्व को) देखकर वसन्त चला आया। (आखिर वही हुआ,) जिसकी शंका मेरे मन में थी।

कोकिल सुकुमार मजरी को खाता है; (किन्तु) मानिनी का मान पीकर भी वे (प्रियतम) नही अघाते है।

जबतक (स्त्रीजनोचित मेरे) वे अङ्ग (स्तन आदि) पूर्ण विकसित नही हुए थे (अर्थात्—जब मै बाला थी,) तभी प्रियतम दूर देश चले गये।

दूसरे की भलाई का विरोधी विधाता सदा (ही) कठोर होता है। (इसीलिए) दो का (अर्थात्—प्रेमी और प्रेमिका का) अभिमत एक स्थान में नही रहता है (अर्थात्—दोनों का मत नही मिलता है।)

कोई भी मेरे मूढ स्वामी को नही समझाता (कि) कामदेव कुलधर्म-रूपी धन का चोर होता है। (अर्थात्—मैं पूर्णयौवना हो गई। यदि स्वामी अब भी नही आयेगे, तो मेरा कुलधर्म नहीं बचेगा।)

कवि विद्यापति यह रस कहते है (और) लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह (इसे समझते है।) (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[२०२]

ललित लता जनि तरु मिलती।
तन्हि पिअ कण्ठ गहए जुवती॥
आजु अपन मन थिर न रहे।
मधुकर मदन समाद कहे॥
भनइ सरस कवि (इ) रस[1] सुजान।
त्रिपुर सिंह[2] सुत अरजुन नाम॥

न० गु०, प० ७२२

सं० अ०—१ इ रस।

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या २०८)—२ त्रिपुरसिंघ।

शब्दार्थ—ललित=हिलती-डोलती। जनि=जैसे। तरु=वृक्ष। तन्हि=वैसे ही। गहए=ग्रहण करती है। समाद=संवाद। सुजान=चतुर=प्रवीण।

अर्थ—जैसे हिलती-डोलती लता वृक्ष से मिलती है, वैसे ही युवती प्रियतम का कण्ठ गहती है (अर्थात्—प्रियतम का आलिङ्गन करती है।)

आज (मेरा) अपना मन स्थिर नही हो रहा है। (कारण,) भौंरे कामदेव का सवाद कह रहे है।

सरस कवि (विद्यापति) कहते है (कि) त्रिपुरसिंह के अर्जुन नामक पुत्र इस रस मे प्रवीण है। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[२०३]

कानने कानने कुन्द फूल।
पलटि पलटि ताहि भमर भूल॥
पुनमति तरुनि पिया[1] सँग[2] पाब।
बरिसे बरिसे ऋतुराज आब॥
रअनि[3] छोटि हो दिवस बाढ़।
जनि कामदेव करवाल काँढ़[4]॥
मलयानिल पिब जुवति मान।
बिरहिनि[5] वेदन केओ न जान॥
भनें[6] विद्यापति रितु वसन्त।
कुमर अमर ज्आनो[7] देइ कन्त॥

न० गु०, प० ७२४

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या २१२)—२ सङ्ग। ५ बिरहिन। ६ भन। ७ ज्ञानो।

शब्दार्थ—कानने-कानने—पूरे वन मे। ताहि=उनमे। रअनि=(रजनी—सं०) रात्रि। दिवस=दिन। करवाल=तलवार। वेदन=दुःख।

अर्थ—पूरे वन मे कुन्द खिले है। घूम-फिरकर भौंरे उनमे भूल रहे हैं।

सं० अ०—१ पिआ। २ सङ्ग। ३ रअनि। ४ काढ़। ७ जानो।

प्रतिवर्ष ऋतुराज वसन्त आता है; (किन्तु उस वसन्त में) पुण्यवती तरुणियाँ (ही) प्रियतम का संग पाती है।

(वसन्त की) रात छोटी होती है (और) दिन बढ जाता है। (जान पड़ता है,) जैसे कामदेव ने तलवार खीच ली है।

मलयानिल युवतियो का मान पी रहा है (अर्थात—मानभग कर रहा है।) कोई भी विरहिणी का दु:ख नही समझता है।

विद्यापति वसन्त ऋतु कहते है। (अर्थात्—वसन्त ऋतु का वर्णन करते है और) जानो देवी के स्वामी कुमार अमर (उसे समझते है।) (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[२०४]

सरोवर मज्जि समीरन बिथरओ
केवल कमल परागे।
माधविका मधु पिबहि न पारए
कोकिल दे उपरागे॥
साजनि साजनि साजनि साजनि
सूनहि साजनि मोरी।
बालम्भु[1] सौं[2] मझु दीठि मिलाबहि
होइहौं[3] दासी तोरी॥
पाड़रि परिमल आसा पूरय[4]
मधुकर गाबय[5] गीते।
चाँदिनि रजनी रभस बढ़ाबए
मो पति सबे विपरीते॥
हृदयक बाउलि कहि(अ)य[6] पर जनु
तोँहो[7] कहौं[8] सयानी[9]।
बिनु माधव रे[10] मधुरजनी जाइति
मीन कि जिब[11] बिनु पानी॥

सं० अ०—१ बालभु। २ सओ। ३ होइहओ। ४ पुरए। ५ गाबए। ६ कहिअए। ७ तोहों। ८ कहओ। ९ सआनी। १० पाठाभाव।

विद्यापति कविवर एहु गाबय[12]
होउ[13] उपदेशौ[14] रसमन्ता।
अरजुन राए चरण पए सेबहि
गूना देवि[15] रानि कन्ता॥

न० गु०, प० ७२६

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या २११)—२ सों। ३ होइहों। ४ पूरअ। ५ गाबए। ६ कहिअ। ११ जीब १२ गाबए। १४ उपदेसौ। १५ देइ।

शब्दार्थ—मज्जि=मज्जन करके=गोता मारकर। समीरन=पवन। बिथरओ=बिथर जाय=फैल जाय। परागे=पुष्परज=फूल के भीतर की धूल। माधविका=माधवीलता। उपरागे=निन्दा। मझु=मेरी। डीठि=दृष्टि। पाड़रि= (पाटली—सं०) गुलाब। परिमल=सुवास। आसा=दिशा। मधुकर=भ्रमर। चाँदिनि=चाँदनी। रजनी=रात। रभस=उत्सुकता। मोपति=(माम्प्रति—सं०) मेरे लिए। बाउलि=बावली=पगली। पर =दूसरे को। जनु=मत। तोहों=तुमको। कहओ=कहती हूँ। मधु-रजनी=वसन्त की रात। मीन=मछली। उपदेशो=उपदेश=शिक्षा।

अर्थ—तालाब मे गोता मारकर पवन फैल जाय; (किन्तु इससे क्या ? वहाँ तो) केवल कमल का पराग है। (वहाँ वह) माधवी का मधु नही पी सकता है। (इसीलिए) कोकिल उपराग दे रहा है (अर्थात्—निन्दा कर रहा है।)

सखी! सखी!! सखी!!! सखी!!!! (अरी) मेरी सखी! सुनो। स्वामी से मेरी दृष्टि मिला दो (अर्थात्—स्वामी के दर्शन करा दो।) मैं तुम्हारी दासी हो जाऊँगी।

गुलाब की सुवास से दिशाएँ भर रही हैं, भौंरे गीत गा रहे हैं (और) चाँदनी रात उत्सुकता बढ़ा रही है; (किन्तु) मेरे लिए सभी विपरीत है।

(मैं) हृदय की बावली हूँ (अर्थात्—मेरा मन पागल-सा कर रहा है। अतएव, मैं जो कुछ कह रही हूँ। वह) दूसरे से मत कहना। हे सयानी! (इसीलिए मैं) तुम्ही से कहती हूँ (अर्थात्—पूछती हूँ कि क्या) कृष्ण के विना (ही) वसन्त की रात चली जायगी (बीत जायगी?) क्या पानी के विना मछली जी सकती है? (अर्थात्—जिस प्रकार पानी के विना मछली नही जी सकती, उसी प्रकार वसन्त की रात मे कृष्ण के विना मैं भी नही जी सकती।)

कविवर विद्यापति यह गाते है (और गाकर) रसिको को उपदेश देते है (तथा) रानी गूना देवी के स्वामी राय अर्जुन के चरण की सेवा करते हैं। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

सं० अ०—१२ गाबए। १३ पाठाभाव।

[२०५]

आज मोजे[1] जानल हरि बड़ मन्द।
बोल बदन तोर पुनिमक चन्द॥
एके दिने पुरित दिनहु दिने खीन।
ता सजे[2] तुलना हरि हमे दीन॥
बइसलि अधोमुखि चित[3] गुन दन्द।
एके विरहिनि हे दोसरे दह चन्द॥
नयन नीर ढर पानि कपोल।
खने खने मुरुछि भरम कत बोल॥
सखि[4] चेताउलि अवधिक आस।
रिपु ऋतुराज[5] तेज[6] घन साँस॥

न० गु०, प० ७३६

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ८४६)—१ मोयँ। २ सयँ। ३ चितेँ। ५ रितुराज। ६ तज।

शब्दार्थ—मन्द=मूर्ख। वदन=मुख। पुरित=पूर्ण। खीन=क्षीण—स०। दीन=दी। वइसलि=बैठी हुई। चिते=मन मे। गुन=विचार करती है। दन्द=द्वन्द्व—सं०। दह=जला रही है। नीर=जल (आँसू)। ढर=ढलता है। पानि=(पाणि—स०) हाथ। कपोल=गाल। भरम=भ्रम—स०। चेताउलि=होश मे ले आई। ऋतुराज=वसन्त। घन=निरन्तर।

अर्थ—आज मैने समझा (कि) कृष्ण बड़े मूर्ख है। (कारण, वे) कहते है (कि) तुम्हारा मुँह पूर्णिमा का चन्द्रमा (अर्थात्—पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान) है।

(जो) एक ही दिन पूर्ण रहता है (और) प्रतिदिन क्षीण होता जाता है, कृष्ण ने उससे मेरी तुलना (कर) दी।

नीचे मुँह किये बैठी (नायिका) मन मे (यही) द्वद्व गुनती है। एक तो वह विरहिणी है (और) दूसरा, चन्द्रमा (उसे) जला रहा है।

(उसके) हाथ मे कपोल है (अर्थात्—वह हाथ पर गाल लिये बैठी है और उसकी) आँखो से आँसू ढुलक रहे है। क्षण-क्षण मूर्च्छित होकर (वह) भ्रम की कितनी बाते बोल रही है!

सखियाँ अवधि की आशा (देकर उसे) होश मे ले आती है; (किन्तु वह) निरन्तर साँस छोड रही है। (कारण,) वसन्त जो शत्रु है।

सं० अ०—२ सओ। ३ चिते। ४ सखी।

विशेष—इस पद की प्रारम्भिक ४ पक्तियाँ संयोग की और अन्तिम ६ पंक्तियाँ विप्रलम्भ की है। अतएव, गीत के अर्थ मे पूर्वापर-सम्बन्ध नही बैठता। सम्भव है, लोकक'ठ मे रहने के कारण दो पदो की चन्द पक्तियाँ एकत्र होकर उपर्युक्त पद बन गई है।

[२०६]

जखने आओब हरि रहब चरण[1] धरि
चान्दे[2] पुजब अरविन्दा।
कुसुम सेज भलि करब सुरत केलि
दुहु मन होएत सानन्दा॥
साए साए,
हमर परानाथ कओने[3] बिरमाओल
कत जिव देब बिसवासे॥
दिवस रहओं[4] हेरि रअनि[5] बइरिनि भेलि
बिसम कुसुमसर भावे।
नयन[6] नीर गल मुरछि[7] धरनि पल
निरदए[8] कन्त नहि आबे॥
समअ माधव मास पिआ परदेश[9] वास
ताहि देस वसन्त न भेला।
फुलल कद(म)ब[10] गाछ हाट बाट सेहो अछ
मोरे पिआ[11] सेओ न देखला॥
भनइ विद्यापति सुन वर जउवति
अछ तोके[12] जीवन अधारे।
राजा सिवसिह[13] रूपनरायन[14]
एकादस अवतारे॥

न० गु०, प० ७३७

सं० अ०—२ चान्दें। ३ कओने। ४ रहओ। ५ रजनि। ७ मुरुछि। ८ निदए। १० कदम्ब। १२ तोकें। १४ रूपनराअन।

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या १७५)—१ चरन। २ चाँदे। ३ कओने। ४ रहओं। ६ नअन। ९ परदेस। ११ पिआएँ। १२ तोकें। १३ सिवसिंघ। १४ रूपनराएन।

शब्दार्थ—आओब=आयेंगे। धरि=धरकर=पकड़कर। अरविन्दा=कमल। कुसुम = फूल। भलि=भरि=भरकर। सुरत-केलि=कामक्रीडा। परानंनाथ=(प्राणनाथ—स०) स्वामी। बिरमाओल=बिलमाया=प्रेम में फँसाया। जिन (जीव—स०) प्राण। दिवस=दिन। रजनि=(रजनी—सं०) रात्रि। भेलि=हुई। बिसम=(विषम—स०) कठिन। कुसुमसर=कामदेव। भावे= व्यवहार। नीर=जल (आँसू)। गल=गलते है=चूते है। धरनि=(धरणी—स०) धरती। पल=पडती हूँ। माधवमास=वसन्त। कदम्ब=समूह। गाछ=वृक्ष। सेहो=वह भी। अछ =है। तोकें=तुम्हारे।

अर्थ—जब कृष्ण आयेंगे, (तब मैं उनके) पैर पकड़कर रहूँगी—चन्द्रमा से कमल की पूजा करूँगी। (अर्थात्—पैर पकड़ने के मिस अपने नख-रूपी चन्द्र से उनके चरण-रूपी कमल की पूजा करूँगी।) फूलों से सेज भरकर कामक्रीडा करूँगी, (जिससे) दोनों के मन सानन्द हो जायेंगे।

हे सखी! हे सखी!! किसने मेरे प्राणनाथ को प्रेम मे फँसा लिया? (हाय! मैं अपने) प्राण को कितना विश्वास दूँगी (कितना भरोसा दूँगी?)

दिन मे (उनका मार्ग) देखकर रहती हूँ (अर्थात्—उनका मार्ग देखती हुई दिन बिता देती हूँ; किन्तु) रात बैरिन हो जाती है। कामदेव का व्यवहार कठिन होता है। आँखो से आँसू चू रहे है, मूर्च्छित होकर (मैं) धरती पर पड़ रही हूँ (लोट रही हूँ, फिर भी) निर्दय स्वामी नही आते है।

वसन्त का समय! (उसमें भी) स्वामी परदेश मे रह गये (तो समझा कि) उस देश मे वसन्त नही हुआ। वृक्षों के समूह खिल गये। वे (वृक्ष) हाट-बाट में भी है। (क्या) मेरे स्वामी ने उन्हे भी नही देखा।

विद्यापति कहते है—(अरी) वरयुवती! सुनो। (भगवान् विष्णु के) ग्यारहवे अवतार राजा शिवसिंह रूपनारायण तुम्हारे प्राणाधार है।

[२०७]

माधव कठिन हृदय परवासी।
तुअ पेयसि मोजे देखलि बराकिनि
अबहु पलटि घर जासी॥
हिमकर हेरि अवनत कर आनन
कर करुणा पथ हेरी।

नयन काजर लए लिखए विधुन्तुद
भए रह ताहेरि सेरी ।।
दखिन पवन बह से कइसे जुवति सह
कर कवलित तसु अनङ्गे ।
गेल परान आश दए राखए
दश नखे लिखए भुजङ्गे ।।
मीनकेतन भए शिव शिव (शिव) कए
धरनि लोटाबए गेहा ।
करे रे कमल लए कुच सिरफल दए
शिव पूजए निज देहा ।।
परभृत कें डरे पाअस लए करे
बाएस निकट पुकारे ।
राजा सिवसिंह रूपनरायन
करथु विरह उपचारे ।।

न० गु०, प० ७४८ तथा प० ७६४

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अत', इसके लिए प्रथम भाग का १६५ सख्यक पद देखिए।

[२०८]

लोचन नीर तटिनि निरमाने ।
करए कमलमुखि तथिहि सनाने ।।
सरस मृणाल[1] कइए[2] जपमाली ।
अहनिस जप हरि नाम तोहारी ।।
वृन्दावन कान्हु धनि तप करई[3] ।
हृदय वेदि मदनानल बरई[4] ।।
जिव कर समिध समर करे आगी ।
करति होम बध होएबह भागी ।।

चिकुर बरहि[3] रे समरि करे लेअइ।
फल उपहार पयोधर देअइ॥
भनइ विद्यापति सुनह मुरारी।
तुय[5] पथ हेरइते[6] अछ[7] वरनारी[8]॥

न० गु०, प० ७५३

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ५४३)—१ मृनाल। २ करइ। ३ करइ। ४ बरइ। ५ तुअ। ६ हेरइत। ७ अछि। ८ वरनारि।

शब्दार्थ—तटिनि=नदी। तथिहि=उसी मे। सनाने=स्नान। मृणाल=कमल-नाल। कइए=करके। जपमाली=जप करने की माला। अहनिस=(अर्हानिश—सं०) दिन-रात। वरई=जलती है। करई=करती है। हृदयवेदि=हृदयरूपी वेदी। मदनानल=कामाग्नि। बरई=जलती है। जिव=प्राण। समिध=यज्ञ की लकड़ी। समर=(स्मर—सं०) कामदेव। चिकुर=केश। बरहि=(र्बाहिष्—स०) कुश। समरि=सामरी। लेअइ=लेती है। उपहार=नैवेद्य। पयोधर=स्तन। देअइ=देती है। पथ=मार्ग।

अर्थ—(विरहिणी की) आँखो के आँसू से नदी का निर्माण हो गया। कमलमुखी उसी मे स्नान करती है।

हे कृष्ण! (वह) सरस कमलनाल की जपमाला बनाकर दिन-रात तुम्हारा नाम जपती है।

हे कृष्ण! (तुम्हारी) प्रियतमा वृन्दावन में तपस्या करती है। (उसकी) हृदय-रूपी वेदी पर कामग्नि जल रही है।

(वह अपने) प्राण की समिधा और कामदेव की आग करके होम कर रही है (यदि वह मर जायगी, तो तुम) वध के भागी हो जाओगे।

सामरी (सुन्दरी) हाथ मे केश-रूपी कुश लेकर स्तन-रूपी फल का नैवेद्य दे रही है।

विद्यापति कहते है—हे कृष्ण! सुनो। वह नारी तुम्हारी राह देख रही है।

[२०९]

फुजलेओ चिकुर राहुक(र)[1] जोर।
रोअए सुधाकर कामिनि कोर॥

सं० अ०—५ तुअ। १ राहुकर।

अरे कन्हु अरे कन्हु देखह आए।
बड़िअ मघथ देअ वाद छड़ाए॥
दुहु अञ्जुलि भरि दुहु पुज शीव[2]।
कामदहन मोर राखह जीव॥
जदि न जाएब तोहे[3] अपजस भेल।
ससधर कला गगन चलि गेल॥
भनइ विद्यापति हरि मन हास।
राहु छड़ाए चाँद दिअ वास॥

न० गु०, प० ७५४

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ५४६)— २ सीव।

शब्दार्थ—फुजलेओ=खुल जाने से। चिकुर=केश। राहुकर=राहु का। जोर=जोड़=बराबर। सुधाकर=चन्द्रमा। कोर=(क्रोड—सं०) गोद। बड़िअ=बलवान्। मघथ=(मध्यस्थ—स०) बिचुआ। वाद=झगड़ा। कामदहन=कामदेव के जलानेवाले। जीव=प्राण। ससधर=चन्द्रमा। गगन=आकाश। वास=स्थान।

अर्थ—खुल जाने से (नायिका के) केश राहु के बराबर हो गये। (इसीलिए डर के मारे) चन्द्रमा (मुख) कामिनी की गोद मे रोता है। (अर्थात्—विरहिणी के केश अस्त-व्यस्त है और वह माथा झुकाये रो रही है।)

अरे कृष्ण! अरे कृष्ण!! आकर देखो। (कारण,) बलवान् बिचुआ झगड़ा छुड़ा देता है। (अर्थात्—तुम बलवान् हो। आकर राहु और चन्द्रमा का झगड़ा छुड़ा दो।)

(विरहिणी) दोनो अंजलियाँ भरकर (अर्थात्—हाथ जोड़कर) दोनो शिव (स्तन) की पूजा करती है (और प्रार्थना करती है कि) हे कामदेव के जलानेवाले! मेरे प्राण की रक्षा करो।

चन्द्रमा की कला आकाश मे चली गई (अर्थात्—रात बहुत बीत गई। अब भी) यदि नही जाओगे (तो समझो कि) तुम्हें अपयश हुआ।

विद्यापति कहते है—(दूती की बात सुनकर) कृष्ण के मन में हँसी आ गई। (उन्होने) राहु से छुड़ाकर चन्द्रमा को (अपने हृदय मे) स्थान दे दिया।

सं० अ०—२ सीव। ३ तोहें।

[२१०]

अकामिक मन्दिर भेलि बहार।
चउदिस[1] सुनलक भमर झँकार॥
मुरुछि[2] खसल[3] महि न रहलि थीर।
न चेतए चिकुर न चेतए चीर॥
केओ सखि गाबए केओ कर चार।
केओ चान्दन[4] गदे[5] करय[6] सँभार॥
केओ बोल मतेँ[7] कान तर जोलि।
केओ कोकिल खेद डाकिनी[8] बोलि॥
अरे अरे अरे कान्हु कि रहसि[9] बोरि।
मदन भुअङ्गे[10] डसु बालहि तोरि॥
भनइ[11] विद्यापति एहो रस भान।
एहि विष[12] गारुड़ एक पय[13] कान्ह॥

न० गु०, प० ७५५

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ५४७)—१ चहुँदिस। २ मुरछि। ४ चानन। ६ करए। ७ मन्त्र। ८ डाकिनि। ९ रभसि। १० भुजङ्ग। १२ बिस। १३ पए।

शब्दार्थ—अकामिक=अचानक। मन्दिर=घर। वहार=वाहर। महि=पृथ्वी। चेतए=चेतती है। चिकुर=केश। चीर=वस्त्र। कर=हाथ। चार=चाल=चलाती है। गदे=विष। मतेँ=मन्त्र ही। तर=(तल—सं०) नीचे। जोलि=जोर से। खेद=खदेड़ती है। डाकनि=कान के पास जोर से पढ़ा जानेवाला विषहारक मन्त्र। बोरि=बोर करना=चौपट करना। भुअङ्गे=साँप से। बालहि=बाला (नायिका) को। तोरि=तुम्हारी। विष गारुड़= विष के लिए गरुडस्वरूप। एक पएं=एकमात्र।

अर्थ—(नायिका) अचानक घर से वाहर हुई (तो उसने) चारो ओर भौरों की झकार सुनी।

सं० अ०—३ खसलि। ५ गदेँ। ६ करए। ७ मतेँ। ८ डाकनि। ११ सुकवि। १३ पए।

(झंकार सुनते ही वह) स्थिर नही रह सकी—मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। (वह) न केश (और) न कपडा सँभाल पाती है। (अर्थात्—उसके केश और वस्त्र—दोनो ही अस्त-व्यस्त हो गये है।)

(नायिका की ऐसी स्थिति देखकर सखियाँ समझ गईं कि इसे कामदेव-रूपी सर्प ने डँस लिया है। इसीलिए) कोई सखी (विषहरा का गीत) गाती है, कोई हाथ चलाती है (अर्थात्—चाटी चलाती है और) कोई चन्दन (से विष का) सँभाल करती है।

कोई कान के नीचे जोर से मन्त्र ही बोलती है (और) कोई डाकनि बोलकर (डाकनि देकर) कोकिल को खदेड़ती है।

अरे! अरे!! अरे कृष्ण!!! क्या चौपट कर रहे हो? कामदेव-रूपी सर्प ने तुम्हारी बाला-(नायिका) को डँस लिया है।

सुकवि विद्यापति यह रस कहते हैं (और कहते है कि) एकमात्र कृष्ण इस विप के लिए गरुड़-स्वरूप है। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

विशेष—साँप के डँसने पर मिथिला मे पाँच प्रकार के उपचार किये जाते है। इस पद मे उन्हीं पाँचो का वर्णन किया गया है।

[२११]

गगन गरज मेघा उठए धरणि थेघा
पचशर हिअ गेल सालि।
से धनि देखलि खिन जिउति आजुक दिन
के जान कि होइत कालि॥
माधव मन दय शुनह सुबानी।
कुजन निरूपि सुजन सखि सङ्गति
जे किछु कहय सयानी॥
की हम साँझक एकसरि तारा
भादव चौठिक चन्दा।
ऐसन कए पियाए मोर मुख मानल
मो पति जीवन मन्दा॥
वामहु गति जत समदि पठौलनि
से सबे कहि कहि गेलि।

तेरसि तिथि ससि सामर पख निसि
दसमि दसा मोरि भेलि॥
भनइ विद्यापति सुन वर जौवति
मने जनु मानह् आने।
राजा शिवसिंह रूपनरायन
लखिमापति रस जाने॥

न० गु०, प० ७५६

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अतः, इसके लिए प्रथम भाग का ७६ संख्यक पद देखिए।

[२१२]

मलिन कुसुम तनु चीरे।
करतल कमल नयन ढर नीरे॥
कि कहब माधव ताही।
तुय गुने लुबुधि मुगुधि भेलि राही॥
उर पर सामरी बेनी।
कमल कोष जनि कारि नागिनी॥
केओ सखि ताकए निशासे।
केओ नलिनी दले कर(ए) बतासे॥
केओ बोल आएल हरी।
समरि उठलि चिर नाम सुमरी॥
विद्यापति कवि गाबे।
विरह् वेदन निअ सखि समुझाबे॥

न० गु०, प० ७५८

विशेष—यह पद 'रागतरगिणी' मे भी है। अतः, इसके लिए 'रागतरगिणी'-में प्राप्त ३८ सख्यक पद देखिए।

[२१३]

सुन सुन माधव सुन मोरि बानी।
तुय[1] दरसने बिनु जइसनि सयानी।।
सयन[2] मगन भेल ताहेरि देहा।
कुहु तिथि मगनि जइसनि ससि रेहा।।
सखि जने आँचरे[3] धइलि झपाइ।
अपनहि साँसे[4] जाइति उड़िआइ।।
मुरुछि[5] खसलि महि पेयसि[6] तोरी।
हरि हरि शिव[7] शिव[8] एतबाए बोली।।
अबसेओ[9] जीव तेजति तुअ लागी।
ताक मरन बध होएबह भागी।।
भनइ विद्यापति के कर तरान।
तुअ दरशन[10] एक जीव निदान।।

न० गु०, प० ७६३

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ५४९)—१ तुअ। ५ मुरछि। ७-८ सिव सिव। ९ अब सेओ।

शब्दार्थ—सअन=सेज। मगन भेल=मग्न हो गया=डूब गया। ताहेरि =उसका। कुहु तिथि=अमावास्या। ससिरेहा=चन्द्रमा की रेखा। महि=पृथ्वी। पेअसि=(प्रेयसी—स०) प्रियतमा। एतबाए=इतना ही। अबसेओ=अवश्य ही। जीव =प्राण। तुअ लागी=तुम्हारे लिए। ताक=उसके। तरान=त्राण—स०। जीव=जीवन। निदान=कारण।

अर्थ—हे कृष्ण! सुनो, सुनो। मेरी बात सुनो। तुम्हारे दर्शन के विना (तुम्हारी) प्रियतमा जैसी है, (सो, सुनो।)

जिस प्रकार अमावास्या तिथि मे शशिरेखा डूब जाती है, (उसी प्रकार) उसका शरीर सेज मे डूब गया है। (अर्थात्—विरहिणी इतना छीज गई है कि सेज पर दिखलाई नही पड़ती है।)

(वह) अपनी ही साँस से उड़ जायगी— (इसी डर से) सखियो ने (उसे) आँचल से ढक रखा है।

सं० अ०—१ तुअ। २ सअन। ३ आँचरें। ४ साँसें। ६ पेअसि। १० दरसन।

'हरे! हरे! शिव! शिव!'—इतना ही बोलकर तुम्हारी प्रेयसी मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी है।

वह अवश्य ही तुम्हारे लिए प्राण तज देगी (और तुम) उसके मरण के वधभागी हो जाओगे।

विद्यापति कहते हैं—(तुम्हारे विना) कौन (उसका) त्राण कर सकता है? एकमात्र तुम्हारा दर्शन (ही उसके) जीवन का कारण (हो सकता है।)

[२१४]

नव किसलअ सयन[1] सुतलि
न बुझ दिवस राती।
चान्द[2] सुरज[3] बिसेख न जानए
चान्दने[4] मानए साती।
विरह अनल मने अनुभव
परके कहए न जाइ[5]।
दिवसे दिवसे खिनी[6] वाली[7]
चान्द अबथाजे[8] जाइ[9]॥
माधव रमनि पाउलि मोहे।[10]
आज धरि मोजे[11] आसे[12] जिआउलि
ओतए[13] जानह तोहें॥
कतहु कुसुम कतहु सौरभ[14]
कतहु भ(म)र[15] रावे।
इन्दिअ दारुन जतहि हटिअ
ततहि ततहि धावे॥
मदन सरे[16] जे तनु पसाहल
ऋतुपति[17] के रोसे।

सं० अ०—१ सअन ३ सुरुज ५ जाई। ६-७ सिनीवाली। ९ जाई। १० मोहें। १२ आसें। १३ अतए। १४ सउरभ। १५ भमर। १६ सरें।

अपन बालभु जओ[18] होअ आएत
तओ[19] दिअ परक दोसे।।
भन विद्यापति सुन तोजे[20] जउवति
रहहि सङ्ग सपूने।
कन्त दिगन्तर जाहि न सुमर
कि[21] तसु रूप कि गूने।।

न० गु०, प० ७६६

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ५५०)—२ चाँद। ३ सुरुज। ४ चानने। ५ जाई। ८ अवथाएँ। ९ जाई। ११ मोयँ। १७ रितुपति। १८ जयँ। १९ तयँ। २० तोयँ। २१ की।

शब्दार्थ—किसलअ=(किसलय—सं०)कोपल। सअन=सेज। दिवस=दिन। बिसेख=(विशेष—सं०) भेद। साती (साति—सं०) तीव्र वेदना। विरह-अनल=विरहाग्नि। परके=दूसरे को। सिनीवाली=जिसमे चन्द्रमा दिखलाई पड़े, वह अमावास्या (सा दृष्टेन्दु' सिनीवाली—अमर)। अबथाजे=अवस्था मे। पाउलि=पड़ी है। मोहेँ=भ्रमजाल। आज धरि=आज तक। अतए=अब। तोहे=तुम। कतहु=कही। कुसुम=फूल। सउरभ=सुगन्ध। रावे=शब्द कर रहे है। इन्दिअ=इन्द्रिय—स०। दारुन=भयंकर। जतहि=जही। ततहि=तही। धावे=दौडती है। तनु=शरीर। पसाहल=आग फैलाई। ऋतुपति=वसन्त। रोसे=रोष—सं० बालभु=(वल्लभ—स०) स्वामी। आएत=(आयत्त—सं०)अधीन। सपूने=(सम्पूर्ण—सं०) सब तरह से। कन्त=स्वामी। दिगन्तर=दूर देश मे। गूने=गुण।

अर्थ—नवपल्लव की सेज पर सोई हुई (विरहिणी) दिन-रात को नही समझती है। (कारण, वह) चन्द्रमा (और) सूर्य मे भेद नही जानती है। (अर्थात्—सन्ताप देने के कारण चन्द्रमा भी उसे सूर्य के समान ही प्रतीत होता है।) चन्दन से (भी वह) तीव्र वेदना (ही) मानती है (अर्थात्—तीव्र वेदना का ही अनुभव करती है।)

विरहानल का अनुभव (अपने ही) मन मे होता है। (वह) दूसरे को कहा नही जाता है। (इसीलिए वह) दिन-दिन (क्रमश') अमावास्या के चन्द्रमा की अवस्था मे जा रही है (अर्थात्—अमावास्या के चन्द्रमा की तरह क्षीण हो रही है।)

हे कृष्ण! (तुम्हारी) रमणी भ्रमजाल मे पड़ी है। आजतक मैने आशा से (अर्थात्—तुम्हारे आने की आशा देकर उसे) जिलाया। अब तुम जानो।

कही फूल (खिले) है, कही सुगन्ध (फैल रही) है (और) कही भौरे शब्द कर रहे है। (ये ही कारण है कि) दारुण इन्द्रियो को जहाँ(-जहाँ) से हटाती है, वही-वही (वे) दौड़ती है।

सं० अ०—१८ जओ। १९ तओ।

ऋतुराज वसन्त के रोष मे कामदेव ने (अपने) बाण से जो शरीर मे आग लगा दी है, (उसके लिए किसे दोष दिया जाय?) यदि अपना स्वामी अधीन हो तो दूसरे को दोष दिया जाय। (अर्थात्—यदि स्वामी अधीन नही हो, तो उसी को दोष दिया जा सकता है, दूसरे को नही।)

विद्यापति कहते है—(अरी) युवती! सुनो। सब तरह से (स्वामी का) साथ रहे, (इससे क्या हुआ?) दूर देश मे स्वामी जिसका स्मरण नही करता है, उसका रूप (और) गुण क्या? (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[२१५]

खने सन्ताप सीत जर जाड़।
की उपचरब सन्देह न छाड़॥
उचितओ भूषन मानए भार।
देह रहल अछ सोभा-सार॥
ए हरि तोरित करिअ अवधारि।
जे किछु समदलि सुन्दरि नारि॥
वेदन मानए चान्दन आगि।
बाट हेरए तुअ अहनिसि जागि॥
जीनल वदन इन्दु तें ताब।
कीदहु होइति एहि परथाब॥
नव आखर गदगद सर रोए।
जे किछु सुन्दरि समदल गोए॥
कहए न पारिअ तसु अवसाद।
दोसरा पद अछ सकल समाद॥
भनइ विद्यापति एहो रस भान।
अबुझ न बुझए बुझए मतिमान॥[१]
राजा सिवसिंह परतख देओ।
लखिमा देवि पति पुनमत सेओ॥

[१] न० गु०, प० ७६७

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अतः, इसके लिए प्रथम भाग का १७५ संख्यक पद देखिए।

[२१६]

प्रथमहि रङ्ग रभस उपजाए।
प्रेमक आँकुर गेलाहे बढ़ाए॥
से आबे दिन दिन तरुनत भास।
ताँ तरुवर मनमथे लेल वास॥
माधव कर्कें बिसरलि वरनारि।
बड़ परिहर गुन-दोस विचारि॥
पिक पञ्चम डरे मदन तरास।
सर गदगद घन तेज निसास॥
नयन-सरोज दुहू बह नीर।
काजर पघरि पघरि पर चीर॥
तेँहि तिमित भेल उरज सुबेस।
मृगमदे पूजल कनक महेस॥
सुपरुष वाचा सुपहु सिनेह।
कबहु न विचल पखानक रेह॥
भनइ विद्यापति सुन वरनारि।
धरु मन धीरज मिलत मुरारि॥

न० गु०, प० ७६८

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' में भी है। अत, इसके लिए प्रथम भाग का १६६ संख्यक पद देखिए।

[२१७]

माधव जानल न जिउति[1] राही।
जतबा जकर लेले छल[2] सुन्दरि
से सबे सोपलक[3] ताही॥

सं० अ०—१ जीउति। २ छलि।

सरदक ससधर मुखरुचि सोपलक[3]
हरिन के लोचन-लीला।
केसपास लए चमरिके सोपलक[4]
पाए मनोभव-पीला[6]॥
दसन दसा दालिब[7] के सोपलक[8]
बन्धु अधर-रुचि देली।
देह-दसा सउदामिनि सोपलक[9]
काजर सनि सखि भेली॥
भउहेरि[10] भङ्ग अनङ्ग चाप दिहु
कोकिल के दिहु वाणी[11]।
केवल देह नेह[12] अछ लओले
एतबा अएलाहु[13] जानी॥
भनइ विद्यापति सुन वरजउवति
चिते जनु झाँखह आने[14]।
राजा सिवसिंह[15] रूपनरायन[16]
लखिमा देवि[17] रमाने॥

न० गु०, प० ७७०

पाठभेद—

ग्रियर्सन (पद-संख्या १०)—

माधव आब न जीउति राही।
जतबा जनिकर लेने छलि सुन्दरि
से सबे सोपलक ताही॥
चानक ससिमुख शशिके सोपलन्हि
हरिणके लोचन-लीला।

सं० अ०—३-४-५-८-९ सोँपलक। ६ पीळा। ७ दळिम। ११ बानी। १३ अएलाहुँ। १४ आने। १६ रूपनरायेन।

केसक पास चामरुकाँ सोपलन्हि
पाए मनोभव - पीड़ा॥
दसन-बीज दाड़िमकेँ सोपलन्हि
पिककेँ सोपलन्हि वाणी।
देह-दसा दामिनिकेँ सोपलन्हि
ई सभ एलहुँ जानी॥
हरि हरि कए पुनि उठति धरणि धरि
रैन गमाबए जागी।
तोहर सिनेह जीव दए जापथि
रहलिहि धनि एत लागी॥
भनहि विद्यापति सुनु मधुरापति
गमन न करिए विलम्बे।
जाइ पिआबिअ अधर-सुधा-रस
तो पए जीब त जीबे॥

न० गु० (पद-संख्या ७८५)—२ छलि। ३-४-५-८-९-सोँपलक। १० भमुहरि। ११ बानी। १२ पाठाभाव। १५ शिवसिंह। और, ऊपर की तीनो पंक्तियाँ 'पाए मनोभव पीला' के बाद है।

मि० म० (पद-संख्या १८१)—१ जिवति। २ छलि। ५ सोपल। ११ बानी। १५ सिवसिंघ। १७ देइ।

शब्दार्थ—राही=राधा। जतबा=जितना। ससधर=चन्द्रमा। लोचन-लीला=आँखों का विलास। मनोभव=कामदेव। पीळा=पीड़ा। दसन=दाँत। बन्धु=(बन्धूक—सं०) गुल-दुपहरिया। सउदामिनि=विद्युत्। सनि=(सम—स०) सी। भऊहेरि=भौह की। भङ्ग=वक्रता=टेढापन। अनङ्ग=कामदेव। चाप=धनुष। दिहु=दिया। बानी। वचन। जनु=मत। झाँखह=चिन्ता करो।

अर्थ—हे कृष्ण! (मै) जान गई,—राधा नही जीयेगी। (इसीलिए) सुन्दरी ने जिसका जितना लिया था, सो सब उसे सौप दिया।

(उसने) कामदेव की पीडा पाकर (अर्थात्—कामपीडिता होकर) शरद् ऋतु के चन्द्रमा को मुख की शोभा सौप दी, हरिण को आँखो का विलास सौप दिया (और) केशपाश लेकर चमरी (गाय) को सौप दिया।

(उसने) दाँतो की दशा अनार को सौंप दी, अधर की शोभा गुलदुपहरिया को दे दी (और) देह की दशा विद्युत् को सौप दी। (सब-कुछ सौंपकर) सखी काजल-सी (काली) हो गई है।

(उसने) कामदेव के धनुष को भौह का टेढ़ापन दे दिया (और) कोकिल को वचन दे दिया। (वह) केवल (अपने) शरीर से स्नेह किये है। (अर्थात्—उसका सारा श्री-सौन्दर्य नष्ट हो गया, केवल शरीर बचा हुआ है।) इतना जानकर (मैं) आई हूँ।

विद्यापति कहते है—(अरी) वरयुवती! सुनो। मन मे दूसरी चिन्ता मत करो। (कारण,) लखिमा देवी के रमण राजा शिवसिंह रूपनारायण (इसे समझते है।)

[२१८]

कत कत भमि पुरुस[1] देखल
कत कलावति नारि।
जिव सओ[2] पेम पलक[3] उपजइ[4]
सबे से बुझ बिचारि॥
तकरि आसा देखि देखि तबे
मोहि न रह गेंआन[5]।
जाहि बधतब से जेहेन[6] कर
तोंहि[7] चाहि नहि आन[8]॥
माधव कहओं[9] तोहि बुझाइ।
से आबे मरन सरन जानलि
तोहर विरह पाइ॥
धरनि सयन[10] मुदल[11] नयन[12]
नलिन मलिन समे।
कते जतनें बोलिकहु धनि।
तोरि बइसाउलि हमे॥
तैअओ[13] जदि पुछले न बाजलि
वचन न सुन आधे।

सं० अ०—१ पुरुष। २ सम। ३ पलके। ४ उपजए। ५ गेआन। ६ जइसन। ७ तोह। ८ आन। १० सअन। ११ मुंदल। १२ नअन। १३ तइअओ।

सुमरि से सखि तोह[१४] मोह गेलि
विधि बसे भेलि बाधे॥
पीरिति गुन विपरीत होए साए[१५]
बिसरि न कर नाह।
दिवस दोसे[१६] से की नहि सम्भव
पेम परानहु चाह॥
भनइ विद्यापति सुन तञे[१७] जुवति
रस नहि अवसान।
राजा सिरि सिवसिह[१८] जिवओ[१९]
लखिमा देवि[२०] रमान॥

न० गु०, प० ७७२

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या १८२)—२ सयँ। ३ पलके। ५ गेआन। ७ तोँह। ९ कहओँ। १७ तयँ। १८ सिवसिंघ। १९ देइ।

शब्दार्थ—कत=कितने। भमि=घूम-फिरकर। सम=सा। पलके=क्षणमात्र मे। तकरि=उसकी। बधतव=वध करना रहता है। जइसन=जैसा। आन=(अन्य—सं०) दूसरा। धरनि=धरती। नलिन=कमल। बोलिकहु=बोलकर। धनि=(धन्या—सं०) नायिका। तइअओ=तोभी। तोँह=तुमको। विधिवसे=(विधिवशात्—स०) दैवयोग से। दिवस-दोषेँ= दिन के दोष से=समय के फेर से।

अर्थ—घूम-फिरकर कितने पुरुषो को देखा—कितनी कलावती महिलाओ को देखा। सोच-विचारकर सब यही समझते हैं (कि) प्राण-सा (प्रिय) प्रेम क्षणमात्र मे पैदा हो जाता है। (अर्थात्—क्षणमात्र के ससर्ग से उसको तुमसे प्रेम हो गया।)

तब (प्रेम हो जाने के बाद) उसकी आशा देख-देखकर मुझे ज्ञान नही रहा (अर्थात्—मेरी सुध-बुध खो गई। कारण,) जिसे वध करना रहता है, वह जैसा करता है, (वैसा) तुम्हारे बिना दूसरा नही (कर सकता है। अर्थात्—कहाँ उसका प्रेम और कहाँ वधिक-सा तुम्हारा व्यवहार ! दोनो को देखने के बाद मेरा ज्ञान जाता रहा।)

हे कृष्ण ! तुम्हे समझाकर कहती हूँ। (सुनो—) तुम्हारा विरह पाकर अब वह मृत्यु को (अपनी) शरण जान गई (अर्थात्—उसे अपनी मृत्यु का भान हो गया।)

सं० अ०—१४ तोँह। १५ से। १६ दोषेँ। १७ तोअ। १९ जीबओ।

(इसीलिए) मुरझाये कमल के समान (वह) आँखें मूँदकर धरती पर सोई थी। कितने यत्न से कह-सुनकर मैंने तुम्हारी प्रेयसी को बैठाया।

तो भी यदि पूछने पर (वह) नही बोल सकी, (मेरी) आधी बात (भी) नही सुन सकी (तो मै क्या करती? कारण,) वह तुम्हारा स्मरण करके मूर्च्छित हो गई। दैवयोग से (कार्य मे) वाधा हो गई।

प्रीति का असर विपरीत होता है। वह स्वामी को भूलने नही देता है। (फिर) समय के फेर से क्या नही हो सकता है? प्रेम (तो) प्राण भी चाहता है (अर्थात्—प्राण भी हर लेता है।)

विद्यापति कहते है—(अरी) युवती! सुनो। प्रेम का अन्त नही होता है। लखिमा देवी के रमण राजा श्रीशिवसिंह जीये। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[२१९]

करहि मिलल रह मुख नहि सुन्दर
जनि खिन दिवसक चन्दा।
प्रकृति न रह थिर नयन गरय निर
कमल गरए मकरन्दा॥
हे माधव तुअ गुणे झामरि रामा।
दिने दिने खिन तनु पिड़ए कुसुमधनु
हरि हरि ले पए नामा॥
निन्दय चन्दन परिहर भूषन
चाँद मानए जनि आगी।
दसमि दसा आबे तें धनि पाओल
वधक होएब तोंहे भागी॥
अवसर बहला कि नेह बढ़ाओब
विद्यापति कवि भाने।
राजा सिवसिंह रूपनरायन
लखिमा देवि रमाने॥

न० गु०, प० ७८१

विशेष—यह पद 'रामभद्रपुर-पदावली' मे भी है। अतः, इसके लिए रामभद्रपुर मे प्राप्त २८ संख्यक पद देखिए।

[२२०]

कत नलिनीदल सेज सोआउबि
कत देब मलअज-पङ्का।
जलज-दल न कत देह देआओब
तथुहु हुतासन शङ्का[1]॥
कह कइसे राखबि तरुणी[2]
तरुण[3] मदन परतापें[4]।
चिन्तागे[5] करतल लीन वदन तसु
देखि उपजु मोहि भाने॥
दर लोभें[6] बिहि अपुरुब जनि सिरिजल
चान्द कमल सन्धाने॥
दारुन पचसर[7] मुरुछि[8] धरनि पल[9]
सुमरि सुमरि तुअ नेहे।
तोहें[10] पुरुषोतम[11] त्रिभुवन सुन्दर
अपद न अपजस लेहे॥

न० गु०, प० ७८२

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ८४७)—१ सङ्का। २ तरुनी। ३ तरुन। ५ चिन्ताए। ८ मुरछि। १० तोहें। ११ पुरुसोतम।

शब्दार्थ—नलिनीदल=कमलपत्र। मलअज-पङ्का=चन्दन का लेप। जलज-दल=कमलपत्र। तथुहु=उसमे भी। हुतासन=आग। तरुण=प्रौढ=समर्थ। चिन्तागे=चिन्ता से। करतल=तलहथी। वदन=मुख। तसु=उसका। भाने=ज्ञान=प्रतीति। दर=ईषत्=कुछ। अपुरुब=अपूर्व—सं०। सन्धाने=सयोग से। दारुन=कठोर=निर्दय। पँचसर=कामदेव। धरनि=पृथ्वी। पल=पडती है। अपद=विना कारण के।

सं० अ०—४ परतायें। ६ लोभें। ७ पँचसर। ९ पळ। १० तोहें। ११ पुरुषोत्तम।

अर्थ—कमलपत्र पर (उसे) कितना सुलाऊँगी (और) चन्दन का कितना लेप दूँगी? शरीर पर कितने कमलपत्र न दिलवाऊँ, (अर्थात्—जितने भी कमलपत्र दिलवाऊँ,) उनमे भी (वह) आग की शंका (करती है।)

कहो, समर्थ कामदेव के प्रताप से तरुणी को कैसे (बचाकर) रखूँगी?

चिन्ता से तलहथी मे टिके (अर्थात्—हाथ पर गाल लिये) उसके मुख को देखकर मुझे (ऐसा) भान हो रहा है, जैसे विधाता ने कुछ लोभ से कमल के सयोग से अपूर्व चन्द्रमा को सिरजा है।

कामदेव निर्दय है। (इसीलिए सुन्दरी) तुम्हारे प्रेम का स्मरण कर-करके धरती पर गिर रही है। (अतएव, मै कहती हूँ कि) हे पुरुषोत्तम! तुम त्रिभुवन में (सब तरह से) सुन्दर हो। (इसलिए) अकारण अपयश मत लो।

विशेष—चौथी पंक्ति के बाद एक पक्ति की छूट प्रतीत होती है।

[२२१]

सरदक ससधर मुखरुचि सोँपलक
हरिन के लोचन-लीला।
केसपास लए चमरिके सोँपलक
पाए मनोभव-पीला॥
माधव जानल न जिउति राही।
जतबा जकर लेले छलि सुन्दरि
से सबे सोँपलक ताही॥
दसन-दसा दाड़िँबके सोँपलक
बन्धु अधर-रुचि देली।
देह-दसा सउदामिनि सोँपलक
काजर सनि सखि भेली॥
भउँहेरि भङ्ग अनङ्ग-चाप दिहु
कोकिलके दिहु बानी।
केवल देह (दसा) अछ लओले
एतबा अएलाहु जानी॥

भनइ विद्यापति सुन वरजउवति
चिते जनु आँखह आने[1]।
राजा सिवसिंह रूपनराअन[2]
लखिमा देवि रमाने॥

न० गु०, प० ७८५

विशेष—यह पद पहले भी आ गया है। अत, इसके लिए २१७ संख्यक पद देखिए।

[७२२]

आजे तिमिर दह दीस छड़ला।
आजे दिघर भए दिवस बढ़ला॥
आजे अकथ भेल परिजन कथा।
आरति न रहए उचित वे(व)था[1]॥
ए सखि ए सखि फललि[2] सुवेला।
निअर आएल पिआ लोचन मेला॥
विरहे[3] दगध मन कत दुर धओला।
मागल[4] मनोरथ कओने[5] सखि पओला॥
कति खन धरब जाइते जिव राखि।
आसा बाँध पड़ल मन साखि॥
भनइ विद्यापति सुन (सुन) सजनी।
वालभु सुन भेल[6] महघि रजनी॥

न० गु०, प० ७९४

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ५५३)—पाठभेद नहीं है।

शब्दार्थ—तिमिर=अन्धकार। दह दीस=दसों दिशाएँ। छड़ला=छोड़ दिया। दिघर=(दीर्घ—सं०) बड़ा। अकथ=(अकथ्य—सं०) जो कहने योग्य नहीं है। आरति=(आर्त्ति—स०) पीडा। वेवथा=(व्यवस्था—सं०) प्रबन्ध। फललि=सफल हुई। सुवेला=सुअवसर। निअर=

सं० अ०—१ वेवथा। २ फऌलि। ३ विरहें। ४ माँगल। ५ कओने। भेलि ६।

(निकट—सं०) समीप। लोचन-मेला=आँखो का मिलन। धओला=दौड़ गया था। माँगल=(मुँह) माँगा। धरव=धारण करूँगी। जिव =प्राण। राखि=रक्षा करके=बचाकर । आसा-बाँध=(आशाबन्ध—सं०) आशा का बन्धन। साखि=(साक्षी—स०) गवाह। बालभु=(वल्लभ—स०) स्वामी। सुन=(शून्य—सं०) रहित। महघि=(महार्घ—स०) मँहगी।

अर्थ—(आगतपतिका कहती है—)आज अन्धकार ने दसो दिशाएँ छोड़ दी (अर्थात्—सन्ध्याकालीन अन्धकार का आज कही पता नही है।) आज समय से बड़ा होकर दिन वढ़ गया है।

आज परिजनो की बातचीत कहने की शक्ति से बाहर हो गई (अर्थात्—आज परिजनो की बातचीत का अन्त नही हो रहा है।) पीडा होने पर उचित व्यवस्था नही रहती है।

हे सखी! हे सखी!! (आज का) सुअवसर सफल हुआ। स्वामी समीप आये—आँखो का मिलन हुआ (अर्थात्—आँखों से आँखे मिली।)

विरह से दग्ध (मेरा) मन कितनी दूर दौड़ गया था? (अर्थात्—मेरा मन स्वामी के समीप चला गया था।) हे सखी! किसने (मुँह-) माँगा मनोरथ पाया है? (अर्थात्—मुँह-माँगा मनोरथ किसी को ही मिलता है। सो, मुझे मिल गया।)

(किन्तु, मुँहमाँगा मनोरथ पाने पर भी स्वामी से मिलन नही हो रहा है। इसीलिए, नायिका-कहती है—) कबतक निकलते हुए प्राण की रक्षा करके (उसे) धारण करूँगी? (मेरा) मन (ही) साक्षी है (कि वह किस प्रकार) आशा के बन्धन में पड़ा है।

विद्यापति कहते है—(अरी) सखी! सुनो। स्वामी के विना रात महँगी हो गई है। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[२२३]

करे कुचमण्डल रहलिहुँ गोए।
कमल कनक गिरि झाँपि न होए॥
हरख सहित हेरलन्हि मुख काँति।
पुलकित तनु मोर धर कत भाँति॥
तखने हरल हरि अञ्चल मोर।
रस-भरे ससरु कसनिकर डोर॥
सपना एक सखि देखल मोञें आज।
तखनुक कौतुक कहइते लाज॥
आनन्दे नोरे नयन भरि गेल।
पेमक आँकुरें पल्लव देल॥

भनइ विद्यापति सपना सरूप।
रस बुझ रूपनरायन भूप॥

न० गु०, प० ७९८

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी पक्ति-व्यत्यय के साथ है। यत्र-तत्र पाठभेद भी है। अत, इसके लिए प्रथम भाग का ३९ सख्यक पद देखिए। छठी पक्ति मे 'डोर' के स्थान मे 'भोर' पाठ है, जिसके अनुसार वहाँ अर्थ लिखा गया है। उपर्युक्त पाठ के अनुसार अर्थ होगा—'रस के भार से कटिसूत्र (नीवी-बन्ध) खिसक गया।'

[२२४]

मोराहि रे अँगना चाँदन केरि गछिआ
ताहि चढ़ि कुररए काक रे।
सोने चञ्चु बँधए देब मोए' बाअस
जओ पिआ आओत आज रे॥
गाबह (गाबह) सहिलोरि झूमरि
मअन अराधने जाउ।
चउदिस चम्पा मउलि फुललि
चान्द उजोरिए राति॥
कइसे कए मअन अराधबा रे
होइति बड़ि रति साति।
विद्यापति कवि गाबिआ रे
तोंके' अछ गुनक निधान॥
राउ भोगिसर गुन नागरा रे
पदमा देवि रमान।

न० गु०, प० ८०२

सं० अ०—

मोराहि रे अँगना चाँदन केरि गछिआ
ताहि चढ़ि कुररए काग रे।

पाठभेद—

मि० म० (पादटिप्पणी, भूमिका, पृ० २८)—१ मोजे। २ तोँके।

शब्दार्थ—गछिआ=वृक्ष। कुररए=बोलता है। (कौए की अस्पष्ट बोली को मैथिली मे 'कुररब' कहते है।) बाअस=(वायस—स०) कौआ। सहलोरि=सखी। मञन (मदन—सं०) कामदेव। मउलि=मौलसिरी। उजोरिए=उजेली। रति साति=प्रेम की समाप्ति। राउ=राजा।

अर्थ—(विरहणी अपने आँगन मे बैठी हुई कागा उचार रही है। वह कहानी है—) मेरे आँगन मे चन्दन का वृक्ष है। उसपर चढकर कौआ (अस्पष्ट-सा) बोल रहा है।

(अरे) कौआ! यदि आज (मेरे) स्वामी आयेंगे, (तो) मैं सोने से तुम्हारी चोच बँधवा दूंगी (मढवा दूंगी।)

(इसी समय उसकी सखी आती है और कहती है—) हे सखी! झूमर गाओ। कामदेव की आराधना करने चलो। चारो ओर चम्पा (और) मौलसिरी खिले है। चन्द्रमा से रात उजेली है।

(विरहिणी उत्तर देती है—) मैं किस प्रकार कामदेव की आराधना करूँगी? (इससे मेरे) प्रेम की विलकुल समाप्ति हो जायगी।

(नकारात्मक उत्तर पाकर सखी वापस चली गई, तो विरहिणी कौए से कहती है—अरे) कौआ! (मैंने) आँखे खोलकर देख लिया—बुरे दिनो मे कोई अपना हितू नही होता।

सोने चञ्चु बँधए देब मोजे बाअस
जओ पिआ आओत आज रे॥
गाबह गाबह सहलोरि झूमरि
मञन अराधने जाञु रे।
चउदिसि चम्पा मउली फूललि
चान्द उजोरिए राति रे॥
कइसे कए मोञे मञन अराधबा
होइति बड़ि रति-साति रे।
बाँक समअ कागा केओ नें अपन हित
देखल आखि पसारि रे॥
विद्यापति कविवर इहो गाबिआ
तोँके अछ गुनक निधान रे।
राउ भोगीसर सब गुन नागरा
पदमा देवि रमान रे॥

(विद्यापति के वंशज श्रीशशिधर ठाकुर के सौजन्य से प्राप्त।)

कवि विद्यापति गाते है (कहते है—अरी सुन्दरी!) तू गुणवती है (और) पद्मा देवी के रमण राजा भोगीश्वर सर्वगुण-सम्पन्न नागर है। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[२२५]

सुरभि समय भल चल मलआनिल
साहर सउरभ सार लो।
काहुक बीपद काहुक सम्पद
नानागति संसार लो॥

कोइली,
पञ्चम रागें रमन गुन सुमराओ
कुसल आओत मोर नाह लो।
आज धरिए हमे आसहि अछलिहु
सुमरि न छड़ल ठाम लो॥
भमर देखि भअ भावें पराएल
गहए सरासन काम लो।
भनइ विद्यापति रूपनराएन
सिरि सिवसिंह देव नाम लो॥

न० गु०, प० ८०३

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या १४२)—३ छाडल। ७ सिवसिंघ।

शब्दार्थ—सुरभि-समय=वसन्त ऋतु का समय। भल=सुन्दर। मलआनिल=दक्षिण पवन। साहर=(सहकार—स०) आम्रवृक्ष। सउरभ-सार (सौरभशाल—स०) सौरभ का आगार। बीपद=(विपद्—स०) दुख। सम्पद=सुख। नानागति=अनेक रूप-रग का। सुमराओ=स्मरण कराओ। आज धरिए=आजतक। अछलिहुँ=थी। भअे=भय से। भावें=विश्वास। पराएल=भाग गया। सरासन=धनुष।

अर्थ—वसन्त ऋतु का सुन्दर समय है। खिले हुए आम्रवृक्ष के सौरभ का आगार दक्षिण पवन बह रहा है।

---

१ ,, ,, सं० अ०—१ रागें। २ अछलिहुँ। ३ छड़ले। ४ भअे। ५ भावें। ६ रूपनराअेन।

(किन्तु) किसी को (उससे) दुःख हो रहा है (तो) किसी को सुख। संसार अनेक रूप-रंग का होता है।

अरी कोयल! पंचम राग से (गाकर) स्वामी के गुणो का स्मरण कराओ। (कहो, क्या) मेरे स्वामी सकुशल आयेंगे?

आजतक मैं आशा लगाये रही। (स्वामी के गुणो का स्मरण कर (अपना) स्थान नही छोड़ा (अर्थात्—अपने स्थान से विचलित नही हुई।)

(किन्तु) भौरे को देखकर भय से (मेरा) विश्वास भाग गया। (जान पड़ता है, जैसे) कामदेव ने धनुष ग्रहण कर लिया है।

विद्यापति कहते है—(घबराओ मत।) रूपनारायण श्रीशिवसिंहदेव सब कुछ जानते है।

[२२६]

जनम कृतारथ सुपुरुष[1] सङ्ग।
सेहे दिवस जौं[2] नहि मन भङ्ग॥
हृदयक आनन्दे[3] सुख[4] परगास।
तरनि तेजें[5] हों[6] कमल बिगास॥
भल भेल माइ हे कुदिवस गेल।
हरि निधि मिलल सकल सिधि भेल॥
एक दिस मनिमय नव निधि हेम।
अओका दिस नव रस सुपुरुष[1] पेम॥
निकुती तौलि कएल अनुमान।
प्रीति अधिक थी (क)[7] के नहि जान॥
प्रीतिक सम हे दोसर नहि आन।[8]
जाहि तुलना दिअ अपन परान॥
भनइ विद्यापति अनुपम रीति।
दम्पति काँ हो अचल पिरीति॥

न० गु०, प० ८१४

सं० अ०—२ जओ। ३ आनन्दें। ४ मुख। ७ थिक। ८ आन।

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ५६९)—१ सुपुरुस। ५ हे। ६ सुपुरुस।

शब्दार्थ—कृतारथ=(कृतार्थ—स०) सफल। सेहे=वही। दिवस=दिन। जञो=यदि। भंग=टूटना। तरनि=सूर्य। मल=भला। कुदिवस=बुरे दिन। निधि=खजाना। एक दिस=ऐंक ओर। अओका दिस=दूसरी ओर। निकुती=निकती=काँटा। अधिक=वजनदार। दम्पति=पति-पत्नी।

अर्थ—(यदि) सुपुरुष का सग हो, (तो) जन्म सफल है (और) यदि मन नही टूटे, (तो) दिन सफल है।

हृदय के आनन्द से सुख का प्रकाश होता है, (जैसे) सूर्य के तेज से कमल का विकास होता है।

अरी मैया! भला हुआ (कि) बुरे दिन बीत गये। कृष्ण-रूपी निधि मिल गई। सारी सिद्धियाँ हो गईं।

एक ओर मणिमय नवों निधियो से (खचित) सोना और दूसरी ओर अभिनव रस से युक्त सुपुरुष का प्रेम।

(इन दोनो को) काँटे पर तोलकर अनुमान किया (तो) प्रीति (ही) वजनदार ठहरी। (इसे) कौन नही जानता?

प्रीति के समान दूसरा कुछ नही, जिसके साथ अपने प्राण की तुलना दी जाय। (अर्थात्—एक प्रीति ही ऐसी है, जिससे प्राण की तुलना दी जा सकती है।)

विद्यापति कहते है—(प्रीति की) रीति अनुपम होती है। (इसलिए) पति-पत्नी की प्रीति अचल हो। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[२२७]

अधर सुधा मिठि दूधे[1] धवरि डिठि
मधु सम मधुरिम बानी[2] रे।
अति अरथित जे जतने न पाइअ
सबे बिहि तोहि देल आनि[3] रे॥
जनु रुसह[4] भाविनि भाव जनाइ।
तुय[5] गुने लुबुधल सुपहु अधिक दिने
पाहुन आएल मधाइ॥

सं० अ०—१ दूधे। २ बानि। ३ आनि। ४ रूसह। ५ तुअ।

जसु गुन झखइते झामरि भेलि हे
रयनि[६] गमओलह जागि रे।
से निधि निधि[७] अनुरागे[८] मिलल तोहि[९]
कन्हु सम पिआ[१०] अनुरागि रे॥
भनइ विद्यापति गुणमति[११] राखए
बालभु[१२] के अपराध रे।
राजा शिवसिंह[१३] रूपनराएन[१४]
लखिमा देवि[१५] अराध रे॥

न० गु०, प० ८१७

पाठभेद—

सि० म० (पद-सख्या १३७)—५ तुअ। ७ विधि। ९ मिलन १०. पिया। ११. गुन-मति। १२. बालभु। १३ सिवसिंघ। १५ देइ।

शब्दार्थ—सुधा=अमृत। धवरि=उजली। डिठि=दृष्टि—सं०।(बानि=वाणी—सं०) वचन। अरथित=(अर्थित—सं०) अभिप्रेत। आनि=लाकर। रूसह=रूठो। भाविनि=भावना-मयी=सुन्दरी। पाहुन=(प्राघुण—सं०) अतिथि। झामरि=जली हुई इंट के समान काली। रयनि=(रजनी—स०) रात्रि। निधि=कुबेर का खजाना। अनुरागि=अनुरक्त होकर। अराध=आराधना करती है।

अर्थ—अमृत के समान मीठा अधर, दूध के समान उजली आंखे (और) मधु के समान मधुर वचन! अत्यन्त अभिप्रेत होने पर (भी) जो यत्न से नही पाये जाते, विधाता ने लाकर वे सब तुम्हे दे दिये।

अरी सुन्दरी! भाव जनाकर (अर्थात्—विश्वास देकर) मत रूठो। (कारण,) तुम्हारे गुणो से लुब्ध होकर बहुत दिनो के बाद स्वामी—कृष्ण— अतिथि होकर आये है।

जिसके गुणो से (अर्थात्—जिसके गुणो का स्मरण करके) झँखती हुई (तुम) जली हुई इँट के समान काली हो गई, जगकर राते बिताईं, विधाता के विधान से वह खजाना तुम्हे मिल गया—कृष्ण के समान अनुरागी स्वामी तुम्हे मिल गये।

विद्यापति कहते है—गुणवती (स्त्री) स्वामी के अपराध को (छिपाकर) रखती है। राजा शिवसिंह रूपनारायण लखिमा देवी के आराध्य है। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

सं० अ०—६ रअनि। ७-८ विधि-अनुरोधें। १२ बालभु। १३ सिवसिंह। १४ रूपनराअेन।

[२२८]

जा लागि चाँदन बिखतह भेल
चाँद अनल जा लागि रे।
जा लागि दखिन पवन भेल सायक
मदन वैरि जा लागि रे॥
से कान्हु कते दिने पाहुन[1] (आएल)
हसि[2] न निहारसि ताहि रे।
हृदयक हार हठे[3] टारह जनु
पेम सुधा अवगाहि रे॥
रोयइते[4] नोरे[5] आतुर भेल लोचन
रयनि[6] जाम जुगे गेलि रे।
फूजल चिकुर चीर नहि चेतए
हार भार तनु भेल रे॥
तप तोर तरुण करुने[7] कान्हु आएल
काँइ[8] बढ़ाबसि मान रे।
जेओ न अछल मन सेओ भेल संपन
कवि विद्यापति भान रे॥

न० गु०, प० ८१८

पाठभेद—

मि० म० (पद-सख्या ५६७)—४ रोअइते। ७ तरुन।

शब्दार्थ—जा लागि=जिसके लिए। बिखतह=(विषम्=विषत:—स०—सार्व-विभक्तिक तसिल्) विष के समान। अनल=आग। सायक=बाण। टारह=हटाओ। सुधा=अमृत। अवगाहि=अवगाहन करके। नोरें=आँसू से। आतुर=अधीर। लोचन=आँख। जाम=(याम—स०)पहर। चिकुर=केश। चीर=वस्त्र। तनु=शरीर। तरुन=समर्थ=पूर्ण। करुने=करुणा करके=दया करके। कानि=क्यो। अछल=था। सपन=(सम्पन्न—स०) पूरा।

सं० अ०—१ पाहुन आएल। २ हँसि। ३ हठें। ४ रोअइतें। ५ नोरें। ६ रजनि। ७ तरुन। ८ कानि।

अर्थ—जिसके लिए (अर्थात्—जिसके उद्देश्य से) चन्दन विष के समान हो गया, जिसके लिए चन्द्रमा आग के समान हो गया, जिसके लिए दक्षिण पवन बाण के समान हो गया (और) जिसके लिए कामदेव शत्रु के समान हो गया,

वे कृष्ण कितने दिनो पर अतिथि होकर आये। (फिर भी तुम) उन्हे हँसकर नही देखती है। (अरे!) प्रेमरूपी अमृत मे अवगाहन करके (तुम) दुराग्रह से हृदय के हार को मत हटाओ।

(जिसके लिए) रोते-(रोते) आँसू से आँखे अधीर हो गई थी, रात का पहर युग मे जा पहुँचा था। (अर्थात्—युग के समान बड़ा हो गया था,) खुले हुए केश (और) वस्त्र नही चेतती थी (तथा) शरीर का हार (भी) भार हो गया था,

तुम्हारी तपस्या पूरी हुई। (अतएव) कृपा करके (वे) कृष्ण आ गये। (फिर तुम) क्यो मान बढाती है? कवि विद्यापति कहते है, जो भी मन मे नही था, वह भी पूरा हो गया। (अर्थ—सम्पादकीय अभिमत से।)

[२२९]

कत न दिवस लए अछल मनोरथ
हरि सञो बढ़ाओल नेहा।
से सब सफल भेल बिहि अभिमत देल
सहजे आएल मझु गेहा॥
माइ हे जनम कृतारथ भेला।
वदन निहारि अधर मधु पिबि कहु
हरि परिरम्भन देला॥
पीन पयोधर हरखि परसि करु
निविबन्ध खोएलन्हि पानी।
पुलक पुरल तनु मुदित कुसुमधनु
गाबए सुललित बानी॥
तोअ धनि पुनमति सब गुण गुणमति
विद्यापति कवि भाने।
राजा शिवसिंह रूपनराएन
लखिमा देवि रमाने॥

न० गु०, प० ८१९

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अतः, इसके लिए प्रथम भाग का २१६ संख्यक पद देखिए।

[२३०]

बएस कतए तेजि गेला।
तोंहं[1] सेबइते जनम बहल
तइअओ न अपन भेला॥
सैसब[2] दसा चाहि खोअओला हे
मधुर माएक छीर।
दुइ सिरीफल छाँह[3] सोअओला हे
कोमल काँच सरीर॥
दाँत झड़ि मुह थोथड़ भए गेल
झड़ि गेल सबे दाप[3]।
तीनू भुअन बइसल देखिअ
जनि कचुमाएल[4] साप॥
आँखि[5] मलामलि दूर न सूझए[6]
वन फुटि गेल कासी।
दुअओ धराधर धरि निरोधिअ
तर उपर उकासी॥

न० गु०, प० ८४१

पाठभेद—

मि० म० (पद-संख्या ६०७—पाठान्तर)—१ तोंहे। २ छाहें। ३ दाग। ६ सुझए।

शब्दार्थ—कतए=कहाँ। जनम=(जन्म—स०)जीवन। बहल=बीत गया। तइअओ=तथापि। भेला=हुआ। सैसब दसा=बचपन। चाहि=यत्न करके। खोअओला=खिलाया। छीर=(क्षीर—स०) दूध। सिरीफल=(श्रीफल—स०) बेल। सोअओला=सुलाया। काँच=कच्चा=अपरिपक्व। थोथड़=थोथा=खोखला। दाप=(दर्प—स०)गर्व। भुअन=भुवन—स०।

सं० अ०—४ कचुआएल। ५ आखि।

कचुआएल=केंचुल से जकड़ा। मलामलि=बार-बार खुलती और बन्द होती है। फुटि गेल= खिल गये। कासी=कास=एक घास। दुअओ घराधर=दोनो ओठ। उकासी=खाँसी। धरि= पकड़कर। निरोधिअ=रोकता हूँ। तर=(तल—स०) भीतर।

अर्थ—(कवि अपनी उम्र से कहता है—) अरी उम्र! (मुझे) तजकर (तू) कहाँ चली गई? तुझे सेते हुए (मेरा) जीवन बीत गया। फिर भी (तू) अपनी नही हुई।

बचपन मे यत्न से माँ का मीठा दूध खिलाया (और) सुकुमार अपरिपक्व शरीर को(माँ के) दो श्रीफलो (स्तनो) की छाया मे सुलाया। (फिर भी तू अपनी नही हुई।)

(अब तो) दाँत गिर जाने से मुँह खोखला हो गया—(मेरा) सारा गर्व चूर हो गया। केंचुल से जकड़े साँप के जैसा बैठा हुआ (मै) तीनो भुवन देख रहा हूँ।

आँखे बार-बार खुलती और बन्द होती है। दूर नही दिखलाई पड़ती है। (इतना ही देखता हूँ कि) जगल मे कास खिल गये है। दोनो ओठ पकडकर रोकता हूँ, (फिर भी) भीतर और बाहर खाँसी होती है।



परिशिष्ट

'तरौनी-पदावली' में उपलब्ध अन्य कवियों के पद

[१]

कनकलता अरविन्दा।
दमना माझ उगल जनि चन्दा॥
केओ बोले सैबल छपला।
केओ बोले नहि नहि मेघे झपला॥
केओ बोल भमए भमरा।
केओ बोल नहि नहि चरए चकोरा॥
संसय पड़ल सबे देखी।
केओ बोलए ताहि जुगुति बिसेखी॥
भनइ विद्यापति गाबे।
बड़े पुने गुनमति पुनमत पाबे॥

न० गु०, प० १६

पाठभेद—

रागतरंगिणी (पृ० ७६-७७)—

कनकलता अरविन्दा।
मदनाँ[१] माँजरि उगि गेल चन्दा॥
केओ बोल भमय भमरा।
केओ बोल नहिँ[२] नहिँ[३] चलय चकोरा॥
केओ बोल सैबालें[४] बेढला।
केओ बोल नहिँ[५] नहिँ[६] मेघ मिलला॥
सशए[७] परु जन मही।
बोल तोर मुख सम नहीं[८]॥

कवि रतनावी[९] भाने।
सङ्क कलङ्क दुअओ असमाने॥
मिलु रति मदन समाजा।
देवल देवि लखनचन्द राजा॥

मि० म० (परिशिष्ट ङ, पद-संख्या १)—१ मदना। २-३ नहि नहि। ४ सैकवालें। ५-६ नहि नहि। ७ संसय। ८ नही। ९ रतनाई।

[२]

जुगल[१] सैल[२] सिम हिमकर देखल
एक कमल दुइ जोति रे।
फुललि[३] मधुरि फुल सिन्दुर[४] लोटाएल
पाँति वइसलि[५] गजमोति रे॥
आज देखल जत के पतिआएत
अपरुव[६] विहि निरमाण[७] रे॥
विपरित कनक कदलि तर[८] सोभित[९]
थलपङ्कज के रूप रे।
तथिहुँ मनोहर वाजन वाजए
जनि जगे मनसिज भूप रे[१०]॥
भनइ[११] विद्यापति[१२] एहु पूरव पुनतह
ऐसनि भजए रसमन्त रे।
वुझए सकल रस नृप सिवसिंघ[१३]
लखिमा[१४] देइ[१५] कर[१६] कन्त रे॥

न० गु०, प० १९

पाठभेद—

रा० त० (पृ० ७२)—१ युगल। २ शैल। ३ फुलल। ४ सिन्दुरे। ५ वैसलि। ६ अपुरुव। ७ निरमान। ८ तरें। ९ शोभित। १० 'तयहुँ' से 'भूप रे' पर्यन्त पाठाभाव। ११-१२ गजसिंह भन। १३ पुरुषोत्तम। १४-१५-१६ असमति देइ केर।

मि० म० (परिशिष्ट ङ, पद-संख्या २)—'रागतरंगिणी' के अनुसार।

[३]

सखि,

आज मधुरिपु भेटल मो हटिआँ।

लोचन जुगल जुड़ाएल बटिआँ॥

दरसन लोभे पसार देल हमे

सखि-मुखे सुनि बड़ रसी।

तखने उपजु रस भेलिहु मोञे परबस

बिसरलि दुघहु कलसी॥

मधुरिपु सम नहि देखिअ सोहाओन

जे दिअ तन्हिक उपाम रे।

सरद सुधानिधि जसु मुख नेओछन

पङ्कज की लेब नाम रे॥

अधराञे लोचने जखने निहारलन्हि

बाङ्क कइए भउह भङ्गा रे।

तखनुक अवसर जागल पचसर

थाने थाने गेल अङ्गा रे॥

दान-कलपतरु मेदिनि अवतरु

नृपति हिन्दु सुरतान रे।

मेधा देवि-पति रूपनराअन

सुकवि भनथि कण्ठहार रे॥

न० गु०, प० ६०

पाठभेद—

रा० त० (पृ० १११)—

सखि,

मधुरिपु सन के कतए सोहावोन

जे दिअ तन्हिक उपाम हे।

तसु मन नेओछन सरद सुधानिधि

पङ्कज के लेत नाम हे॥ध्रु०॥

सखि,
आज मधुरिपु देखल मोजे हटिआ
लोचन जुगल जुडएला॥
अधरहिँ लोचने जखने निहारलन्हि
वाँक कइए भौँह भङ्गा।
तखनुक अवसर जागल पचसर
थाने-थाने गेल अङ्गा॥
दरसन लोभे पसार देल हमे
सखि मुखे सुनि वड रसी।
तखने उपजु रस भेलिहुँ परवस
बिसरलि दुधहुँ कलसी॥
दानकलपतरु मेदिनि अवतरु
नृप हिन्दू सुलताने।
मेधा देइ-पति रूपनराएन
प्रणवि जीवनाथ भाने॥

[४]

सुरत समापि सुतल वर नागर
पानि पओधर आपी।
कनक-शम्भु[1] जनि पूजि पुजारे[2]
धएल सरोरुहे[3] झाँपी[4]॥
सखि हे माधव[5] केलि विलासे।
मालति रमि अलि नाइँ अगोरसि[6]
पुनु रतिरङ्गक आसे॥
वदन मेराए धएलन्हि मुखमण्डल[7]
कमल[8] मिलल जनि चन्दा।
भमर चकोर दुअओ अरसाएल[9]
पीबि अमिअ मकरन्दा॥
भनइ अमि(य)कर[10] सुनह[11] मधुरपति
राधा-चरित अपारे[12]।

राजा सिवसिंह[13] रूपनराअन[14]
सुकवि भनथि कण्ठहारे[15]॥

न० गु०, प० ३१७

पाठभेद—

रा० त० (पृ० ८४-८५)—१ सम्भु। २ पुजारे। ३ सरोरुहे। ४ झापी। ५ मालति। ६ अगोरलि। ७ मुखमण्डलँ। ८ कमलँ। ९ अलसाएल। १० गमिनकर। ११ सुनु। १४ रूपनराएन। १५ लखिमा देइ कण्ठहारे।

मि० मि० (पद-सख्या ८९४)—१ सम्भु। १० अमिकर। १२ अपार। १३ सिवसिंघ। १४ रूपनरायन १५ कण्ठहार।

[५]

मानिनि,
अरुन पूरब दिसा[1] बहलि सगरि निसा[2]
गगन मगन भेल चन्दा।
मुदि[3] गेलि कुमुदिनि तइअयो तोहर धनि
मूदल[4] मुख अरबिन्दा॥
चान्द[5] वदन कुवलय दुहु लोचन
अधर मधुर[6] निरमाने।
सगर सरीर कुसुमे[7] तुय[8] सिरिजल
किएदहु[9] हृदय पखाने॥
असकति करह[10] ककन[11] नहि परिहह[12]
हार[13] हृदय[14] भेल भारे।
गिरि सम गरुअ मान नहि मुञ्चसि
अपुरुब तुअ बेबहारे॥
अवगुन परिहरि हेरह[15] हरखि[16] धनि[17]
मानक अवधि बिहाने।
राजा सिवसिंह रूपनाराअेन
कवि विद्यापति भाने[18]॥

न० गु० प० ३६६

पाठभेद—

पारिजातहरण (जर्नल, बिहार ऐण्ड ओडीसा रिसर्च सोसायटी, १९१७, खण्ड ३, भाग १, पृ० ४४-४६)—१ दिसि। २ निसि। ३ मुनि। ४ मूनल। ५ कमल। ६ मधुरि। ७ कुसुम। ८ तुअ। ९ किए तुअ। १० कर। ११ कङ्कन। १२ परिहसि। १३-१४ हृदय हार। १५-१६-१७ हरखि हेरु घनि। १८ हिमगिरि कुमरि चरन हृदय धरि सुमति उमापति भाने।

मि० म० (परिशिष्ट 'ङ', पद-सख्या ३) 'पारिजातहरण' के अनुसार।

[६]

तोहँ[1] हम[2] पेम जतें[3] दुरें[4] उपजल
सुमरबि से परिपाटी।
आबे पररमनि रङ्गरस भुलना[5] हे
कओनें[6] कला हम[7] घाटी॥

भमरवर!
मोरे बोले बोलब कन्हाइ।
विरह-तन्त जदि बुझथि[8] मनोभव
की फल अधिक बुझाइ[9]॥
तुलए[10] सुमेरु साधु जन तुलना
सबका[11] धइरज[12] धने।
तोँहे निअ लोभे वचन आबे चुकलाहे[13]
गरिमा धरबि कओनें[14]॥
पुरुष-हृदय जल—दुअओ सहजे[15] चल
अनुबन्धे[16] बाँध[17] थिराइ।
से जदि फुटल रह सहस धारे बह[18]
उचेओ नीचे[19] पथे जाइ॥
भनइ विद्यापति[20] नव कविशेखर
पुहुबी दोसर कहाँ।[21]

साह हुसेन भृङ्ग सम नागर
मालति सेनिक जहाँ[२२] ॥

न० गु०, प० ४८४

पाठभेद—

रागतरंगिणी (पृ० ६७)—१ तोहँ। २ हँमँ। ३ जते। ४ दुरे। ५ भुलला। ६ कओन। ७ हमे। ८ जान। ९ जनाइ। १० सुनिअ। ११ सबकाँ। १२ महिमा। १३ तन्हि निअ लोभें ठाम जदि छाड़ब। १४ गरिमा गहवि कओने। १५ सहजे। १६ अनुबधे। १७ बाधे। १८ से जँदि न थिर रह सहसे धारे वह। १९ नीच। २० जसोधर। २१ पुहबी तेसर काँहाँ। २२ ताँहाँ।

सि० स० (परिशिष्ट 'ङ', पद-सख्या ४)—'रागतरगिणी' के अनुसार।

[७]

प्रथम तोहर पेम गउरबे
गरबे बाउलि भेलि।
अधिक आदर लोभ लुबधलि
चुकलि तें रति केलि॥
खेमह एक अपराध माधव
पलटि हेरह ताहि।
तोह विना जदि अमिय पीउति
तइअओ न जीउत राहि॥
कालि परसु मधुर जे छलि
आज से भेल तीति।
आनहु बोलब पुरुष निरदय
हठहि तेज पिरीत॥
मुहुँ जौं अब ताहि तेजब
इ अति कओन बड़ाइ।
तोंह बिनु जब जीव तेजब
से वध लागब काँइ॥

बइरिहु एक अपराध खेमिय
राजपण्डित भान।
रमनि राधा रसिक यदुपति
सिह भूपति जान॥

न० गु०, प० ५०९

विशेष—यह पद 'नेपाल-पदावली' मे भी है। अतः, इसके लिए प्रथम भाग [परिशिष्ट (क)] का १ संख्यक पद देखिए।

[८]

ओ जे अभागलि देहरि लागलि
पथ निहारए तोर।
निचल लोचन सुन न वचन
ढरि-ढरि खस नोर॥
माधव! काजि बिसरलि बाला।
ओ नवि नागरि गुनक आगरि
भेलि निमालक माला॥
रूखलि भुखलि दुखलि देखलि
देखलि सखि समेतें।
फूजाल काबरि न बाध सामरि
सुन्दरि अबथ एते॥
तोहे बिसरलि अदिग पड़लि
दुबर झामर देह।
जनि सोनारें कसि कसउटा
तेजल कनक रेह॥
दिने सात-पाँचे असन दितहुँ
से आबे नीर न पीब।

अधर अमिअ गए पिआबह
तओं जओं जीब तओ जीब ॥
उससि-उससि पर खसि-खसि
आलि निहारए धाए।
जाहि बेआधि पराधिन औखध
ताहेरि कओन उपाए ॥
माधव! तोरि पजारल आगि।
तोरित भए कहु (जाइ) मिझाबह
बधओ जाएत लागि ॥
भनें पञ्चानन औखद आन न
विरह मन्द व्याधि।
जतहि पाउति हरि दरसन
ततहि तेजति आधि ॥

न० गु०, प० ७८४

पाठभेद--

मि० म० (परिशिष्ट 'क', पद-संख्या ५)--पाठभेद नही है।



पदानुक्रमणी

(रामभद्रपुर)